स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥

उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

MAEC-103
भारतीय अर्थव्यवस्था संरचना व नीतियाँ

खण्ड 01 : भारत की आर्थिक नीति एवं नियोजन
खण्ड 02 : भारतीय अर्थव्यवस्था : विकास के मुद्दे
खण्ड 03 : भारतीय कृषि
खण्ड 04 : उद्योग एवं विदेशी व्यापार
खण्ड 05 : समानान्तर अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक न्याय

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज-211013
www.uprtou.ac.in

MACE – 103
भारतीय अर्थव्यवस्था संरचना व नीतियाँ

खण्ड 01 भारत की आर्थिक नीति एवं नियोजन

इकाई 01 भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था
02 नेहरू एवं गांधी की विकास व्यूह रचना भारी उद्योग एवं ग्रामीण विकेन्द्रित विकास
03 भारत की विकास प्रक्रिया एवं नियोजन
04 पंचवर्षीय योजनाएं : उद्देश्य, उपलब्धियाँ एवं बाधाएं
05 भारत की आर्थिक सुधार की आवश्यकता एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था से विमोह
06 पूंजीवादी पुनर्जागरण, नव बाजारवाद एवं तद्जनित समस्याएं

खण्ड 02 भारतीय अर्थव्यवस्था : विकास के मुद्दे

इकाई 01 अर्थव्यवस्था के विकास की गति का आंकलन
02 अर्थव्यवस्था में बचत एवं निवेश की प्रवृत्ति, पूंजीवादी उत्पाद अनुपात एवं उसके प्रभाव
03 निर्धनता एवं आर्थिक विषमताएं
04 भारत में बेरोजगारी एवं अल्प रोजगार एवं रोजगार नीति
05 जनांकीय आयाम : भारत में जनसंख्या वृद्धि दर
06 जनसंख्या एवं आर्थिक विकास

खण्ड 03 भारतीय कृषि

इकाई 01 भारतीय भूमि व्यवस्था,
02 कृषि विकास की प्रवृत्ति : उपलब्धियां एवं समस्याएं,
03 प्रथम हरित क्रान्ति एवं सतत हरित क्रान्ति की आवश्यकता
04 खाद्य सुरक्षा
05 कृषि में विनियोजक की समीक्षा एवं कृषि उत्पाद मूल्य निर्धारण

खण्ड 04 उद्योग एवं विदेशी व्यापार

इकाई 01 भारत में औद्योगिक विकास की प्रवृत्तियां
02 प्रमुख संगठित उद्योग : लोहा व स्पात, सूती वस्त्र, चीनी आदि
03 भारत में क्षेत्रीय विषमताएं एवं सतुंलित औद्योगिक की नीतियां
04 भारत का विदेशी व्यापार : आयात एवं निर्यात की प्रवृत्तियां एवं आयात –निर्यात नीति
05 भारत का भुगतान संतुलन
06 भारत में विदेशी पूंजी एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियां

खण्ड 05 समानान्तर अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक न्याय –

इकाई 01 भारत में काले धन की समस्या एवं उसकी वृद्धि दर
02 समान्तर अर्थव्यवस्था एवं उसके आर्थिक एवं सामाजिक विखराव का विश्लेषण
03 भारत में भ्रष्टाचार एवं आर्थिक विकास का अनुकूल/विपरीत सह सम्बन्ध
04 आर्थिक विषमताएं एवं उसके सामाजार्थिक दुश्प्रभाव नक्सलवादी, माओवादी प्रवृत्तियां
05 सामाजिक न्याय की अवधारणा : जॉन राल्स, राबर्ट नोजिक, अमर्त्य सेन आदि के विचार, विशिष्ट वर्गो का सशक्तीकरण

उ०प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

गुरुकुल से छात्रकुल

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत्॥

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज-211013

www.uprtou.ac.in

MAEC-103
भारतीय अर्थ व्यवस्था संरचना व नीतियाँ

परामर्श–समिति

प्रोफेसर सीमा सिंह	**कुलपति–अध्यक्ष**
प्रो. सत्यपाल तिवारी	निदेशक, मानविकी विद्याशाखा– कार्यक्रम संयोजक
श्री विनय कुमार	कुलसचिव–सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो. सत्यपाल तिवारी	**अध्यक्ष**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ अनिल कुमार यादव	**संयोजक**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो.किरन सिंह		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. एम.के. सिंह		एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
डॉ. विश्वनाथ कुमार		एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी
डॉ. अनूप कुमार		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

सम्पादक

प्रो. (डॉ.) विश्वनाथ कुमार — अर्थशास्त्र विभाग, एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी

परिमापक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

लेखक मण्डल

लेखक
डॉ. अनिल कुमार यादव
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज
डॉ. शैलेन्द्र कुमार सिंह
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज
श्री सतेंद्र कुमार
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज
डॉ. अमित पाण्डेय
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, ए.के.डी.सी., प्रयागराज

मुद्रित– (माह), (वर्ष)

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – (वर्ष)

ISBN-

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, (माह) (वर्ष), (मुद्रक का नाम व पता)

खण्ड – प्रथम

इकाई – 1

भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

1.1.1 उद्देश्य

1.1.2 प्रस्तावना

1.1.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था का अर्थ

1.1.4 मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

1.1.5 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था

1.1.6 मिश्रित अर्थव्यवस्था का गुण

1.1.7 मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोष

1.1.8 पूंजीवाद एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

1.1.9 मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाये जाने के कारण

1.1.10 सारांश

1.1.11 बोध प्रश्न

1.1.12 शब्दावली

1.1.13 कुछ उपयोगी पुस्तके

1.1.1 उद्देश्य –

1–प्रस्तुत इकाई में हम मिश्रित अर्थव्यवस्था के अर्थ की जानकारी प्राप्त करेंगे।

2–प्रस्तुत इकाई में हम मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रभाव की जानकारी प्राप्त करेंगे।

3–प्रस्तुत इकाई में हम भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था के लक्षणों या विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे ।

4–प्रस्तुत इकाई में हम भारतीय उद्योगों पर मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रभाव की जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.1.2 प्रस्तावना–

भारत में स्वतंत्रता से पूर्व आर्थिक सामाजिक समस्याओं के निदान के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ निश्चित अवस्था दो परस्पर विरोधी पूंजीवादी तथा समाजवादी विचारधाराओं को सहयोग है जिनके उद्देश्य भी भिन्न–भिन्न है जहां पूंजीवादी विचारधारा का उद्देश्य अधिकतम लाभ प्राप्त करना है वहीं समाजवादी विचारधारा का उद्देश्य अधिकतम सामाजिक कल्याण की प्राप्ति है अतः भारतीय नीति निर्माताओं ने स्वतंत्रता पश्चात आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं के निवारण हेतु मध्यम मार्ग को अपनाते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया जिसमें पूंजीवादी उद्योगों के विकास के लिए तत्कालिक पूंजी पतियों का सहयोग लिया गया तथा सामाजिक समस्याओं के निवारण हेतु सरकार द्वारा प्रयास किए गए स्वतंत्रता प्राप्ति के समय संपूर्ण विश्व दो तरह की अर्थव्यवस्था में बटा हुआ था पहला पूंजीवादी विचारधारा जिसका नेतृत्व अमेरिका करता था दूसरा साम्यवादी या समाजवादी विचारधारा जिसके नेतृत्व कर्ता के रूप में रूस था इन दोनों विचारधाराओं की इतर भारत में नीति निर्माताओं ने मध्यम मार्ग अपनाया क्योंकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अपनाने में उन्हें भविष्य में पूंजी पतियों के

एकाधिकार का भय था तो दूसरी ओर समाजवादी विचारधारा को अपनाने के लिए सरकार के पास पर्याप्त संसाधनों का अभाव था।

1.1.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था का अर्थ –

मिश्रित अर्थव्यवस्था का अर्थ मिश्रित अर्थव्यवस्था दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं का सहअस्तित्व है जिसमें पूंजीवाद के निर्बाध विकास का समर्थन भी है एवं अर्थव्यवस्था में उपलब्ध संसाधनों का सामाजिकरण भी है तथा राष्ट्र और राज्यों का नियंत्रण जिससे कि संसाधनों के वितरण आवंटन में समानता बनी रहे मिश्रित अर्थव्यवस्था पूंजीवाद समाजवाद एवं लोकतंत्र के समाजीकरण से निर्मित हुई है जिसने उत्पादन वितरण तथा राष्ट्रों के आर्थिक तथा सामाजिक विकास के कार्यक्रम ना तो पूर्ण रूप से सरकार के हाथ में होते हैं ना ही किसी व्यक्तिगत पूंजीपति के हाथ में होते हैं मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार तथा पूंजीपतियों द्वारा राष्ट्र का सामाजिक तथा आर्थिक विकास नियोजित तथा अनियोजित रूपों के पारस्परिक समन्वय से किया जाता है।

प्रोफेसर लर्नर के अनुसार मिश्रित अर्थव्यवस्था के स्वतंत्र उपक्रम प्रणाली को बिना संचालन की मोटर बताया जिसमें बैठे हुए यात्री संचालक पहियों को कभी बाएं मोड़ते हैं कभी दाएं मोड़ते है परंतु कुछ प्रतिबंधों के अनुरूप जिससे कि आपस में लड़ ना सके उसी प्रकार मिश्रित प्रणाली को एक ऐसी मोटर बताया जिसमें संचालक होता है यानी जिसमें आर्थिक व्यवस्था पर राज्य का योजनाबद्ध नियंत्रण होता है इसलिए प्रोफेसर लर्नर द्वारा इसे नियंत्रित प्रणाली कहा गया था इससे स्पष्ट होता है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था पूंजीवाद तथा समाजवाद का मध्यम मार्ग है।

जे० डब्लू ० ग्रोव के अनुसार मिश्रित अर्थव्यवस्था की अनेक पूर्व मान्यताओं में से एक यह है कि उत्पादन एवं उपभोग संबंधी को प्रभावित करने में निजी क्षेत्र को स्वतंत्र पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत जितने स्वतंत्रता प्राप्त होती हैं मिश्रित अर्थव्यवस्था में उससे

कम स्वतंत्रता प्राप्त होती है तथा सार्वजनिक क्षेत्र पर सरकारी नियंत्रण इतना कठोर नहीं होता जितना केंद्रीकृत समाजवादी अर्थव्यवस्था में पाया जाता है।

कीन्स के अनुसार मिश्रित अर्थव्यवस्था का जन्म एक ओर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की विश्वव्यापी महामंदी की बुराइयों और दूसरी ओर सोवियत संघ रूस की अधिनायकवाद प्रशासन की बुराइयों को दूर करने के लिए विकल्प के रूप में हुआ है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था में दो आर्थिक प्रणालियों– पूंजीवाद एवं समाजवाद का समावेश होता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद एवं समाजवाद दोनों प्रणालियों की विशेषताओं का सह–अस्तित्व होने के कारण मिश्रित अर्थव्यवस्था को पूंजीवाद एवं समाजवाद का एक मध्यम मार्ग कहा जा सकता है।

पूंजीवाद एवं समाजवाद दोनों ही प्रणालियों में दोष विद्यमान थे। पूंजीवाद में कोई सरकारी अहस्तक्षेप की नीति के कारण व्यापार चक्र, प्रतियोगिता, अपव्यय, आर्थिक अस्थिरता, वर्ग संघर्ष, शोषण जैसी समस्याएं उपस्थित होती हैं जबकि समाजवाद में ठीक इसके विपरीत आर्थिक स्वतंत्रताओं की समाप्ति, नौकरशाही प्रेरणा का अभाव, आदि दोष उपस्थित थे। दोनों ही प्रणालियों के दोषपूर्ण होने के कारण में यह आवश्यक समझा गया कि अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास के लिए तथा सामाजिक एवं आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए एक ऐसी आर्थिक प्रणाली क्रियान्वित की जाये जिसमें पूंजीवाद की स्वतंत्रता तो हो, किन्तु वह स्वतंत्रता सरकार की नीतियों द्वारा संचालित एवं नियंत्रित हो तथा साथ ही साथ सरकार द्वारा संचालित सार्वजनिक क्षेत्र अर्थव्यवस्था को एक समाजवादी आधार दे सके इसी विचारधारा के परिणामस्वरूप मिश्रित अर्थव्यवस्था का विचार अस्तित्व में आया।

प्रो0 जे. ब्लयू ग्रोव के शब्दों में ''मिश्रित अर्थव्यवस्था की अनेक पूर्व मान्यताओं में से एक यह है कि उत्पादन एवं उपभोग सम्बन्धी निर्णयों की प्रभावित करने में निजी क्षेत्र को स्वतंत्र पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत जितनी स्वतंत्रता प्राप्त होती है मिश्रित

अर्थव्यवस्था में उससे कम स्वतंत्रता प्राप्त होती है तथा सार्वजनिक क्षेत्र पर सरकारी नियंत्रण उतना कठोर नहीं होता जितना केन्द्रीकृत समाजवादी अर्थव्यवस्था में पाया जाता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र एक साथ पूरक घटकों के रूप में कार्य करते हैं। दोनों क्षेत्रों का कार्य क्षेत्र सरकार द्वारा निर्धारित कर दिया जाता है। सामाजिक हित में सरकार निजी क्षेत्र की क्रियाओं में भी पत्यक्ष हस्तक्षेप करती है। इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था में नियंत्रित अर्थव्यवस्था की नीतियों द्वारा नियंत्रित होता है। प्रो.ए.पी. लर्नर मिश्रित अर्थव्यवस्था नियंत्रित अर्थव्यवस्था कहकर पुकारते हैं।''

1.1.4 मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएं–

1. निजी अर्थव्यवस्था की सफलता की शर्तें–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद एवं समाजवाद दोनों प्रणालियें की विशेषताओं को सम्मिलित करके अर्थव्यवस्था के संचालन के लिए एक माध्यम मार्ग अपनाया जाता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों अपने निर्धारित कार्यों को सरकारी निर्देशन में करते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में जहॉ सरकार का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप होता है। वहीं निजी क्षेत्र में सरकार का अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप होता है। आधुनिक समय में मिश्रित अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के अतिरिक्त संयुक्त क्षेत्र तथा सहकारी क्षेत्र के रूप में क्रियाओं का संचालन करते हैं।

2. लोकतांत्रिक व्यवस्था–

मिश्रित अर्थ व्यवस्था लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित होती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रियाओं का निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों विभाजन नीतियों का निर्धारण, लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का निर्धारण, संसाधनों का आवंटन आदि सभी की स्वीकृति

जन प्रतिनिधियों द्वारा कीजाती है। इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था का संचालन लोकतांत्रिक पद्धति पर किया जाता है और एकाधिकारी एवं तानाशाही प्रवृत्तियों के उदय की कोई संभावना नहीं रहती।

3. आर्थिक नियोजन–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार आर्थिक क्रियाओं का क्रियान्वयन आर्थिक नियोजन के माध्यम से करती है। अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सरकार केन्द्रीकृत नियोजन सत्ता के माध्यम से निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों के लिए भौतिक एवं वित्तीय लक्ष्य निर्धारित करती है। दोनों ही क्षेत्र सरकार द्वारा निर्धारित नियमों के अन्तर्गत अपने लिए आवंटित भौतिक एवं वित्तीय लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कार्य करते हैं। आर्थिक नियोजन की सफलता के लिए क्षेत्रों का नियमन सरकार राजकोषीय एवं मौद्रिक नीतियों द्वारा करती है। भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था पद्धति के अन्तर्गत आर्थिक नियोजन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। भारत में भारतीय योजना आयोग पंचवर्षीय योजनाएं बनाकर राष्ट्रीय विकास परिषद से उसका अनुमोदन लेकर निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

4. आर्थिक स्वतन्त्रता–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्वतंत्रताओं की समाजवाद की भांति पूर्ण अनुपस्थिति नहीं होती। मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्वतंत्रताएं तो होती हैं, किन्तु पूंजीवाद की तुलना में कम होती हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था में सामाजिक हित एवं कल्याण को ध्यान रखकर व्यक्तिगत उद्यमियों को सीमित आर्थिक स्वतंत्रताएं प्रदान की जाती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद की भांति उपभोक्ता की प्रभुसत्ता तो नहीं होती फिर भी जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों द्वारा आर्थिक नियोजन का प्रारूप सवीकृत होने के कारण व्यक्तिगत स्वतंत्रता पूर्णतः समाप्त नहीं हो पाती।

5. कीमत एवं संयन्त्र संचालन पर नियंत्रण–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में कीमत संयन्त्र के संचालन को सरकार समाजिक हित की दृष्टि से अपनी कीमत नीति द्वारा नियंत्रित करती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में कीमत संयन्त्र को उस सीमा तक कार्य करने दिया जाता है, जब तक उसका सामाजिक कल्याण के उद्देश्य एवं आर्थिक विकास की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

6. लाभ उद्देश्य–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक स्वतंत्रता का संचालन लाभ उद्देश्य की भावन से किया जाता है। अर्थव्यवस्था मे ंसाधनों का आवंटन इसी लाभ उद्देश्य के आधार पर किया जाता है। किन्तु लाभ उद्देश्य को इस अर्थव्यवस्था में पूर्णरूपेण स्वतंत्र छोड़ दिया जाता। व्यक्तिगत व्यवसायियों एवं व्यक्तियों को उस सीमा तक धन कमाने व लाभ कमाने की स्वतंत्रता होती है जब तक उसका सामाजिक समानता एवं न्याय के उद्देश्य पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

7. आर्थिक समानता एवं सामाजिक न्याय–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में यद्यपि निजी सम्पत्ति, उत्तराधिकार का नियम तथा आर्थिक स्वतंत्रताएं पायी जाती हैं फिर भी समाज में आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिए सरकार आर्थिक एवं राजकोषीय नीतियों द्वारा धनी व्यक्तियों की बढ़ती सम्पत्ति के आकार को नियमित करती है तथा साथ ही सरकार कर आदि द्वारा धनी व्यक्तियों से आय अर्जित करके गरीब वग्र के लिए आवश्यक सुविधाएं समाज में उत्पन्न करती है।

8. सामाजिक सुरक्षा–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार सामाजिक सुरक्षा पर विशेष ध्यान देती है। वृद्धावस्था पेन्सन, बेरोजगारी भत्ता, दुर्घटना एवं मृत्यु बीमा आदि के द्वारा सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है।

1.1.5 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था

भारतीय अर्थव्यवस्था में मिश्रित अर्थव्यवस्था का सर्वोत्तम उदाहरण है इसका प्रारंभिक विकास अप्रैल 1948 में के औद्योगिक नीति के प्रस्ताव के परिणाम स्वरूप हुआ भारतीय संविधान के निदेशक सिद्धांतों के अधीन आर्थिक क्षेत्र में राज्य को अपने नीति का इस प्रकार निर्देशन करना था कि समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्व का बेहतर वितरण एवं नियंत्रण प्राप्त हो सके जिससे कुछ व्यक्तियों के हाथों में संपत्ति का सकेंद्रण और श्रम का शोषण रोका जा सके वर्ष 1948 की औद्योगिक नीति में उद्योगों को उनके महत्व के आधार पर 4 वर्गों में विभाजित कर दिया गया प्रथम वर्ग में वे उद्योग जो राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे जैसे अस्त्र–शस्त्र अणुशक्ति रेलवे यातायात आदि उद्द्योगो को सरकार के एकाधिकार में रखा गया द्वितीय वर्ग कोयला लोहा एवं इस्पात हवाई जहाज निर्माण समुद्री जहाज खनिज आदि बुनियादी उद्योगों को भी सरकार के नियंत्रण में रखा गया तृतीय वर्ग में 20 उद्योगों नमक मोटर भारी मशीनरी उर्वरक विद्युत इंजीनियरिंग रबर सूती वस्त्र उद्योग आदि उद्योगों को निजी क्षेत्र के अंतर्गत रखा गया परंतु सरकार का सामान्य नियंत्रण तथा चतुर्थ वर्ग में उन सभी उद्योगों को रखा गया जो निजी क्षेत्रों द्वारा संचालित होते है पर सरकार द्वारा इन उद्योगों में आवश्यकतानुसार नियंत्रण किया जाएगा ।

1.1.6 मिश्रित अर्थव्यवस्था का गुण –

मिश्रित अर्थव्यवस्था का उदय पूंजीवाद एवं समाजवाद के दोषों को दूर करने वाली एक वैकल्पिक प्रणाली के रूप में हुआ था। इस प्रणाली के रूप में दोनों प्रणालियों– समाजवाद एवं पूंजीवाद के गुणों का समावेश उपस्थित रहता है। दूसरे शब्दों में, इस प्रणाली में दोनों ही प्रणालियों के लाभ दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें पूंजीवादी शक्तियों को नियन्त्रित करके समाजवादी शक्तियों को देश की आवश्यकतानुसार प्रोत्साहित किया जाता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के मुख्य गुण निम्नवत हैं–

1. आर्थिक विकास की तीव्र गति–

आधुनिक समय में मिश्रित अर्थव्यवस्था आर्थिक विकास की तीव्र गति के लिए आवश्यक प्रणाली बन गई है। इस प्रणाली में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों परस्पर एक साथ कार्य करके अर्थव्यवस्था में विकास की दर में वृद्धि के लिए आर्थिक एवं सामाजिक उपरि ढांचे की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति मिश्रित अर्थव्यवसाि में सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा की जाती है। अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन अपनाकर साधनों का अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में अनुकूलतम आवंटन किया जाता है।

2. आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण एवं एकाधिकारी शक्ति पर रोक–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार का निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों पर पूर्ण नियंत्रण होता है। सरकार अपनी विभिन्न नीतियों द्वारा निजी क्षेत्र की क्रियाओं को सामाजिक हित के उद्देश्य को ध्यान में नियंत्रित करके समाजवादी शक्तियों को देश की आर्थिक शक्ति का कुछ व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रीकरण नहीं हो पाता तथा साथ ही अर्थव्यवस्था में एकाधिकारी प्रवृत्तियां उपस्थित नहीं हो पाती।

3. स्वतंत्रता एवं प्रेरणा –

मिश्रित अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत लाभ एवं स्वामित्व का अधिकार होने के कारण उत्पादकों के लिए पर्याप्त प्रेरणा उपस्थित रहती है। उपभोक्ता की स्वतंत्रता भी समाजवाद की भांति पूर्ण प्रतिबन्धित नहीं होती। उपभोक्ता को अपनी राय को अपनी पसन्द के अनुसार व्यय करने की पर्याप्त स्वतंत्रता मिश्रित अर्थव्यवस्था में होती है।

4. सामाजिक कल्याण में वृद्धि–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था का नियंत्रण एवं संचलन सरकार द्वारा सामाजिक कल्याण के उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। सरकार व्यक्तिगत क्षेत्र का विभिन्न नीतियों द्वारा नियमन करके समाज में व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण की संभावना समाप्त करती है।

5. आर्थिक विषमताओं में कमी–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में यद्यपि निजी सम्पत्ति, उत्तराधिकार के नियम तथा आर्थिक स्वतंत्रताएं पायी जाती हैं, फिर भी समाज की आर्थिक विषमताओं में कमी के लिए सरकार आर्थिक एवं राजकोषीय नीतियों द्वारा धनी व्यक्तियों सम्पत्ति के आकार को नियंत्रित करती है, साथ ही सरकार कर आदि के द्वारा धनी व्यक्तियों की अतिरिक्त आय का एक भाग छीन कर गरीब वर्ग के लिए आवश्यक सुविधाएं समाज मे ंउत्पन्न करती है।

6 औद्योगिक शान्ति एवं सामाजिक सुरक्षा–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र सरकार द्वारा नियंत्रित होने के कारण इस प्रणाली में व्यक्तिगत उद्यमियों द्वारा श्रमिकों का आर्थिक शोषण नहीं हो पाता। सरकार श्रमिकों के हितों को सर्वोपरि मानकर उनके कल्याण के लिए अनेक कानून बनाती है

जिसके कारण मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद की भांति हड़ताल, कामबन्दी, तालेबंदी, आदि जैसी समस्याएं उत्पन्न नहीं हो पातीं।

7. मानव संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग–

मिश्रित अर्थव्यवस्था का आधार आर्थिक नियोजन है जिसमें देश के मानव संसाधनों की पूर्ति को ध्यान में रखकर उत्पादन प्रकृति का चुनाव किया जाता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में मानव पूंजी निर्माण द्वारा अर्थात् मानव की दक्षता, योग्यता एवं शिक्षा में सुधार करके एवं प्रशिक्षित करके मानव संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग सुनिश्चित किया जाता है।

1.1.6 मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोष–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में उपस्थित होने वाले दोष निम्नलिखित हैं।

1. व्यावहारिकता में निर्बल एवं अकुशल प्रणाली–

मिश्रित अर्थव्यवस्था की सफलता पर आलोचकों द्वारा प्रश्न चिन्ह इस आधार पर लगाया जाता है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था का सैद्धान्तिक पक्ष चाहे कितना मजबूत क्यों न हो व्यावहारिकता में यह एक निर्बल आर्थिक नीति है। व्यवहार में निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र पूर्णतः विपरीत पद्धति से कार्य करने वाले क्षेत्र हैं, जिनमें आर्थिक नीतियों के द्वारा भी उचित सामंजस्या स्थापित नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त मिश्रित अर्थव्यवस्था में विभिन्न निर्णयों में अनेक कठिनाइयां आती हैं, क्योंकि मिश्रित अर्थव्यवस्था में कीमत संयन्त्र न तो पूंजीवाद की भांति पूर्णरूपेण क्रियान्वित हो पाता है और न ही समाजवाद की भांति पूर्ण अनुपस्थित है।

2. राष्ट्रीयकरण का भय–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र को सरकारी राष्ट्रीयकरण का भय सदैव बना रहता है। इस भय के कारण व्यक्तिगत उद्यमी में व्यावहारिक रूप से विनियोग के प्रति विशेष रूचि एवं प्रेरणा उत्पन्न नहीं हो पाती। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयकरण का भय विदेशी उद्यमियों को भी अपनी पूंजी विनियोग करने से रोक सकता है।

3. अस्थिरता–

मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकारी नीतियां अर्थव्यवस्था को नियंत्रित करती हैं। सरकारी नीतियां स्थायी नहीं होती और सरकार समय–समय पर औद्योगिक नीति द्वारा निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र का विभाजन परिवर्तित करती रहती है।

4. लालफीताशाही को बढ़ावा–

मिश्रित अर्थव्यवस्था का संचालन सरकार एवं उसके प्रशासन तन्त्र द्वारा किया जाता है। प्रशासन तन्त्र की लालफीताशाही व्यक्तियों की स्वतंत्रता एवं प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। लालफीताशाही एवं अफसरशाही से अनेक बार अच्छी योजनाओं का उचित एवं क्रमबद्ध कियान्वयन नहीं हो पाता।

5. लोकतन्त्र को खतरा–

मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोनों क्षेत्रों में सरकारी नियमन होने के कारण समाजवादी शक्तियों को प्रबल होने का खतरा अर्थव्यवस्था में सदैव बना रहता है। निजी क्षेत्र को नियंत्रणों द्वारा कस कर उसकी सम्पत्ति एवं समस्त अर्थव्यवस्था पर सरकार के स्वामित्व का सन्देह मिश्रित अर्थव्यवस्था में सदैव बना रहता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के उपर्युक्त दोषों का यदि विश्लेषण किया जाय तो यह स्पष्ट होता है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था के ये दोष इस प्रणाली की व्यवस्था के कारण नहीं है

बल्कि मिश्रित प्रणाली की नीतियां को ठीक प्रकार से क्रियान्वयन न किये जाने के कारण उत्पन्न होते हैं। इन दोषों का निवारण असंभव नहीं। यदि अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन एवं उसकी नीतियों का सतक्रतापूर्वक क्रियान्वयन किया जाये तो मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोषों को समाप्त किया जा सकता है तथा साथ ही निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में सामंजस्य स्थापित करके आर्थिक विकास दर में वृद्धि की जा सकती है।

1.1.7 पूंजीवाद एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

तुलना का आधार	पूंजीवाद	मिश्रित अर्थव्यवस्था
अर्थ	पूंजीवाद एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें सम्पत्ति के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है तथा इन साधनों का प्रयोग व्यक्तिगत लाभ के लिए किया जाता है।	मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें पूंजीवादी और समाजवादी प्रणालियों का मिश्रण होता है। अर्थात् उत्पत्ति के साधनों पर निजी एवं राज्य दोनों का स्वामित्व होता है।
व्यक्तिगत स्वतंत्रता	पूंजीवाद में पूर्ण रूप से व्यक्तिगत स्वतंत्रता होती है। व्यक्ति को उद्योग एवं व्यवसाय चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है।	मिश्रित अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत, स्वतंत्रता को महत्व दिया जाता है, परन्तु स्वतंत्रता को सीमित कर दिया जाता है।
केन्द्रीय नियोजन	पूंजीवाद में केन्द्रीय नियोजन नहीं होता है।	मिश्रित अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय नियोजन पूर्णरूप से नहीं होता है।

प्रतियोगिता	पूंजीवाद की तो यह मुख्य विशेषता होती है कि इसमें स्वतंत्र प्रतियोगिता होती है।	मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूर्ण रूप से स्वतंत्र प्रतियोगिता नहीं होती वरन् नियंत्रित होती है।
संचालन	पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली स्वयं संचालित होती है क्योंकि इसमें मूल्य तन्त्र ही समन्वय व नियंत्रण का कार्य करता है।	मिश्रित अर्थव्यवस्था में संचालन व्यवस्था मूल्य तंत्र व केंन्द्रीय सत्ता दोनों द्वारा होती है। अतः यह पूर्णरूप से स्वचालित नहीं होती है।
लाभ–उद्देश्य	पूंजीवाद में उत्पादन लाभ उद्देश्य से किया जाता है लाभ सभी संस्थाओं के लिए महत्वपूर्ण होता है।	मिश्रित अर्थव्यवस्था में उत्पादन लाभ उद्देश्य को सामाजिक हित में करके किया जाता है।
सम्पत्ति का अधिकार	पूंजीवाद मे प्रत्येक व्यक्ति को निजी सम्पत्ति रखने, प्रयोग करने एवं हस्तान्तरण का अधिकार होता है।	मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी सम्पत्ति का सीमित अधिकार होता है। सामाजिक हित में निजी सम्पत्ति का अधिग्रहण किया जा सकता है।
वर्ग–संघर्ष	पूंजीवाद में आर्थिक असमानता होने के कारण वर्ग संघर्ष बना रहता है। पूंजीपति एवं श्रमिकों के हितों में अन्तर रहता है।	मिश्रित अर्थव्यवस्था में वर्ग संघर्ष होते परन्तु सीमित मात्रा में अवश्य होते हैं क्योंकि निजी सम्पत्ति एवं लाभ का अधिकार व्यक्तियों को होता है जिससे विषमता पैदा होती है।
आर्थिक	पूंजीवाद में सम्पत्ति एवं	मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूर्ण रूप

समानताएं	साधनों पर निजी व्यक्ति का अधिकार होने के कारण आर्थिक समानता नहीं होती।	से आर्थिक समानता नहीं होती, परन्तु विषमता को कम करने के प्रयत्न किये जाते हैं।
आर्थिक स्थिरता	पूंजीवाद में आर्थिक स्थिरता को खतरा रहता है क्योंकि अति व न्यून उत्पादन के कारण व्यापार चक्र आते रहते हैं।	इसके अन्तर्गत पूर्ण नियोजन नहीं होता तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में समन्वय का अभाव रहता है। अतः आर्थिक स्थिरता पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं होती है।

1.1.8 मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाये जाने के कारण–

भारतीय अर्थव्यवस्था में मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाये जाने वाले कारणों को निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध किया जा सकता है।

1. स्वतन्त्रता के बाद की तात्कालिक परिस्थितियों विशेषकर औद्योगिक अस्थिरता एवं अनिश्चितता के वातावरण को समाप्त करने के लिए।

2. आर्थिक एवं सामाजिक उपरि ढांचे के विकास करने तथा आर्थिक विकास की तीव्र गति प्राप्त करने के लिए।

3. आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण एवं एकाधिकारी शक्ति पर रोक लगाने के लिए।

4. आर्थिक विकास योजनाओं के सफल क्रियान्वयन के लिए।

5. मानव संसाधनों एवं भौतिक साधनों का अनुकूलतम प्रयोग सुनिश्चित करने के लिए।

6. आर्थिक विषमताओं में कमी करने एवं सामाजिक कल्याण जैसे संवैधानिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए।

7. संविधान में उल्लिखित समाजवाद की स्थापना के लक्ष्य को सफल बनाने के लिए।

1.1.9 सारांश–

भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था एक अनिवार्य आयोजित अर्थव्यवस्था है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्रों का कार्य संचालन निश्चित प्राथमिकताओं के आधार पर किया गया जिससे कि निश्चित सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद और समाजवाद का समायोजन पूर्ण रूप से किया जाता है जिसमें निजी क्षेत्र के उद्योग लाभ प्रेरणा पर आधारित होते हैं व्यक्तिगत स्वहित की पूर्ण रूप से पहल होती है तथा निजी संपत्ति का आदर किया जाता है परंतु यह स्वतंत्र पूंजीवाद ना होकर नियंत्रित पूंजीवाद होती है जिससे कि स्वतंत्र उद्यम एवं लाभ प्रेरणा की संचालन शक्तियों और निजी संपत्ति प्रणाली को भी सामाजिक हित में सीमित रखा जाता है साथ ही साथ सार्वजनिक उद्योगों का प्रबंध एवं कार्य संचालन समाज के कल्याण के आधार पर किया जाता है भारत में स्वतंत्रता पश्चात मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाए जाने से भारतीय अवसंरचना का तीव्र गति से विकास के लिए केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा आर्थिक विनियोग बड़े पैमाने पर किया गया जैसे सिंचाई परियोजना जलविद्युत परियोजनाओं सड़कों रेलवे डाक और तार, जहाजरानी और वायु परिवहन आदि अवसंरचना के विस्तार के साथ–साथ बाजार का आकार बड़ा होता गया है कृषि उद्योग से अधिक उत्पादन प्राप्त करने की संभावना बढ़ी है अतः इस प्रकार से भारत में सरकार समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए वचनबद्ध है जिसमें निजी उद्यमों के संवर्धन के साथ–साथ संपत्ति असमानता को दूर करने का प्रयास किया जाएगा इसका स्पष्ट उदाहरण योजना आयोग के द्वारा कहे गए शब्दों से आयोजित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक

और निजी क्षेत्र में भेद सापेक्ष महत्व का है दोनों क्षेत्र एक ही व्यवस्था के अनिवार्य अंग है उन्हें ऐसे ही कार्य करना हो होगा ।

1.1.10 प्रश्नावली–

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न–

1. मिश्रित अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं? इसकी मुख्य विशेषताएं समझाइये।

2. मिश्रित अर्थव्यवस्था के जन्म का कारण पूंजीवाद एवं समाजवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया की व्याख्या कीजिए।

3. मिश्रित अर्थव्यवस्था के प्रमुख लक्षणों की व्याख्या कीजिए।

4. मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद एवं समाजवाद दोनों के गुण उपस्थित हैं। स्पष्ट कीजिए।

5. मिश्रित अर्थव्यवस्था वर्तमान समय की सबसे उपयुक्त प्रणाली है। स्पष्ट कीजिए।

6. मिश्रित अर्थव्यवस्था की आवश्यकता का औचित्य बताइये।

7. मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्रों का सहअस्तित्व होता है। भारत के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न–

1. आर्थिक प्रणाली का अभिप्राय बताइये।

2. आर्थिक प्रणाली के निर्धारक तत्वों को स्पष्ट कीजिए।

3. मिश्रित अर्थव्यवस्था के यन्त्र बताइये।

4. मिश्रित अर्थव्यवस्था में व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों का सह अस्तित्व होत है। स्पष्ट करें।

5. मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद के लाभ मिलते हैं स्पष्ट कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

1. पूंजीवाद अर्थव्यवस्था में होता है।
   - (a) आय का समान वितरण
   - (b) प्रतियोगिता का अभाव
   - (c) सरकार की असीमित भूमिका
   - (d) आर्थिक क्रियाओं का व्यक्तियों द्वारा संचालन
2. पूंजीवाद का मुख्य आधार हैः
   - (a) कीमत संयन्त्र
   - (b) निजी सम्पत्ति
   - (c) प्रतियोगिता
   - (d) उपर्युक्त सभी
3. पूंजीवाद समाज होता है।
   - (a) वर्ग रहित समाज
   - (b) वर्गों में बंटा समाज
   - (c) उपर्युक्त दोनों
   - (d) इनमें से कोई नहीं
4. कीमत संयत्र संचालित करता है।
   - (a) पूंजीवाद को
   - (b) समाजवाद को
   - (c) सामन्तवाद को
   - (d) इनमें से सभी को
5. दास कैपिटल के लेखक कौन हैं?
   - (a) एडम स्मिथ
   - (b) रॉबर्ट ओवन
   - (c) लेनिन
   - (d) कार्ल मार्क्स
6. समाजवाद में उत्पत्ति के साधनों पर अधिकार होता है।
   - (a) व्यक्तिगत पूंजीपतियों का
   - (b) सम्पूर्ण समाज का
   - (c) उपभोक्ताओं का
   - (d) इनमें से सभी का

उक्त इकाई के अध्ययन के पश्चात पाठक मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं की जानकारी प्राप्त करेंगे – इसके अतिरिक्त मिश्रित आर्थिक प्रणाली के क्रियान्वयन की पद्धति तथा इसका पूंजीवाद एवं साम्यवादी प्रणाली से अन्तर समझने में समक्षम होंगे।

1.1.11 शब्दावली –

(1) निजी क्षेत्र – वह उद्योग, कृषि, सेवा क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति/कम्पनी जो पूंजीवादी धारणा पर कार्य करते हैं।

(2) सार्वजनिक क्षेत्र – उद्योग, कृषि, सेवा में कार्य करने वाली वे कम्पनियाँ जो कि सरकार द्वारा संचालित होती हैं।

(3) लालफीताशाही – सरकारी कामकाज में प्रयुक्त फाइलों पर लाल रिबन बंधा होने से यह शब्द निकला। कालान्तर में इसे बाजार पर सरकारी नियंत्रण के दुष्प्रभाव के रूप में जाना जाने लगा क्योंकि महत्वाकांक्षी पूंजीवादी योजनाओं को फाइलों में बंद कर दिया जाता तथा जब तक उन्हें क्रियान्वयन की सरकारी अनुमति दी जाती वे पुरानी तथा अनौचित्य होती थीं।

(4) केन्द्रीय नियोजन – साम्यवादी प्रणाली की प्रमुख विशेषता जो कि मिश्रित आर्थिक प्रणाली का प्रमुख अंग होती है।

इसके अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा अर्थव्यवस्था के विकास के लिये नियोजन प्रणाली का उपयोग किया जाता है।

(6) मानव संसाधन – अर्थव्यवस्था में औद्योगिक, कृषि एवं सेवा क्षेत्र में प्रयोग किया जाने वाला प्रमुख उत्पादन का साधन 'श्रम' जिसे आधुनिक शब्दावली मानव संसाधन के नाम से जाना जाता है।

(7) सामाजिक कल्याण – समाज की वह व्यवस्था जहाँ साधनों का अनुकूलतम आवंटन इस प्रकार हो कि सभी वर्गों को (उपभोग के) इष्टतम स्तर की प्राप्ति हो।

(8) सामाजिक सुरक्षा – मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकार सामाजिक सुरक्षा पर विशेष ध्यान देती है, इसके अन्तर्गत पेन्शन, बेरोजगारी भत्ता, दुर्घटना एवं मृत्यु बीमा आदि सुनिश्चित की जाती है।

1.1.1 कुछ उपयोगी पुस्तके

भारतीय अर्थव्यवस्था, ए. एन. अग्रवाल

भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण नाथूराम

आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं भारत में आर्थिक नियोजन, प्रो.जी.एल.गुप्ता

भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉक्टर ममोरिया एवं जैन

भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.के. राय

भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास और योजनाओं की चुनौतियां, ए. एन. अग्रवाल

रुद्र दत्त एवं सुंदरम रूभारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी रूभारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

खण्ड –1

इकाई –2

नेहरू गांधी की विकास की व्यूह रचना भारी उद्योगों एवं ग्रामीण विकेन्द्रित विकास

इकाई की रूपरेखा

1.2.1–उदेश्य

1.2.2–प्रस्तावना

1.2.3–नेहरु विकास माडल का उद्योगों पर प्रभाव

1.2.4–गांधीवादी माडल का भारी उद्योगों पर प्रभाव

1.2.5–नेहरूवादी और गांधीवादी मॉडल का तुलनात्मक अध्ययन

1.2.6–महात्मा गांधी का ग्रामीण विकेंद्रित विकास

1.2.7–टिकाऊ और सतत विकास की प्रक्रिया

1.2.8–सहयोग एवं सहकारिता के द्वारा आर्थिक समानता

1.2.9– गांधीवादी मॉडल में मशीनरी का उपयोग

1.2.10–गाँधीवादी माडल में कृषि का विकास

1.2.11– सारांश

1.2.12–बोध प्रश्न

1.2.13–उपयोगी पुस्तके

1.2.1—उद्देश्य

1— प्रस्तुत इकाई में हम भारी उद्योगों के रणनीतिक विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

2 — प्रस्तुति ईकाई में हम नेहरू विकास माडल के रणनीति बारे में जानेंगे ।

3 — प्रस्तुत इकाई में नेहरू के भारी उद्योग के प्रति विचारों से अवगत होंगे ।

4 —प्रस्तुत इकाई में हम नेहरू के हल्के उद्योगों के प्रति विचारों से भी अवगत होंगे।

5 —प्रस्तुत इकाई में हम गांधीजी की ग्रामीण विकेन्द्रित विकास रणनीति से अवगत होंगे।

6—गांधी जी के भारी उद्योगों पर विचार से अवगत होंगे।

1.2.2— प्रस्तावना —

स्वतंत्रता पश्चात भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर एवं स्वयं स्फूर्त अर्थव्यवस्था सेल्फ जेनरेटिंग इकोनामी में परिवर्तित करने के लिए आर्थिक विकास की उचित विकास रणनीति अपनाने की महती आवश्यकता थी क्योंकि ब्रिटिश शासन के समय भारत कृषि एवं कृषि आधारित उद्योगों तक सीमित रहने को विवश था और अंग्रेजों द्वारा भारत के कुटीर एवं लघु उद्योगों को प्रायोजित तरीके से नष्ट कर दिया गया भारत के उत्पादित कच्चे माल का पूर्ण उपयोग कर विदेशी वस्तुओं से भारतीय बाजारों को भर दिया गया तथा स्वदेशी उद्योगों को समाप्त कर दिया गया स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात आयोजकों द्वारा भारतीय विस्तृत प्राकृतिक संसाधनों व मानवीय साधनों के पूर्ण उपयोग के द्वारा निष्पादन रोजगार सृजन एवं प्रतिरक्षा की दृष्टि से संसाधनों के प्रयोग के विविधीकरण पर विचार किया गया इन्हीं तर्कों के आधार पर भी भारी उद्योगों के व्यूहरचना एवं औद्योगिकरण पर बल दिया गया नेहरू के विचारधारा के आधार पर यह कहना ठीक नहीं है कि केवल औद्योगिकरण को प्राथमिकता दी गई एवं कृषि की उपेक्षा की गई इस पर पंडित नेहरू ने अपने विचार स्पष्ट करते हुए कहा

कि "यह बात हमें भली–भांति समझनी होगी कि कृषि की उन्नति एवं प्रगति के बिना औद्योगिक प्रगति प्राप्त नहीं की जा सकती है वस्तु स्थिति तो यह है कि दोनों को अलग–अलग करना संभव नहीं है इसमें गहरा संबंध है क्योंकि कृषि की प्रगति उद्योगों की प्रगति के बिना संभव नहीं है" इसका कारण यह है इसके लिए नए औजार नई विधियां नई तकनीक नई मशीनें चाहिए।

1.2.3–नेहरु विकास माडल का उद्योगों पर प्रभाव –

आजादी के बाद से वर्ष 1977 तक भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का आधार नेहरू की विनियोग रणनीति थी इसी कारण इसे विकास का नेहरू मॉडल कहा जाता है नेहरू मॉडल में अर्थव्यवस्था के विकास का आधार भारी उद्योगों को माना गया जिसमें नेहरू यह चाहते थे की अर्थव्यवस्था को बुनियादी उद्योगों द्वारा मजबूत किया जाए जिससे कि विदेशी वस्तुओं की सहायता पर निर्भरता कम की जा सके क्योंकि उसके बिना आर्थिक विकास का प्रश्न ही संभव नहीं विकास मॉडल में अवरुद्ध पराश्रित अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण किया गया साथ ही इसे अधिक आत्मनिर्भर बनाया गया बीज, खाद, टेक्नोलॉजी के प्रयोग से कृषि उत्पादन में भारी वृद्धि की गई जिसके फलस्वरूप देश खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर हो गया और खाद्यान्नों के भारी सुरक्षित भंडार एकत्रित किए गए पूंजीगत वस्तु क्षेत्र में औद्योगिकरण के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को कार्यभार सौंपा गया जिससे कि सिंचाई संचालन शक्ति परिवहन एवं संचार आदि के रूप में आर्थिक अवसंरचना का विकास हुआ और एक आधुनिक ढांचे को चलाने के लिए विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी का विकास एवं प्रबंधकीय संवर्गों का विकास किया गया।

आजादी के पश्चात नेहरु मॉडल के अंतर्गत भारत के उद्योगों में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास किया गया जिसमें रेल, तार, डाकखाना, पोर्ट, युद्ध सामग्री, विमान, कारखाने, कुछ राजकीय प्रबंध वाले कारखाने नमक कारखाना, कुनीन बनाने के कारखाने, का विकास एवं विस्तार औद्योगिक नीति 1956 के अनिवार्य रूप में विकसित किया गया क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत एक कृषि प्रधान देश था जोकि औद्योगिक आधार पर कमजोर था जिसमें

बेरोजगारी अधिक तथा बचत एवं विनियोग का अभाव था, अवसंरचना विकास नाम मात्र का था, जिसमें रणनीतिकारों ने अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को आगे लाया तथा यह विश्वास जताया कि बड़े पैमाने पर सरकार द्वारा आयोजित रूप में हस्तक्षेप करके कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में त्वरित विकास किया जा सकता है अर्थात स्वपोषणीय आर्थिक विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र इंजन का कार्य कर सकता है।

1.2.4–गांधीवादी माडल का भारी उद्योगों पर प्रभाव –

महात्मा गांधी भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कुछ मूलभूत औद्योगिक नीतियों का समर्थन किया जिसका उल्लेख आचार्य श्रीमन्नारायण ने 1944 में गांधीवादी योजना की रूपरेखा में प्रस्तुत की जिसका उद्देश्य भारतीय समाज के भौतिक एवं सांस्कृतिक स्तर को उन्नत बनाना जिससे कि समाज के सभी वर्गों को जीवन यापन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके तथा इस उद्देश्य की पूर्ति भारत के गाँवो की आर्थिक दशा में सुधार किये बिना संभव नही है जिसे कृषि एवं कुटीर उद्योगों के विस्तार पर बल देकर आसानी से किया जा सकता है गांधी जी के विचारों से यह स्पष्ट होता है कि उनके बारे में यह गलत धारणा बनाई गई थी वह भारी उद्योगों के विरोधी थे जबकि वह बुनियादी भारी उद्योगों के प्रबल समर्थक थे जैसे कि प्रतिरक्षा उद्योग, जल विद्युत एवं तापीय संचालन शक्ति उद्योग, धातु कर्म मशीनरी और मशीनें, औजार, भारी इंजीनियरिंग, रसायन आदि प्रकार उद्योगों के विकास पर बल दिया तथा साथ–साथ यह भी कहा कि भारी उद्योगों का विकास कुटीर उद्योगों के विकास में बाधक नहीं होना चाहिए जिससे कि मूलभूत उद्योगों के साथ–साथ कुटीर उद्योगों का भी क्रमिक विकास होता रहे एवं मूलभूत उद्योग के स्वामित्व एवं प्रबंधन राज्य के हाथों में होना चाहिए ।

गांधीवादी माडल का दृष्टिकोण था कि सहयोग और सहकारिता से ही सब का लाभ हो सकता है और आर्थिक असमानता को दूर किया जा सकता है जिससे कि सबका हित एवं कल्याण सुनिश्चित हो सके इसके लिए वह भारी उद्योगों के साथ–साथ गांव के समग्र विकास

पर भी जोर देते थे जिससे कि अंत्योदय से सर्वोदय की ओर जाकर गांव को ज्यादा से ज्यादा आत्मनिर्भर बनाया जा सके।

गांधी जी के विचारों से यह गलत धारणा बनी की गांधीजी का लघु एवं कुटीर उद्योग एवं हस्तशिल्प पर बल देना आधुनिक मशीनरी का विरोध करना है जबकि गांधीजी ऐसा नहीं मानते थे उनका मानना था कि चरखा भी एक प्रकार की मशीन है और वह मशीनरी का किसी प्रकार का विरोध नहीं करते है बल्कि उनका मानना था कि यह मशीनरी के द्वारा मानव श्रम को सुलभ बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए ना की उससे मानवीय श्रम का विस्थापन होना चाहिए उनका यह मानना था की मशीनरी तब तक अच्छी है जब तक कि वह पूंजीपतियों द्वारा श्रम के शोषण का साधन ना बने एवं लघु एवं कुटीर उद्योगों को किसी प्रकार का नुकसान ना पहुंचाएं तथा उत्पादन वृद्धि के साथ–साथ रोजगार में भी वृद्धि का साधन बने।

गांधीवादी मॉडल का अनुसरण करते हुए माननीय चौधरी चरण सिंह लिखते हैं भविष्य में किसी मध्यम या बड़े पैमाने के उद्यमो की स्थापना की अनुमति नहीं दी जाएगी यदि वह ऐसी वस्तुएं या सेवाएं उत्पादन करता है जो कुटीर या लघु स्तर के उद्यमों द्वारा उत्पादित की जा सकती हैं और किसी लघु उद्योग की स्थापना की इजाजत नहीं दी जाएगी जो ऐसी वस्तुएं उत्पन्न करेगा जो कुटीर उद्योगों द्वारा आसानी से की जा सकती हैं।

गांधीवादी मॉडल न्याय पूर्ण वितरण की बात करता है जिसमें समाजवाद के साथ आर्थिक समानता लोगों में हो क्योंकि गांधीजी का मानना था कि आर्थिक शक्ति का बढ़ता हुआ सकेंद्रण और आय की असमानता भारतीय अर्थव्यवस्था की दो प्रमुख बुराइयां हैं जिसको दूर करने के लिए संपत्ति का संचयन एवं आर्थिक शक्ति का सकेंद्रण प्रत्यक्ष रूप में उत्पादन के साधनों के केंद्रीकरण एवं बड़े पैमाने के उत्पादन के केंद्रीकरण का परिणाम है जब कभी भी बड़े पैमाने का उत्पादन अनिवार्य हो जाए तो इसे सरकारी स्वामित्व एवं प्रबंधन के आधीन किया जाए तथा वितरण की समस्या का समाधान उपभोग के स्तर के बजाय उत्पाद के स्तर पर किया जाए गांधीवादी मॉडल राष्ट्रीय न्यूनतम जीवन स्तर को कम से कम प्राप्त करने का

प्रयास करता है साथ ही इसमें स्थिरता के साथ विकास एवं आय और संपत्ति के सकेंद्रण को समाप्त करने का प्रयास करता है ।

1.2.5–नेहरूवादी और गांधीवादी मॉडल का तुलनात्मक अध्ययन –

नेहरूवादी मॉडल	**गांधीवादी मॉडल**
नेहरू मॉडल में भारी उद्योगों को सर्वाधिक महत्व दिया गया।	गांधीवादी मॉडल में कृषि को प्राथमिकता के साथ–साथ लघु एवं कुटीर उद्योग को महत्व दिया गया।
नेहरू मॉडल में भारी उद्योगों के विकास के द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर एवं स्वयं स्फूर्त बनाने का प्रयास किया गया ।	गांधीवादी मॉडल में भारी उद्योगों के स्थान पर लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा कम पूंजी वाली वस्तुओं का उत्पादन किया जाए जिससे कि उत्पादन वृद्धि के साथ रोजगार में भी वृद्धि हो सके।
नेहरू मॉडल बड़े भारी उद्योगों को स्थापित करने एवं उन्हें विकसित करने के समर्थक थे जिससे कि बढ़ती जनसंख्या के लिए उपभोग वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके एवं भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाया जा सके ।	गांधीवादी मॉडल में बड़े या मध्यम स्तर की इकाइयों को स्थापित ना करने तथा बंद करने के या तो इस शर्त पर उन्हें चलने दिया जाए कि वे सारे उत्पादन का केवल निर्यात करेंगे आदि के समर्थक थे।

नेहरु मॉडल में निजी स्वामित्व के भारी उद्योगों को वस्तुओं के उत्पादन, कीमत, लाभ एवं श्रम की दशाओं पर सरकारी नियंत्रण से मुक्त करने के समर्थक थे।	गांधीवादी मॉडल में निजी स्वामित्व के भारी उद्योगों को वस्तुओं की कीमत, लाभ एवं श्रम की दशाओं पर सरकारी नियंत्रण पर बल दिया।

1.2.6—महात्मा गांधी का ग्रामीण विकेंद्रित विकास—

महात्मा गांधी का ग्रामीण विकेंद्रित विकास पर अधिक जो रहा है महात्मा गांधी का मानना था कि यदि भारत को विकसित अर्थव्यवस्था बनानी है तो भारत के गांव को विकसित बनाना होगा जिसके लिए गांव की गरीबी दूर करना और ग्रामीण जनों का जीवन स्तर बेहतर करने के लिए जमीनी स्तर से ही गांव का नव निर्माण करना होगा किसानों के हितों के लिए प्रयास करने होंगे तथा ग्रामीणों के शोषण से बचाना होगा तथा ग्राम स्वराज लाना होगा अर्थात ग्रामों का स्वायत्त शासन जो कि गांव की पंचायतों द्वारा ही निर्धारित हो जिसमें गांव के निर्धारित न्यूनतम योग्यता वाले पुरुष एवं महिलाओं को सम्मिलित किया जाए जिससे कि सत्ता का विकेंद्रीकरण हो सके और हर एक गांव अपने में पूर्ण लोकतंत्र हो सके गांव को आत्मनिर्भर बनाया जा सके तथा आत्मनिर्भरता के साथ अनेक लोगों पर परस्पर निर्भर भी हो गांव की मूलभूत आवश्यकताओं अर्थात गांव में निवास करने वाले निवासियों की जरूरतों के लिए अनाज, फल, हरी पत्तेदार सब्जियां दाले, औषधियां, वनस्पतियां और कपास गांव में ही उत्पादन किया जा सके तथा गांव में पशुओं के लिए चरागाह एवं बच्चों के लिए खेलने के मैदान सुनिश्चित किए जाएं साथ ही साथ एक आदर्श गांव स्थापित किया जाए जिसमें गांव के लोग मादक पदार्थों का उत्पादन एवं सेवन करने से दूर रहे।

महात्मा गांधी का ग्रामीण विकेंद्रीकृत विकास की अवधारणा आदर्श ग्राम पर आधारित है जिसमें की गांव में निवास करने वाले लोगों के पास मूलभूत आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध हो गांव में साफ सफाई की उत्तम व्यवस्था हो तथा सड़कों एवं गलियों की स्वच्छता हो एवं गांव में सभी

धर्मों के मानने वाले लोगों के लिए उपासना स्थल हो साथ ही साथ गांव में बच्चों के लिए बुनियादी शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था हो अर्थात गांव में प्राथमिक और सेकेंडरी स्कूल होने चाहिए जिससे गांव में रहने वाले बच्चे बुनियादी शिक्षा प्राप्त कर अपना समग्र विकास कर सके उनका मानना था कि बच्चों को कला, शिल्प, व्यवसायिक शिक्षा, एवं स्वावलंबी कार्य सिखाएं जाने चाहिए जिससे कि विद्यार्थियों को अपने काम खुद करने और आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा प्राप्त हो सके तथा शिक्षा पाठ्य पुस्तकों से ज्यादा रचनात्मक ढंग से दी जानी चाहिए जोकि रोजगार केंद्रित हो जिससे बच्चे भविष्य में स्वरोजगार प्राप्त कर सके ।

1.2.7–टिकाऊ और सतत विकास की प्रक्रिया –

गांधीवादी मॉडल में गरीब एवं वंचित लोगों को उनकी बुनियादी जरूरतें वस्त्र दूध, दूध उत्पाद सहित पर्याप्त पोषक भोजन, स्वास्थ्य सेवाएं और सांस्कृतिक जीवन को समृद्ध बनाने का अवसर प्राप्त होने चाहिए तथा श्रम के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित होनी चाहिए न्यूनतम मजदूरी कम से कम इतनी होगी सभी श्रमिकों को संतुलित पोषक भोजन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो सके एवं उनकी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए उन्हें भटकना ना पड़े यही टिकाऊ और सतत विकास की प्रक्रिया होनी चाहिए ग्रामीण विकास से तात्पर्य मात्र कृषि के विकास से नहीं बल्कि प्राथमिक द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों आदि सभी के विकास होने से है तथा समेकित कृषि जिसमें बेहतर सिंचाई व्यवस्था ,जैविक उर्वरको एवं कीटनाशको का प्रयोग, नहरों की साफ–सफाई तथा सिंचाई के लिए नलकूपों की समुचित व्यवस्था होने से है तथा फसलों में रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के स्थान पर जैविक उर्वरकों के प्रयोग से जिससे कि मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनी रहे एवं फसलों की पैदावार में वृद्धि हो सके ।

1.2.8–सहयोग एवं सहकारिता के द्वारा आर्थिक समानता –

सहयोग एवं सहकारिता के द्वारा आर्थिक समानता प्राप्त की जा सकती है जिसके लिए सहकारी खेती को अपनाने पर जोर दिया गया साथ ही साथ गांव के गरीब बेरोजगारों के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए खादी और ग्राम उद्योग को बढ़ावा देने की आवश्यकता है जिसमें मधुमक्खी पालन, साबुन बनाना, चमड़ा बनाना, मिट्टी के बर्तन बनाना एवं लकड़ी की

वस्तुएं आदि बनाने से है जिससे के ग्रामीणों को निरंतर स्वरोजगार प्राप्त हो सके एवं उचित टेक्नोलॉजी एवं मशीनरी का उपयोग हो जिससे कि समाज के लोगों की आर्थिक प्रगति एवं सामाजिक न्याय प्राप्त हो सके ।

1.2.9–गांधीवादी मॉडल में मशीनरी का उपयोग –

गांधीवादी मॉडल में वस्तुओं एवं सुविधाओं का अभाव तो अच्छा नहीं है लेकिन वस्तुओं स्वभाव का अतिरेक भी उचित नहीं है उनका मानना था कि व्यक्तियों को वस्तुओं का संग्रह नहीं करना चाहिए यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया को जन्म देती है ऐसी मशीनरी का उपयोग होना चाहिए जो कि आवश्यक मानवीय श्रम की जगह ना लें और और श्रमिकों के कठिन कार्य को आसान बना सकें और उनके बोझ को हल्का कर सके उत्पादन में वृद्धि कर सकें गांधीवादी मॉडल में मशीनरी को एक साधन के रूप में अपनाने की बात कही गई है जो श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ाएं ना कि उन्हें गुलाम बनाए साथ ही साथ लोगों को वस्तुएं और सुविधाएं उपलब्ध कराएं ।

1.2.10–गाँधीवादी माडल में कृषि का विकास –

गांधीवादी योजना का सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य भारतीय आर्थिक आयोजन में कृषि सुधार को बढ़ावा देना है तथा खाद्यान्नों में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता एवं खाद्य पदार्थों में अधिकतम क्षेत्रीय आत्मनिर्भरता प्राप्त करना है इसकी प्राप्ती के लिए उन्नत कृषि आदानो का प्रयोग आवश्यक है साथ ही साथ भू–सुधार, भूमि स्वामित्व, अधिकारों का अनुमोदन, कार्य प्रणाली में परिवर्तन, सहकारी समितियों का गठन आदि का उपयोग अति आवश्यक है जिससे कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का भी तीव्र गति से विकास हो सके एवं रोजगार के लिए ग्रामीणों को स्वरोजगार उपलब्ध कराने के लिए महाजन व्यवस्था को समाप्त कर किसानों को अधिक मात्रा में ऋण सुविधा प्रदान करनी होगी एवं डेयरी उद्योग एवं मत्स्य पालन उद्योग पर विशेष बल देने की आवश्यकता है साथ ही साथ ग्राम समाज में अधिकतम आत्मनिर्भरता कुटीर उद्योगों के पुनःस्थापन विकास एवं विस्तार की समस्याओं का कृषि के साथ–साथ निस्तारण किया जाना चाहिए।

1.2.11 सारांश –

स्वतंत्रता के पूर्व ब्रिटिश काल में ब्रिटेन की उपनिवेशवादी नीति के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था खण्डहर बनकर रह गयी। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति के कारण भारत का औद्योगिक ढांचा टूटता चला गया। ब्रिटिश साम्रात्य भारत से कच्चा माल अपने देश ले जाकर अपने उद्योगों को पोषित करता था तथा अपने देश का उत्पादित माल भारतीय बाजार में लाकर बेचता था। परिणामस्वरूप भारत की आत्मनिर्भरता धीरे–धीरे समाप्त हो गयी और भारतीय अर्थव्यवस्था मात्र एक शोषण का केन्द्र बनकर रह गई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम अर्थव्यवस्था के अनिश्चित एवं अस्थिर वातावरण को समाप्त करके आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करने की आवश्यकता अनुभव की गई। साथ ही अर्थव्यवस्था के समन्वित विकास के लिए एक स्पष्ट नीति की आवश्यकता अुनभव की गई औद्योगिक क्षेत्र की अनिश्चितता, अस्थिरता एवं अल्पविकसित दशा को समाप्त करके औद्योगिक वातावरण विकसित करने के लिए भारत सरकार ने 6 अप्रैल, 1948 को संसद में प्रथम औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1948 प्रस्तुत किया उसके अन्तर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था के उद्योगों का सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत क्षेत्रों में बंटवारा कर दिया गया। इस प्रकार भारत सरकार ने अपनी इस प्रथम औद्योगिक नीति के अन्तर्गत सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्रों के सह अस्तित्व के विचार को स्वीकार किया जिसके परिणामस्वरूप भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ।

1.2.12–बोध प्रश्न–

1–नेहरू विकास मॉडल से आप क्या समझते हैं ?

2–नेहरू विकास मॉडल का भारी उद्योगों पर प्रभाव की व्याख्या कीजिए।

3–गांधीवादी मॉडल का भारी उद्योगों पर प्रभाव की व्याख्या कीजिए।

4–नेहरूवादी और गांधीवादी मॉडल का तुलनात्मक अध्ययन की व्याख्या कीजिए।

5—महात्मा गांधी के ग्रामीण विकेंद्रित विकास की व्याख्या कीजिए ।

6—टिकाऊ और सतत विकास प्रक्रिया की विवेचना कीजिए।

7— सहयोग एवं सहकारिता के द्वारा आर्थिक समानता क्या है समझाइए ?

8—गांधीवादी मॉडल में मशीनरी के उपयोग की विवेचना कीजिए।

9— कृषि के विकास में गांधीवादी मॉडल की भूमिका की विवेचना कीजिए।

1.2.13—उपयोगी पुस्तके

एस.के.मिश्र और वी.के. पूरी भारतीय अर्थव्यवस्था हिमालया पब्लिशिंग हॉउस मुंबई

रुद्र दत्त एवं सुंदरम रूभारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

ए. एन. अग्रवाल रूभारतीय कृषि की समस्याएं

जी.एस. भल्ला और डी.एस. त्यागी रूभारत में कृषि विभाग द्वारा एक जिले के अध्ययन स्तर का नमूना

पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी रूभारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषदरू कृषि विकास के विकल्प, एलाइड पब्लिशर्स न्यू दिल्ली 1980

खण्ड–1

इकाई–3

भारत की विकास प्रकिया एवं नियोजन

इकाई की रूप रेखा

1.3.1– उद्देश्य

1.3.2– प्रस्तावना

1.3.3– आर्थिक नियोजन का अर्थ

1.3.4– आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

1.3.5– आर्थिक नियोजन की विशेषताएं

1.3.6– आर्थिक नियोजन के प्रकार

1.3.7– भारतीय आयोजन का इतिहास

1.3.8– योजना आयोग

1.3.9– योजना आयोग के अध्यक्ष

1.3.10– योजना आयोग के उपाध्यक्ष

1.3.11– राष्ट्रीय विकास परिषद

1.3.12–भारतीय नियोजन की उपलब्धियां

1.3.13–भारत में नियोजन की असफलताएं

1.3.13–बोध प्रश्न

1.3.14–कुछ उपयोगी पुस्तके

1.3.1— उद्देश्य

1. प्रस्तुत इकाई में हम आर्थिक नियोजन के अर्थ एवं उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त करेंगे ।
2. प्रस्तुत इकाई में आर्थिक नियोजन के प्रकार के बारे में जानेंगे।
3. प्रस्तुत इकाई में आर्थिक आयोजन प्रक्रिया की विशेषताओं एवं भारतीय आयोजन के इतिहास की जानकारी प्राप्त करेंगे ।
4. प्रस्तुत इकाई में योजना आयोग एवं उसके कार्यो की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।
5. प्रस्तुत इकाई में योजना आयोग के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष की सूची के बारे में जानेंगे ।
6. प्रस्तुत इकाई में राष्ट्रीय विकास परिषद एवं उसके कार्यों के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे ।
7. प्रस्तुत इकाई में भारतीय नियोजन की उपलब्धियां एवं असफलताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.3.2—प्रस्तावना—

भारत में लगभग 200 वर्षों में अंग्रेजी शासन के द्वारा भारतीय उद्योगों को सुनियोजित ढंग से कमजोर करने एवं भारतीय संसाधनों का उपयोग कर विदेशी वस्तुओं से भारतीय बाजारों पर अपना पूर्ण स्वामित्व स्थापित कर लिया तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था से इस प्रकार जोड़ दिया था कि भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्णतया निर्भर हो गई थी देश के औपनिवेशिक शोषण और अल्पविकास की वजह से यहां पर जो आर्थिक समस्याएं पैदा हुई उनमें बेरोजगारी गरीबी सबसे महत्वपूर्ण थी जब भारत को 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त हुई तो भारतीय अर्थव्यवस्था ना केवल अगतिशील थी बल्कि अनेक सारी समस्याएं थी जिनका समाधान अत्यंत आवश्यक था अतः स्वतंत्रता पश्चात भारत के नीति निर्माता द्वारा भारत में 1951में आर्थिक आयोजन प्रक्रिया प्रारंभ की गई जिसके सूत्रधार पंडित जवाहरलाल नेहरू को माना जाता है।

भारत 1951 के आर्थिक आयोजन प्रारंभ होने के समय भारत तीन प्रकार के दृष्टिकोण से दूसरे देशों पर निर्भर करता था पहला कृषि प्रधान देश होते हुए भी खाद्यान्नों पर आत्मनिर्भरता

नहीं थी जिससे कि खाद्यान्नों का आयात करना होता था दूसरा भारत में आधारभूत उद्योगो का विकास अल्प मात्रा अर्थात ना के बराबर होने के कारण दूसरे देशों से बड़ी मात्रा में परिवहन उपकरण, बिजली संयंत्र, मशीनरी और औजार, भारी इंजीनियरिंग वस्तुएं और अन्य पूंजीगत पदार्थ आयात करने पडते थे एवं तीसरा भारत में बचत का स्तर अत्यंत कम होने के कारण निवेश के लिए विदेशी पूंजी की सहायता लेनी पडती थी जिसका परिणाम यह होता था की विकसित देशों द्वारा अपने खाद्यान्न, मशीन तथा पूंजीगत उपकरण को बेचते समय मजबूत सौदेबाजी शक्तियों का प्रयोग करते थे तथा भारत पर राजनीतिक दबाव बनाते थे जिसको देखते हुए भारतीय नीति निर्माताओं ने यह महसूस किया कि यदि देश को अपने संवृद्धि प्रक्रिया को दूसरे देशों के प्रभाव से मुक्त करना है तो उसे न केवल खाद्यान्न और मशीनों तथा दूसरे प्रकार के उपकरणों में भी आत्मनिर्भर बनना होगा एवं विदेशी सहायता पर निर्भरता को काम करना होगा यही मुख्य वजह थी जिसके कारण भारतीय नीति निर्माता ने आर्थिक आयोजन प्रक्रिया को अपनाया था।

1.3.3 आर्थिक नियोजन का अर्थ–

आर्थिक नियोजन एक सुसंगठित सुनियोजित आर्थिक प्रयास है जिसमें राज्य द्वारा एक निश्चित अवधि में सुनिश्चित आर्थिक एवं सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्राकृतिक, आर्थिक तथा मानवीय संसाधनों का विवेकपूर्ण ढंग से समन्वय एवं नियंत्रण किया जाता है।

भारत में स्वतंत्रता पश्चात आर्थिक नियोजन मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली के रूप में चुना गया जिसको सफल बनाने के उद्देश्य 15 मार्च 1950 को योजना आयोग का गठन हुआ जिसने बीते वर्षो में देश के विकास में समाजवादी समाज की स्थापना एवं संपोषणीय विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया जिसे 1 जनवरी 2015 को नीति आयोग में परिवर्तित किया गया आर्थिक नियोजन भारत में भारतीय संविधान में समवर्ती सूची का विषय है।

1.3.4–आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

1.आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना।

2.सामाजिक न्याय स्थापित करना।

3.पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करना।

4.गरीबी निवारण एवं रोजगार अवसरों का सृजन करना।

5.उपभोग वस्तु में आत्मनिर्भरता की प्राप्त करना ।

6.निवेश एवं पूँजी निर्माण को बढ़ावा देना।

7.आय वितरण एवं क्षेत्रीय विषमता कमी लाना आदि है ।

8. धन तथा आय का समान वितरण सामाजिक न्याय व्यवस्था कायम करना ।

1.3.5 आर्थिक नियोजन के प्रकार –

1.आदेशात्मक नियोजन –

राज्य के नियंत्रण के आधार पर आदेशात्मक नियोजन एक केंद्रीकृत व्यवस्था है जिसमें राज्य एवं सरकारी संस्थाओं का व्यापक रूप से प्रत्यक्ष हस्तक्षेप होता है जिसमें एक केंद्रीय स्तर पर शीर्ष संस्था होती है जो योजनाओं के निर्माण एवं उसके क्रियान्वयन को सुनिश्चित करती है जो केंद्रीकृत प्रक्रिया के द्वारा होते हैं इसे केंद्रीकृत भी कहा जाता है आदेशात्मक नियोजन एक अनिवार्यता की प्रक्रिया होती है जिसमें प्रशासनिक मशीनरी में शक्ति निहित होती है वहां विभिन्न आर्थिक इकाइयों को विनियोग तथा उत्पादन संबंधी निर्णय लिया जाता है तथा भारत में इसे पहली से चौथी पंचवर्षीय योजना में लागू किया गया।

2.निर्देशात्मक नियोजन

एक विकेंद्रीकृत व्यवस्था है जिसमें राज्य एवं सरकारी संस्थाओं का सांकेतिक या परोक्ष रूप से नियंत्रण होता है जिसमें केवल नीति निर्माण का कार्य सरकार के द्वारा किया जाता है एवं उसके क्रियान्वयन का कार्य निजी क्षेत्रों द्वारा किया जाता है निर्देशात्मक नियोजन के अंतर्गत केंद्रीय संस्था द्वारा लक्ष्य का निर्धारण किया जाता है जिसका प्रयोग निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग तथा उत्पादन संबंधित योजनाओं को समन्वित करने के लिए किया जाता है निर्णय लेने की प्रक्रिया विकेंद्रित प्रक्रिया होती है अर्थात इसमें बाजार व्यवस्था बनी रहती है एवं निर्णय

की प्रक्रिया संबंधित अनिश्चितता कम हो जाती हैं इस प्रकार के नियोजन की प्रक्रिया सहभागिता के आधार पर होती हैं इसमें किसी प्रकार का उत्पीड़न नहीं होता है इसका प्रारंभ फ्रांस से हुआ था तथा भारत में इसे आठवीं पंचवर्षीय योजना में निर्देशात्मक नियोजन के रूप में स्वीकार किया तथा इससे 1991 के आर्थिक सुधारों में भी लागू किया गया।

3.संरचनात्मक नियोजन –

संरचनात्मक नियोजन आर्थिक विकास एवं लक्ष्य प्राप्ति के लिए संसाधनों के वर्तमान स्वामित्व एवं सामाजिक ढांचे उत्पादन की विधि एवं संस्थागत व्यवस्था में आवश्यकता अनुसार परिवर्तन को महत्व प्रदान करता है जैसे– भूमि सुधार, बैंकों का राष्ट्रीयकरण आदि इसका उद्देश्य ऐसी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था को सुनिश्चित करना है जो आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति प्रदान करें यह तुलनात्मक रूप से दीर्घकालीन नियोजन है जिसे सामान्यतया विकासशील एवं समाजवादी देश अनुसरण करते हैं।

4.प्रक्रियात्मक नियोजन–

इसमें आर्थिक विकास लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संसाधन के स्वामित्व एवं उत्पादन विधि संस्थागत व्यवस्था आदि में परिवर्तन लाने के स्थान पर उसके अनुकूलतम दोहन की रणनीति अपनाई जाती है जैसे– हरित क्रांति के द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि लाना आदि प्रक्रियात्मक नियोजन समय विशेष पर प्रचलित सामाजिक आर्थिक स्वरूप को बनाए रखने तथा उसकी मजबूती प्रदान करने अर्थात अथवा वर्तमान राज्य के ढांचे में मरम्मत को अपना लक्ष्य मानता है जिसका प्रयोग अधिकांश विकसित देशों द्वारा किया जाता है।

5.केंद्रीकृत नियोजन–

इस नियोजन में सामान्यतया योजनाओं को बनाने एवं उनके क्रियान्वयन एवं निरीक्षण करने आदि का उत्तरदायित्व केंद्रीय संस्थाओं द्वारा किया जाता है टॉप टू बॉटम दृष्टिकोण पर आधारित होता है।

6.विकेंद्रीकृत नियोजन–

विकेंद्रीकृत नियोजन का कार्य सामान्यतया केंद्रीय संस्थाओं राज्य संस्थाओं एवं स्थानीय संस्थाओं के साथ–साथ निजी क्षेत्र एवं आम व्यक्तियों आदि के द्वारा योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन एवं निरीक्षण आदि में निर्णय लिया जाता है जिससे ग्राम पंचायतों की भागीदारी में वृद्धि होती है इसे जनता सरकार द्वारा 1977 से 1979 में विकेंद्रीकृत योजना मॉडल के रूप में प्रयोग किया गया यह बॉटम टू टॉप दृष्टिकोण पर आधारित है जो की लोकतांत्रिक प्रक्रिया को मजबूत बनाने में सहयोग करता है।

7.राष्ट्रीय नियोजन–

जब किसी शीर्ष राष्ट्रीय संस्था द्वारा संपूर्ण राष्ट्र को ध्यान में रखकर योजनाओं एवं नीतियों का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया जाता है जिसमें संपूर्ण अर्थव्यवस्था को एक समष्टि मानकर नियोजन किया जाता है जैसे ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में 8 प्रतिशत आर्थिक समृद्धि का लक्ष्य रखा गया जिसमें रोजगार, ऊर्जा, सामाजिक अधोसंरचना का विकास एवं कृषि तथा सर्वाधिकऊर्जा पर व्यय किया गया।

8.क्षेत्रीय नियोजन–

जब किसी अर्थव्यवस्था में शीर्ष संस्था द्वारा किसी क्षेत्र विशेष को ध्यान में रखकर योजना एवं नीतियों का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया जाता है सामान्यतया यह राष्ट्रीय नियोजन का ही भाग होता है जिसे आंशिक नियोजन भी कहते हैं जैसे भारत में पूर्वोत्तर राज्य के विकास के लिए नीतियों एवं परियोजनाओं का निर्धारण करना।

1.3.6–भारतीय आयोजन प्रक्रिया की विशेषताएं–

भारतीय आर्थिक आयोजन का स्वरूप मुख्यतया निर्देशात्मक है इसीलिए इसे प्रेरणा द्वारा नियोजन भी कहा जाता है।

इसका स्वरूप विकेंद्रीकृत है जिसमें व्यापक स्तर पर योजनाएं बनाई गई थी।

भारतीय अर्थव्यवस्था को निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों के सह अस्तित्व द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया ।

भारतीय अर्थव्यवस्था में समाजवादी तथा पूंजीवादी दोनों प्रकार के तत्वों का समन्वय है।

भारत में प्रारंभिक पंचवर्षीय योजनाओं में ढांचागत और आधारभूत सुधार करने के लिए भारी उद्योगों की स्थापना पर बल दिया गया।

12वीं पंचवर्षीय योजना में तीव्र धारणीय एवं अधिक समावेशित विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया गया।

भारतीय आर्थिक नियोजन के द्वारा धन तथा आय का समान वितरण तथा सामाजिक न्याय को प्राप्त करने का प्रयास किया गया ।

भारतीय नियोजन के द्वारा मानव शक्ति का प्रयोग अर्थात पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त करने का प्रयास किया गया।

1.3.7—भारतीय आयोजन का इतिहास—

वर्ष	**आयोजन**
1934	एम. विश्वेश्वरैया भारत में नियोजन के जनक, इंजीनियर, राजनयिक द्वारा तैयार पुस्तक प्लैंड इकोनामी फॉर इंडिया।
1938	हरिपुरा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस सम्मेलन में राष्ट्रीय आयोजन समिति गठित हुई जिसकी अध्यक्षता जवाहरलाल नेहरू ने की इसे कांग्रेसी योजना के नाम से भी पुकारा जाता है।
1941	प्रोफेसर रामास्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में आयोग का गठन हुआ।
1944—45	ए प्लान फॉर इकोनामिक डेवलपमेंट इन इंडिया जिसे मुंबई प्लान के नाम से भी जाना जाता है जिसमें आधारभूत उद्योगों पर विशेष बल देने के लिए भारत के 8

	उद्योगपतियों जिसके अध्यक्ष जे.आर.डी. टाटा तथा उपाध्यक्ष दामोदर दास बिडला एवं सर्वोत्तम दास ठाकुर दास, आर्देशिर दलाल, श्री राम, सेठ कस्तूर लाल भाई, जॉन मथाई तथा ए.डी. श्रॉफ द्वारा तैयार किया गया जिसे टाटा बिडला प्लान भी कहा जाता है जिसमें 15 वर्षों में प्रति व्यक्ति आय ₹65 से बढ़ाकर ₹130 करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया तथा योजना का आकार 10000 करोड रुपए रखा गया जिसमें व्यापक भूमि सुधार, उत्पादन वृद्धि, वित्त तथा विपणन सम्मिलित थे ।
1944	श्रीमन नारायण द्वारा गांधीवादी योजना का प्रारंभ हुआ।
1944	मुंबई प्लान के लेखक आर्देशिर दलाल की देख–रेख में आयोजन तथा विकास विभाग की स्थापना हुई ।
1944–46	ब्रिटिश राज ने औपचारिक रूप से योजना बोर्ड की स्थापना की जो कि 1944 से 46 के मध्य कार्य किया।
अप्रैल 1945	एम.एन राय द्वारा पीपुल्स प्लान तैयार किया गया।
1946	नियोगी समिति ने संस्तुति की कि संपूर्ण भारत के आर्थिक निर्माण के लिए संगठन की स्थापना की जाए जिसे योजना आयोग कहा जाए।
1946	के.सी. नियोगी की अध्यक्षता में सलाहकार योजना परिषद की स्थापना हुई ।
1948	राष्ट्रीय आयोजन समिति (1980) रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसमें इस बात पर बल दिया गया समस्त मूल उद्योगों और सेवाओं खनिज रेल जलमार्ग तथा सार्वजनिक उपयोगिता वाले उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व होना चाहिए।

1950	सर्वोदय प्लान जय प्रकाश नारायण द्वारा लाया गया।
15 मार्च 1950	जवाहर लाल नेहरू ने योजना आयोग का गठन किया।
जुलाई 1951	प्रथम पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की गई।
6 अगस्त 1952	राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना की गई।

1.3.8–योजना आयोग –

नियोगी समिति ने यह अनुशंसा की थी कि केंद्र में एक ऐसा सुसंगठित संगठन होना चाहिए जो अपने आप को निरंतर देश के समग्र सामाजिक आर्थिक विकास के प्रति समर्पित करें तथा जिसे भारत के योजना आयोग के रूप में स्थापित किया जा सकता है इस अनुशंसा को 15 मार्च 1950 को केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा पारित किया गया तत्पश्चात 28 मार्च 1950 से योजना आयोग ने कार्य करना प्रारंभ कर दिया।

योजना आयोग के गठन के लिए मंत्रिमंडलीय निर्णय निम्न बिंदुओं से स्पष्ट किया गया था अपनी अनुशंसाएं देने के लिए यह आयोग केंद्र सरकार तथा राज्य सरकारों के साथ घनिष्ठ विचार विमर्श करेगा।

योजना आयोग अपनी अनुशंसाएं केंद्रीय मंत्रिमंडल को सौपेगा ।

योजना आयोग पर निर्णय लेने तथा उसे कार्यान्वित करने का दायित्व केंद्र सरकार तथा राज्य सरकारों और होगा ।

यह एक संविधानेत्तर संस्था है जो कि सलाहकार रूप में कार्य करती है योजना आयोग को सरकार के लिए एक (थिंक टैंक) सलाहकार की भांति कार्य करता है तथा योजना के लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिए आवश्यक नीतिगत कदमों को उठाए जाने की अनुशंसा करता है साथ ही यह सरकार को भिन्न क्षेत्रों के आकलन के आधार पर सुझाव देने का भी कार्य करता है जहां विभिन्न मंत्रालय विभिन्न रूप से केवल संबंधित क्षेत्र के दृष्टिकोण पर केंद्रित रहते हैं वही योजना आयोग विभिन्न क्षेत्रों के लिए एक समग्र दृष्टिकोण तथा नीतिगत कदमों के प्रति समर्पित रहता है इसके अंतर्गत या किसी एक क्षेत्र का आकलन अन्य क्षेत्रों के परिप्रेक्ष्य में एक लंबे समय अवधि के संदर्भ में करता है इसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है।

योजना आयोग के प्रखंड (विभाग) –

योजना आयोग अलग–अलग प्रखंडों (विभागों) के माध्यम से कार्य करता है ।

वित्तीय संसाधन विभाग।

लेखा नियंत्रण विभाग।

परिदृश्यात्मक नियोजन विभाग।

सामाजिक आर्थिक अनुसंधान विभाग ।

परियोजना आकलन विभाग ।

कार्यक्रम मूल्यांकन विभाग।

महिला व बाल विकास विभाग।

1.3.8–योजना आयोग के कार्य –

देश की आर्थिक समृद्धि एवं विकास हेतु योजना का निर्माण करना।

देश के भौतिक पूंजीगत तथा मानव संसाधनों का मूल्यांकन करना ।

देश के संसाधनों के अधिक प्रभावित तथा संतुलित उपयोग हेतु योजना बनाना।

प्राथमिकताओं का निर्धारण कर संसाधनों का आवंटन करना ।

योजना के प्रत्येक चरण के सभी पहलुओं के सफलतापूर्वक कार्यालय के लिए कार्यान्वयन के लिए आवश्यक प्रशासनिक तंत्र का निर्माण करना।

योजनाओं के प्रत्येक चरण के क्रियान्वयन में हुई प्रगति का समय–समय पर मूल्यांकन करना।

1.3.9–योजना आयोग के अध्यक्ष –

अध्यक्ष का नाम	**वर्ष से**	**वर्ष तक**
जवाहरलाल नेहरू	मार्च 1950	27 मई 1964
लाल बहादुर शास्त्री	जून 1964	जनवरी 1966
श्रीमती इंदिरा गांधी	जनवरी 1966	24 मार्च 1977
मोरारजी देसाई	25 मार्च 1977	9 अगस्त 1979
चौधरी चरण सिंह	10 अगस्त 1979	जनवरी 1980
श्रीमती इंदिरा गांधी	जनवरी 1980	31 अक्टूबर 1984
राजीव गांधी	नवंबर 1984	दिसंबर 1989
वी.पी. सिंह	22 दिसंबर 1989	नवंबर 1990
चंद्रशेखर	दिसंबर 1990	24 जून 1991
पी वी नरसिंम्हा राव	जून 1991	15 मई 1996
अटल बिहारी बाजपेई	16 मई 1996	31 मई 1996
एच.डी. देव गौड़ा	1 जून 1996	20 अप्रैल 1997
आई. के. गुजराल	21 अप्रैल 1997	18 मार्च 1998
अटल बिहारी बाजपेई	19 मार्च 1998	22 मई 2004
मनमोहन सिंह	22 मई 2004	26 मई 2014

नरेन्द्र दामोदर दास मोदी	26 मई 2014	वर्तमान तक

1.3.10—योजना आयोग के उपाध्यक्ष —

उपाध्यक्ष का नाम	**वर्ष से**	**वर्ष तक**
गुलजारी लाल नंदा	17 फरवरी 1953 22 जून 1960	21 जून 1960 21 सितंबर 1963
वी.टी. कृष्णमाचारी	17 फरवरी 1953	21 जून 1960
सी.एम त्रिवेदी	22 सितंबर 1963	2 दिसंबर 1963
अशोक मेहता	3 दिसंबर 1963	1 सितंबर 1967
डॉ डी.आर.गाडगिल	2 सितंबर 1967	1 मई 1971
सी. सुब्रमण्यम	2 मई 1971	22 जुलाई 1972
डी.पी. धर	23 जुलाई 1972	31 दिसंबर 1974
पी.एन हक्सर	4 जनवरी 1975	31 मई 1977
डी.टी. लकड़वाला	1 जून 1977	15 फरवरी 1980
एन.डी. तिवारी	9 जून 1980	8 अगस्त 1981
एस.बी. चौहाण	9 अगस्त 1981	19 जुलाई 1984
पी.सी. सेठी	20 जुलाई 1984	31 अक्टूबर 1984
पी.वी. नरसिम्हा राव	1 नवंबर 1984	14 जनवरी 1985
डॉ मनमोहन सिंह	15 जनवरी 1985	31 अगस्त 1987
पी. शिव शंकर	25 जुलाई 1987	29 जून 1988
माधव सिंह सोलंकी	30 जून 1988	16 अगस्त 1989
आर.के. हेगडे	5 दिसंबर 1989	6 जुलाई 1990
प्रोफेसर मधु दंडवते	7 जुलाई 1990	10 दिसंबर 1990

मोहन धारिया	11 दिसंबर 1990	24 जून 1991
प्रणब मुखर्जी	24 जून 1991	मई 1996
प्रोफेसर मधु दंडवते	1 अगस्त 1996	21 मार्च 1998
जसवंत सिंह	25 मार्च 1998	4 फरवरी 1999
के.सी.पन्त	5 फरवरी 1999	17 जून 2004
मोंटेक सिंह अहलूवालिया	4 जुलाई 2004	26 मई 2014

1.3.11–राष्ट्रीय विकास परिषद–

भारत के संघीय स्वरूप पर विचार करते हुए नियोगी समिति ने यह अनुशंसा की थी कि एक ऐसा संगठन होना चाहिए जिसमें रियासतों सहित संपूर्ण देश के हितों का प्रतिनिधित्व हो सके स्वयं योजना आयोग ने अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस प्रकार के संगठन से संभावित उपयोगिता को स्वीकार किया था जहां प्रधानमंत्री एवं विभिन्न मुख्यमंत्री बैठकर एक साथ विभिन्न नियोजन संबंधी विचार–विमर्श कर सकेंगे इसके लिए मंत्रीमंडलीय प्रस्ताव द्वारा 6 अगस्त 1952 को राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन किया गया इसकी स्थापना का उद्देश्य योजना के लिए राष्ट्रीय स्तर पर संसाधनों एवं प्रयासों को सशक्त बनाना है यह सही अर्थों में एक अखिल भारतीय निकाय के रूप में स्थापित किया गया जो हमारे संघीय स्वरूप को प्रतिबिंबित करता है भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इसे एक ऐसे मंच के रूप में बताया था जो राष्ट्रीय विकास के कार्य के लिए केंद्र तथा राज्य सरकारों के मध्य एक घनिष्ठ सहयोग का माध्यम था मंत्रिमंडल के निर्णय में राष्ट्रीय विकास परिषद के कार्य निर्धारित किए गए थे।

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास से संबंधित मुद्दों की विवेचना तथा निर्णय करने के संबंध में राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन एक शीर्ष संस्था के रूप में किया गया राष्ट्रीय विकास परिषद एक संविधानेत्तर निकाय हैं जिसका अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है केंद्रीय मंत्री परिषद के सभी सदस्य सभी राज्यों के मुख्यमंत्री केंद्र शासित प्रदेशों के प्रशासक तथा योजना आयोग के सभी सदस्य इसके पदेन सदस्य होते हैं राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना नियोजन तथा

सामान्य आर्थिक नीतियों पर केंद्र एवं राज्य सरकारों के बीच समझदारी एवं परामर्श बढ़ाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास से संबंधित मुद्दों पर विवेचन तथा निर्णय लेने के संबंध में राष्ट्रीय विकास परिषद एक शीर्ष संस्था रही हैं राष्ट्रीय विकास परिषद की पहली बैठक 8–9 नवंबर 1952 को पंडित जवाहरलाल नेहरू के अध्यक्षता में संपन्न हुई राष्ट्रीय विकास परिषद की संरचना भारत के प्रधानमंत्री इसके प्रमुख अध्यक्ष सभी केंद्रीय कैबिनेट मंत्री सभी राज्यों के मुख्यमंत्री सभी केंद्रशासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री या प्रशासक योजना आयोग के सदस्य योजना आयोग के सचिव राष्ट्रीय विकास परिषद के सचिव के रूप में कार्य करते हैं।

राष्ट्रीय विकास परिषद के कार्य–

राष्ट्रीय योजना के निर्धारण के लिए मार्गदर्शन करना।

योजना आयोग द्वारा बनाई गई योजना पर विचार करना ।

योजना के लिए आवश्यक संसाधनों का करना तथा उन्हें प्राप्त करने के उपाय सुझाना ।

विकास को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण आर्थिक व सामाजिक नीतिगत प्रश्नों पर विचार करना। समय–समय पर योजना का पुनर्निरीक्षण करना तथा योजना के उद्देश्यों को तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उचित कदमों का अनुमोदन करना।

राष्ट्रीय स्तर पर योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन की भावी रूपरेखा तैयार करना।

योजनाओं के लिए सूत्रबद्ध प्रस्तावों पर सभी मुख्य चरणों पर विचार करना ।

योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करना एवं आर्थिक संसाधनों का लक्ष्यों के अनुसार बेहतर उपयोग करना ।

देश के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सामान्य आर्थिक नीतियों का बढ़ावा देना ।

देश के सभी भागों में संतुलित और तीव्र विकास को सुनिश्चित करना।

1.3.12–भारतीय नियोजन की उपलब्धियां–

राष्ट्रीय आय में वृद्धि – भारत में स्वतंत्रता से लेकर वर्तमान तक सुव्यवस्थित आर्थिक नियोजन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में लगातार वृद्धि हुई है पहली पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 2.1 प्रतिशत रखा गया था जबकि 4.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की उपलब्धि प्राप्त हुई थी दूसरी योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 4.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि 4.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहे तीसरी योजना असफल योजनाओं में से रही जिसमें राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया था जबकि उपलब्धि मात्र 3.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की ही प्राप्त हो सके चौथी योजना में राष्ट्रीय आय मैं वृद्धि का लक्ष्य 5.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर रखा गया जबकि उपलब्धि मात्र 3 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही पांचवी पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि लक्ष्य 5.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया जिसे बाद में 4.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष परिवर्तित कर दिया गया था जबकि राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि प्राप्त हुई छठी पंचवर्षीय योजना में 5.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की राष्ट्रीय आय में वृद्धि प्राप्त हुई सातवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में 5.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दर प्राप्त हुई आठवीं पंचवर्षीय योजना में 6.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की राष्ट्रीय आय में वृद्धि दर प्राप्त हुई जबकि लक्ष्य 5.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया था नौवी पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में 5.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वार्षिक दर से वृद्धि प्राप्त हुई दसवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में 7.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि प्राप्त हुई ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में औसतन 7.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त

हुई जबकि लक्ष्य 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया था बारहवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय राष्ट्रीय आय में 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की प्राप्ति हुई।

औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि– भारत में जहां तक औद्योगिक उत्पादन वृद्धि पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं प्रथम पंचवर्षीय योजना में 5.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़कर दूसरी पंचवर्षीय योजना में 7.2 प्रतिशत तथा तीसरी पंचवर्षीय योजना में 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष में काफी उत्साहवर्धक रही है परंतु उसके पश्चात भारत में औद्योगिक मंदी काल प्रारंभ हो गया और औद्योगिक उत्पादन वृद्धि दर में गिरावट होने लगी जो कि वर्ष 1966 से वर्ष 1976 के बीच औद्योगिक उत्पादन ने वृद्धि दर गिरकर 4.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रह गई तथा एक बार फिर से वर्ष 1980 से लेकर वर्ष 1990 के बीच में औद्योगिक वृद्धि दर में तेजी आई और औद्योगिक उत्पादन 7.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि दर प्राप्त हुई तथा वर्ष 1993 से वर्ष 1997 तक 8.6 प्रतिशत कि प्रतिवर्ष की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त हुई तथा वर्ष 1997 से वर्ष 2002 तक औद्योगिक उत्पादन वृद्धि दर कम होकर मात्र 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रह गई दसवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक वृद्धि दर 8.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई तथा ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन में 6.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दर प्राप्त हुई एवं बारहवीं पंचवर्षीय योजना में 4.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दर हुई।

भारत में आत्मनिर्भरता–

स्वतंत्रता पश्चात भारत में आत्मनिर्भरता पर विशेष बल दिया गया तथा आर्थिक आयोजन से भारत ने दो महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त पहला भारत खाद्यान्नों की दृष्टि से आत्मनिर्भर हो गया तथा दूसरा भारत में भारी इंजीनियरिंग, मशीनी औजारों, लोहा इस्पात तथा पूंजीगत उद्योगों के

भारी विकास से मशीन संयंत्र और पूंजीगत उपकरणों में भारत लगभग आत्मनिर्भर हो गया अतः वर्तमान समय में भारत के निर्यात में इंजीनियरिंग वस्तुओं में प्रथम स्थान है अर्थात भारत पूंजी आधार पर काफी मजबूत है वर्तमान में बड़े से बड़े उद्योगों की स्थापना अपने मशीनी और तकनीकी ज्ञान के आधार पर आसानी से कर सकता है यह आर्थिक आयोजन की एक बड़ी उपलब्धियो में शामिल है।

आधुनिकीकरण– भारतीय नीति निर्माताओ ने हमेशा ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी के महत्व को देश के विकास के लिए आवश्यक समझा क्योंकि स्वतंत्रता के समय भारत में तकनीकी ज्ञान की काफी कमी थी जिसके चलते भारतीय अर्थव्यवस्था की आयातित टेक्नोलॉजी पर निर्भरता अत्यधिक थी जिसको ध्यान में रखते हुए नीति निर्माताओ ने शोध और विकास पर जोर दिया जिसके फल स्वरुप मुख्यतः छठी पंचवर्षीय योजना में पहली बार आधुनिकरण उद्देश्य को स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया गया छठी योजना में आधुनिकीकरण को विस्तृत अर्थों में स्पष्ट करते हुए यह कहा गया कि यह आर्थिक क्रिया के रूप में अनेक ढांचागत और संस्थागत परिवर्तनों की ओर संकेत करता है अर्थात आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में उत्पादन का ढांचा परिवर्तित होगा तथा उत्पादक क्रियाओं में विविधता आएगी तकनीक में वृद्धि होगी संस्थागत परिवर्तन होगें जिससे कि सामंतवादी उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था आधुनिक और स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो जाएगी यदि आधुनिकीकरण की इस अवधारणा को मान लिया जाए तो यह निश्चित ही स्वीकार करना होगा कि योजना काल में भारत आधुनिकीकरण की दिशा में निरंतर प्रगति प्राप्त की है।

सामाजिक संरचना शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास - भारत में आर्थिक नियोजन से

स्वास्थ्य और सुविधाओं में अत्यधिक सुधार हुआ तथा भारतीयों की जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हुई मातृ मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर में निरंतर कमी हुई साथ ही साथ शिक्षण संस्थानों, विश्वविद्यालयों में शोध एवं अनुसंधान की संख्या एवं गुणवत्ता में भी सुधार हुआ जिसका प्रभाव राष्ट्रीय आय में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है अर्थात वर्तमान में भारत को सर्वाधिक आय सेवा क्षेत्र से प्राप्त होती है जोकि आयोजन की उपलब्धियों को स्पष्ट करता है।

1.3.13–भारत में नियोजन की असफलताएं–

भुखमरी – भारत में पिछले कुछ दशकों में तीव्र प्रगति हुई है जैसे देश के सकल घरेलू उत्पाद में साढे चार गुना वृद्धि हुई प्रति व्यक्ति उपभोग में भी तीन गुना वृद्धि हुई है तथा खाद्यान्न उत्पादन में करीब दोगुना वृद्धि हुई है लेकिन शानदार औद्योगिक और आर्थिक प्रगति के बावजूद भारत भुखमरी एवं अल्पपोषण की समस्या से आज भी जूझ रहा है। *संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन की रिपोर्ट द स्टेट ऑफ फूड सिक्योरिटी एंड न्यूट्रिशन इन द वर्ल्ड 2020 के अनुमानों के अनुसार भारत की जनसंख्या की आवश्यकताओ के पूरा करने के लिए पर्याप्त उत्पादन के बावजूद 18.92 करोड़ अर्थात कुल आबादी का 14 प्रतिशत लोग आज भी अल्प पोषण अर्थात भुखमरी की समस्या से जूझ रहे हैं आमतौर पर भुखमरी शब्द का अर्थ भोजन में ऊर्जा की आवश्यकता पूरी करने के लिए पर्याप्त कैलोरी के अभाव से लगाया जाता है जबकि अल्प पोषण का संबंध कैलोरी की कमी से भी परे की स्थिति से है और यह ऊर्जा प्रोटीन और आवश्यक विटामिनों की खनिजों में से किसी एक या अनेक अथवा सभी की कमी का द्योतक है।* भारत को भुखमरी एवं अल्प पोषण मिटाने के लिए अभी लंबा रास्ता तय करना होगा देश को आर्थिक सुधार के लगभग 25 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं तथा इस दौरान देश की अर्थव्यवस्था में कई संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं लेकिन इसके पश्चात भी भारत में अभी भी भुखमरी अर्थात अल्प पोषण की समस्या विद्यमान है *वैश्विक भुखमरी सूचकांक रिपोर्ट 2022 के अनुसार 121 देश में भारत का 29.1 स्कोर के साथ 107 वे स्थान है* जो की भारत में भुखमरी की दयनीय स्थिति को प्रदर्शित करता है।

बेरोजगारी में वृद्धि -

भारत में बेरोजगारी की समस्या आर्थिक नियोजन के समय से ही विद्यमान थी जिसके समाधान के लिए भारत की प्रथम चार पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार विकास के लक्ष्यो पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया और यह माना गया कि आर्थिक विकास के साथ रोजगार का सृजन भी होता रहेगा परन्तु ऐसा ना हो पाने के कारण वर्ष 1956 में भारत में बेरोजगारी 5 मिलियन से बढ़कर वर्ष 1973–74 में भारत में बेरोजगारी 10 मिलियन तक पहुंच गई जिससे निपटने के लिए पांचवी

पंचवर्षीय योजना में रोजगारपरक संवृद्धि को संवृद्धि रणनीति के रूप में स्वीकार किया गया जिससे कि बेरोजगारी को दूर किया जा सके जिसके लिए 1973 में जगदीश भगवती की अध्यक्षता में भगवती कमेटी बनायी गई ।

बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने के लिए छठी पंचवर्षीय योजना में आई.आर.डी.पी, एन. आर.ई.पी, ट्राईसेम, आर.एल.ई.जी.पी. जैसे अनेक कार्यक्रम भारत सरकार द्वारा चलाए गए तथा छठी पंचवर्षीय योजना के पश्चात सभी योजनाओं में बेरोजगारी की समस्या के समाधान पर विशेष ध्यान दिया गया जिसके लिए 2004 में रोजगार प्राप्ती को कानूनी अधिकार का दर्जा देने के लिए महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण गारंटी एक्ट लाया गया।

परंपरागत रूप में पीरियाडिकल लेबर फोर्स रिपोर्ट 2018 के अनुसार पहले बेरोजगारी दर 2 से 3 प्रतिशत रही है जिसे राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन भी मानता था जो रोजगार तथा बेरोजगारी से संबंधित सभी संकेत पर प्रकाश डालता है पी.एल.एफ.एस. का गठन अमिताभ कुंडू की संस्तुतियों पर किया गया जिसे 2017 में राष्ट्रीय सांख्यिकी ऑफिस द्वारा स्वीकार किया गया यह सर्वेक्षण ग्रामीण परिवारों के संबंध में वार्षिक रूप से तथा शहरी परिवारों के लिए त्रैमासिक रूप से आंकड़े एकत्रित करता है जिसका उद्देश्य रोजगार तथा बेरोजगार संबंधित प्रमुख संकेत को श्रम जनसंख्या अनुपात के द्वारा श्रम भागीदारी दर तथा बेरोजगारी दर का अनुमान लगाना है। वर्ष 2018–19 के रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2017–18 में बेरोजगारी की दर 6.5 प्रतिशत थी जो की वर्ष 2018–19 में घटकर 5.8 प्रतिशत हो गई इसमें शहरी बेरोजगारी दर वर्ष 2018–19 में 7.7 प्रतिशत रही जो की वर्ष 2017–18 में 7.8 प्रतिशत रही थी । इस अवधि में ग्रामीण बेरोजगारी दर जो वर्ष 2017–18 में 5.3 प्रतिशत थी जो घटकर वर्ष 2018–19 में 5 प्रतिशत हो गई।

1.3.14–बोध प्रश्न–

1–भारत में आयोजन के इतिहास पर प्रकाश डालिए ।

2–आर्थिक नियोजन से आप क्या समझते हैं

3–आर्थिक नियोजन के प्रकार की व्याख्या कीजिए।

4—आर्थिक नियोजन के उद्देश्य लिखिए।

7—आर्थिक नियोजन की विशेषताएं लिखिए।

8—भारतीय नियोजन की उपलब्धियां पर प्रकाश डालिए ।

9—भारत में नियोजन की असफलताओं की व्याख्या कीजिए।

10—योजना आयोग से आप क्या समझते हैं ।

11—राष्ट्रीय विकास परिषद एवं उसके कार्यो का उल्लेख कीजिए।

1.3.15—कुछ उपयोगी पुस्तके—

भारतीय अर्थव्यवस्था, ए. एन. अग्रवाल

भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण नाथूराम

आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं भारत में आर्थिक नियोजन, प्रो.जी.एल.गुप्ता

भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉक्टर ममोरिया एवं जैन

भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.के. राय

भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास और योजनाओं की चुनौतियां, ए. एन. अग्रवाल

रुद्र दत्त एवं सुंदरम भारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी रूभारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

खण्ड – प्रथम

इकाई – 4

पंचवर्षीय योजनाएं उद्देश्य, उपलब्धियां एवं बाधाएं

इकाई की रूपरेखा

1.4.1– उद्देश्य

1.4.2 –प्रस्तावना

1.4.3–योजना की परिभाषा

1.4.4–भारत में योजना की धारण प्रक्रिया

1.4.5–पंचवर्षीय योजनाएं

1.4.6– पंचवर्षीय योजनाओ में रोजगार सृजन के प्रयास

1.4.7– पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि

1.4.8– पंचवर्षीय योजनाओ का राष्ट्रीय आय पर प्रभाव

1.4.9– पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन एवं भूमि सुधार कार्यक्रम की प्रगति

1.4.10–सारांश

1.4.11– बोध प्रश्न

1.4.12– कुछ उपयोगी पुस्तके

1.4.1– उद्देश्य

1–प्रस्तुत ईकाई में हम योजना के अर्थ की जानकारी प्राप्त करेंगें।

2–प्रस्तुत ईकाई में भारत में योजना की धारण प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करेंगें।

3–प्रस्तुत ईकाई में पंचवर्षीय योजनाओं के बारे जानकारी प्राप्त करेंगें।

5–प्रस्तुत ईकाई में पंचवर्षीय योजनाओ के उद्देश्यों एवं उपलब्धियों की जानकारी प्राप्त करेंगें।

6–प्रस्तुत ईकाई में पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार सृजन के प्रयास का अध्ययन करेंगें।

7–प्रस्तुत ईकाई में पंचवर्षीय योजनाओं का राष्ट्रीय आय पर प्रभाव का अध्ययन करेंगें।

1.4.2– प्रस्तावना–

स्वतंत्रता पश्चात भारत के नीति निर्माताओं को यह तय करना था कि भारत में कौन सी आर्थिक प्रणाली सबसे अधिक उपयुक्त होगी जो कुछ लोगों के लिए नहीं बल्कि सभी लोगों का कल्याण करेगी जवाहरलाल नेहरू ने समाजवाद को सबसे अच्छा प्रतिमान माना किंतु वह सोवियत संघ की उस नीति के पक्षधर नहीं थे जिसमें उत्पादन के सभी साधन खेत और कारखाने सरकार के स्वामित्व के अंतर्गत थे कोई निजी संपत्ति नहीं थी लोकतंत्र के प्रति वचनबद्धता जैसे भारत देश में सरकार के लिए पुर्व सोवियत संघ की तरह अपने नागरिकों को भू स्वामित्व के प्रतिमानो तथा अन्य संपत्तियों को परिवर्तित कर पाना संभव नहीं था। इस तरह भारत के नीति निर्माताओं ने भारत के लिए पूंजीवाद तथा समाजवाद के अतिवादी व्याख्या के किसी विकल्प की खोज की अंततः उन्होंने यह विचार किया कि भारत में ऐसी आर्थिक प्रणाली अपनी जाएगी जो समाजवाद की श्रेष्ठ विशेषताओं से युक्त होगी जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र एक सशक्त क्षेत्र होगा जिसके अंतर्गत निजी संपत्ति और लोकतंत्र का भी स्थान होगा सरकार अर्थव्यवस्था के लिए योजना बनाएगी निजी क्षेत्र को भी योजना प्रयास का एक अंग बनाने के लिए प्रोत्साहित करेगी औद्योगिक नीति प्रस्ताव वर्ष 1948 तथा भारतीय संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों के भी यही दृष्टिकोण थे अंततः वर्ष 1950 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में योजना आयोग की स्थापना की गई जिसमें नीति निर्माताओं का यह मत था कि किसी भी योजना की स्पष्टता उसके निर्दिष्ट लक्षणों से होती है अतः पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य समृद्धि, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और समानता निर्धारित किए गए इसका अर्थ या नहीं की प्रत्येक योजना में इन लक्ष्यों को एक समान महत्व दिया गया है सीमित संसाधनों के कारण भविष्य की योजना में ऐसे लक्ष्यो का चयन करना पड़ता जिनको प्राथमिकता दी जानी और नीति निर्माता को यह सुनिश्चित करना होगा कि जहां तक संभव हो चारों उद्देश्यों में कोई अंतर विरोध ना हो।

1.4.3–योजना की परिभाषा––

योजना एक ऐसी रणनीति है जिसमें किसी संस्था या संगठन द्वारा दिए हुए समय अवधि में संसाधनों के माध्यम से विशेष उद्देश्य एवं लक्ष्य की प्राप्त की जाती हैं भारत में नियोजन स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने देश के नियोजित विकास की रणनीति एक संघीय प्रणाली के रूप में नियोजन के अंतर्गत केंद्र व राज्य दोनों शामिल होते हैं भारत में नियोजन भारत के संविधान की समवर्ती सूची का विषय है भारत में नियोजन प्रणाली पूर्व यू.एस.एस.आर. की पंचवर्षीय प्रणाली गौश प्लान पर आधारित है रूस ने 1928 में फर्स्ट प्लान शुरू किया था प्रथम पंचवर्षीय

योजना के प्रपत्र में यह कहा गया था योजना के अंतर्गत एक सुपरिभाषित उद्देश्यों की प्राप्ति को प्रोत्साहित करने की रणनीति निर्मित की जाती है तथा समस्याओं को एक राष्ट्रीय समाधान का मार्ग बनाया जाता है एक ऐसा प्रयास जो साधनों एवं साध्यो के मध्य समन्वय का कार्य करता है जैसे कि बाजार मांग तथा आपूर्ति के मध्य संतुलन स्थापित करता है वैसे ही नियोजन आवश्यकता एवं आपूर्ति के मध्य संतुलन स्थापित करता है भारत जैसे देश में जहां जनसंख्या का एक विशाल भाग निर्धनता रेखा से नीचे है उन्हें बाजार शक्तियों पर छोड़ा नहीं जा सकता अतः भारत में नियोजन आज भी उतना ही आवश्यक है जितना यह अपने प्रारंभिक दिनों में था।

1.4.4–भारत में योजना की धारण प्रक्रिया –

भारत में योजना आयोग द्वारा चलाये जा रहे पंचवर्षीय योजनाओं की मध्यावधि समीक्षा तैयार की जाती है तथा उसे राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है ताकि उस पर विचार किया जा सके जिससे कि आगामी पंचवर्षीय योजनाओं के लिए सुझाव दिए जा सकें योजना आयोग आगामी पंचवर्षीय योजना के लिए विभिन्न स्तरों पर सुझाव आमंत्रित करता है जैसे– आम व्यक्तियों के सुझाव तथा विभिन्न समूहों के सुझाव किसानों का समूह, उद्योगपतियों का समूह, आर्थिक समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं के संपादकों का समूह, तथा आयातको एवं निर्यातको का समूह आदि का सुझाव आमंत्रित करता है योजना आयोग द्वारा आगामी 10–15 वर्षों की अवधि के लिए नियोजन की रूप रेखा का निर्धारण किया जाता है जिसमें अर्थव्यवस्था के लिए दीर्घकालिक उद्देश्यों को रखा जाता है ।

योजना आयोग द्वारा आगामी पंचवर्षीय योजना के लिए एक संक्षिप्त अभिगम में पत्र निर्धारित किया जाता है जिसे केंद्रीय मंत्रिमंडल के समक्ष तथा राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष विचार के लिए प्रस्तुत किया जाता है अभिगम पत्र पर दिए गए सुझावों के आधार पर योजना आयोग द्वारा आगामी पंचवर्षीय योजना की एक निश्चित रूपरेखा निर्धारित की जाती है इस रूपरेखा को संसद के समक्ष विचारार्थ रखा जाता है तत्पश्चात इसे केंद्र सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के पास एवं समस्त राज्य सरकारों के पास भी भेजा जाता है इसे आम लोगों के लिए मीडिया द्वारा भी जारी किया जाता है योजना आयोग द्वारा योजना का दृष्टिकोण पत्र निर्मित किया जाता है जिसे प्रधानमंत्री के अध्यक्षता में योजना आयोग की बैठक में रखा जाता है यह दृष्टिकोण पत्र केंद्रीय मंत्रिमंडल के समक्ष एवं राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष उसके अंतिम अनुमोदन के लिए प्रस्तुत किया जाता है राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा पारित कर दिए जाने के बाद इस दृष्टिकोण पत्र को अंतिम योजना का रूप कहा जाता है तत्पश्चात इसे संसद के समझ सूचनार्थ रखा जाता है योजना के अंतिम अनुमोदन के पश्चात योजना आयोग द्वारा पंचवर्षीय योजना को पांच वार्षिक योजना में बांटा जाता है प्रत्येक वर्ष योजना आयोग तथा विभिन्न राज्यों के मध्य व्यापक विचार–विमर्श होते हैं ताकि वार्षिक योजना के मूल्यांकन के साथ–साथ आगामी वर्ष के संसाधनों एवं उपायों का आकलन किया जा सके ।

1.4.5– पंचवर्षीय योजनाएं–

1—प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951—1956)

प्रथम पंचवर्षीय योजना की समय अवधि जोकि औपनिवेशिक आजादी के वर्ष एवं विभाजन का काल था जिसमें भारत की तीन मुख्य समस्याएं थी पहली समस्या शरणार्थियों का तेजी से प्रवेश, दूसरी समस्या भयंकर खाद्य अभाव और तीसरी समस्या बढ़ती हुई स्फीति जिससे निपटने के लिए नीति निर्माताओं द्वारा इसे हैरड डोमर संवृद्धि मॉडल पर अपनाया गया जिससे अर्थव्यवस्था में उत्पन्न हुए असंतुलन को संतुलित किया जा सके जिसमें शरणार्थियों को पुनर्वास करना, खाद्यान्नों में शीघ्र अति शीघ्र आत्मनिर्भरता प्राप्त करना एवं स्फीति को नियंत्रित करना तथा प्रथम पंचवर्षीय योजना में सर्वांगीण विकास प्रक्रिया को अपनाते हुए सामुदायिक विकास कार्यक्रम 1952 तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा योजना शुरू की गई जिससे कि उच्च वृद्धि दर प्राप्त की जा सके इसके लिए राष्ट्रीय आय को लगातार बढ़ाने का आश्वासन दिया गया तथा इस योजना में परिवहन तथा संचार को सबसे अधिक संसाधन उपलब्ध कराए गए जिससे कि लोगों के जीवन स्तर में सुधार हो सके ।

2—द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956—1961)

यह योजना पी.सी. महालनोबिस मॉडल पर आधारित थी जिसका मुख्य उद्देश समाजवादी समाज की स्थापना करना था क्योंकि पहले पंचवर्षीय योजना में निश्चित उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया था तथा कीमत स्तर में नियंत्रण प्राप्त कर लिया गया एवं भारतीय अर्थव्यवस्था ऐसी स्थिति पर पहुंच गई की कृषि को निम्न प्राथमिकता दिया जा सकता था एवं भारी उद्योगों एवं मूल उद्योगों विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य तत्कालिक सरकार ने 1956 की औद्योगिक नीति की घोषणा करते हुए तीव्र औद्योगिकरण को अपना लक्ष्य बनाया जिसमें मूल तथा भारी उद्योगों पर विशेष बल दिया गया अर्थात लौह इस्पात, अलौह धातु, भारी रसायन, भारी इंजीनियरिंग वस्तुएं, मशीन निर्माण आदि उद्योगों को बढ़ावा देने का निश्चय किया गया इसी दौरान राउरकेला भिलाई तथा दुर्गापुर में लौह इस्पात संयंत्र स्थापित किए गए साथ ही चितरंजन लोकोमोटिव सिंदरी उर्वरक कारखाना इंटीग्रल कोच फैक्ट्री आदि इस योजना में

स्थापित किए गए साथ ही साथ इसमें उर्जा परिवहन के क्षेत्र में आधारभूत ढांचे के विस्तार पर बल दिया गया और रोजगार के अवसरों उत्सर्जन करने का कार्य किया गया ।

3—तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961—1966)—

यह योजना जे.सैंडी के डेमोंसट्रेशन प्लानिंग मॉडल, महालनोबिस चार क्षेत्रीय मॉडल तथा सुख में चक्रवर्ती के आगत निर्गत मॉडल से प्रभावित थी जिसका उद्देश्य आत्मनिर्भर एवं स्वयंस्फूर्त अर्थव्यवस्था की स्थापना करना पहले दो पंचवर्षीय योजनाओं से यह स्पष्ट हो गया कि भारत के आर्थिक विकास के लिए कृषि उत्पादन आवश्यक है जिसको ध्यान में रखते हुए तीसरी पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन को दुगना करने का लक्ष्य रखा गया जिससे कि विदेशी सहायता में निर्भरता में कमी लाई जा सके तथा खाद्यान्नों के आयातो पर आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सके जहां तक औद्योगिक क्षेत्र का संबंध है ।

तीसरी पंचवर्षीय योजना में उद्योगों के विस्तार कार्यक्रम को विशेषतया पूंजी व भारी उद्योगों के विस्तार कार्यक्रम को अत्यधिक महत्व दिया गया जिसके लिए बड़े उद्योगों की स्थापना और विस्तार पर जोर दिया गया इसी योजना के अंतर्गत वर्ष 1964 में सोवियत संघ रूस के सहयोग से बोकारो झारखंड में बोकारो आयरन एंड स्टील उद्योग की स्थापना की गई साथ ही साथ इस्पात उद्योग, मशीन निर्माण उद्योग, रासायनिक उद्योग, उत्पादक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योग, ईंधन एवं शक्ति वाले उद्योग का विस्तार करना इत्यादि पर विशेष जोर दिया गया क्योंकि इन उद्योगों की स्थापना से भविष्य में निर्यात आधार को मजबूत बनाने में भी सहायता मिलने की संभावना थी जो की अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाने में सहयोग दे सकती थी तीसरी पंचवर्षीय योजना में भी संसाधनों व परिवहन संचार पर विशेष बल दिया गया और यह योजना असफल पंचवर्षीय योजनाओं में से एक थी क्योंकि यह संपूर्ण योजना काल युद्ध एवं सुखा से ग्रसित रहा जिसमें भारत चीन युद्ध (1962) भारत पाक युद्ध (1965)और भीषण सूखा (1965 से 66) तक रहा था ।

4—योजना अवकाश (1966—1969)—

ऐसा स्वीकार किया जाता है कि एकवर्षीय योजना विकास की प्रक्रिया में बाधक है जिसका अर्थ यह है कि सरकार द्वारा एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए किसी प्रकार की वचनबद्धता नहीं होती परिणाम स्वरूप जिन परियोजनाओं की परिपक्वता अवधि अपेक्षाकृत लंबी होती है उन्हें किसी आश्वासन के साथ प्रारंभ नहीं किया जा सकता इसके अलावा योजना अवकाश की अवधि में सरकार की भावी नीतियों के प्रति व्यापक अनिश्चिताएं होती है जिसके चलते निजी निवेशकों के निर्णय पर प्रतिकूल प्रभाव पडते हैं ।

अतः तीसरी पंचवर्षीय योजना के असफलता के परिणाम स्वरूप तत्कालिक सरकार ने तीन वार्षिक योजनाएं चलाएं जिसके पीछे अनेक आर्थिक सामाजिक तथा राजनीतिक कारण रहे हैं जैसे की चीन तथा पाकिस्तान से युद्ध होने के कारण देश की वित्तीय स्थिति कमजोर हो गई थी अतः इससे उबरने के लिए सरकार में तीन वार्षिक योजनाएं प्रारंभ की जिसमें वर्ष 1966–67 के दौरान नई कृषि नीति को अपनाया गया जिसके अंतर्गत उच्च गुणवत्ता वाले बीजों के वितरण तथा उर्वरकों का प्रयोग और सिंचाई क्षमता का विस्तार करके हरित क्रांति की शुरुआत की गई तथा ऊर्जा एवं शक्ति के विकास पर अधिक बल दिया गया जिससे कि देश में बड़े पैमाने पर बिजली उत्पादन एवं वितरण पर जोर देते हुए ग्रामीण विद्युतीकरण निगम 1969 की स्थापना कर कृषि एवं उद्योगों हेतु ग्रामीण क्षेत्रो में बिजली की कमी को पूरा करना था ।

5–चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–74)–

चौथी पंचवर्षीय योजना डी.आर.गाडगिल माडल पर आधारित थी जिसका उद्देश्य स्थिरता के साथ विकास स्थापित करना था और आत्मनिर्भरता की प्राप्ति करना समाज में आर्थिक समानता एवं आर्थिक न्याय एवं था जिसमें परिवार नियोजन कार्यक्रमों को लागु किया गया तथा आपरेशन फ्लड या श्वेत क्रांति इसी योजना मे आई थी द्यइस योजना के प्रारंभ के दो वर्ष बहुत ही सफल वर्ष थे जिनमें खाद्यान्नों का रिकॉर्ड उत्पादन हुआ एवं औद्योगिक उत्पादन में भी वृद्धि परंतु योजना के अंतिम तीन वर्ष बहुत ही निराशाजनक रहे जिसमें मानसून की असफलता के कारण खाद्यान्न के उत्पादन में भारी कमी आई एवं औद्योगिक क्षेत्र में ऊर्जा शक्ति की असफलता, परिवहन संबंधी समस्याओं और औद्योगिक अशांति के कारण उत्पादन प्रभावित हुआ जिससे की कीमत स्थिति गंभीर संकट का रूप धारण कर ली और वर्ष 1974 में कीमतों में तीव्र

वृद्धि हुई और योजना विकास परियोजना संबंधित लागतो के परिकलन में असंतुलन उत्पन्न हो गया जिससे कि योजना परिलागत खर्च को पुनः परिकलित किया गया साथ ही साथ देश में बांग्लादेशी शरणार्थियों की संख्या में तीव्रता से वृद्धि हुई एवं वर्ष 1972 में भारत–पाकिस्तान युद्ध भी परियोजना लागतो को बढ़ाने का कारण रहा अतः चौथी पंचवर्षीय योजना विफल योजनाओं में से एक थी ।

6–पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974 –1979)

पांचवी पंचवर्षीय योजना के समय सितंबर 1973 में तेल की अंतरराष्ट्रीय कीमतों में लगातार वृद्धि और गेहूं के थोक व्यापार के सरकारीकरण नीति की असफलता के कारण कीमतों में लगातार वृद्धि के फलस्वरूप देश में भारी आर्थिक संकट का दौर था जिससे निपटने के लिए तात्कालिक नीति आयोजकों द्वारा गरीबी हटाओ और सामाजिक न्याय के साथ विकास के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए सी सुब्रह्मण्यम की अध्यक्षता में गठित कमेटी ने अपने दिशा निर्देशों में यह बात स्पष्ट किया की घोर निर्धनता के कारण बेरोजगारी, अल्प रोजगार और कृषि एवं सेवा क्षेत्रों में काम कर रहे भारी संख्या में उत्पादकों का निम्न संसाधन आधार है अतः गरीबी की समाप्ति केवल अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर बढ़ने से प्राप्त नहीं की जा सकती बल्कि इस पर रणनीतिक रूप में बेरोजगारी, अल्प रोजगार, और निर्धनता पर सीधा प्रहार करना होगा जिसे बाद में दार्शनिक आधार मानकर इस दिशा निर्देशों का परित्याग कर दिया गया और श्री ड़ी.पी. धर की अध्यक्षता में पांचवी योजना का अंतिम प्रारूप लाया लाया गया जिसके मुख्यतः दो उद्देश्य थे गरीबी की समाप्ति एवं आत्मनिर्भरता की प्राप्ति जिसके लिए आर्थिक वृद्धि दर के उच्च स्तर को बढ़ावा देना तथा आय का समान वितरण और बचत दर में वृद्धि की नीति अपनाने पर जोर दिया गया तत्पश्चात मार्च 1978 में राजनीतिक बदलाव के कारण जनता पार्टी की सरकार ने पांचवी पंचवर्षीय योजना को 4 वर्षों के पश्चात ही समाप्त कर दिया था ।

यह योजना भी चौथी पंचवर्षीय योजना की तरह आगत निर्गत मॉडल पर आधारित थी जिसमें 66 क्षेत्र को शामिल किया गया था जबकि चौथी पंचवर्षीय योजना में केवल 30 क्षेत्र ही शामिल किए गया था इस योजना में गुर्नार मिर्डल द्वारा प्रतिपादित अनवरत योजना का डी.टी. लकड़वाला (उपाध्यक्ष योजना आयोग) ने इसे भारत में प्रयोग करने की अवधारणा विकसित

किया था परंतु इसका प्रयोग जनता सरकार द्वारा लागू छठी योजना में किया गया गरीबी उन्मूलन एवं आत्मनिर्भरता की प्राप्ति को मुख्य प्राथमिकता के आधार पर इसे पहली बार अपनाया गया गरीबी हटाओ का नारा पांचवी योजना में दिया यदि्प गरीबी हटाओ का नारा इंदिरा गांधी ने 1971 में लोकसभा चुनाव में ही दे दिया था परंतु गरीबी निवारण संबंधित सभी महत्वपूर्ण कार्यक्रम छठी पंचवर्षीय योजना में ही शुरू किए गए न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम जिसमें प्राथमिक शिक्षा पेयजल ग्रामीण सड़क ग्रामीण विद्युतीकरण आदि सम्मिलित है ।

7—योजना अवकाश रोलिंग प्लान (1978—80)—

वर्ष 1978 में राजनीतिक परिवर्तन के परिणाम स्वरूप नई सरकार ने पांचवी पंचवर्षीय योजना को खारिज कर दिया क्योंकि वर्ष 1978 से 80 राजनीतिक अस्थिरता का दौर था इसमें जनता सरकार ने एक नई वार्षिक योजना प्रारंभ किया जिसमें योजना के प्रभावशीलता का मूल्यांकन वार्षिक रूप में किया जाएगा और इस मूल्यांकन के आधार पर अगले वर्ष एक नई योजना बनाई जाती जिसकें परिणाम स्वरूप इस योजना में आवंटन और लक्ष्य दोनों को पुनः स्थापित किया गया एवं उच्च मूल्य की मुद्राओ की वैधता समाप्त कर दी गयी और जन वितरण प्रणाली का विस्तार किया गया एवं सभी के लिए सार्जनिक बीमा योजना प्रारम्भ की गयी और शराबबन्दी जैसे महत्वपूर्ण फैसले लिए गए ।

8—छठवीं पंचवर्षीय योजना (1978—1983)—

यह योजना जनता पार्टी द्वारा आवर्ती (रोलिंग) योजना पर आधारित था जिसमें भारत के आयोजन की उपलब्धियां की खुले तौर पर सराहना की गई परंतु इस दौरान बढ़ती हुई बेरोजगारी एवं आर्थिक शक्ति का नियंत्रण कुछ निश्चित उद्योगपतियों के हाथों में होने के कारण आय और संपत्ति की विषमताओं में वृद्धि हुई साथ ही साथ गरीबी में भी वृद्धि हुई जिसका उत्तरदायी नेहरू मॉडल को बताया गया इस योजना में उच्च उत्पादन के लक्ष्य को विस्तृत रोजगार के लक्ष्य के साथ समन्वय करने का निश्चय किया गया ताकि गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लाखों व्यक्ति इसका लाभ प्राप्त कर सके मुख्य रूप से कृषि तथा संबंधित क्षेत्र में रोजगार का विस्तार करना एवं जन उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन करने वाले पारिवारिक और छोटे उद्योगों को बढ़ावा देना और एक न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम द्वारा निम्नतम आय वर्गो की आय बढ़ाना था ।

परंतु 1980 में पुनः राजनीतिक परिवर्तन के पश्चात जब कांग्रेस की सरकार आयी तो छठी पंचवर्षीय योजना को 1980— 85 में परिवर्तित कर दिया जिससे पुनः नेहरू मॉडल को

अपनाते हुए आई.आर.डी.पी. नेशनल रूरल एंप्लॉयमेंट प्रोग्राम (एन.आर.ई.पी.) ट्राइसेम, आर.एल.ई.जी.पी, डी.डब्लू.ए.सी.आर.ए. जैसे इत्यादि कार्यक्रम चलाए गए मानक व्यक्ति वर्ष जो यह बताता है कि यदि कोई भी 8 घंटे प्रतिदिन के हिसाब से 73 दिन तक रोजगार में संलग्न हो तो उसे मानक व्यक्ति वर्ष की दृष्टि से रोजगार में संलग्न माना जाएगा जिसे छठी पंचवर्षीय योजना में अपनाया गया तथा अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के लक्ष्य को पहली बार अपनाया गया ।

9—सातवीं पंचवर्षीय योजना(1985—1990)

यह पंचवर्षीय योजना मजदूरी वस्तु मॉडल पर आधारित थी जिसका उद्देश्य रोजगार सृजन तथा उत्पादकता वृद्धि पर जोर देना था इस पंचवर्षीय योजना में पहली बार दीर्घकालीन विकास रणनीति पर जोर दिया गया एवं उदारीकरण को प्राथमिकता दी गई थी और खाद्य उत्पादन वृद्धि पर अधिक जोर दिया गया जिसके चलते इस योजना के दौरान अर्थव्यवस्था में 5.8 प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त की थी जबकि पिछली पांच पंचवर्षीय योजनाओं में औसतन 3.5 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त की थी इस योजना ने प्रोफेसर राजकृष्ण के हिंदू वृद्धि दर अवरोध को पार कर लिया था ।

10—योजना अवकाश (1990—1992)

आठवी पंचवर्षीय योजना को सितंबर 1989 में स्वीकृत प्राप्त हो गई परन्तु अप्रैल 1992 में प्रारंभ की गई क्योंकि आर्थिक संकट और राजनीतिक अस्थिरिता के कारण योजना आयोग का कई बार पुनर्गठन किया गया जिससे की कई प्रकार के दिशा निर्देश पत्र विवरण तैयार किए गए और 1991 व्यापक स्तर पर आर्थिक सुधार करते हुए उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की नीति अपनाई गई जिसमे आर्थिक सुधारो के साथ निजी क्षेत्र की भूमिका को बढ़ाने पर जोर दिया गया था ।

11—**आठवीं पंचवर्षीय योजना(1992—1997)—**

यह योजना जॉन डब्लू. मिलर मॉडल पर आधारित थी तात्कालिक समय में देश भारी आर्थिक संकटों से गुजर रहा था जिसका मुख्य कारण भुगतान संतुलन का बढ़ता हुआ संकट, ऋण भार एवं बजट घाटे में लगातार वृद्धि और महंगाई के साथ उद्योगों में अवमंदन की स्थिति

व्याप्त थीद्य तात्कालिक सरकार ने आर्थिक सुधारो के साथ राजकोषीय सुधार की प्रक्रिया जारी की जिससे की अर्थव्यवस्था को एक नयी गति प्रदान की जा सके एवं आर्थिक विकास में तीव्र वृद्धि प्राप्त की जा सके एवं मैला ढ़ोने की प्रथा को पुर्णतः समाप्त कर दिया गया, सभी गाँवो तक पेयजल ,टीकाकरण एवं प्राथमिक चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने पर जोर दिया गया जिससे आम व्यक्तियों के जीवन में गुणवत्ता लाई जा सके साथ ही साथ औद्योगिक पुनरुत्थान की उच्च वृद्धि प्राप्त की गई जबकि कुल विनियोग में सार्वजनिक क्षेत्र की विनियोग का भाग घटकर 34 प्रतिशत हो गया था जो की आर्थिक उदारीकरण प्रक्रिया प्रारंभ होने के परिणाम स्वरूप निजी क्षेत्र के महत्व को बढ़ा रहा था जोकि बाजार आधारित आर्थिक प्रणाली की ओर अधिक बल देने का परिणाम था ।

12—नवी पंचवर्षीय योजना (1997—2002)

नवी पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य सामाजिक न्याय तथा क्षमता के साथ आर्थिक विकास को प्राप्त करना था आर्थिक उदारीकरण के पश्चात निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र पर जोर दिया जाना शुरू हो गया जिसके लिए निर्देशात्मक योजना की कार्य विधि को अपनाया गयाद्य जिसका मुख्य लक्ष्य सामाजिक न्याय प्राप्त करना, ग्रामीण विकास के साथ रोजगार सृजन करना एवं आय एवं संपत्तियों का न्याय पूर्ण वितरण करते हुए समानता के साथ विकास के लक्ष्य को प्राप्त करना थाद्य जीवन में गुणवत्ता सुधारने की दिशा में निर्धनता उन्मूलन तथा न्यूनतम प्राथमिक सेवा उपलब्ध कराने पर जोर दिया गया एवं रोजगार संवर्धन हेतु श्रम बाहुल्य क्षेत्र पर एवं प्रौद्योगिकी पर ध्यान केंद्रित किया गया जिससे कि क्षेत्रीय असंतुलन को दूर किया जा सके एवं पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगीकरण की प्रक्रिया पर जोर दिया जा सके एवं पंचायती राज संस्थाओं सहकारी संस्थाओं तथा स्वयं सेवी वर्गों जैसी लोक भागीदारी वाले संस्थानों को बढ़ावा देना एवं उनके विकास करने पर विशेष ध्यान दिया गया साथ ही साथ कीमत स्थिरता के साथ आर्थिक उच्च संवृद्धि दर को प्राप्त करने का प्रयास किया गया ।

13—दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002—2007)

जिसका मुख्य लक्ष्य रोजगार ऊर्जा एवं सामाजिक अवसंरचना का विकास करना जिसके लिए सर्वाधिक बल कृषि एवं ऊर्जा क्षेत्र पर दिया गया इस योजना में शहर आधारिक संरचना जैसे कि दूरसंचार, बिजली, बंदरगाह जैसे क्षेत्रों में निजी क्षेत्र को अधिक अवसर प्रदान करने पर जोर दिया गयाद्य लक्ष्य 8 प्रतिशत आर्थिक वृद्धि दर का निर्धारण किया गया जबकि प्राप्ति 7.6 प्रतिशत की हुई तथा ग्राम आधारिक संरचना एवं सड़क विकास सुधार के लिए सरकार की प्रतिबद्धता को निर्धारित किया गया एवं आर्थिक प्रबंधन व्यवस्था का पुनर्मूल्यांकन किया गया जिसके अंतर्गत मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों को लचीला बनाया गया एवं इस योजना में उपभोग के स्तर में वृद्धि तथा स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी सुधार कर मानव जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करने का प्रयास किया गया जिसके लिए समावेशी संवृद्धि द्वारा असमानताओं को कम करने का प्रयास किया गया तथा समानता तथा सामाजिक न्याय के लिए नीतियां बनाने पर विशेष बल दिया गया ।

14–11वीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012)

इस योजना का मुख्य उद्देश्य व्यापक तथा समावेशी विकास की उपलब्धियों को तीव्र गति प्रदान करना एवं कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए द्वितीय हरित क्रांति पर जोर देना था जिसके तहत राष्ट्रीय कृषि विकास नीति, राष्ट्रीय खाद सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय बागवानी मिशन, राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना तथा किसानों के लिए ऋण माफी योजना प्रारंभ की गई एवं गरीब वर्गों तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी अनिवार्य सेवाओं का प्रारंभ किया गया साथ ही साथ रोजगार अवसरों का सृजन कर निर्धनता में कमी लाने का प्रयास किया गया और पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित करने और ऊर्जा नवीकरण स्रोतों का विकास करने पर विशेष बल दिया गयाद्य इस योजना में 9 प्रतिशत का अनुमानित लक्ष्य निर्धारित किया गया जबकि वास्तविक आर्थिक वृद्धि दर की प्राप्ति 7.8 प्रतिशत की हुई एवं मातृत्व मृत्यु दर को एक प्रति 1000 पर लाने का लक्ष्य रखा गया ।

15–12वीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017)–

बारहवी पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य तीव्र सतत एवं अधिक समावेशी विकास निर्धारित किया गया जिसका लक्ष्य 8 प्रतिशत अनुमानित वृद्धि दर प्राप्त करना, कृषि क्षेत्र में 4 प्रतिशत तथा विनिर्माण क्षेत्र में 10 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त करना, प्रति व्यक्ति उपभोग गरीबी में 10 अंकों की कमी लाना एवं गैर कृषि क्षेत्र में 50 मिलियन नए रोजगार अवसरों का सृजन करना एवं इतनी ही संख्या में कौशल प्रशिक्षण प्रदान करना तथा शिक्षा के औसत वर्षों की संख्या को बढ़ाकर 7 वर्ष करना एवं युवाओं को उच्चतर शिक्षा तक पहुंच बढ़ाना विद्यालय पंजीकरण में लैंगिक तथा सामाजिक संतुलन को संतुलित करते हुए लड़कियों, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों एवं अल्पसंख्यक समुदाय के शिक्षा न प्राप्त करने वाले बच्चों की शैक्षिक पंजीकरण संख्या में वृद्धि करना ।

12वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक नवजात शिशु मृत्यु दर को घटाकर 25 प्रति 1000 तक करना एवं बाल लिंगानुपात (0से6वर्ष) को सुधार कर 950 तक करना एवं योजना के अंत तक कुल प्रजनन दर को घटकर 2.01 प्रतिशत करना एवं 0 से 3 वर्ष के बच्चों में अल्पपोषण को घटाकर नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वेक्षण–3 के स्तरों को आधे पर लानाद्य ग्रामीण अवसंरचना के विकास के लिए योजना के अंत तक निवेश को बढ़ाकर सकल घरेलू उत्पाद को 9 प्रतिशत पर लाना एवं कुल सिंचित कृषि क्षेत्र को 90 मिलियन हेक्टेयर से बढ़ाकर 103 मिलियन हेक्टेयर तक करना एवं सभी गांवों में बिजली उपलब्ध कराना तथा सभी गांवों को बारहमासी सड़कों से जोड़ना एवं राष्ट्रीय और राज्य मार्गों को न्यूनतम दो लेने का मानदण्ड पूरा करना तथा पूर्वी तथा पश्चिमी डेडीकेटेड फ्रेंड कॉरिडोर को पूरा करना ग्रामीण टेली–घनत्व को बढ़ाकर योजना के अंत तक 70 प्रतिशत करना ।

12वीं पंचवर्षीय योजना में नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता में 30,000 मेगावाट की वृद्धि करना तथा सकल घरेलू उत्पाद के उत्सर्जन सघनता को 2020 तक 20 से 25 प्रतिशत घटाना एवं योजना के अंत तक 90 प्रतिशत भारतीय परिवारों को बैंकिंग सुविधा उपलब्ध कराना एवं बैंक खातो से जुड़े आधार संख्या का उपयोग करके 12वीं योजना के अंतर्गत मुख्य अनुदानों एवं कल्याण संबंधी लाभार्थी भुगतानों को प्रत्यक्ष नगद हस्तांतरण के माध्यम से लाभार्थी तक पहुँचाना एवं सभी को बैंकिंग सुविधा प्रदान करना सुनिश्चित किया गया ।

1.5.6–पंचवर्षीय योजनाओ में रोजगार सृजन के प्रयास –

भारत में आयोजन काल के आरंभ से ही बेरोजगारी समस्या के समाधान के लिए तथा रोजगार सृजन के लिए आयोजकों ने इस पर ध्यान देते हुए कहा कि तेज आर्थिक संवृद्धि तथा श्रम गहन क्षेत्रो जैसे लघु एवं कुटीर उद्योगों पर विशेष ध्यान देने से बेरोजगारी की समस्या स्वतः ही समाप्त हो जाएगी परंतु ऐसा नहीं हुआ उदाहरण के तौर पर हम दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह अनुमान लगाया गया कि पहली पंचवर्षीय योजना में जो बेरोजगारो की संख्या 50 लाख थी वह द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान बेरोजगारों की संख्या में 15 से 20 लाख प्रतिवर्ष की वृद्धि अपेक्षित थी जिसमें दूसरी पंचवर्षीय योजना में 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष आर्थिक संवृद्धि का लक्ष्य रखा गया और यह अनुमान लगाया गया कि इस संवृद्धि दर को प्राप्त करने पर पिछले सभी बेरोजगारों को 10 वर्ष की अवधि में रोजगार प्राप्त हो जाएगा इससे यह स्पष्ट होता है कि रोजगार को विकास का लक्ष्य तो माना गया परंतु केंद्रीय लक्ष्य के रूप में इसे स्वीकार नहीं किया गया ना ही इसे पूरी तरह से अवशिष्ट माना गया और यह प्रयास निरंतर जारी रहा की यह आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण तत्व बना रहे ।

रोजगार के प्रति तीसरे तथा चौथी योजना में भी इसी प्रक्रिया को अपनाया गया परंतु रोजगार के संबंध में उपलब्धियां बहुत ही कम रही जिसमें सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही जबकि रोजगार में वृद्धि तो 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही तथा श्रम शक्ति में वृद्धि इससे अधिक 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहे इसके परिणाम स्वरूप बेरोजगारों की संख्या जो 1956 में लगभग 50 लाख थी वह वर्ष 1973–74 में बढ़कर एक करोड़ हो गईद्य तत्पश्चात आर्थिक आयोजकों के लिए इस बेरोजगारी की वृद्धि के कारण अपने विचारों में परिवर्तन करने पड़े तथा आयोजको ने बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए पांचवी पंचवर्षीय योजना में आर्थिक संवृद्धि को रोजगार युक्त बनाने तथा गरीबी व बेरोजगारी निदान के लिए कुछ विशिष्ट कार्यक्रमों शुरू करने पर जोर दिया ।

छठी पंचवर्षीय योजना में रोजगार नीति के दो उद्देश्य निर्धारित किए गए जिसमें अल्प रोजगार की बड़े पैमाने पर पाई जाने वाली समस्या का निदान तथा दीर्घकालीन बेरोजगारी की समस्या को कम करने का प्रयास इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए रोजगार उन्मुक्त आर्थिक विकास

की आवश्यकता थी जिसके लिए कुछ रोजगार कार्यक्रम चलाए गए जैसे की समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ऑपरेशन फ्लड द्वितीय, डेरी प्रोजेक्ट, फिश फार्मर्स डेवलपमेंट एजेंसी, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण युवकों को रोजगार के लिए प्रशिक्षण योजना आदि कार्यक्रम चलाए गए जिससे कि अस्थाई तौर पर ही राहत प्रदान की जा सकेद्य

सातवीं पंचवर्षीय योजना में रोजगार के नए अवसर प्रदान करने पर भी काफी जोर दिया गया जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के अंतर्गत मजदूरी रोजगार तथा स्वरोजगार कार्यक्रम चलाया गया ।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में रोजगार वृद्धि का लक्ष्य 2.6 प्रतिशत से 2.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया ताकि 10 वर्ष की अवधि में लगभग पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त की जा सके जिसे प्राप्त करने के लिए रोजगार लोच अधिक वाले क्षेत्रों व उप क्षेत्रो के पक्ष में उत्पाद संरचना को पुनः व्यवस्थित करने पर जोर दिया गया जिसमें कृषि का क्षेत्रीय विविधीकरण करके बेकार पड़ी भूमि का विकास कर ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कृषि कार्यों में रोजगार सृजन के अवसर में वृद्धि करने का प्रयास करके विकेंद्रित उद्योग क्षेत्र के विकास पर तथा संगठित व सेवा क्षेत्र के विकास पर जोर दिया गया ।

नवी पंचवर्षीय योजना में उन क्षेत्रों पर जोर दिया गया जो श्रम गहन प्रौद्योगिकी अपनाते है तथा उन क्षेत्रों पर जहां बेरोजगारी एवं अल्प रोजगार अधिक है आदि पर विशेष जोर दिया गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में अतिरिक्त रोजगार अवसर उपलब्ध कराने के लिए कृषि व सम्बद्ध व्यवसायों लघु एवं मध्यम माध्यमों ग्रामीण गैर–कृषि क्षेत्रो तथा शिक्षा व स्वास्थ्य जैसे कुछ सामाजिक सेवा क्षेत्र के विकास पर जोर दिया गया तथा नीतियों में इस प्रकार परिवर्तन किया गया की जिससे निर्माण, पर्यटन, संचार व सूचना प्रौद्योगिकी तथा वित्तीय सेवाओं जैसी उच्च श्रम गहनता वाली गतिविधियों का तेजी से प्रसार हो सके ।

11वीं पंचवर्षीय योजना में भारत सरकार द्वारा 5 वर्षो में 5 करोड़ 80 लाख रोजगार अवसर प्रदान करने की बात कही गई जिसमें एक करोड़ 70 लाख रोजगार व्यापार, होटल, वस्त्र क्षेत्र

में एक करोड़ 20 लाख उद्योगों से तथा एक करोड़ 20 लाख अवसंरचना निर्माण के द्वारा प्रदान करने का प्रयास किया जायेगा ।

12वीं पंचवर्षीय योजना में विनिर्माण क्षेत्र को विकास का महत्वपूर्ण माध्यम बनाने पर जोर दिया गया जिससे कि वर्ष 2022 तक 100 मिलियन रोजगार सृजित किया जा सके साथ ही साथ श्रम प्रधान विनिर्माण क्षेत्रों जैसे– टेक्सटाइल, कपडा, चमड़ा एवं फुटवियर, रत्न व जवाहरात, खाद्य संसाधनो इत्यादि उद्योगों में रोजगार की व्यापक अवसर सृजित किए जाएंगे जिसके लिए योजनाओ के द्वारा कौशल विकास पर जोर दिया गया जिससे कि युवा श्रम लाभ का सदुपयोग किया जा सके ।

1.5.7–पंचवर्षीय योजनाओ का राष्ट्रीय आय पर प्रभाव––

भारत में स्वतंत्रता से लेकर वर्तमान तक सुव्यवस्थित आर्थिक नियोजन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में लगातार वृद्धि हुई है पहली पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 2.1 प्रतिशत रखा गया था जबकि 4.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की उपलब्धि प्राप्त हुई थी दूसरी योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 4.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि 4.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहे तीसरी योजना असफल योजनाओं में से रही जिसमें राष्ट्रीय आय में वृद्धि का लक्ष्य 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया था जबकि उपलब्धि मात्र 3.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की ही प्राप्त हो सके चौथी योजना में राष्ट्रीय आय मैं वृद्धि का लक्ष्य 5.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष कर रखा गया जबकि उपलब्धि मात्र 3 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही पांचवी पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में वृद्धि लक्ष्य 5.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया जिसे बाद में 4.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष परिवर्तित कर दिया गया था जबकि राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि प्राप्त हुई छठी पंचवर्षीय योजना में 5.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की राष्ट्रीय आय में वृद्धि प्राप्त हुई सातवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में 5.8 प्रतिशत

प्रतिवर्ष की वृद्धि दर प्राप्त हुई आठवीं पंचवर्षीय योजना में 6.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की राष्ट्रीय आय में वृद्धि दर प्राप्त हुई जबकि लक्ष्य 5.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया था नौवी पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में 5.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वार्षिक दर से वृद्धि प्राप्त हुई दसवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में 7.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि प्राप्त हुई ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में औसतन 7.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त हुई जबकि लक्ष्य 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया था बारहवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय राष्ट्रीय आय में 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की प्राप्ति हुई ।

1.5.8–पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि–

भारत में जहां तक औद्योगिक उत्पादन वृद्धि पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं प्रथम पंचवर्षीय योजना में 5.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़कर दूसरी पंचवर्षीय योजना में 7.2 प्रतिशत तथा तीसरी पंचवर्षीय योजना में 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष में काफी उत्साहवर्धक रही है परंतु उसके पश्चात भारत में औद्योगिक मंदी काल प्रारंभ हो गया और औद्योगिक उत्पादन वृद्धि दर में गिरावट होने लगी जो कि वर्ष 1966 से वर्ष 1976 के बीच औद्योगिक उत्पादन ने वृद्धि दर गिरकर 4.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रह गई तथा एक बार फिर से वर्ष 1980 से लेकर वर्ष 1990 के बीच में औद्योगिक वृद्धि दर में तेजी आई और औद्योगिक उत्पादन 7.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि दर प्राप्त हुई तथा वर्ष 1993 से वर्ष 1997 तक 8.6 प्रतिशत कि प्रतिवर्ष की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त हुई तथा वर्ष 1997 से वर्ष 2002 तक औद्योगिक उत्पादन वृद्धि दर कम होकर मात्र 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रह गई दसवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक वृद्धि दर 8.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई तथा

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन में 6.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दर प्राप्त हुई एवं बारहवीं पंचवर्षीय योजना में 4.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दर हुई ।

1.5.9—पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन एवं भूमि सुधार कार्यक्रम की प्रगति—

तीसरी योजना से पहले की अवधि तथा तीसरी योजना के बाद की अवधि। तीसरी योजना के बाद की अवधि को अक्सर हरित क्रान्ति का काल कहा जाता है तथा जैसाकि सारणी से स्पष्ट है। इस अवधि में गेहूॅ के उत्पादन में तेज वृद्धि हुई। दूसरी योजना में गेहूॅ का उत्पादन औसतन 97 लाख टन प्रति वर्ष तथा तीसरी योजना में औसतन 111 लाख टन प्रति वर्ष था। चौथी योजना में गेहूॅ का उत्पादन बढ़कर 250 लाख टन प्रति वर्ष तक जा पहुॅचा। तब से वृद्धि की यह प्रवृत्ति बनी रही है और दसवीं योजना में गेहूॅ उत्पादन बढ़ते —बढ़ते औसतन 702 लाख टन तक पहुॅच गया। ग्यारहवीं योजना के अंतिम वर्ष 2011—12 में गेहूॅ का उत्पादन बढ़कर 902 लाख टन हो गया। 1980 के दशक से चावल के उत्पादन में भी काफी वृद्धि हुई है हालांकि कुछ वर्षों में वृद्धि रूक रूक कर हुई है। चावल का उत्पादन तीसरी योजना में औसतन 351 लाख टन प्रति वर्ष से बढ़कर दसवीं योजना में औसतन 856 लाख टन प्रति वर्ष तक पहुॅच गया। 2011—12 में चावल का उत्पादन 1034 लाख टन हुआ है। इस प्रकार पूरी योजना अवधि में पहली बार चावल का उत्पादन 10 करोड़ टन से अधिक हुआ है। जैसा कि सारणी से स्पष्ट है। ज्वार और बाजरा का उत्पादन अधिकतर योजना अवधि में लगभग स्थिर सा बना रहा है। मक्का का उत्पादन भी काफी समय तक लगभग स्थिर सा रहा परन्तु हाल के वर्षों में नये संकर बीजों के प्रयोग से मक्का का उत्पादन तेजी से बढ़ा है। 2006—07 में मक्का का उत्पादन 151 लाख टन था जो 2010—11 में बढ़कर 213 लाख टन तक जा पहुॅचा। संकर बीजों की उच्च उत्पादकता के कारण हाल के वर्षों में मक्का की बीजों के जहॉ तक दालों का प्रश्न है, उनकी वार्षिक आवश्यकता देश में 170 लाख टन आंकी गई है। परन्तु पूरी योजना अवधि में दालों का उत्पादन इस स्तर से काफी कम रहा है। दालों की आपूर्ति मांग की तुलना में लगातार कम रही है जिससे देश की बड़ी मात्रा में दालों का आयात करना पड़ा है। वस्तुतः पिछले कुछ वर्षों से दालों का आयात वर्ष 30 लाख टन के आसपास रहा है जिससे भारत विश्व में दालों का सबसे बड़ा आयातक है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय स्तर पर भूमि सुधार नीति का कार्यक्रम बनाया गया। इस नीति के उद्देश्य थें। —

(1) मध्यजनों का उन्मूलन, (2) जोतों की उच्चतम सीमा का निर्धारण, (3) फालतू भूमि की बांट, (4) उपविभाजन तथा विखण्डन को रोकना, (5) चकबन्दी करना, (6) काश्तकारी प्रथा में सुधार, (7) लगानों का नियमन, (8) छोटे एवं मध्यम वर्ग के भू–स्वामियों के उत्पादन में वृद्धि करने हेतु जोतों की चकबन्दी करना, (9) कृषि श्रमिकों की स्थिति में सुधार, (10) सहकारिता के आधार पर कृषि का पुनर्गठन।

योजनाकाल में मध्यजनों के उन्मूलन के संबंध में कई राज्य सरकारों ने उचित कानून पास किए किन्तु भूमि सुधार के अन्य कार्यक्रमों में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में चकबन्छी के कार्य को शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न करने तथा जोतों की उच्चतम सीमा निर्धारित करने की राज्य सरकारों को सिफारिश की गई। इसके अतिरिक्त आगामी दस वर्षों में देश के अधिकांश कृषि क्षेत्रों में सहकारी खेती लागू करने के लिए सरकारों को उचित कदम उठाने को कहा गया।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में चकबन्दी के कार्य को शीघ्रातिशीघ्र सम्पन्न करने तथा जोतों की उच्चतम सीमा निर्धारित करने की राज्य सरकारों को सिफारिश की गई। इसके अतिरिक्त आगामी दस वर्षों मे ंदेश के अधिकांश कृषि क्षेत्रों में सहकारी खेवती लागू करने के लिए राज्य सरकारों को उचित कदम उठाने को कहा गया।

चौथी पंचवर्षीय योजना में जोतों की अधिकतम सीमा निर्धारित करने, चकबन्दी तथा सहकारी कृषि आदि कार्यक्रमों में तीव्रचता लाने पर काफी बल दिया गया।

पांचवी पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधार नीति के अन्तर्गत संस्थागत सुधार कार्यक्रम, सुधारों का लागू करने वाली मश्खीनरी, जनसहयोग तथ्ज्ञा भूमि सुधार के लिए काफी वित्तीय कोषों का आबंटन आदि सम्मिलित है।

छठी पंचवर्षीय योजना में भूमि का स्वामित्व पट्टेदारों को देने पर बल दिया गया। यह भी माना गया कि इन निर्धन किसानों को वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधारों तथा गरीबी दूर करने के लिए अच्छी तकनीकों के प्रयोग को आवश्यक माना गया है। भूमि का पुनर्वितरण उनको सदा के लिए आर्थिक तौर पर अच्छा बनाएगा और वह मेहनत करके कृषि उत्पादन को बढ़ा सकेंगे।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में भूमि सुधार को बहुत अधिक महत्व दिया गया था। इस कार्यक्रम को लागू करने पर 1087 करोड़ रू0 खर्च किए गए। मुख्य भूमि सुधारों में काश्तकारी सुधार, भूमि रिकार्डों की व्यवस्था, भूमि की उच्चतम सीमा, चकबन्दी तथा शामलात भूमि आदि शामिल है।

नौंवी पंचवर्षीय योजना के अनुसार, ''कृषि की ऊँची विकास दर तथा उसके लाभों के समान बंटवारे एवं कृषि अर्थव्यवस्था की पुनर्संरचना के लिए भूमि संबंधी कानूनों तथा नीतियों को उचित ढंग से लागू करना आवश्यक है।'' मुख्य भूमि सुधार इस प्रकार प्रस्तावित हैं : भूमि की उच्चतम सीमा को सख्ती से लागू करना, काश्तकारी प्रथा में सुधार, खाली जतीन का बंटवारा, भूमि की चकबन्दी, भूमि संबंधी रिकार्ड तैयार करना आदि शामिल हैं।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में भी सुधारों को सख्ती से लागू करने के लिए सख्त कदम उठाने की योजना बनाई गई है और इसके लिए हाईटेक टेक्नोलॉजी के प्रयोग पर अधिक बल दिया गया है।

1.10—सारांश—

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा नीति निर्माता ने आर्थिक एवं सामाजिक विकास प्राप्त करने का प्रयास किया किंतु अभी पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है कुछ क्षेत्रों में तो सफलता प्राप्त हुई है जैसे कि खाद्यान्न क्षेत्र में भारत ना केवल आत्मनिर्भर हो गया हैं बल्कि खाद्यान्नों का निर्यात भी करने लगा हैं परंतु अभी भी बहुत सारे खाद्यान्न है जिसका हमें समय—समय पर आयात भी करना होता है औद्योगिक क्षेत्र में विकास अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता से हुआ है जैसे की बिजली ,कोयला, सीमेंट, इस्पात, परिवहन एवं संचार ,पेट्रोलियम पदार्थ आदि का उत्पादन तो बढ़ा है लेकिन बढ़ती मांगों के चलते समय—समय पर इनका आयात भी करना पड़ता है विदेशी व्यापार में आशातीत वृद्धि होने के उपरांत भी विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा काम हुआ है जो इस बात का सूचक है कि अन्य देशों के तुलना में हमारे विकास की गति धीमी है जिससे कि अर्थव्यवस्था पर आंतरिक और वाह्य ऋण का भार अधिक हुआ है एवं भ्रष्टाचार भी तेजी से बढ़ा है जिससे कि गरीबी, बेरोजगारी एवं आय में असमानताएं भी बढ़ रही

हैं अतः भारत में इन समस्याओं को दूर करने के लिए योजनाओं का सही रूप से क्रियान्वयन की आवश्यकता है एवं सरकारी तंत्र की जवाबदेही तय करने की आवश्यकता है जिससे कि आर्थिक वृद्धि एवं विकास प्राप्त की जा सके।

1.5.11— बोध प्रश्न—

1—योजना से आप क्या समझते हैं ?

2—भारत में योजना धारण प्रक्रिया को समझाइए ।

3—भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के विकास उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए ।

4—भारत में योजना अवकाश से आप क्या समझते हैं?

5—भारत में द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में उद्योगो के विकास की विवेचना कीजिए।

6—पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार सृजन के प्रयासों का उल्लेख कीजिएं।

7—पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

8—पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि की विवेचना कीजिए।

9—पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन एवं भूमि सुधार कार्यक्रमों की प्रगति पर प्रकाश डालिए।

1.5.12—कुछ उपयोगी पुस्तके —

भारतीय अर्थव्यवस्था, ए. एन. अग्रवाल

भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण नाथूराम

आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं भारत में आर्थिक नियोजन, प्रो.जी.एल.गुप्ता

भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉक्टर ममोरिया एवं जैन

भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.के. राय

भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास और योजनाओं की चुनौतियां, ए. एन. अग्रवाल

रुद्र दत्त एवं सुंदरम रूभारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी रूभारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

खण्ड– प्रथम

इकाई 5

भारत में आर्थिक सुधार की आवश्यकता एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था से विमोह

इकाई की रूप रेखा

1.5.1– उद्देश्य

1.5.2– प्रस्तावना

1.5.3–भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था

1.5.4–मिश्रित अर्थव्यवस्था का उद्योगों पर प्रभाव

1.5.5–मिश्रित अर्थव्यवस्था से विमोह

1.5.6–भारत में आर्थिक सुधार की आवश्यकता के कारण

1.5.7–भारत में आर्थिक सुधारों के परिणाम

1.5.8–सारांश

1.5.9– बोध प्रश्न

1.5.10– कुछ उपयोगी पुस्तके

1.5.1 उद्देश्य–

1–प्रस्तुत ईकाई में हम भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की जानकारी प्राप्त करेंगें।

2–प्रस्तुत ईकाई में भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था का उद्योगों पर प्रभाव की जानकारी प्राप्त करेंगे।

3–प्रस्तुत ईकाई में मिश्रित अर्थव्यवस्था से विमोह के बारे जानकारी प्राप्त करेंगें।

4–प्रस्तुत ईकाई में भारत में आर्थिक सुधार की आवश्यकता की जानकारी प्राप्त करेंगें।

5–प्रस्तुत ईकाई में भारत में आर्थिक सुधारो के परिणामों का अध्ययन करेंगें।

1.5.2 प्रस्तावना–

भारत में स्वतंत्रता पश्चात से ही मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया जिसमे की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की विशेषताओं के साथ समाजवादी अर्थव्यवस्था की विशेषताओं का सम्मिलित रूप था परंतु योजना काल के कुछ वर्षों में मिश्रित अर्थव्यवस्था के नियमन एवं नियंत्रण के लिए इतने अधिक नियम कानून बनाएं गये जिससे की आर्थिक संवृधि और आर्थिक विकास की समूची प्रक्रिया ही अवरुद्ध हो गई जिससे भारत की आर्थिक विकास गतिहीनता के स्तर पर आ गई। वर्ष 1951 में भारत को महान आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा जिसमें भारत सरकार अपने विदेशी ऋणों कों भुगतान करने में अक्षम हो गई पेट्रोलियम आदि आवश्यक वस्तुओं के आयात के लिए भारत के पास सामान्य रूप से रखा गया विदेशी मुद्रा भंडार मात्र 15 दिनों के लिए ही शेष बचा था। जिससे कि आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में लगातार वृद्धि होने लगी एवं राजकोषीय घाटा लगातार बढ़ता गया जिसे बड़ी मात्रा में घरेलू लोक ऋण के द्वारा पूरा किया गया और अर्थव्यवस्था की आय एवं व्यय में बढ़ते अंतराल के फलस्वरुप भुगतान संतुलन के चालू खाते में भारी घाटा उत्पन्न हुआ जिसे विदेशी ऋण के द्वारा पूरा किया गया। दीपक नैयर के अनुसार "राजकोषीय स्थिति में आंतरिक संतुलन और भुगतान स्थिति में वाह्य संतुलन अर्थव्यवस्था के समष्टि प्रबंधन में विवेक के अभाव द्वारा परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थें।

1.5.3 भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था–

भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था एक अनिवार्य आयोजित अर्थव्यवस्था थी जिसमें सार्वजनिक क्षेत्रों का कार्य संचालन निश्चित प्राथमिकताओं के आधार पर किया गया जिससे कि निश्चित सामाजिक आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद और समाजवाद का समायोजन पूर्ण रूप से किया जाता है जिसमें निजी क्षेत्र के उद्योग लाभ प्रेरणा पर आधारित होते हैं व्यक्तिगत स्वहित की पूर्ण रूप से पहल होती है तथा निजी संपत्ति का आदर किया जाता है परंतु यह स्वतंत्र पूंजीवाद ना होकर नियंत्रित पूंजीवाद होता है जिससे कि स्वतंत्र उद्यम एवं लाभ प्रेरणा की संचालन शक्तियों और निजी संपत्ति प्रणाली को भी सामाजिक हित में सीमित रखा जाता है साथ ही साथ सार्वजनिक उद्योगों का प्रबंधन एवं कार्य संचालन समाज के कल्याण के आधार पर किया जाता है।

भारत में स्वतंत्रता पश्चात मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाए जाने से भारतीय अवसंरचना का तीव्र गति से विकास के लिए केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा आर्थिक विनियोग बड़े पैमाने पर किया गया जैसे सिंचाई परियोजना, जलविद्युत परियोजनाओं, सड़कों, रेलवे, डाक और तार, जहाजरानी और वायु परिवहन आदि अवसंरचना के विस्तार के साथ–साथ बाजार का आकार बड़ा होता गया है कृषि उद्योगो से अधिक उत्पादन प्राप्त करने की संभावना बढ़ी है अतः इस

प्रकार से भारत में सरकार समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए वचनबद्ध है जिसमें निजी उद्यमों के संवर्धन के साथ–साथ संपत्ति असमानता को दूर करने का प्रयास किया जाएगा इसका स्पष्ट उदाहरण योजना आयोग के द्वारा कहे गए शब्दों से "आयोजित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र में भेद सापेक्ष महत्व का है दोनों क्षेत्र एक ही व्यवस्था के अनिवार्य अंग है उन्हें ऐसे ही कार्य करना हो होगा"।

1.5.4 मिश्रित अर्थव्यवस्था का उद्योगों पर प्रभाव–

भारतीय अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था का सर्वोत्तम उदाहरण है जिसका प्रारंभिक विकास अप्रैल 1948 की औद्योगिक नीति के प्रस्ताव के परिणाम स्वरूप हुआ भारतीय संविधान के निदेशक सिद्धांतों के अधीन आर्थिक क्षेत्र में राज्य को अपने नीति का इस प्रकार निर्देशन करना था कि समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्व का बेहतर वितरण एवं नियंत्रण प्राप्त हो सके जिससे कुछ व्यक्तियों के हाथों में संपत्ति का सकेंद्रण ना हो सके और श्रम के शोषण को रोका जा सके। वर्ष 1948 की औद्योगिक नीति में उद्योगों को उनके महत्व के आधार पर 4 वर्गों में विभाजित कर दिया गया प्रथम वर्ग में वे उद्योग जो राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे जैसे अस्त्र–शस्त्र, अणुशक्ति, रेलवे यातायात आदि उद्‌योगो को सरकार के एकाधिकार में रखा गया। द्वितीय वर्ग कोयला, लोहा एवं इस्पात हवाई जहाज निर्माण, समुद्री जहाज, खनिज आदि बुनियादी उद्योगों को भी सरकार के नियंत्रण में रखा गयाद्य तृतीय वर्ग में 20 उद्योगों नमक, मोटर, भारी मशीनरी, उर्वरक, विद्युत इंजीनियरिंग, रबर, सूती वस्त्र उद्योग आदि उद्योगों को निजी क्षेत्र के अंतर्गत रखा गया परंतु सरकार का सामान्य नियंत्रण थाद्य तथा चतुर्थ वर्ग में उन सभी उद्योगों को रखा गया जो निजी क्षेत्रों द्वारा संचालित होते है पर सरकार द्वारा इन उद्योगों में आवश्यकतानुसार नियंत्रण रखा जाएगा।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही भारत के विभाजन हो जाने के कारण भारत की आर्थिक स्थिति बहुत ही कमजोर हो गयी तथा तत्कालीन सरकार के पास पूंजी का अभाव हो गया जिससे कि आर्थिक प्रगति के लिए बड़ी–बड़ी योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए सरकार असमर्थ हो गई ऐसे में आर्थिक विकास के लिए सरकार या निजी व्यक्ति दोनों ही अकेले सक्षम नहीं थे जिसमें इस नीति को आधार मानकर उद्योगों के संचालन के लिए सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों को निश्चित किया गया भारतीय संविधान में व्यक्ति के मूल अधिकारों में राज्य का यह कर्तव्य था कि वहां सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण करें तथा निजी क्षेत्र को भी संरक्षण प्रदान करें जिससे कि उसे उत्पादन के साधनों पर अधिकार प्राप्त हो तथा उत्पादित वस्तुओं के क्रय विक्रय का भी उन्हें अधिकार प्राप्त हो सके राज्य द्वारा किसी भी व्यक्ति की संपत्ति के अधिकार के लिए उसे क्षतिपूर्ति करना होगा।

सरकार ने 1948 की औद्योगिक नीति में यह स्पष्ट किया कि आने वाले कुछ वर्षों में राज्य द्वारा विद्यमान इकाइयों का राष्ट्रीयकरण करने के बजाय नए–नए उत्पादन इकाइयां अपने कार्य क्षेत्रों में स्थापित करेगा जिसमें सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र साथ–साथ कार्य करेंगे तथा निजी क्षेत्रों को देश के सामान्य अधिक औद्योगिक नीति के अधीन कार्य करना होगा अतः संक्षेप में कहा जाए तो 6 अप्रैल 1948 की औद्योगिक नीति में ही विस्तृत एवं नियंत्रित व्यवस्था की नींव रखी गई थी वर्ष 1955 में सरकार द्वारा समाजवादी समाज का लक्ष्य निर्धारित किया गया तो उसमें स्पष्ट रूप से कहा गया कि सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार के साथ–साथ निजी क्षेत्रों को भी विकास करने के पर्याप्त अवसर प्रदान किए जाएंगे इसी को आधार मानते हुए सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र का कार्य क्षेत्र औद्योगिक नीति 1956 में स्पष्ट करके उद्योगों का वर्गीकरण कर दिया गया ।

राज्यों को किसी भी प्रकार के उत्पाद को अपने पास सुरक्षित रखने का अधिकार प्रदान किया गया पहले वे सभी उद्योग जिनका पूर्ण दायित्व राज्य पर हो उन्हें अनुसूची ″क″ में 17 उद्योगों अस्त्र–शस्त्र, सैन्य सामग्री, परमाणु शक्ति, लोहा और इस्पात, भारी मशीनें, भारी बिजली, खनिज, वायु परिवहन, रेल यातायात, रेडियो उपकरण इत्यादि को रखा गया दूसरे में वे सभी उद्योग जिन पर राज्य का अधिकार बढ़ता गया तथा राज्य ने उद्योगों की स्थापना किया तथा निजी क्षेत्र से भी यह सहायता मांगी गई कि इसे चलाने में राज्य की सहायता करें इसे अनुसूची ″ख″ में 12 उद्योगों को चिन्हित किया गया जिन्हें प्रथम का अनुसूची ″क″ में नहीं रखा गया था अन्य खनिज उद्योग, एलुमिनियम एवं अन्य अलौह धातु, रसायन उद्योग, एंटीबायोटिक, उर्वरक, आवश्यक औषधियां, सड़क परिवहन, समुद्री परिवहन इत्यादि को रखा गयाद्य तीसरे वे सभी उद्योग जिसे अनुसूची ″ग″ में शेष सभी उद्योगों के साथ रखा गया जोकि अनुसूची ″क″ एवं ″ख″ में सम्मिलित नहीं थे इनका विकास निजी क्षेत्र के अधीन रखा गया जिसका विकास राज्य की सामाजिक आर्थिक नीति के अनुकूल कार्य करने और औद्योगिक अधिनियम तथा अन्य संबंध विधान में रहने को कहा गया।

वर्ष 1969 में मुख्य वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण द्वारा एक बड़ा कदम सरकार ने उठाया जिससे कि उत्पादन के सामाजिक दृष्टि से वांछनीय क्षेत्रों में विनियोग निर्देशित हो सके तथा वर्ष 1970 में औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति में आवश्यकता अनुसार पूंजी विनियोग में उद्यमियों को प्रोत्साहन देने के लिए लाया गया जिससे कि औद्योगिक विकास की दर तीव्र हो सके लेकिन इसे समय रहते प्राप्त नहीं किया जा सका नवीन औद्योगिक नीति 1973 में उन उद्योगों को मिश्रित क्षेत्र में रखा गया जो 1956 की औद्योगिक नीति की अनुसूची में रखे गए थे।

शेष उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए छोड़ा गया सार्वजानिक क्षेत्रों को भी लाया गया जिसमें उद्योगों के संचालन, प्रबंधन, नीति निर्धारण सरकार द्वारा किया जायेगा साथ ही साथ

यह स्पष्ट किया गया कि संयंत्र क्षेत्र में उद्योगों को चलाने की अनुमति नहीं दी जाएगी जो पहले से प्रतिबंधित हैद्य और 19 उद्योगों की सूची बनाकर बड़े औद्योगिक घरानों एवं विदेशी साझेदारों को निवेश के लिए भागीदार बनाया गया साथ ही यह कहा गया कि विदेशी साझेदार औद्योगिक घरानों को अन्य उद्योगों के लिए उनको तब तक अनुमति नहीं दी जाएगी जब तक यह स्पष्ट ना हो जाए कि ऐसा करने से निर्यात में कोई विशेष वृद्धि नहीं होगी वर्ष 1991 की औद्योगिक नीति से स्पष्ट हुआ कि आरक्षित क्षेत्रों को सीमित कर मूलभूत उद्योगों में गैर सरकारी क्षेत्र अर्थात निजी क्षेत्रों को भागीदार की अनुमति प्रदान की गई ऐसे क्षेत्र जिनमें सुरक्षा और सामरिक गतिविधियां हैं उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सूचित किया गया तथा ऐसे उद्योग में निवेश के लिए भारी मशीनरी एवं पूंजी की आवश्यकता है उन्हें निजी क्षेत्र को दे दिया गया था।

1.5.5 मिश्रित अर्थव्यवस्था से विमोह का कारण –

1–राजनीतिक संकट–

वर्ष 1990 की खाड़ी संकट ने भारत की सम्पूर्ण आर्थिक समस्याओं को और अधिक बढ़ा दिया क्योंकि इस समय काल में देश में राजनीतिक अस्थिरता का दौर था जिसने की भारत की अर्थव्यवस्था में अंतरराष्ट्रीय विश्वास को कम किया और अंतरराष्ट्रीय पूंजी बाजार में देश का साख स्तर प्रभावित हुआद्य जबकि 1970 के दशक में भारतीय अर्थव्यवस्था आर्थिक रूप से सक्षम थी और तेल की कीमतों में वृद्धि की स्थिति को झेलने में समर्थ रही लेकिन 1990 के दशक तक आते–आते भारत की आर्थिक स्थिति अत्यधिक कमजोरी हो चुकी थी जो कि तेल की कीमतों में मामूली वृद्धि भी भारत की अर्थव्यवस्था को भारी झटके का आभास कराती थीं ।

2–कुप्रबंधन–

भारत में इस वित्तीय संकट का वास्तविक कारण 1980 के दशक में अर्थव्यवस्था में कुप्रबंधन था सामान्य प्रशासन चलाने और अपनी विभिन्न नीतियों के क्रियान्वयन के लिए सरकार द्वारा धनराशि करो और सार्वजनिक उद्यम आदि के माध्यम से एकत्रित करती थी द्य जब वह धनराशि आय से अधिक होती तो सरकार बैंकों, जन सामान्य तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से उधार लेने को बाध्य हो जाती थी इस प्रकार वह घाटे का वित्तीय प्रबंधन करती थी। कच्चे तेल आदि के आयात के लिए भारत को विदेशी मुद्रा में भुगतान करना होता था जो की भारत द्वारा अपने उत्पादन के निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा भंडार प्राप्त किया जाता था ।

3–राजस्व व्यय की अधिकता –

इस आर्थिक संकट में भारत सरकार की विकास नीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही क्योंकि राजस्व कम होने पर भी सरकार को बेरोजगारी, गरीबी और जनसंख्या विस्फोट के कारण अपने विकास कार्यक्रमों में राजस्व से अधिक खर्च करना पड़ रहा थाद्य तथा सरकार द्वारा चलाए जा रहे हैं कार्यक्रमों पर होने वाले व्ययो में वृद्धि के कारण अतिरिक्त राजस्व की प्राप्ति नहीं हुई थी जबकि सरकार को प्रतिरक्षा और सामाजिक क्षेत्र पर अपने संसाधनों का एक बड़ा भाग खर्च करना पड़ रहा था और यह स्पष्ट रूप से ज्ञात था कि उन क्षेत्रों से किसी प्रकार के शीघ्र प्रतिफल की संभावना नहीं थी।

सरकार को अपने बचे हुए राजस्व का बहुत ही सोच विचार कर प्रयोग करने की आवश्यकता थी एवं बढ़ते हुए खर्चों की पूर्ति के लिए सार्वजनिक उद्योगों से भी अधिक आय अर्जित नहीं हो पा रही थी कई बार तो सरकार को अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं तथा अन्य देशों से उधार लिए विदेशी मुद्रा का उपभोग कार्यों पर ही खर्च कर दिया गयाद्य इस प्रकार के अनावश्यक खर्चो को नियंत्रित करने का ना तो कोई प्रयास किया गया ना ही निरंतर बढ़ते आयात के लिए वित्त जुटाने की दृष्टि से निर्यात संवर्धन पर ही पर्याप्त ध्यान दिया गया ।

1.5.6 भारत में आर्थिक सुधार की आवश्यकता के कारण–

1–वित्तीय संकट–

भारत में 1980 के दशक के अंत तक सरकार का व्यय उसके राजस्व से इतना अधिक हो गया कि ऋण के द्वारा व्यय धारण क्षमता से अधिक माना जाने लगा एवं अनेक आवश्यक वस्तुओं की कीमतें तेजी से बढ़ने लगी, आयात की वृद्धि इतनी तीव्र रही कि आयात एवं निर्यात में संतुलन स्थापित नहीं हो पाया जिससे कि विदेशी मुद्रा भंडारा में लगातार कमी होती गई जिसके परिणाम स्वरुप भारत के पास मात्र दो सप्ताह तक का ही आयात आवश्यकताओं को ही पूरा कर पाने के लिए मुद्रा भंडार बचे हुए थे एवं अंतर्राष्ट्रीय उधार दाताओं को ब्याज चुकाने के लिए भारत सरकार के पास पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा नहीं बची थी।

इतना ही नहीं किसी भी देश के अंतरराष्ट्रीय निवेशक भी भारत में निवेश नहीं करना चाहते थे उस स्थिति में भारत ने अंतरराष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक (आई.बी.आर.डी.) जिसे सामान्यतः विश्व बैंक के नाम से जाना जाता है, और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से सहायता मांगी थी। जिसने देश को 7 बिलियन डॉलर का ऋण आर्थिक संकट का सामना करने के लिए दिया जिन ऋणों को प्रदान करने के लिए विश्व बैंक एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा भारत सरकार पर कुछ आवश्यक शर्तें लगाई गई जैसे की भारत सरकार उदारीकरण करेगी, निजी क्षेत्र पर लगे प्रतिबंधों को हटाएगी तथा अनेक क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप को कम करेगी साथ ही यह भी अपेक्षा की गई कि भारत सरकार अन्य देशों के लिए विदेशी व्यापार पर भी लगे प्रतिबंधों को हटाएंगीद्य इन सभी शर्तों को भारत सरकार को विश्व बैंक एवं अंतर्राष्ट्रीय

मुद्राकोष के दबाव के कारण मानना पड़ा एवं 1991 की नई आर्थिक नीति की घोषणा की गईद्य जिसमें की व्यापक आर्थिक सुधारो को शामिल किया गया और इन समस्त नीतियों का उद्देश्य अर्थव्यवस्था में अधिक प्रतिस्पर्धात्मक व्यावसायिक वातावरण की स्थापना करना था तथा फर्मों के व्यापार में प्रवेश करने और उनकी संवृधि में आने वाली बधाओ को दूर करना था ।

इन नीतियों को दो उप समूह में विभाजित किया गया स्थायित्वकारी उपाय तथा संरचनात्मक सुधार के उपाय, स्थायित्वकारी उपाय अल्पकालीन थे जिनका उद्देश्य भुगतान संतुलन में त्रुटियों को दूर करना एवं मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करना था अर्थात देश में पर्याप्त विदेशी मुद्रा भंडारण बनाए रखना और बढ़ती हुई आवश्यक वस्तुओं की कीमतों पर नियंत्रण रखना था एवं संरचनात्मक सुधार दीर्घकालिक उपाय थे जिनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था की कार्य कुशलता को सुधारना तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की कमीयों को दूर करना तथा भारत में अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को विकसित करना था इस दृष्टि से भारत सरकार ने अनेक नीतियां प्रारंभ की थी।

2—सार्वजनिक उद्योगों का खराब प्रदर्शन—

वर्ष 1990 के दशक के पहले अधिकतम उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के नियंत्रण वाले थे जिनमें अप्रशिक्षित कर्मचारीयों में कार्य कुशलता के अभाव के कारण सार्वजनिक क्षेत्र के उत्पादन में लगातार कमी होती गई हालांकि इसके सुधार के लिए कई प्रकार के अनुशासनात्मक उपाय किए गए फिर भी इससे कोई संतोष जनक सुधार नहीं हो सका जिससे की गुणवत्ता एवं उत्पादन लगातार घटती गई जिसके परिणाम स्वरुप सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग लगातार घाटे में बन रहे जो की भारत में आर्थिक सुधार की आवश्यकता का कारण बने ।

3—राजकोषीय घाटे में वृद्धि—

भारत में 1990 का राजकोषीय संकट कोई संयोग मात्रा नहीं था यह 1980 के दशक में सरकार के गैर विकासात्मक व्यय में लगातार वृद्धि का परिणाम था जो राजकोषीय घाटे में वृद्धि का कारक थाद्य राजकोषीय संतुलन की जांच के लिए जिन सूचको का प्रयोग किया जाता है वह राजस्व घाटा और सकल राजकोषीय घाटा है जिसमें की राजस्व घाटे को राजकोषीय असंतुलन का परंपरागत सूचक माना जाता है जो की सरकारी साधनों में कमी को आंशिक रूप से ही दर्शाता है साधनों की यह कमी प्रायः ट्रेजरी बिलों के निर्गमन द्वारा ही पूरी

की जाती हैं जिसे पूरा करने के लिए सरकार द्वारा बाजारों से उधार और अल्प बचत एवं भविष्य निधि राशियों तथा विदेशी ऋणों से किया जाता है।

सकल राजकोषीय घाटे की संकल्पना इस दृष्टि से ठीक है कि उसके द्वारा समग्र राजकोषीय संतुलन प्रकट होता है राजकोषीय घाटे में ट्रेजरी बिलो द्वारा जुटाए जाने वाली राशि के अलावा विभिन्न स्रोतों से उधार लिए गए साधन भी शामिल होते हैं द्य जो की राजकोषीय घाटा सरकारी राजस्व और अनुदान की राशि के ऊपर सरकारी व्यय का अतिरेक होता है वर्ष 1980–81 में भारत में सकल घरेलू उत्पाद में 5.01 प्रतिशत राजकोषीय घाटा था जो की वर्ष 1990–91 में बढ़कर 7.8 प्रतिशत हो गया जिसे पूरा करने के लिए सरकार के आंतरिक ऋणों का भी भार तेजी से बढ़ता गया 1980 में भारत सरकार के ब्याज भुगतान उसके कुल व्यय का 10 प्रतिशत और सकल घरेलू उत्पाद का दो प्रतिशत था जबकि वर्ष 1990–91 भारत सरकार के कुल व्यय के 22 प्रतिशत और सकल घरेलू उत्पादन में 3.8 प्रतिशत था वर्ष 1990–91 में ब्याज भुगतान पर भारत सरकार के राजस्व का 39.01 प्रतिशत खर्च हो रहा था जिससे कि यह संभावना व्यक्त की जा रही थी कि भारत सरकार ऋण जाल में फसती जा रही है।

4–मुद्रा स्फीति में वृद्धि–

भारत में वर्ष 1980 के दशक में आवश्यक वस्तुओं की कीमतें में वृद्धि हो रही थी क्योंकि थोक कीमतों के आधार पर मुद्रा स्फीति की औसत वार्षिक दर 6.7 प्रतिशत थी जो की वर्ष 1991 में थोक कीमतों के आधार पर मुद्रा स्फीति की दर 10.3 प्रतिशत वार्षिक दर पर पहुंच गई उपभोक्ता कीमत सूचकांक 11.2 प्रतिशत से अधिक हो गई मुद्रास्फीति की सबसे भयानक स्थिति तो यह थी कि लगातार 3 वर्षों के अच्छे मानसून के बावजूद खाद्य वस्तुओं की कीमतों में लगातार वृद्धि हो रही थी जिसके चलते समाज के गरीब और हाशिए पर रहने वाले लोगों को पर्याप्त भोजन तक ना मिल के कारण लोगों को भुखमरी का सामना करना पड़ रहा थाद्य दीपक नैयर के अनुसार "अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति दबाव अप्रत्याशित नहीं थी यह दबाव भारी घाटों के कारण था जो बजट घाटों के भी मुद्रीकरण और मुद्रा की पूर्ति में अत्यधिक विस्तार से सम्बद्द था।

5–प्रतिकूल भुगतान संतुलन–

भारत में आर्थिक सुधार की आवश्यकता में प्रतिकूल भुगतान संतुलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है क्योंकि वर्ष 1980–81 में भुगतान संतुलन के चालू खाते में घाटा 2.01 अब डॉलर का था जो वर्ष के सकल घरेलू उत्पाद का 1.35 प्रतिशत था जिसमें की 1980 के दशक में काफी वृद्धि हुई और वर्ष 1990–91 में यह बढ़कर 9.7 अरब डालर हो गया जो की सकल घरेलू उत्पाद का 3.69 प्रतिशत था जिसे पूरा करने के लिए विदेशी ऋणों को अधिक

मात्रा में लिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी ऋण का भार वर्ष 1980–81 में सकल घरेलू उत्पाद का 12 प्रतिशत था जो 1990–91 में सकल घरेलू उत्पाद के 23 प्रतिशत तक पहुंच गया वर्ष 1980 के दशक में भुगतान संतुलन के बढ़ते हुए यह तनाव वर्ष 1991 में खाड़ी संकट के कारण बहुत गंभीर स्थिति में पहुंच गए जो कि मध्य जनवरी 1991 में भुगतान संतुलन की स्थिति घोर संकट पर पहुंच गई थी जो की जून 1991 में भारत में विदेशी मुद्रा भंडार मात्र 15 दिनों के आयात के लिए बचा था।

1.5.7 भारत में आर्थिक सुधारों के परिणाम–

भारत में आर्थिक सुधारो के फलस्वरुप औद्योगिक क्षेत्र, वित्तीय क्षेत्र, कर सुधार, विदेशी विनिमय बाजार, व्यापार तथा निवेश क्षेत्र आदि क्षेत्रो में सुधारात्मक परिवर्तन किए गए औद्योगिक क्षेत्र विनियमिकरण जिसके अंतर्गत औद्योगिक क्षेत्र के अनेक प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया गया तथा मात्र केवल 6 उत्पादक श्रेणियों अल्कोहल, सिगरेट, जोखिम भरे रसायन, औद्योगिक विस्फोटक, इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, विमानन तथा औषधी आदि क्षेत्रों को छोड़ अन्य सभी क्षेत्रो से लाइसेंसिंग व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया और सार्वजनिक क्षेत्रो के लिए केवल परमाणु ऊर्जा उत्पादन और रेल परिवहन की कुछ मुख्य गतिविधियां ही संरक्षित की गई तथा लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित अधिकांश वस्तुओं को अनारक्षित श्रेणी में रखा गया एवं उनकी कीमतों का निर्धारण बाजार के द्वारा तय की गई।

1–वित्तीय सुधार–

वित्तीय क्षेत्र में व्यावसायिक और निवेश बैंक स्टॉक एक्सचेंज तथा विदेशी मुद्रा बाजार जैसी वित्तीय संस्थाएं सम्मिलित थे जिसका नियमन भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता था जो की विभिन्न नियम और कसौटियों के माध्यम से अन्य वित्तीय संस्थानों के कार्यों का नियमन करता था एवं यह तय करता था कि कोई बैंक अपने पास कितनी मुद्रा जमा रख सकता है एवं कितनी ब्याज दर नियत होगी साथ ही विभिन्न क्षेत्रों को उधार देने की प्रकृति इत्यादि को भी रिजर्व बैंक द्वारा तय की जाती थी अतः आर्थिक सुधारो के पश्चात रिजर्व बैंक की भूमिका नियंत्रक के बजाये सहायक के रूप में सीमित कर दी गई जिसको स्पष्ट करते हुए यह कहा गया कि वित्तीय क्षेत्र के संस्थान रिजर्व बैंक की सलाह लिए बिना अपने कुछ मामलों में निर्णय लेने में स्वतंत्र होंगे।

आर्थिक सुधार नीतियों के कारण भारत में कई विदेशी एवं निजी बैंकों को पदार्पण करने का अवसर मिला जिसके लिए बैंकों की पूंजी में विदेशी भागीदारी की सीमा को 74 प्रतिशत तक बढ़ा दी गई एवं कुछ निश्चित शर्तों को पूरा करने वाले बैंकों को अब नई शाखाएं खोलने एवं पुरानी शाखाओ को अधिक युक्ति संगत बनाने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं होगी द्य बैंकों को अब देश–विदेश से और अधिक

संसाधन जुटाना की भी अनुमति होगी लेकिन खाताधारकों और देश के हितों की रक्षा करने के उद्देश्य से कुछ नियंत्रण शक्ति अभी भी भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखी गयी है विदेशी निवेश संस्थाओं (एफ.आई.आई.) तथा व्यापारी बैंकों, म्युचुअल फंड और पेंशन कोष आदि को भी भारतीय वित्तीय बाजारों में निवेश की अनुमति प्राप्त हो गई थी।

2–कर व्यवस्था में सुधार–

आर्थिक सुधारो के फलस्वरूप भारत में कराधान और सार्वजनिक व्यय नीति में सुधार हुआ जिसे सामूहिक रूप से राजकोषीय नीति भी कहा जाता है वर्ष 1991 के आर्थिक सुधारो के पश्चात भारत में व्यक्तिगत आय पर लगाए गए करो की दरों में निरंतर कमी की गई जिसके पीछे मुख्य धारणा यह थी कि ऊंची कर दरो के कारण ही करवंचन की स्थिति उत्पन्न होती है तथा बचत को हतोत्साहित करती है यदि कर की दर कम होती है तो घरेलू बचतों को बढ़ावा मिलता है एवं लोग अपनी स्वेच्छा से अपनी आय का विवरण देते हैं आर्थिक सुधारो के पश्चात अप्रत्यक्ष करों में भी सुधार के प्रयास किए गए हैं जैसे वस्तु एवं सेवाओं पर लगाए गए कर को एकरूप में लागू कर राष्ट्रीय स्तर पर बाजार की संरचना करने का प्रयास किया गया है जिसे वर्ष 2016 में एकीकृत एवं सरल बनाने के लिए वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम 2016 कानून को पारित किया गया एवं जुलाई 2017 से से लागू किया गया जिसका उद्देश्य एक राष्ट्र, एक कर, एक बाजार का निर्माण करने की आशा है एवं करदाताओं के द्वारा नियमों के पालन कों प्रोत्साहित करने के लिए प्रक्रियाओं को सरल बनाकर कर की दरों में कमी की गई है।

3–विदेशी विनिमय में सुधार–

वर्ष 1991 में विनिमय बाजार में सुधार एवं भुगतान संतुलन की समस्या के तात्कालिक समाधान के लिए भारत देश की अन्य देशों की मुद्रा की तुलना में रुपए का अवमूल्यन किया गया साथ ही साथ रुपए के मूल्य निर्धारण को सरकारी नियंत्रण से मुक्त करने की पहल की गई जिससे कि भारत में विदेशी मुद्रा के आगमन में वृद्धि हुई अतः वर्तमान में भारतीय मुद्रा रुपए का मूल्य निर्धारण विदेशी मुद्रा की मांग और पूर्ति के आधार पर किया जाता है।

4–व्यापार और निवेश नीति में सुधार–

अर्थव्यवस्था में औद्योगिक उत्पादन और विदेशी निवेश तथा प्रौद्योगिकी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा की क्षमता को प्रोत्साहित करने के लिए व्यापार और निवेश व्यवस्थाओं का उदारीकरण प्रारंभ किया गया इस कार्यक्रम का एक उद्देश्य स्थानीय उद्योगों की कार्य कुशलता को सुधारना और उन्हें आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना था जिसके

लिए आंतरिक उद्योगों के संरक्षण के लिए भारत द्वारा आयात के परिमाण को सीमित रखने की नीति अपनाई जा रही है इसके लिए आयात पर कड़े नियंत्रण और उच्च प्रशुल्को का प्रयोग होता है।

यह नीतियां कुशलता और प्रतिस्पर्धा क्षमता को कम करती थी जिससे देश में विनिर्माण उद्योगों की संवृधि दर कम हुई जिनमें सुधार के लिए आयात और निर्यात के परिमाणात्मक प्रतिबंधों की समाप्ति एवं प्रशुल्क के दरों में कटौती तथा आयातो के लिए लाइसेंसिंग प्रक्रिया की समाप्ति और हानिकारक और पर्यावरण संवेदी उद्योगों के उत्पादों को छोड़ अन्य सभी उत्पादों वस्तुओं पर आयात लाइसेंस व्यवस्था समाप्त कर दी गई। अप्रैल 2001 से कृषि पदार्थ और औद्योगिक उपभोक्ता पदार्थों के आयात भी मात्रात्मक प्रतिबंधों से मुक्त कर दिए गए भारतीय वस्तुओं का अंतरराष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा शक्ति बढ़ाने के लिए उन्हें निर्यात शुल्क से मुक्त कर दिया गया है।

5–सकल घरेलू उत्पाद में सुधार–

भारत में वर्ष 1991 के आर्थिक सुधारो के पश्चात दो दशकों तक सकल घरेलू उत्पाद में लगातार वृद्धि आकलित हुई वर्ष 1980–1991 में सकल घरेलू उत्पाद 5.6 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2007–2012 में 8.2 प्रतिशत हो गईद्य आर्थिक सुधारो की अवधि में जहां औद्योगिक क्षेत्र में उतार–चढ़ाव देखे गए वहीं सेवा क्षेत्र में लगातार वृद्धि होती रहे इससे यह ज्ञात होता है कि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि मुख्यतः सेवा क्षेत्र में वृद्धि के कारण हुई है द्य वर्ष 1991 के बाद से सेवा क्षेत्र में वृद्धि वर्ष 2014–15 के समग्र सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि से भी अधिक रही थी जो कि अब तक की सबसे ऊंची वृद्धि दर 9.8 प्रतिशत रिकॉर्ड दर्ज की गई।

6–विदेशी विनिमय रिजर्व में सुधार–

आर्थिक सुधारो के पश्चात प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तथा विदेशी विनिमय रिजर्व में भी तेजी से वृद्धि हुई जिसमें प्रत्यक्ष और संस्थागत विदेशी निवेश दोनों सम्मिलित है वर्ष 1990–91 में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 100 मिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर वर्ष 2017–18 में 30 बिलियन अमेरिकी डॉलर के स्तर पर पहुंच गया तथा भारत के विनिमय रिजर्व का आकर वर्ष 1990–91 में 6 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर वर्ष 2018–19 में 413 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया है जिससे की वर्ष 2011 में भारत विदेशी विनिमय रिजर्व का सातवां सबसे बड़ा धारक बन गया था।

7–कृषि में सुधार–

आर्थिक सुधार कार्यों से कृषि को कोई विशेष लाभ नहीं प्राप्त हुआ क्योंकि वर्ष 1991 के बाद से कृषि क्षेत्र में विशेष कर आधारिक संरचना अर्थात सिंचाई, बिजली, सड़क, निर्माण, बाजार संपर्को और शोध प्रसार आदि पर बहुत अल्प मात्रा ही व्यय हुए साथ ही उर्वरक अनुदान की आंशिक समाप्ति ने भी उत्पादन लागत को बढ़ा दिया जिसका छोटे और सीमांत किसानों पर बहुत ही गंभीर प्रभाव पड़ा इसके साथ ही कृषि उत्पादों पर आयात शुल्क में कटौती, कम न्यूनतम समर्थन मूल्य और इन पदार्थों के आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबंध हटाए जाने के कारण कृषि क्षेत्र की नीतियों में कई परिवर्तन हुए इसके कारण भारत के किसानों को विदेशी प्रतिस्पर्धा का भी सामना करना पड़ा है जिसका उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है तथा उत्पादन व्यवस्था निर्यात की ओर अग्रसर हो रही हैद्य आंतरिक उपभोग की खाद्यान्न फसलों के स्थान पर निर्यात के लिए नगदी फसलों का उत्पादन बढ़ा है जिससे की देश में खाद्यान्नों की कीमतों पर दबाव बढ़ता जा रहा है।

8—उद्योगों में सुधार—

औद्योगिक संवृधि की दर में भी कुछ स्थिरता आई है यह औद्योगिक उत्पादों की गिरते हुए मांग के कारण हुई अतः मांग में गिरावट के कई प्रमुख कारण थे जैसे सस्ते आयात, आधारिक संरचना में अपर्याप्त निवेश आदि वैश्वीकरण की व्यवस्था में विकासशील देश अपनी अर्थव्यवस्था को विकसित देशों की वस्तुओं और पूंजी प्रभावों को प्राप्त करने के लिए खोल देने को बाध्य हुए तथा उन्होंने अपने उद्योगों का आयातित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा का खतरा मोल ले लिया सस्ते आयात ने घरेलू वस्तुओं की मांग को प्रतिस्थापित कर दिया है निवेश में कटौती के कारण बिजली सहित आधारित संरचनाओं की पूर्ति अपर्याप्त ही बनी हुई है इसी कारण यह समझा जा रहा है कि विदेशियों के माल में बिना रोक के आवागमन को सहज बनाकर गरीब देश के स्थानीय उद्योगों एवं रोजगार को नष्ट करने की परिस्थितियों का निर्माण कर दिया गया हैद्य भारत जैसे अल्पविकसित देश को अभी भी विकसित देशों में विद्यमान उच्च प्रशुल्क अवरोधों के कारण विकसित देशो के बाजारों में प्रवेश के उपयुक्त अवसर भी नहीं मिल पा रहे हैं यद्पि भारत में वस्त्र परिधान आदि के व्यापार से सभी कोटा आदि के प्रतिबंध हटा दिए गए हैं पर अभी भी संयुक्त राज्य अमेरिका ने भारत और चीन से इनके आयातो से अपने कोटा प्रतिबंध नहीं हटाए हैं।

9—विनिवेश में सुधार—

भारत में आर्थिक सुधारो के समय विनिवेश द्वारा 2500 करोड रुपए एकत्रित करने का लक्ष्य रखा गया था जिस लक्ष्य से भारत सरकार ने 3040 करोड़ अधिक एकत्रित करने में सफल रही वर्ष 2017—18 में लक्ष्य तो लगभग 1 लाख करोड़ के विनिवेश का था और

उपलब्धि लगभग 100,057 करोड़ की रही इस प्रक्रिया के आलोचको का कहना है कि सार्वजनिक उपक्रमों की परिसंपत्तियों को औने–पौने दामों में निजी व्यापारियों को बेचा जा रहा है जिससे कि इस प्रक्रिया से सरकार को बहुत ही घाटा उठाना पड़ रहा है और सार्वजनिक संपत्ति की एकमुश्त बिक्री करनी पड़ रही है साथ ही विनिवेश से प्राप्त राशि का उपक्रमो के विकास के लिए प्रयोग नहीं किया गया, ना ही इसे सामाजिक आधारित संरचनाओं के निर्माण पर ही खर्च किया गया यह धनराशि सरकार के बजट के राजस्व घाटे को कम करने में खर्च की गई थी।

1.5.8 सारांश–

भारत में आर्थिक सुधारो को 1990 के वित्तीय संकट उसकी आंतरिक संरचना में कई विषमताओं का परिणाम था उसे संकट के निदान के लिए बाहरी शक्तियों के परामर्श पर सरकार द्वारा प्रारंभ नीतियों ने उन विषमताओं को और भी गहन बना दिया है जो कि केवल उच्च आय वर्ग की आमदनी और उपभोग स्तर का उन्नयन किया है तथा सारी संवृधि कुछ गिने–चुने क्षेत्र तक सीमित रही है जैसे कि दूरसंचार, सूचना प्रौद्योगिकी, वित्त, मनोरंजन, पर्यटन सेवाएं, भवन निर्माण, व्यापार आदि कृषि विनिर्माण जैसे आधारभूत क्षेत्र जो कि भारत के करोड़ों लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं इन सुधारो से लाभान्वित नहीं हो पाए हैं

1.5.9 बोध प्रश्न–

1–भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं ?

2–मिश्रित अर्थव्यवस्था का उद्योगों पर प्रभाव का वर्णन कीजिए।

3–भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था से विमोहों के कारणों की समीक्षा कीजिए।

4–भारत में आर्थिक सुधार की आवश्यकता के कारण की विवेचना कीजिए।

5–भारत में आर्थिक सुधारो के परिणाम की व्याख्या कीजिए।

1.5.10 कुछ उपयोगी पुस्तके–

भारतीय अर्थव्यवस्था, ए. एन. अग्रवाल

भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण नाथूराम

आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं भारत में आर्थिक नियोजन, प्रो.जी.एल.गुप्ता

भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉक्टर ममोरिया एवं जैन

भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.के. राय

भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास और योजनाओं की चुनौतियां, ए. एन. अग्रवाल

रुद्र दत्त एवं सुंदरम रूभारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी रूभारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

खण्ड – 1

ईकाई – 6,

पूंजीवादी पुनर्जागरण, नव बाजारवाद एवं तद्जनित समस्याए

ईकाई की रूपरेखा

उद्देश्य

प्रस्तावना

पूँजीवाद – आशय एवं व्यवस्था

पूंजीवाद की विशेषताएं

पूंजीवादी प्रणाली के दोष

5 पूंजीवाद : अभिप्राय एवं परिभाषाएं

परम्परा अर्थशास्त्री अथवा प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री को पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली का निर्माता कहा जाता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री एडम स्मिथ से. जे. एस. मिल तक सभी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली के विकास में योगदान दिया है। पूंजीवाद के विषय में विद्वानों में भिन्न–भिन्न मत हैं।

पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली की परिभाषा विभिन्न विद्वानों न इसकी विशेषताओं के आधार पर की है। पूंजीवाद की कुछ मुख्य परिभाषाएं निम्न हैं :

लॉक्स एवं हूट के अनुसार, ''पूंजीवाद आर्थिक संगठन की एक ऐसी प्रणाली है जिसमें व्यक्तिगत स्वामित्व पाया जाता है और मानवकृत एवं प्राकृतिक साधनों को व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रयोग किया जाता है।''

पीगू ने पूंजीवाद को परिभाषित करते हुए लिखा है :

''पूंजीवादी अर्थ प्रणाली वह है जिसमें उत्पत्ति के भौतिक साधनों का अधिकार अथवा उपयोग का अधिकार कुछ ही व्यक्तियों के पास होता है और इन साधनों का संचालन इन व्यक्तियों द्वारा इस प्रकार किया जाता है कि इनकी सहायता से जो वस्तुएं अथवा सेवाएं उत्पन्न हों उनके द्वारा लाभ कमाया जाय। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था वह है, जिसमें उत्पत्ति के साधनों का प्रमुख भाग पूंजीवादी उद्योगों में कार्यरत होता है।''

जी.डी.एच. कोल के अनुसार, ''पूंजीवाद लाभ के लिए उत्पादन की वह प्रणाली है जिसके अन्तर्गत उत्पादन के उपकरणों तथा सामग्री पर व्यक्तिगत स्वामित्व होता है तथा उत्पादन मुख्य रूप से मजदूरी के श्रमिकों द्वारा किया जाता है तथा इस उत्पादन पर पूंजीपति स्वामियों का अधिकार होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि पूंजीवाद एक ऐसी प्रणाली को व्यक्त करता है जिसमें अधिकांश श्रमिक उत्पत्ति के साधनों पर अधिकार से वंचित कर दिये जाते हैं और केवल मजदूर की श्रेणी में जीवन–यापन करते हैं।

पूंजीवाद की विशेषताएं

1. **निजी सम्पत्ति का अधिकार** – व्यक्तिगत सम्पत्ति एवं उत्तराधिकार का नियम पूंजीवाद का आधारभूत नियम है। पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में प्रत्येक व्यक्ति निजी सम्पत्ति को प्राप्त करने, अपनी इच्छानुसार व्यय करने और हस्तान्तरण करने के लिए स्वतन्त्र होता है।

2. **मुक्त व्यापार एवं हस्तक्षेप न करने की नीति** – पूंजीवाद का आधार मुक्त व्यापार और सरकारी हस्तक्षेप की अनुपस्थिति पर निर्भर करता है। कीमत संयन्त्र के स्वतन्त्र रूप से कार्य करते रहने पर किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती।

पूजींवाद में हस्तक्षेप न करने की नीति के साथ–साथ मुक्त व्यापार का विचार भी कीमत संयन्त्र के सफल संचालन के लिए आवश्यक है।

3. **व्यक्तिगत हित सर्वोपरि** – प्रत्येक आर्थिक संस्था का एक मनोवैज्ञानिक आधार होता है। पूंजीवाद में व्यक्ति को उसकी क्रियाओं का सबसे अच्छा निर्णायक कहा जाता है और उसे उसकी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता दी जाती है। व्यक्तिगत हित एवं लाभ ही व्यक्ति को पूंजीवादी प्रणाली में आर्थिक क्रियाएं सम्पन्न कराने की प्रेरणा देता है।

4. केन्द्रीय नियोजन का अभाव – एक स्वतन्त्र पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में केन्द्रय नियोजन का अभाव होता है। पूंजीवादी प्रणाली में आर्थिक गतिविधियों पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होता और वे अपने स्वाभाविक क्रम में संचालित होती रहती है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पत्ति के संसाधनों – मानवीय एवं भौतिक संसाधनों – को अनियोजित रखने की प्रवृत्ति अन्तर्निहित होती है।

1. **उपभोक्ता की प्रभुसत्ता** – पूंजीवादी व्यक्तिगत आर्थिक प्रणाली में उपभोक्ता की प्रभुसत्ता को स्वीकार किया गया है। उपभोक्ता की प्रभुसत्ता से अभिप्राय है कि पूंजीवाद में उपभोक्ता एक बादशाह होता है।

6. व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता – स्वतन्त्र पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार एवं योग्यतानुसार किसी भी व्यवसाय का चुनाव करने में पूर्ण स्वतन्त्र होता है और उस पर सरकार का किसी व्यवसाय विशेष को चुनने की शक्ति को मौलिक स्वतन्त्रता होती है।

7 बचत एवं विनियोग सम्बन्धी फैसलों की स्वतन्त्रता – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में उपभोक्ताओं को चुनाव की स्वतन्त्रता स्वतः ही इस बात की सूचना देती है कि उपभोक्ता अपनी इच्छानुसार अपनी आय का कोई भी भाग बचत करने के लिए स्वतन्त्र है।

8. साहसी की महत्वपूर्ण भूमिका – साहसी पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली के लिए हृदय का कार्य करता है। साहसी ही उत्पत्ति के साधनों को एकत्रित करके अनिश्चितता की स्थिति में उत्पादक कार्य करता है। उत्पाद प्रणाली के आरम्भिक चरण से अन्तिम चरण तक साहसी महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह करता है।

1. पूंजीवाद में कोई केन्द्रीय नियोजन नहीं होता, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय स्तर पर कोई नियोजित नहीं होती। पूंजीवाद में भी नियोजन होता है जिसमें उत्पादक या वितरक सूक्ष्म स्तर पर नियोजप करते हुए अपनी इकाइयों या वितरण व्यवस्था से सम्बन्धित नीति नियोजित करते हुए अपनी क्रियाओं की सम्पादित करते हैं।

9. आर्थिक प्रतिस्पर्धा की उपस्थिति – स्वतन्त्र बाजार अर्थव्यवस्था वाली पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में प्रतिस्पर्धा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वस्तु और सेवा के बाजार में असंख्य क्रेता और विक्रेता उपस्थित होते हैं, जिनके मध्य स्पर्धा अपरिहार्य है, क्योंकि प्रत्येक क्रेता और विक्रेता अपने निजी लाभ को ही ध्यान में रखकर बाजार में उपस्थित होता है। उपभोक्ता अपनी सन्तुष्टि को अधिकतम करने के उद्देश्य से कम कीमत पर अधिक वस्तु खरीदना चाहता है, जबकि इसके विपरीत विक्रेता अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से वस्तु को ऊंची कीमत पर बेचना चाहता है।

10. समन्वय का अभाव – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में कीमत संयन्त्र के स्वचालित होने के कारण और उपभोक्ता की प्रभुसत्ता के कारण उत्पत्ति क्रिया में आदर्श सामंजस्य बनाये रखना सम्भव नहीं हो पाता।

11. व्यापार चक्रों की उपस्थिति – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में उत्पादक वर्ग एवं उपभोक्ता वर्ग की आर्थिक स्वतन्त्रताओं के कारण व्यापार चक्र की उपस्थिति एक अनिवार्य दशा बन जाती है। पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में अति–उत्पादन और कम उत्पादन की स्थितियों से इन्कार नहीं किया जा सकता।

12. आय की असमानताएं एवं वर्ग–संघर्ष – पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में सम्पूर्ण समाज दा वर्गों में बंट जाता है – पूंजीपति एवं श्रमिक। पूंजीपतियों को उत्तराधिकार में मिली सम्पत्ति को अपनी इच्छानुसार उपयोग या विनियोग करने का अधिकार होता । परिणामस्वरूप देश की सम्पत्ति का एक बड़ा भाग कुछ ही व्यक्तियों के हाथों में सीमित हो जाता है और समाज में आय की असमानताओं में वृद्धि होती है और पूरा समाज दो भागां सम्पन्न और विपन्न में बंट जाता है।

14. सामाजिक कल्याण की अनुपस्थिति – पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का संचालन व्यक्तिगत लाभ के उद्देश्य से होता है और सामाजिक कल्याण का उद्देश्य गौण रहता है।

1.6.7 पूंजीवादी प्रणली के गुण –

पूंजीवादी प्रणाली के प्रमुख गुण निम्न प्रकार हैं :

1. स्वयं संचालित – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली स्वयं संचालित होती है औश्र उसमें किसी प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सन्तुष्टि के अनुसार आर्थिक क्रियाओं को सम्पन्न करने का पूर्ण अधिकार होता है। व्यक्ति इस प्रणाली में स्वयं हित के उद्देश्य से क्रियाशील होता है।

2. संसाधनों का अनूकूलतम प्रयोग और उत्पादकता में वृद्धि – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में व्यक्तिगत लाभ को अधिकतम करने की चेष्टा, आर्थिक स्वतंत्रता एवं स्पर्धा जैसे घटक समाज के संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग सम्भव बनाते हैं। प्रतिस्पर्धा के कारण उन्नति के संसाधन कम लाभ वाले उत्पादन क्षेत्र से अधिक लाभ वाले उत्पादन क्षेत्र में स्वयं ही स्थानान्तरित होने लगे हैं जिसके कारण संसाधनों का अनकूलतम प्रयोग सम्भव हो पाता है। संसाधनों के अधिकतम उत्पादकता वाले क्षेत्र में स्थानान्तरित होने के कारण उत्पादकता में वृद्धि होती है।

3. उत्पादन में प्रोत्साहन – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली प्रोत्साहनमूलक है, जिसके अन्तर्गत उत्पत्ति के क्रियाशील साधनों को यथेष्ट उत्साह पदान किया ाता है। उद्यमी के लिए उत्पादन का लाभ एक महत्वपूर्ण उत्साहमूलक तत्व है। इसके अतिरिक्त, व्यक्तिगत लाभ का उद्देश्य, जो पूंजीवाद की क आधारभूत विशेषता है, एक सबल प्रोत्साहनमूलक तत्व है।

4. रहन–सहन के स्तर में सुधार – यदि पूंजीवादी प्रणाली पर आधारित अमेरिकी अर्थव्यवस्था के उदाहरण को लिया जाए तो यह स्वतः ही अनुभव किया जा सकता है कि अमेरिका के व्यक्तियों का रहन–सहन का स्तर पूंजीवाद के उद्‌गम के साथ ही विकसित होता रहा है। अमेरिका और अन्य पश्चिमी यूरोपीय पूंजीवादी देशों की आर्थिक प्रणाली व्यक्तिगत लाभ के उद्देश्य पर आधारित होने के कारण जनसंख्या वृद्धि के होते हुए भी व्यक्तियों की प्रति व्यक्ति आय और उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि को सम्भव बनाती है।

5. तकनीकी विकास – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में तकनीकी विकास की सम्भावनाएं सदैव उपस्थित रहती हैं। इस प्रणाली में उत्पादक अधिकतम लाभ के उद्देश्य से सदैव नई–नई उत्पादन तकनीकों को विकसित किरने के लिए प्रयास हता है और आविष्कार एवं अन्वेषण उसकी आर्थिक क्रियाओं का अभिन्न अंग बन जाते हैं।

6. लचीलापन – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में लचीलेपन की विशेषता ही संसाधनों का पारस्परिक प्रतिस्थापन करके संसाधनों के अनुकूलतम प्रयोग को सम्भव बनाती है। इस प्रणाली के लचीलेपन के कारण ही उत्पत्ति के साधनों में गतिशीलता उत्पन्न होती है और साधन कम लाभप्रद क्षेत्रों से स्थानान्तरित होकर अधिक लाभप्रद क्षेत्रों में क्रियाशील होते हैं।

7. पूंजी निर्माण को प्रोत्साहन – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार एवं उत्तराधिकार के नियम के कारण बचत करने की प्रेरणा को प्रोत्साहन मिलता है जिससे विनियोग एवं पूंजी निर्माण की दर मे ंवृद्धि होती है तथा उत्पादन भी प्रोत्साहित होता है।

8. योग्यतानुसार पुरस्कार – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में व्यक्तिगत एवं कार्यकुशलता को समुचित रूप से पुरस्कृत किया जाता है। योग्य एवं अधिक दक्ष श्रमिकों को ऊँचा पारिश्रमिक देकर पुरस्कृत किया जाता है। इस प्रकार पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में प्रेरणा की उपस्थिति श्रमिकों की अपनी दक्षता, योग्यता एवं कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करती है।

9. आर्थिक विकास की दर में वृद्धि – पूंजीवादी पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में बचत, विनियोग एवं पूंजी निर्माण की दर से अधिक होने के कारण विकास की दर तीव्र गति से बढ़ती है। पूंजीपति वर्ग अपने लाभ को अधिक करने की चेष्टा में पूर्ण दक्षता एवं कुशलता में वृद्धि प्राप्त करने की प्रेरणा के कारण अपनी कार्यकुशलता में वृद्धि करता है।

10. लोकतान्त्रिक स्वरूप को दृढ़ आधार – पूंजीवादी पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में उपभोक्ता की प्रभुसत्ता के कारण अर्थव्यवस्था में एक लोकतान्त्रिक स्वरूप को दृढ़ आधार मिलता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उपभोक्ताओं के बहुमत की इच्छा का सम्मान एवं पालन किया जाता है तथा अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्रियाएं बहुमत द्वारा ही

नियन्त्रित एवं संचालित होती है जिसके फलस्वरूप लोकतान्त्रिक शक्तियां मजबूत होती है।

पूंजीवादी प्रणाली के दोष

पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली के दोषों को निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में क्रमबद्ध किया जा सकता है :

1. **सम्पत्ति एवं आय की असमानताएं** – पूंजीवादी पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में व्यक्तिगत में आय और सम्पत्ति का असमान वितरण होता है जो समाज में सामाजिक एवं राजनीतिक असमानताएं उत्पन्न करता है। आय की असमानताओं के कारण देश की सम्पत्ति और पूंजी का केन्द्रीकरण कुछ ही व्यक्तियों के हाथों में हो जाता है औश्र समाज में गरीब और अमीर की खाई बढ़ जाती है। आय की यह असमानता समाज में एक असन्तुलन उत्पन्न करती है और समाज दो वर्गों में बंट जाता है – सम्पन्न एवं विपन्न जिसके फलस्वरूप समाज दो वर्ग संघर्ष उत्पन्न होता है।

2. **सामाजिक अशान्ति एवं वर्ग–संघर्ष** – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में आर्थिक असमानताएं सामाजिक अशान्ति उत्पन्न करती हैं। आर्थिक आधार पर समाज का दो वर्गों में विभाजन करता है। पूंजीपतियों की लाभ में वृद्धि करने की लिप्सा उत्पादन प्रक्रिया को पूंजी गहन बना देती है जिसके कारण श्रमिकों का स्थान पूंजीगत उपकरण ले लेते हैं

और व्यक्तियों की बढ़ती बेरोजगारी के कारण उनकी आर्थिक स्थिति और दयनीय हो जाती है।

3. **एकाधिकार प्रवृत्ति का उदय** – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में पूर्ण प्रतियोगिता की उपस्थिति अपरिहार्य होने के कारण उकाधिकारी प्रवृत्तियों का बढ़ना पूंजीवादी देशों की अर्थव्यवस्था में दृष्टिगोचर होता है। एकाधिकारी प्रवृत्तियों का बढ़ना उत्पादकों के मध्य गलाकाट प्रतियोगिता का परिणाम है, जिसमें प्रत्येक उत्पादक अपने प्रतिद्वन्द्वी को उत्पादन प्रक्रिया से बाहर निकालने एवं बाजार पर अधिक आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास करता है।

4. **पूर्ण रोजगार प्राप्त करने में असफल** – स्पर्धात्मक आर्थिक प्रणाली में यह मान लिया गया कि यह स्वयं संचालित होती है और पूर्ण रोजगार के बिन्दु को इस प्रणाली में सहज रूप से प्राप्त कर लिया जाता है, किन्तु 1930 की महामन्दी के बाद प्रो0 जे.एम. कीन्स ने अपने रोजगार सिद्धान्त में यह स्पष्ट किया है कि सन्तुलन पूर्ण रोजगार स्तर से पहले ही अर्थव्यवस्था सन्तुलन की दशा प्राप्त कर लेती है, जिसे प्रो0 कीन्स ने पूर्ण रोजगार की पूर्व दशा कहा है।

5. **अनियोजित उत्पादन** – केन्द्रीकृत नियोजन कर अनुपस्थिति के कारण पूंजीवादी प्रणाली में उत्पादन अनियोजित रहता है। स्पर्धा के कारण प्रत्रत्येक उत्पादक अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने का प्रयास करता है, जिसके कारण अर्थव्यवस्था में

अति–उत्पादन की दशा उपस्थिति होती है और व्यापार चक्र उपस्थित होते हैं जो अर्थव्यवस्था की असन्तुलित दशाओं की सूचना देते हैं।

6. उत्पत्ति के साधनों का अपव्यय – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में प्रतयोगिता के कारण उत्पत्ति के साधनों का एक बड़ा भाग विज्ञापन एवं प्रचार मे व्यय कर दिया जाता है। साथ ही प्रतियोगी फर्में प्रतियोगिता के कारण वस्तुओं का अनावश्यक उत्पादन कर लेती है। जिससे कई बार अति–उत्पादन की समस्या उत्पन्न हो जाती ह और उत्पत्ति के साधनों का अनावश्यक अपव्यय होता है।

7. व्यापार चक्रों की उपस्थिति – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में मांग एवं पूर्ति बलों के स्वतन्त्र कार्य करने के कारण समय–समय पर मांग एवं पूर्ति बलों में असन्तुलन उपस्थित होते रहते हैं, जिसके कारण व्यापार चक्र के उच्चावचन अर्थव्यवस्था में आर्थिक अस्थिरता बनाए रखते हैं। व्यापार चक्रों के उच्चवचनों – मन्दीकाल तथ्ज्ञा स्फीतिकाल दोनों का ही समाज के विभिन्न वर्गों पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

8. सामाजिक कल्याण की अनुपस्थिति – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में व्यक्तिगत हित एवं कल्याण की भावना सर्वोपरि होती है तथा सामाजिक कल्याण की भावना पूर्ण रूप से अनुपस्थिति रहती है। लाभ उद्देश्य पर ही उत्पादक वर्ग काय करता है तथा जन कल्याण एवं आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन की अपेक्षा करता ळै।

9. सामाजिक परजीविता – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में उत्तराधिकार के नियम के कारण अनजित आय पीढ़ी–दर–पीढ़ी स्थानानतरित होती रहती है, जिसके कारण समाज में पूंजी एवं धन का केन्द्रीकरण होता चला जाता है। सम्पन्न वर्ग का उत्तराधिकारी बिना किसी त्याग, परिश्रम एवं प्रयास के एक बड़ी सम्पत्ति का मालिक बन जाता है जिससे समाज में आय की असमानताएं तो बढ़ती ही हैं, साथ ही सम्पन्न वर्ग परजीवी होता चला जाता है।

10. बेरोजगारी का भय – पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में पूर्ण रोजगार स्तर पर अर्थव्यवस्था को लम्बे समय तक बनाए रखना सम्भव नहीं होता। लाभ की इच्छा मे जब उद्यमी उत्पादन करते चले जाते हैं तब अति–उत्पादन की समस्या उत्पन्न होती है जिसके कारण उद्यमी उत्पादन स्तर का संकुचन करते हैं। परिणामस्वरूप बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्या उत्पन्न होती है।

नव बाजारवाद

नव बाजारवाद एक विचारधारा है जो स्वयं परिभाषित होती है। वैश्वीकरण के परिवर्तित स्वरुप में नव बाजारवाद के ढांचे के भीतर, व्यक्ति उपभोक्तावादी भूमिका अपनाते हैं और उन वस्तुओं के अधिग्रहण में संलग्न होते हैं जो अक्सर जीवित रहने के लिए गैर–आवश्यक होते हैं, जैसे टूथपेस्ट, टॉयलेट पेपर, नैपकिन, ठंडे पेय पदार्थ और बोतलबंद पानी इत्यादि। नव बाजारवाद की संस्कृति अधिकतर उच्च–मध्यम और मध्यम

वर्ग को अपने दायरे में लेती है। पूँजीवाद के संरचनात्मक स्वरुप में हो रहे परिवर्तन से नव बाजारवाद की संरचना भी परिवर्तित हो रही है और वैश्विक स्तर पर समाज में इसके द्वारा बनाये गये अवसर भी समाप्त हो रहे है। आज अस्तित्व के लिए संघर्ष की वजह नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है। बाजार हमारे साहित्यिक और सांस्कृतिक मूल्यों की दशा व दिशा तय कर रहा है। इसी बाजारवाद के कारण मानवीय संवेदनाओं में तेजी से गिरावट आ रही है। नवबाजारवाद से उपजे कुव्यवस्था का विकल्प साम्यवाद हो सकता है। लेकिन वर्तमान में नवबाजारवाद के दौर में भटकाव के कारण साम्यवाद कमजोर दिखता है इस पर पूँजीवाद का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। नवबाजारवाद व्यवस्था, एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसकी विशेषता सरकारी हस्तक्षेप का अभाव है। बाजारवाद पूरी तरह से प्रतिस्पर्धा के सिद्धांतों और आपूर्ति और मांग के नियम पर चलता है। पूंजीवाद की कार्यप्रणाली इस सिद्धांत द्वारा निर्देशित होती है कि समाज के मानदंड समाज की जरूरतों के बजाय पूंजी की मांगों से निर्धारित होते हैं। यह पूंजी के आत्म–विस्तार के खेल को बिना किसी प्रतिबंध के सामने आने देता है। सामाजिक असमानता को नकारात्मक नहीं बल्कि प्रगति के लिए एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक के रूप में देखा जाता है। असमानता का तात्पर्य कम संख्या में व्यक्तियों के पास धन के अनुपातहीन संचय से है इसके साथ ही यह गरीबी और आवश्यकता के अधिक व्यापक आधार को जन्म देता है। सीमित संसाधनों का स्थायित्व पूंजी की आवाजाही के लिए प्रेरक शक्ति और उत्प्रेरक दोनों के रूप में कार्य करता है।

हम वर्तमान संदर्भ में मार्क्सवाद और समाजवाद की प्रभावकारिता का प्रदर्शन एवं मूल्यांकन करना चाहते हैं। मार्क्सवाद वैश्विक बाजारवाद के मानदंडों की स्वाभाविकता को घटनाओं के वास्तविक संरचनात्मक के अनुरुप आर्थिक प्रणाली की अंतर्निहित स्वाभाविकता में एक कृत्रिम व्यवधान के रूप में देखता है। असमानता को समाज के सांप्रदायिक चरित्र से विचलन के रूप में देखा जा सकता है। सभ्यता और संस्कृति के विकास में सामाजिक गतिशीलता के परिणामस्वरूप उभरने वाली असमानताओं को मिटाने का सतत प्रयास शामिल है। हालाँकि पूंजीवाद सामाजिक उन्नति के एक निश्चित चरण का प्रतिनिधित्व करता है जब इस असमानता को उन्नति के रूप में देखा जाता है और जानबूझकर स्वीकार किया जाता है। पूंजी मानव जगत से अलग एक अलग क्षेत्र स्थापित करती है और समाज के मानदंडों पर अपने नियम थोपती है। यह समाज के ताने–बाने पर पूंजी–प्रेरित हमला है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- ऑटी आर.एम. (1993)। खनिज अर्थव्यवस्थाओं में सतत विकास, संसाधन अभिशाप थीसिस। लंदन, यूके, रूटलेज।
- साइ, विल्सन एन., पूंजीवाद और दुनिया भर में आर्थिक विकास (सितंबर 18] 2016)
- पिकेटी, टी. (2014), इक्कीसवीं सदी में पूंजीवाद, आर्थर गोल्डहैमर द्वारा अनुवादित, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स का बेल्कनैप प्रेस।
- अर्नासन जेपी (2015) पूंजीवाद का सिद्धांत, शास्त्रीय नींव और समकालीन नवाचार। यूरोपियन जर्नल ऑफ सोशल थ्योरी 18(4), 351–367।
- https://indiacsr.in/america-marketism-capitalism-and-government-relationships/
- http://hindi.thecriticalmirror.com/news/world/ पूंजीवादी–बाजारवाद–बनाम
- http://www.gdcollegebegusarai.com/course_materials/hindi/rjp102.pdf

अर्थव्यवस्था के विकास की गति का आंकलन

प्रस्तावना

"अर्थव्यवस्था के विकास" उस प्रक्रिया को संदर्भित करता है जो अंततः उस राष्ट्र के भीतर उत्पादन के सभी उपलब्ध साधनों के प्रभावी उपयोग की ओर ले जाती है। साथ ही, जीवन की गुणवत्ता और मानव विकास सूचकांक के संदर्भ में प्रगति का एक परिदृश्य है।[1] यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में निरंतर व दीर्घकालिक वृद्धि होती है। किसी क्षेत्र के संसाधनों के प्रशासन में जाने वाली प्रत्येक चीज को उसकी अर्थव्यवस्था कहा जाता है। "वस्तुओं एवं सेवाओं" को एक साथ "संसाधन" कहा जाता है। भोजन व ऑटोमोबाइल इत्यादि उत्पादयुक्त वस्तुएँ जो व्यक्तियों के स्वामित्व में हो सकती हैं। एक होटल में भोजन तैयार करना या एक गैरेज में ऑटोमोबाइल का रखरखाव दोनों सेवाओं के उदाहरण हैं जो मौद्रिक मुआवजे के बदले में प्रदान की जा सकती हैं। एक अर्थव्यवस्था उन सभी प्रक्रियाओं, गतिविधियों और संगठनों से बनी होती है जो यह तय करती हैं कि वस्तुओं और सेवाओं को कौन प्राप्त करता है, कितने उत्पाद व सेवाएँ हैं, और अन्य चीज़ों या स्वामित्व के लिए उनका व्यापार कैसे किया जा सकता है। एक अर्थव्यवस्था कई अलग-अलग तत्वों का समावेश होता है, जिसमें दुकानें, कारखाने, व्यवसाय, सरकारें, फर्म, व्यक्ति, उपभोक्ता, धन, व्यापार एवं कर शामिल हैं, लेकिन इन तक सीमित नहीं हैं। ज्यादातर मामलों में, हम किसी अर्थव्यवस्था को उसकी भौगोलिक स्थिति से संदर्भित करते हैं। दूसरी ओर, लोगों के लिए अपने देश की अर्थव्यवस्था को "अर्थव्यवस्था" के रूप में संदर्भित करना असामान्य नहीं है। अर्थशास्त्र

---

[1] Lewis, W. A. (1955). „„„The Theory of Economic Growth"‟‟, Homewood, III: Irwin.

अर्थव्यवस्थाओं और आर्थिक प्रणालियों का अध्ययन है।_**प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, संस्कृति, सरकार की नीति, मौसम, महामारी और प्रौद्योगिकी में बदलाव ऐसे कई तत्व हैं जो किसी अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं। अर्थव्यवस्थाएं अक्सर अत्यधिक जटिल होती हैं और विभिन्न प्रकार के कारकों से प्रभावित होती हैं।**[2]

कई समकालीन देशों में एक वैश्विक अर्थव्यवस्था पाई जा सकती है। इस तरह की अर्थव्यवस्था में, एक व्यक्ति या निगम उन उत्पादों एवं सेवाओं का अधिकारी होता है जो वे बनाते हैं, और उनके पास यह निर्धारित करने की क्षमता होती है कि वे उन वस्तुओं व सेवाओं के लिए कितना प्रभावी करना चाहते हैं। ग्राहक या खरीदार, जिनके पास मौद्रिक संसाधनों तक पहुंच है, उनके पास उस राशि को निर्धारित करने की क्षमता है जो वे विभिन्न उत्पादों व सेवाओं पर भुगतान करने को तैयार हैं। इस तरह की अर्थव्यवस्था में कीमतें आपूर्ति और मांग के बीच की बातचीत से नियंत्रित होती हैं। वस्तुओं व सेवाओं की कीमतें अधिक होती हैं यदि वे दुर्लभ हैं या बड़ी संख्या में लोगों की उनके लिए मजबूत मांग है, जबकि वस्तुओं व सेवाओं की कीमतें जो प्रचुर मात्रा में हैं या जिनकी कम मांग की जाती है, वे कम होती हैं। इसके विपरीत, एक निर्धारित अर्थव्यवस्था वह है जिसमें सरकार वस्तुओं व सेवाओं को वितरित करने के तरीके को निर्धारित करती है, और अधिकांश जनता उद्योगों की अधिनियमित होती है।

अर्थव्यवस्था

शब्द "अर्थव्यवस्था" एक ऐसी प्रणाली को संदर्भित करता है जो मनुष्य की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों के

[2] भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, एन.सी.ई.आर.टी. 2005

संचालन की सुविधा प्रदान करती है। वह संगठन जो लोगों द्वारा उनके निपटान में संसाधनों का उपयोग करके उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से विकसित किया जाता है, एक अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जाता है। **शब्द "अर्थव्यवस्था" समग्र ढांचे को संदर्भित करता है जिसके भीतर किसी राष्ट्र की सभी आर्थिक गतिविधियों को चित्रित किया जाता है। उपभोग, उत्पादन, वितरण और विनिमय के साथ-साथ मौद्रिक आय का सृजन एक अर्थव्यवस्था के सभी घटक हैं।**[3] एक अर्थव्यवस्था एक समुदाय की आर्थिक गतिविधियों की संरचना का वर्णन करती है।

प्रोफेसर ब्राउन के अनुसार, "अर्थव्यवस्था" का अर्थ "उस प्रणाली से है जिसके तहत मनुष्य अपनी आजीविका अर्जित करके अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता है।"

प्रोफ़ेसर लैक बताते हैं, "अर्थव्यवस्था एक ऐसा संगठन है," "जिसके द्वारा उत्पादन के उपलब्ध साधनों का उपयोग करके मानवीय ज़रूरतें पूरी की जाती हैं।"

"देश में किस प्रकार के सामान का उत्पादन किया जाएगा और उन सामानों को अन्य संसाधनों के बीच कैसे वितरित किया जाएगा, यह दोनों ही अर्थव्यवस्था द्वारा निर्धारित किए जाते हैं।" परिवहन, वितरण, बैंकिंग और बीमा जैसी सुविधाओं की आपूर्ति कैसे करें; उत्पन्न वस्तुओं का कितना भाग भविष्य के लिए सहेजा जाना चाहिए; क्या सुविधाएं दी जानी चाहिए।"[4]

---

[3] fredrick Harbison and charles A. Ayery (1961), “Economic Development” P.68

[4] https://www.investopedia.com/terms/e/economicgrowth.asp

अर्थव्यवस्था के प्रकार

अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से दो भागो में बटी होती हैं-

(1) स्वामित्व के आधार पर अर्थव्यवस्था

(2) विकास के आधार पर अर्थव्यवस्था

1. स्वामित्व के आधार पर अर्थव्यवस्था

स्वामित्व के आधार पर अर्थव्यवस्था को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है-

(a) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था- (अमेरिका, इंग्लैण्ड)

(b) समाजवादी अर्थव्यवस्था- (चीन, उत्तरी कोरिया)

(c) मिश्रित अर्थव्यवस्था- (भारत, जापान)

(a) पूँजीवादी अर्थव्यवस्था

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था दुनिया में सबसे शक्तिशाली और सबसे लंबे समय तक चलने वाली आर्थिक व्यवस्था है। शब्द "पूंजीवादी अर्थव्यवस्था" एक ऐसी आर्थिक प्रणाली को संदर्भित करता है जिसमें प्राकृतिक संसाधन और मानव निर्मित धन जो लोगों ने जमा किया है, दोनों निजी स्वामित्व में हैं। व्यक्तिगत लाभ के लिए उपलब्ध तरीकों का फायदा उठाया जाता है। मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था इसका दूसरा नाम है।

(b) समाजवादी अर्थव्यवस्था

"एक समाजवादी अर्थव्यवस्था एक आर्थिक प्रणाली है जिसमें केंद्र सरकार राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर पूर्ण नियंत्रण रखती है।" **समाजवादी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में निहित शोषण का अंत**

करना है। चीजों का उत्पादन किसी व्यक्ति की जरूरतों को पूरा करने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि समग्र रूप से समाज की जरूरतों को पूरा करने के लक्ष्य के साथ होता है।[5] "समाजवादी अर्थव्यवस्था एक ऐसी प्रणाली है जिसमें उत्पादन के साधन पूरे समाज के स्वामित्व में होते हैं और अर्थव्यवस्था में सभी आर्थिक निर्णय देश की एक केंद्रीय योजना द्वारा लिए जाते हैं।"

नोट: सबसे पहले रूस, यूगोस्लाविया मोलैण्ड, चीन, उत्तरी कोरिया, हंगरी, जर्मनी और वियतनाम ने इस अर्थव्यवस्था को अपनाया। लेकिन बाद में रूस, जर्मनी आदि ने समाजवादी अर्थव्यवस्था को छोड़कर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को अपना लिया।

(c) मिश्रित अर्थव्यवस्था

मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जो पूंजीवाद और समाजवाद दोनों के तत्वों को जोड़ती है। "मिश्रित अर्थव्यवस्था" शब्द एक ऐसी आर्थिक प्रणाली को संदर्भित करता है जिसमें सार्वजनिक और निजी दोनों संस्थान सह-अस्तित्व में हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जो पूंजीवाद और समाजवाद दोनों के तत्वों को जोड़ती है। निजी क्षेत्र में स्वतंत्रता है, लेकिन इसमें सरकार का भी प्रभाव है। मिश्रित अर्थव्यवस्था के मामले में अर्थव्यवस्था के सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों को सरकार द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इसलिए, सरकार की नीतियां निजी क्षेत्र के अंदर होने वाली आर्थिक गतिविधि को नियंत्रित करती हैं।

---

[5] https://www.hec.edu/en/knowledge/articles/culture-and-economy-understanding-dynamics-globalization

2. विकास के आधार पर अर्थव्यवस्था

विकास की अवस्था के आधार पर अर्थव्यवस्था दो प्रकार की होती है-

(a) विकसित अर्थव्यवस्था - (संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन, रूस, जर्मनी, इटली, हालैण्ड, पोलैण्ड आदि देश)

(b) अल्पविकसित या विकासशील अर्थव्यवस्था - (भारत, ब्राजील आदि देश)

(a) विकसित अर्थव्यवस्था

"एक विकसित अर्थव्यवस्था वह है जिसे आर्थिक रूप से समृद्ध अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जाता है।" जब किसी अर्थव्यवस्था का औद्योगीकरण हो जाता है, जब जीवन स्तर उच्च होता है, और जब प्रति व्यक्ति आय भी उतनी ही अधिक होती है, तब हम उस अर्थव्यवस्था को विकसित अर्थव्यवस्था कहते हैं। प्राकृतिक संसाधनों को आर्थिक विकास के संदर्भ में अपनी पूरी क्षमता हासिल करने के लिए, समकालीन तकनीकों का प्रभावी उपयोग करना आवश्यक है।

(b) अल्पविकसित या विकासशील अर्थव्यवस्था

एक अर्थव्यवस्था को अविकसित कहा जाता है, जब गरीबी के परिणामस्वरूप मौजूदा संसाधनों का उनकी पूरी क्षमता के लिए उपयोग नहीं किया जाता है।[6] प्रति व्यक्ति कम आय, जीवन की खराब गुणवत्ता, औद्योगिक विकास की धीमी गति, एक पारंपरिक कृषि प्रणाली और पारंपरिक उत्पादन प्रथाएं हैं। इस

---

6 https://www.qaifiyatworld.com/2021/12/Worlds-Complex-Economy-Types-definition-Characteristics-in-hindi.html

अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास की दर हिमनदी है, इस तथ्य के बावजूद कि यहां प्राकृतिक और मानव दोनों संसाधनों की प्रचुरता है। शब्द "विकासशील अर्थव्यवस्था" एक ऐसी अर्थव्यवस्था को संदर्भित करता है जो अधिक विकसित होने के मार्ग के साथ प्रगति कर रही है। उदाहरण के लिए, भारत, ब्राजील और उनके जैसे अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाएं अभी भी विकसित होने की प्रक्रिया में हैं। ये राष्ट्र आर्थिक नियोजन को लागू करते हैं और अपने स्वयं के राष्ट्रों में आर्थिक विकास की दर को तेज करने के प्रयास में उनके पास मौजूद संसाधनों का रणनीतिक उपयोग करते हैं।

अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

- एक अर्थव्यवस्था संस्थानों की एक प्रणाली है जो एक समुदाय के भीतर होने वाली सभी आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित और निर्देशित करने का कार्य करती है।
- एक अर्थव्यवस्था लोगों का एक संग्रह है जो अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निर्माण प्रक्रिया का प्रबंधन करने के लिए मिलकर काम करते हैं।
- अर्थव्यवस्था की स्थिति समय की आवश्यकताओं के अनुकूल होती है।
- अर्थव्यवस्था के संदर्भ में, सीमित संसाधनों का अधिक से अधिक प्रभावी तरीके से अधिकतम उत्पादन करके उत्पादन को अधिकतम करने का प्रयास किया जाता है।
- नई वस्तुओं और सेवाओं का निरंतर निर्माण एक उन्नत अर्थव्यवस्था की पहचान है।
- विनिर्माण प्रक्रिया अर्थव्यवस्था का एक सतत पहलू है। इस परिदृश्य में, बनाई गई वस्तुओं और सेवाओं का या तो उपभोग किया जाता है या नई चीजों के उत्पादन की प्रक्रिया में उपयोग किया जाता है।
- व्यापार का तंत्र यह सुनिश्चित करता है कि अंतिम उपभोक्ता अर्थव्यवस्था के भीतर उत्पादित उत्पादों को प्राप्त करे।

- अर्थव्यवस्था में सभी विभिन्न प्रकार के उत्पादकों को एक साथ काम करने और एक दूसरे के साथ अपने प्रयासों का समन्वय करने की आवश्यकता है।
- प्रत्येक अर्थव्यवस्था द्वारा सामना की जाने वाली विशिष्ट चुनौतियों का समाधान करने के लिए, कई प्रकार की सार्वजनिक नीतियाँ लागू की जाती हैं।
- जब अर्थव्यवस्था में लक्ष्य तक पहुँचने के लक्ष्य की बात आती है, तो 'विवेक' की भूमिका बहुत आवश्यक होती है।

अर्थव्यवस्था विकास को प्रभावित करने वाले कारक

अर्थव्यवस्था विस्तार की दर तत्वों और अवसरों की एक विस्तृत श्रृंखला से प्रभावित हो सकती है। **जब किसी उत्पाद की मांग में वृद्धि होती है, तो उत्पादित वस्तु की मात्रा में अक्सर आनुपातिक वृद्धि होती है। नतीजतन, कुल राजस्व में वृद्धि हुई है। प्रौद्योगिकी की उन्नति और उपन्यास उत्पादों की शुरूआत दोनों में आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा देने की क्षमता है। अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में मांग में वृद्धि के परिणामस्वरूप निर्यातित वस्तुओं की बिक्री में वृद्धि होती है।**[7] पूंजी का अधिक प्रयोग होने पर, इनमें से किसी एक परिदृश्य या सभी को मिलाकर अर्थव्यवस्था विकास में तेजी आ सकती है। इसके विपरीत को अर्थव्यवस्था संकुचन के रूप में जाना जाता है। जब ऐसा होता है, तो ग्राहक अपने द्वारा खर्च की जाने वाली राशि को कम कर देते हैं। नतीजतन, मांग में कमी आती है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में कमी आती है। यह कई तरह के प्रतिकूल प्रभावों की ओर जाता है, जिसमें उत्पादन में गिरावट, बहुत से लोगों के लिए रोजगार का नुकसान, मांग में और भी तेज गिरावट और एक नकारात्मक तिमाही जीडीपी आंकड़ा शामिल है।

[7] https://hindigyankosh.com/economy/

अर्थव्यवस्था विकास आकलन

किसी देश के अर्थव्यवस्था विकास के आकलन को एक निश्चित समय अवधि के दौरान उत्पादित सभी उत्पादों और सेवाओं के कुल मूल्य के विपरीत पिछली समय अवधि के दौरान उत्पादित समान वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य से निर्धारित किया जा सकता है। इसका चित्रण प्रतिशत के उपयोग के साथ किया जाता है। अर्थव्यवस्था विकास आकलन के रूप में जाना जाने वाला मीट्रिक किसी भी समय किसी भी समय यह समझने के लिए संदर्भित किया जा सकता है कि वर्तमान में अर्थव्यवस्था कितनी मजबूत है। अधिकांश उदाहरणों में, डेटा का उत्पादन किया जाता है और आम जनता को तिमाही और वार्षिक आधार पर उपलब्ध कराया जाता है।

किसी देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में भिन्नता का सूक्ष्म आकलन प्रदान करने के लिए अर्थव्यवस्था विकास आकलन का अधिकतम उच्चस्तर तक उपयोग किया जाता है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद, जिसे अक्सर जीएनपी के रूप में संदर्भित किया जाता है, जिसका उपयोग उन सभी देशों में किया जा सकता है जिनकी अर्थव्यवस्था अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं की कमाई पर बहुत अधिक निर्भर है।[8] राष्ट्र के बाहर किए गए निवेश से प्राप्त शुद्ध राजस्व को सकल राष्ट्रीय उत्पाद गणना में शामिल किया जाता है। विकसित अर्थव्यवस्था से गतिशील अर्थव्यवस्था में परिवर्तन को आर्थिक विकास कहा जाता है। भारत के सन्दर्भ में, वर्तमान सरकार का ध्यान इसी तरह अगले पाँच वर्षों के भीतर, वर्ष 2024 तक, भारतीय अर्थव्यवस्था को 5 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर की मुग्ध राशि तक पहुँचाने पर है। यह लक्ष्य 2014 में निर्धारित किया गया था। आर्थिक विकास की गति और कई अर्थशास्त्रियों के अनुसार विकास आमतौर पर भौतिक पूंजी, मानव संसाधन, तकनीकी विकास और प्राकृतिक संसाधनों जैसे कारकों से प्रभावित होता है। सरल शब्दों में कहा

[8] https://unacademy.com/content/railway-exam/study-material/general-awareness/what-is-gross-national-product/

जाए तो किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास में इनमें से प्रत्येक तत्व का योगदान नितांत आवश्यक है। मानव संसाधन प्रभावी ढंग से प्रदर्शन करने और उत्पादन बढ़ाने में सक्षम होने के लिए, जिससे अंततः आर्थिक दक्षता में वृद्धि होगी, अधिक प्रशिक्षण और शिक्षा की आवश्यकता है। प्रशिक्षित और कुशल लोगों की कमी होने पर यह अर्थव्यवस्था के विकास के लिए एक समस्या है। क्योंकि ये व्यक्ति अयोग्य हैं और आवश्यक कौशलता की कमी है, वे अर्थव्यवस्था पर बोझ बन जाते हैं, जो अंततः बेरोजगारी की ओर ले जाती है। उत्पाद की प्रति इकाई लागत को कम करने के साथ-साथ उत्पादन को अधिकतम करने के लिए अन्य चीजों के साथ-साथ बुनियादी सुविधाओं जैसे सड़कों, ट्रेनों और कारखानों में लगातार निवेश करना आवश्यक है। इन सुविधाओं में सुधार करने से श्रम अधिक उत्पादक बन जाएगा, जिसके परिणामस्वरूप विकास की गति में वृद्धि हो सकेगी। प्राकृतिक संसाधन भी विकास दर और अर्थव्यवस्था के विकास दोनों में वृद्धि में योगदान करते हैं। ये संसाधन उत्पादकता में वृद्धि में योगदान करते हैं, जो बदले में अर्थव्यवस्था के विस्तार में योगदान देता है।

आर्थिक प्रणालियों के प्रकार

अर्थव्यवस्थाओं को विभिन्न मानदंडों के आधार पर विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है।[9]

क्र.सं.	अर्थव्यवस्था के प्रकार	विवरण
1	पारंपरागत अर्थव्यवस्था	एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें आर्थिक निर्णय प्रथा, परंपरा और अनुष्ठान पर आधारित होते हैं। आर्थिक गतिविधियाँ अक्सर सांस्कृतिक और सामाजिक प्रथाओं से जुड़ी होती हैं।

[9] https://www.studyiq.com/articles/types-of-economy/

2	निर्देशित अर्थव्यवस्था	एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें सरकार जैसे केंद्रीय प्राधिकरण द्वारा आर्थिक निर्णय लिए जाते हैं। सरकार वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और वितरण को नियंत्रित करती है, और व्यक्तियों का आर्थिक निर्णयों पर सीमित नियंत्रण होता है।
3	बाजार अर्थव्यवस्था	एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें बाज़ारों में क्रेताओं और विक्रेताओं की अंतःक्रिया द्वारा आर्थिक निर्णय लिए जाते हैं। कीमतें आपूर्ति और मांग से निर्धारित होती हैं, और व्यक्तियों को अपने स्वयं के हित के आधार पर आर्थिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता होती है।
4	मिश्रित अर्थव्यवस्था	एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो बाजार और कमांड अर्थव्यवस्थाओं दोनों के तत्वों को जोड़ती है। सरकार अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, लेकिन निजी क्षेत्र की भागीदारी के लिए भी जगह है।
5	समाजवादी अर्थव्यवस्था	एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें उत्पादन के साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण राज्य या समग्र रूप से समुदाय के पास होता है। लक्ष्य आर्थिक समानता और सामाजिक कल्याण प्राप्त करना है।
6	पूँजीवादी अर्थव्यवस्था	एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें उत्पादन के साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण निजी व्यक्तियों या व्यवसायों के पास होता है। लक्ष्य आर्थिक विकास और लाभ प्राप्त करना है।
7	विकसित अर्थव्यवस्था	एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें उच्च स्तर का आर्थिक विकास हो, जिसमें उच्च प्रति व्यक्ति आय, उन्नत बुनियादी ढाँचा और उच्च जीवन स्तर हो। अक्सर

		एक विविध अर्थव्यवस्था, औद्योगीकरण के उच्च स्तर, तकनीकी उन्नति और एक मजबूत सेवा क्षेत्र की विशेषता होती है।
8	उभरती अर्थव्यवस्था	एक अर्थव्यवस्था जो पारंपरिक या विकासशील अर्थव्यवस्था से अधिक आधुनिक और उन्नत अर्थव्यवस्था में परिवर्तन की प्रक्रिया में है। अक्सर तीव्र आर्थिक विकास, औद्योगीकरण और शहरीकरण की विशेषता होती है।
9	निर्वाह् अर्थव्यवस्था	एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें लोग अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए केवल पर्याप्त वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन और उपभोग करते हैं। भोजन का उत्पादन करने के लिए अक्सर शिकार, मछली पकड़ने और कृषि पर निर्भर होते हैं, और आधुनिक तकनीक या बुनियादी ढांचे तक उनकी बहुत कम पहुंच होती है।
10	हरित अर्थव्यवस्था	एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो सतत विकास पर केंद्रित है, जिसमें पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने और सामाजिक समानता को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित किया गया है। संसाधन खपत और अपशिष्ट उत्पादन को कम करने, टिकाऊ उत्पादन और खपत पैटर्न को बढ़ावा देने और नवाचार और सहयोग को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित किया गया है।
11	सर्कुलर अर्थव्यवस्था	एक अर्थव्यवस्था जिसमें संसाधनों का उपयोग और पुन: उपयोग एक बंद लूप में किया जाता है, जिसमें बहुत कम या कोई अपशिष्ट नहीं होता है। संसाधन

		खपत और अपशिष्ट उत्पादन को कम करने, टिकाऊ उत्पादन और खपत पैटर्न को बढ़ावा देने और नवाचार और सहयोग को बढ़ावा देने पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

अर्थव्यवस्था विकास का उद्देश्य

अर्थव्यवस्था विकास का मूल उद्देश्य लोगों के भौतिक जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए समाज की मौद्रिक और सामाजिक स्थितियों में सुधार करना है। कुछ उद्देश्यों में शामिल हैं:

- सबसे बढ़कर, उन्नति का लक्ष्य सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि को बढ़ाकर लोगों के जीवन स्तर को बढ़ाना है।
- विकास का दूसरा प्रमुख उद्देश्य गरीबी उन्मूलन है। गरीबी को केवल कम आय के बजाय बुनियादी कौशल की कमी के रूप में देखा जाना चाहिए।
- पूर्ण सकल घरेलू उत्पाद या प्रति व्यक्ति आय में तेजी से वृद्धि को महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह आर्थिक क्षमता में विस्तार सुनिश्चित करता है जिसके बिना जीवन स्तर में व्यापक सुधार असंभव है।

अधिकांश विकास अर्थशास्त्रियों के अनुसार, विकास आकलन के चार प्रमुख चरण हैं:

- विस्तार: एक विस्तार के दौरान, अर्थव्यवस्था तेज गति से बढ़ती है, ब्याज दरें कम होती हैं, उत्पादन बढ़ता है, और मुद्रास्फीति के दबाव बढ़ते हैं।

- उच्च स्तर: जब विकास अपनी सबसे बड़ी दर पर पहुँचता है, तो एक चक्र अपने शीर्ष पर पहुँच जाता है। उच्च स्तर पर विकास के परिणामस्वरूप आमतौर पर कुछ आर्थिक असंतुलन होते हैं जिन्हें संबोधित किया जाना चाहिए।
- संकुचन: संकुचन की अवधि के दौरान एक सुधार होता है जिसमें विकास धीमा होता है, रोजगार में गिरावट आती है, और कीमतें स्थिर रहती हैं।
- निम्न स्तर: जब अर्थव्यवस्था निम्न बिंदु पर पहुँचती है और विकास में सुधार होना शुरू होता है, तो चक्र अपने निम्न स्तर में पहुँच जाता है।

सामाजिक-आर्थिक विकास

भारत ने लक्ष्यों को निर्धारित करने में अग्रणी भूमिका निभाई है क्योंकि यह दुनिया की महान भू-राजनीतिक शक्तियों में से एक है। **इसलिए, भारत सरकार ने नौकरियों, निवेश, निर्यात को पुनर्जीवित करने, स्वास्थ्य सेवा, आवास प्रदान करने के उद्देश्य से सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रमों को लागू करने के अपने प्रयासों को तेज कर दिया है और सभी के लिए स्वच्छ पानी, और बुनियादी संरचनात्मक विकास को निर्धारित किया है।**[10] विकास पर कई प्रभावी रुपरेखा भी शामिल हैं:

- **गरीबी मुक्त:** भारत के राष्ट्रीय विकास एजेंडे का मुख्य लक्ष्य गरीबी उन्मूलन करना है। उच्च सामान्य वार्षिक जीडीपी विकास दर को बनाए रखना और उद्योग बनाना भारत के विकासशील कार्यबल को निगलने और लाभ के लिए अपेक्षित लाभकारी स्थिति बनाने के लिए बुनियादी हैं।

---

[10] भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वोक्षक तथा विश्लेषण, लाल एवं लाल, 2013

- **भुखमरी मुक्त:** जलवायु परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों को कम करते हुए अधिक उत्पादों का उत्पादन करने के लिए नवीन पहलों के माध्यम से कृषि का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। सब्सिडी वाले भोजन को एक अधिकार बना दिया गया है, और खाद्यान्नों तक अधिक पहुंच की अनुमति देने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार किया गया है।
- **बेहतर स्वास्थ्य:** स्वच्छता और पानी पर ध्यान देने से संचारी रोगों के संचरण पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। निवारक उपचार पर जोर बढ़ गया है, जिससे भारत की स्वास्थ्य प्रणालियों पर भार कम हो गया है, जो देश की तेजी से बढ़ती जनसंख्या की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं।
- **लैंगिक समानता:** गरीबी उन्मूलन प्रयासों में गरीबी में महिलाओं और आर्थिक संपत्तियों, वित्तीय सेवाओं, सामाजिक सुरक्षा, और कौशल विकास और रोजगार की संभावनाओं तक उनकी पहुंच सभी को संबोधित किया जाना चाहिए। इसमें यह सुनिश्चित करने के उपाय शामिल हैं कि महत्वपूर्ण सेवाएं उपलब्ध हैं और अवसर की समानता को बढ़ावा दिया जाता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के विकास की गति हेतु किसी भी देश का आधार उसकी मजबूत अर्थव्यवस्था होती है। किसी भी देश का आर्थिक विकास उसकी मानवीय व भौतिक पूँजी के आधार पर निर्धारित होता है। जिसके विकास की गति पर आधारित उसकी अर्थव्यवस्था की संरचना होती है। अर्थव्यवस्था की संरचना का निर्धारण इसी भौतिक व मानवीय पूँजी के आधार पर निर्धारित करते हुए आर्थिक विकास की रुपरेखा को समझा जा सकता है। आर्थिक विकास की गति को बेहतर करने के लिए समाजिक हितों, धन, माल के काम में कुछ अच्छे सुधार किये जाते हैं। जिससे एक अच्छी गति से विकास

होता है। वैश्विक स्तर पर किसी भी देश के द्वारा आर्थिक स्थिति में सुधार के उपाय करने चाहिए और बेहतर जीवन स्तर की ओर बढ़ना चाहिए। यह आर्थिक विकास के पूर्ण चरणों और चरणों का वर्णन करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Lewis, W. A. (1955). „„The Theory of Economic Growth"", Homewood, III: Irwin.
2. भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, एन्.सी.ई.आर.टी. 2005
3. fredrick Harbison and charles A. Ayery (1961), "Economic Development" P.68
4. https://www.investopedia.com/terms/e/economicgrowth.asp
5. https://hindigyankosh.com/economy/
6. https://unacademy.com/content/railway-exam/study-material/general-awareness/what-is-gross-national-product/
7. https://www.studyiq.com/articles/types-of-economy/
8. भारतीय अर्थव्यवस्था सर्वोक्षक तथा विश्लेषण, लाल एवं लाल, 2013
9. https://www.qaifiyatworld.com/2021/12/Worlds-Complex-Economy-Types-definition-Characteristics-in-hindi.html
10. https://www.hec.edu/en/knowledge/articles/culture-and-economy-understanding-dynamics-globalization

MAEC-103

खण्ड-02 इकाई-02

अर्थव्यवस्था में बचत एवं निवेश की प्रवृत्ति

<u>इकाई की रूपरेखा</u>

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 बचत एवं निवेश की प्रवृत्ति
1.3 बचत एवं निवेश का तुलनात्मक अध्ययन
1.4 सकल बचत दर
1.5 सकल घरेलू उत्पाद
1.6 पूंजीवाद एवं पूंजीवाद के प्रकार
1.7 पूंजीवादी उत्पाद अनुपात
1.8 वृद्धिमान पूंजी उत्पादन अनुपात
1.9 पूंजी निर्माण
1.10 निष्कर्ष
1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य (Objectives)

इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि-

- बचत एवं निवेश का क्या तात्पर्य है?

- बचत एवं निवेश को तुलनात्मक अध्ययन पर समझ सकेंगे।
- भारत की सकल बचत दर का ज्ञान होगा।
- पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का ज्ञान होगा।
- पूंजीवादी उत्पाद अनुपात का ज्ञान होगा।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)-

अर्थव्यवस्था में बचत एवं निवेश की प्रवृत्ति

अर्थव्यवस्था में बचत एवं निवेश की प्रवृत्ति के अन्तर्गत मुद्रा बचत करने हेतु, हमें इसे एक सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए, जहाँ आवश्यकता पड़ने पर यह सुलभ रहेगा, और जहाँ इसकी संभावना कम होगी कि इसका मूल्य कम हो जाएगा।[1] निवेश में कुछ स्तर का जोखिम लेना शामिल है, लेकिन इसमें मुनाफे में वृद्धि का अवसर भी है। जब कोई निवेश करता है, तो वे इसे अक्सर लंबे समय के क्षितिज को ध्यान में रखते हुए करते हैं। जब हम बचत की बात करते हैं तो अप्रत्याशित खर्चों या भविष्य में किसी खरीदारी के लिए पैसा अलग रखना ही हमारा मतलब होता है। आप जितना संभव हो उतना कम या बिना किसी जोखिम और जितना संभव हो उतना कम करों का भुगतान करते हुए, जितनी जल्दी हो सके इस पैसे पर अपना हाथ पाने में सक्षम होना चाहते हैं। पैसे बचाने के कई अवसर हैं जो वित्तीय संस्थानों में मिल सकते हैं। निवेश को ऐसी खरीद पर वित्तीय रिटर्न अर्जित करने के लक्ष्य के साथ स्टॉक, बॉन्ड, म्यूचुअल फंड या रियल एस्टेट

[1] https://www.econlib.org/library/Topics/HighSchool/SavingandInvesting.html

जैसी संपत्ति खरीदने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। निवेश का चयन अक्सर दीर्घकालिक उद्देश्यों की खोज से प्रेरित होता है। सामान्य तौर पर, निवेशक के लक्ष्यों के आधार पर निवेश को विकास निवेश या आय निवेश के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।"निवेश" शब्द का प्रयोग अक्सर अर्थशास्त्रियों द्वारा परिवारों, फर्मों और सरकारों द्वारा लंबे समय तक चलने वाली वस्तुओं की खरीद के संदर्भ में किया जाता है। यह इस तथ्य के बावजूद है कि "निवेश" वाक्यांश का उपयोग सामान्य उपयोग में विभिन्न प्रकार की आर्थिक गतिविधियों की एक विस्तृत श्रृंखला को संदर्भित करने के लिए किया जा सकता है।

बचत में वृद्धि से निवेश में धन वृद्धि में सहायता मिल सकती है, जो लंबी अवधि में उत्पादकता के स्तर को बढ़ा सकती है। यदि अधिक व्यक्ति बचत करते हैं, तो वित्तीय संस्थान निवेश उद्देश्यों के लिए व्यवसायों को दी जाने वाली राशि को बढ़ाने में सक्षम होंगे।[2] जब एक अर्थव्यवस्था में पैसे बचाने वाले अपेक्षाकृत कम लोग होते हैं, तो यह इंगित करता है कि सरकार और व्यवसाय भविष्य के लिए बचत से ऊपर खर्च को प्राथमिकता दे रहे हैं। यह आपके लिए एक उज्जवल भविष्य बनाता है और आपके बचत निधि आपके एक से अधिक उद्देश्यों का समाधान प्रदान कर सकते हैं। आपके पास कार खरीदने, अपनी सेवानिवृत्ति के लिए पैसा लगाने या घर खरीदने का विकल्प है। आपके पास अपने भविष्य के बारे में मन की शांति हो सकती है, इस दुनिया के बेहतरीन अनुभवों का आनंद लेते हुए जीवन को काफी

[2] Adeyemo, R., & Bamire, A. S. (2005). Saving and investment patterns of cooperative farmers in Southwestern Nigeria. Journal of social sciences, 11(3), 183-192

बेहतर बनाया जा सकता है। अलग–अलग व्यक्तियों के लिए धन को एक तरफ रखने के कई मायने हैं। बैंक में पैसा रखना कुछ लोगों के लिए मायने रखता है। कुछ लोगों के लिए, इसमें स्टॉक खरीदना या पेंशन योजना में भुगतान करना शामिल है। **हालाँकि, अर्थशास्त्रियों की नजर में, बचत का केवल एक ही मतलब हो सकता है: भविष्य में किसी की खपत को बढ़ाने के लिए यहाँ और अभी की खपत को कम करना है।**[3]

तुलना का आधार	**बचत**	**निवेश**
उद्देश्य	छोटे और अल्पकालिक लक्ष्य	बड़े और दीर्घकालिक लक्ष्य
रिटर्न	कम रिटर्न	उच्च रिटर्न
जोखिम	बहुत कम या नगण्य जोखिम	उच्च या मध्यम जोखिम
तरलता	अत्यधिक तरल	आमतौर पर कम तरल
विशिष्ट उत्पाद	नकद, बैंक बचत खाता, एफडी, आरडी	रियल एस्टेट, बांड, स्टॉक, इक्विटी और म्यूचुअल फंड

---

[3] Agrawal, P. (2001). “The relation between Savings and Growth: Cointegration and Causality Evidence from Asia”. Applied Economics, 33, 499-513.

https://moneyclubber.com/blog/bachat-aur-nivesh-savings-and-investment-ke-beech-kya-antar-hai/

बोध प्रश्न1ः अर्थव्यवस्था में बचत एवं निवेश की प्रवृत्ति को विस्तार से समझाइये।

....

भारत सकल बचत दर

भारत की सकल बचत दर को वार्षिक अपडेट प्राप्त होता हैए और सुलभ डेटा की सीमा मार्च 1951 से मार्च 2022 तक है, जिसकी दर औसतन 30.2 है। मार्च 2022 में भारत में सकल बचत दर 30.2 मापी गई, जो कि एक साल पहले दर्ज की गई दर के समान है। 2008 के मार्च में आंकड़े 30.2 के सर्वकालिक उच्चतम स्तर पर पहुंच गएए जबकि 1954 के मार्च मेंए वे 7.9 के सर्वकालिक निम्न स्तर पर पहुंच गए। वार्षिक सकल घरेलू बचत और वार्षिक नाममात्र जीडीपी दोनों का उपयोग सीईआईसी की सकल घरेलू बचत दर की गणना में किया जाता है। स्थानीय मुद्रा में सकल घरेलू बचत और स्थानीय मुद्रा में नाममात्र जीडीपी दोनों सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय द्वारा प्रदान की जाती हैं। सकल घरेलू बचत दर की गणना वार्षिक आधार पर की जाती है, प्रत्येक वर्ष का अंतिम महीना मार्च होता है।

नवीनतम उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार, दिसंबर 2022 में भारत की जीडीपी में साल दर साल 4.4 की वृद्धि हुई। दिसंबर 2022 में भारत का नाममात्र सकल घरेलू उत्पाद 844,596.4 मिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया। दिसंबर 2022 में, जीडीपी डिफ्लेटर, जिसे अंतर्निहित मूल्य डिफ्लेटर के रूप में भी जाना जाता है, ने 6.6 की बढ़त दिखाई। मार्च 2022 में, भारत की प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) 2,301.4 अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गई।

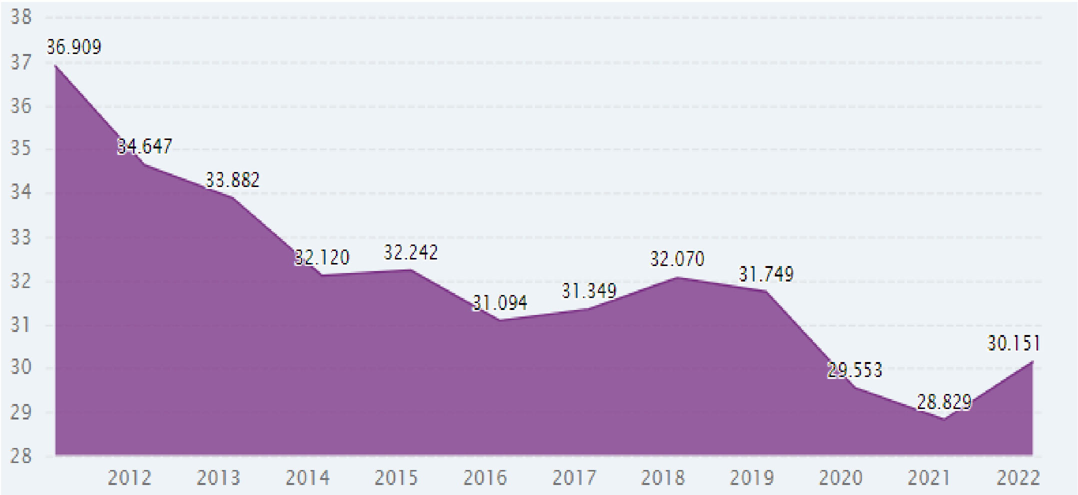

वार्षिक सकल घरेलू बचत दर

https://www.ceicdata.com/en/indicator/india/gross-savings-rate

निवेश सकल घरेलू उत्पाद

दिसंबर 2022 में देश की नाममात्र जीडीपी के 28.4: के लिए भारत में निवेश जिम्मेदार था, जो पिछली तिमाही के 32.1 के अनुपात से कम था। सकल घरेलू उत्पाद में भारत की निवेश हिस्सेदारी का डेटा त्रैमासिक अद्यतन किया जाता है और जून 2004 से दिसंबर 2022 तक, औसतन 33.4 के अनुपात के साथ उपलब्ध

है। सितंबर 2011 में, डेटा 41.2 के सर्वकालिक शिखर पर पहुंच गया, और जून 2020 में, वे 21.2 के सर्वकालिक निचले स्तर पर पहुंच गए। त्रैमासिक सकल पूंजी निर्माण और त्रैमासिक नाममात्र सकल घरेलू उत्पाद का उपयोग सीईआईसी के निवेश की गणना में नाममात्र सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में किया जाता है। सकल पूंजी निर्माण की कुल राशि सकल स्थिर पूंजी निर्माण, स्टॉक और कीमती वस्तुओं में परिवर्तन और सकल पूंजी निर्माण के आंकड़ों को जोड़कर पाई जा सकती है। स्थानीय मुद्रा में नाममात्र सकल पूंजी निर्माण और स्थानीय मुद्रा में नाममात्र सकल घरेलू उत्पाद दोनों सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय द्वारा प्रदान किए जाते हैं और 2011–2012 की कीमतों पर एसएनए 2008 पर आधारित हैं। 2011 की दूसरी तिमाही से पहले, नाममात्र जीडीपी के प्रतिशत के रूप में निवेश की गणना 2004–2005 की कीमतों पर एसएनए 2008 और एसएनए 1993 के मिश्रण का उपयोग करके की गई थी।

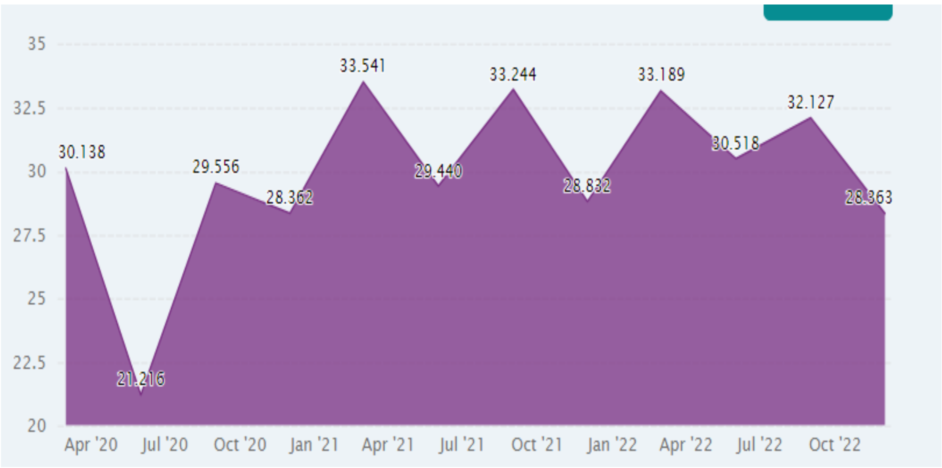

सकल घरेलू उत्पाद का निवेश

https://www.ceicdata.com/en/indicator/india/investment--nominal-gdp

पूंजीवादी

"पूंजीवाद" शब्द एक आर्थिक मॉडल का वर्णन करता है जिसमें लोगों को अपनी खुद की

कंपनियां चलाने और यह चुनने की स्वायत्तता होती है कि उनका पैसा कैसे वितरित किया जाता है। **पूंजीवादी व्यवस्था के तहत, आप सेवाएं प्रदान करने के लिए स्वतंत्र हैं, प्रवेश की लागत का चयन करें, जो चाहें चार्ज करें, और खर्च के बाद जो पैसा बनता है उसे अपने पास रखें।**[4] एक पूंजीवादी व्यवस्था के तहत, व्यवसायों के पास विकल्प चुनने का अधिकार होता है जो उनके संचालन को प्रभावित करता है और जो भी आकार बाजार सहन करेगा उसका विस्तार हो सकता है। पूंजीवाद प्रणाली को परिभाषित करने वाले स्वामित्व, प्रतिस्पर्धा और राज्य की भागीदारी के पहलू ऐसी अर्थव्यवस्थाओं की सबसे विशिष्ट विशेषताएं हैं:

- निजी स्वामित्व को प्रोत्साहित किया जाता है, जो नियोजित अर्थव्यवस्थाओं में केंद्रीय योजनाकारों के दृष्टिकोण के विपरीत है। लोगों को संपत्ति रखने का कानूनी अधिकार है और यह तय करने की स्वायत्तता है कि वे उस संपत्ति का क्या करेंगे।
- पूंजीवाद के सिद्धांतों पर आधारित एक मुक्त बाजार में, विभिन्न प्रदाताओं के बीच प्रतिस्पर्धा यह सुनिश्चित करती है कि ग्राहकों को उच्चतम संभव गुणवत्ता का सामान मिले।

---

[4] https://study.com/learn/lesson/capitalism-overview-types-examples.html

- सरकार की भूमिका एक पूंजीवादी व्यवस्था में, संसाधनों के वितरण में सरकार की भूमिका न्यूनतम रखी जाती है क्योंकि यह भूमिका ज्यादातर मुक्त बाजार द्वारा निभाई जाती है।

समाजवाद और साम्यवाद आर्थिक प्रणालियों की अन्य दो प्रमुख श्रेणियां हैं। समाजवाद एक राजनीतिक और आर्थिक सिद्धांत है जो संसाधनों के साझा स्वामित्व की वकालत करता है। लोकतंत्र में, उत्पादन के साधनों तक सभी की पहुंच होती है, और चुनाव करने के लिए लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है। साम्यवाद और समाजवाद के बीच एक मजबूत संबंध है। इसे एक संगठनात्मक ढांचे के रूप में वर्णित किया गया है जिसमें कोई निजी स्वामित्व नहीं है और धन, प्रतिस्पर्धा और सामाजिक वर्ग जैसे विचार पूरी तरह से नहीं हटाए जाने पर कम हो जाते हैं। इस तरह की संरचना को साम्यवाद कहा जाता है।

बोध प्रश्न–2 : पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को समझाइये।

....

पूंजीवाद के प्रकार

पूंजीवाद के कई रूप हो सकते हैं। उनके दायरे में पूंजीवाद के अधिक विकसित रूप शामिल हैं जैसे कॉर्पोरेट पूंजीवाद, वित्तीय क्षेत्र में पूंजीवाद, सामाजिक पूंजीवाद और मुक्त बाजार पूंजीवाद[5]-

[5] https://www.imf.org/en/Publications/fandd/issues/Series/Back-to-Basics/Capitalism

- **उन्नत पूंजीवादः** पूंजीवाद समाज में गहरी जड़ें जमा चुकी व्यवस्था है और व्यवस्था में सुधार करना लगभग असंभव होगा।
- **कॉर्पोरेट पूंजीवादः** मुक्त बाजार पर निजी स्वामित्व और कंपनियों का शासन है जो बड़े पैमाने पर वस्तुओं और संसाधनों के वितरण का निर्धारण करती हैं।
- **वित्त पूंजीवादः** एक ऐसी प्रणाली जहां एक अर्थव्यवस्था, इसके राजनीतिक और सामाजिक ढांचे के साथ, इसके वित्तीय क्षेत्र द्वारा शासित होती है।
- **सामाजिक पूंजीवादः** यह एक पूंजीवादी समाज है जो समानता जैसी सामाजिक अवधारणाओं को लागू करता है।
- **मुक्त बाजार पूंजीवादः** मुक्त बाजार की ताकतें संसाधनों के आवंटन और उत्पादों के वितरण को निर्धारित करती हैं। इन बलों को आपूर्ति और मांग में संक्षेपित किया गया है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एक ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व मौजूद होता है, वस्तुओं का उत्पादन लाभ कमाने के इरादे से किया जाता है, और अर्थव्यवस्था के निजी क्षेत्र के संचालन में सरकार की कोई भागीदारी नहीं होती है।[6]

पूंजीवाद पर आधारित अर्थव्यवस्था की प्राथमिक विशेषताओं की सूची निम्नलिखित है–

---

[6] https://www.mpboardonline.com/answer/class-12-economics-hm/5.html

- निजी संपत्ति के अधिकार एक पूंजीवादी व्यवस्था में संरक्षित हैं, और व्यक्तियों को अचल संपत्ति खरीदने, स्वामित्व रखने, कब्जा करने व व्यापार करने की अप्रतिबंधित स्वतंत्रता है।
- पूंजीवाद व्यवस्था आर्थिक स्वतंत्रता की अनुमति देती है, प्रत्येक व्यक्ति किसी भी कार्य को चुनने के लिए स्वतंत्र है जो उसके हितों के अनुकूल होती है।
- पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में लाभ की खोज पर जोर दिया जाता है, एक व्यक्ति केवल उन गतिविधियों में संलग्न होगा जिसमें वह अपने प्रयासों के लिए सबसे अधिक पैसा कमा सकता है।
- मूल्य निर्धारण तंत्र पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के कामकाज और उसकी गतिविधियों के समन्वय के लिए जिम्मेदार हैय इसका मतलब यह है कि उत्पादन, खपत और निवेश सभी कीमतों से नियंत्रित होते हैं।
- यह ग्राहक को अपनी पसंद के अनुसार विभिन्न प्रकार के उत्पादों पर अपना पैसा खर्च करने की अनुमति देता है।

पूँजीवादी उत्पाद अनुपात

उत्पादन की एक इकाई बनाने के लिए आवश्यक पूंजी की मात्रा के अनुपात को पूंजी उत्पादन अनुपात (COR) होती है। यह एक अर्थव्यवस्था में लगाए गए धन की कुल राशि और उस निवेश से उत्पन्न अतिरिक्त सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की राशि के बीच संबंध है। इसके अतिरिक्त, यह उत्पाद के मूल्य और निवेश की गई पूंजी के मूल्य के मध्य की एक व्यवस्था को स्पष्ट करता है।

अर्थव्यवस्था में किए गए निवेश के स्तर व जीडीपी में परिणामी वृद्धि के मध्य संबंध की व्याख्या करने वाला अक्सर इस्तेमाल किया जाने वाला उपकरण पूंजी उत्पादन अनुपात है। पूंजी उत्पादन अनुपात की अवधारणा निवेशित पूंजी के मूल्य व उत्पादन के मूल्य के बीच संबंध को व्यक्त करती है।[7] क्षेत्रीय पूंजी के उत्पादन के अनुपात से निवेश मानदंड कितने प्रभावी ढंग से प्राप्त किए जा सकते हैं? पूंजीगत सामान उद्योग व उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योग के संबंधित पूंजी–उत्पादन अनुपात, या विनिर्माण उद्योग की एक शाखा और कुछ कृषि संचालन के बीच, स्पष्ट रूप से उनके बीच प्राथमिकता तय करने या यहां तक कि यह निर्धारित करने के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है कि कैसे जार उत्पादन किसी भी उद्योग में बढ़ाया जाना चाहिए। यदि हम अर्थव्यवस्था उद्योग की बात कर रहे हों या उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योग की, यह मामला है। **पूंजी–उत्पादन अनुपात बड़ी संख्या में निवेश कारकों में से एक हो सकता है जिसकी एक समूह के रूप में जांच की जानी चाहिए, और बहुत बार, व्यापक राजनीतिक व सामाजिक मुद्दे प्राथमिकता अनुसूची को विफल कर सकते हैं जो कि क्षेत्रीय अनुपात के विचार एकमात्र होने पर पालन करेंगे।**[8] यह तब तक नहीं है जब तक कि मानदंडों के समग्र रुप से निर्धारित आधार पर निवेश के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र का चयन नहीं किया गया है कि क्षेत्रीय अनुपात के विचार को अधिक प्रमुखता दी

[7] https://www.hindinotes.org/2018/01/capital-formation-capital-production-ratio.html

[8] https://dishasandhaan.in/archives/1192

जा सकती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि केवल उस बिंदु पर ही खंडीय अनुपात की धारणा का उपयोग किया जा सकता है।

ऐसी स्थिति में, पूँजी–से–उत्पादन अनुपात क्या है? प्रश्न के उत्तर में जो पहला विचार दिमाग में आता है वह शायद यह है कि इस ष्समाज की असभ्य स्थितिष में पूंजी–उत्पादन अनुपात के माप पर पहुंचने का कोई तरीका नहीं है क्योंकि संचयन अभी तक नहीं हुआ है। हालाँकि, हम इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि जब हम पूंजी–उत्पादन अनुपात की बात करते हैं, तो वास्तव में हमारा मतलब निवेश–उत्पादन अनुपात होता है। इस बात की परवाह किए बिना कि निवेश लंबे समय तक चलने वाले उपकरण या किसी अन्य प्रकार के निवेश के रूप में किया जाता है। इस तथ्य के बावजूद कि एडम स्मिथ के उत्पादन के पहले के संरचना, के अन्तर्गत संचय की घटना के लिए जिम्मेदार नहीं है, फिर भी निवेश होता है। **जब एक अकेला व्यक्ति, उपकरणों की सहायता के बिना, "स्वयं को जमीन पर काम करने के लिए तैयार करता है," आवश्यक निवेश प्रयास पूरी तरह से ष्श्रम और समस्याओंष से बना होता है, जिसके लिए व्यक्ति को खाली समय का त्याग करने की आवश्यकता होती है।**[9] निवेश की लागत वर्तमान में औसत व्यक्ति के लिए अज्ञात है और इसे आसानी से निर्धारित नहीं किया जा सकता है। यदि, दूसरी ओर, केवल दो लोग शामिल थे, जिनमें से एक उद्यमी होगा, और दूसरा मजदूर होगा, तो निवेश लागत उस वेतन का रूप ले लेगी जिसे उद्यमी श्रमिक को आगे

---

[9] Piketty, Thomas, 2014, Capital in the Twenty-First Century (Cambridge, Massachusetts: Belknap Press)

बढ़ाएगा। दूसरी ओर, उत्पादन अभी भी मजदूर के कौशल पर निर्भर करेगा, इस तथ्य के बावजूद कि मिट्टी की स्थिति को ध्यान में रखा गया है। इसलिए, यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि पूंजी–उत्पादन अनुपात का मूल्य दो कारकों द्वारा तय किया जाएगारू श्रमिक की निपुणता और कमाई जो उसे भुगतान की जाती है। उत्पादकता निपुणता के लिए एक और शब्द है, जो श्रमिक द्वारा उत्पादित कार्य की गुणवत्ता को संदर्भित करता है। उत्पादकता एक और हालिया शब्द है। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि पूंजी–उत्पादन अनुपात मजदूरी दर और उत्पादकता दोनों का कार्य है।

बोध प्रश्न–3 : पूंजी उत्पादन अनुपात से आप क्या समझते हैं?

....

वृद्धिशील पूंजी उत्पादन अनुपात[10]

यह पूंजी उत्पादन अनुपात का एक रूप है जिसे संशोधित किया गया है। उत्पादन की वृद्धिशील लागत, या पूंजी उत्पादन अनुपात, अतिरिक्त पूंजी या निवेश की राशि है जो उत्पादन की वृद्धिशील इकाई बनाने के लिए आवश्यक है। जब निवेश में वृद्धि होती है, तो पूंजी–उत्पादन अनुपात स्वयं ही बदल सकता है, जिसका अर्थ है कि पारंपरिक पूंजी–उत्पादन अनुपात अब सहायक नहीं होगा। यहीं पर वृद्धिशील पूंजी उत्पादन अनुपात काम आता है।

निम्न पूंजी उत्पादन अनुपात

[10] https://unacademy.com/content/upsc/economy-notes/capital-output-ratio/

निम्न पूंजी–उत्पादन अनुपात बढ़ी हुई तकनीकी उन्नति एवं पूंजी के उत्पादक उपयोग का संकेत है। एक निम्न पूंजी–उत्पादन अनुपात बताता है कि अर्थव्यवस्था में दी गई विकास दर को प्राप्त करने के लिए निवेश का निम्न स्तर आवश्यक है। यह वाक्यांश "समान विकास दर का उत्पादन करने के लिए कम निवेश की आवश्यकता है" का निहितार्थ है। यह एक ऐसी परिस्थिति है जिसे बहुत से लोग आदर्श मानेंगे। उत्पादन के लिए पूँजी का अनुपात जो कम है, यह प्रदर्शित करता है कि उपयोग की जा रही पूँजी अत्यधिक उत्पादक या कुशल है।

पूंजी के अपने निवेश पर वापसी को प्रगतिशील करने के लिए प्रौद्योगिकी की उन्नति इसे बोधगम्य बनाने हेतु ज्यादातर प्रभावी होती है। अधिक उन्नत तकनीक के साथ, निवेश की गई पूंजी की समान मात्रा से अधिक मात्रा में उत्पादन हो सकता है, जिसके परिणामस्वरूप पूंजी का उत्पादन अनुपात कम हो जाता है।

पूंजी निर्माण

पूंजी निर्माण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा बचत और निवेश के माध्यम से पूंजी का स्टॉक बढ़ाया जाता है। पूंजी मूलभूत निर्माण खंड है जिस पर समकालीन अर्थव्यवस्था का विकास निर्मित होता है। **भारतीय योजना आयोग को यह कहते हुए उद्धृत किया गया है, "किसी भी देश का आर्थिक विकास पूंजी की उपलब्धता पर निर्भर करता है।" पूंजी का अधिकतम निर्माण वह कारक है जिसका आय में वृद्धि के साथ–साथ नौकरी की संभावनाओं और उत्पादन पर सबसे अधिक**

प्रभाव पड़ता है।[11] यदि कोई राष्ट्र नई पूंजी निर्माण का अनुभव नहीं करता है, तो वह आर्थिक विकास के अपने लक्ष्य की ओर प्रगति करने में असमर्थ होगा। यदि ऐसा है, तो इसका मतलब यह है कि अगर पूंजी उत्पादन इसी तरह सुस्त है तो आर्थिक विकास की दर भी धीमी होगी। जब हम पूंजी निर्माण के बारे में बात करते हैं तो पैसे को अलग रखने और इसे विभिन्न व्यवसायों में निवेश करने की प्रक्रिया का मतलब है। बचत की गतिशीलता के लिए वित्तीय संस्थान, और निवेश पूंजी तीन शर्तें हैं जिन्हें पूंजी बनाने से पहले पूरा किया जाना चाहिए। इन प्रमुख कारकों को पूंजी निर्माण की तीन पूर्वापेक्षाओं के रूप में जाना जाता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था में बचत एवं निवेश की प्रवृत्ति का प्रवाह पूँजीवादी उत्पाद अनुपात पर निर्भर करता है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में बचत एवं निवेश के आधार पर ही पूँजीवादी उत्पाद के अनुपात का आकलन किया जा सकता है और उसके प्रभाव को काफी हद तक सुधारा भी जा सकता है। अर्थव्यवस्था के अनुरुप बचत वर्तमान के लिए और, भविष्य के लिए निवेश होता है। बचत या निवेश करने हेतु आपके लघु, मध्यम– और दीर्घकालिक लक्ष्य क्या हैं? अल्पकालिक उद्देश्यों, आपात स्थितियों और अप्रत्याशित बिलों के लिए बचत करने से धन सुलभ हो जाता है। यह छोटे उद्देश्यों को सरल करता है। आपकी बदलती

---

[11] Chand R., & Kumar P. (2004). Determinants of capital formation and agriculture growth: Some new explorations. *Economic and Political Weekly*, 39(52), 5611–5616.

प्राथमिकताओं और मुद्रास्फीति को देखते हुए, सेवानिवृत्ति या बच्चे की शिक्षा जैसे दीर्घकालिक उद्देश्यों के लिए धन की कमी हो सकती है, जिसके लिए बढ़ते संसाधनों की आवश्यकता होती है। इसी तरह, बुनियादी भारी उद्योगों के लिए पूंजी–उत्पादन अनुपात ऐसे क्षेत्रों में किए गए निवेश के स्तर के सीधे अनुपात में बढ़ता है। पूंजी–उत्पादन अनुपात को संगठनात्मक दक्षता बढ़ाकर और उपलब्ध तकनीकों का अधिक से अधिक उपयोग करके कम किया जा सकता है। उत्पादन प्रक्रिया में निवेश की लागत से पूंजी और उत्पादन का अनुपात भी प्रभावित होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **https://www.econlib.org/library/Topics/HighSchool/SavingandInvesting.html**
2. Adeyemo, R., & Bamire, A. S. (2005). Saving and investment patterns of cooperative farmers in Southwestern Nigeria. Journal of social sciences, 11(3), 183-192
3. Agrawal, P. (2001). “The relation between Savings and Growth: Cointegration and Causality Evidence from Asia”. Applied Economics, 33, 499-513.
4. https://study.com/learn/lesson/capitalism-overview-types-examples.html
5. https://www.imf.org/en/Publications/fandd/issues/Series/Back-to-Basics/Capitalism
6. https://www.mpboardonline.com/answer/class-12-economics-hm/5.html

7. https://www.hindinotes.org/2018/01/capital-formation-capital-production-ratio.html

8. https://dishasandhaan.in/archives/1192

9. Piketty, Thomas, 2014, Capital in the Twenty-First Century (Cambridge, Massachusetts: Belknap Press)

10. https://unacademy.com/content/upsc/economy-notes/capital-output-ratio/

11. Chand R., & Kumar P. (2004). Determinants of capital formation and agriculture growth: Some new explorations. *Economic and Political Weekly*, 39(52), 5611–5616.

बोध प्रश्नों के उत्तर-1

1. बचत एवं निवेश की प्रवृत्ति के अन्तर्गत मुद्रा को सुरक्षित स्थान पर रखने से है।
2. पैसे बचाने के कई अवसर जो वित्तीय संस्थाओं में मिल सकते हैं।
3. बचत में वृद्धि से निवेश में धन वृद्धि से सहायता मिलती है।
4. मार्च 2022 में भारत में सकल बचत दर 30.2 मापी गयी है।
5. जून 2004 से दिसम्बर 2022 तक, औसतन 33.4 के अनुपात के साथ उपलब्ध है।

उत्तर बोध प्रश्न-2

1. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में लोगों को अपनी खुद की कम्पनियां चलाने और चुनने की स्वायत्तता होती है।

2. पूंजीवादी व्यवस्था में विभिन्न प्रदाताओं के बीच प्रतिस्पर्धा यह सुनिश्चित करती है कि ग्राहकों को उच्चतम संभव गुणवत्ता का सामान मिल सके।

3. पूंजीवाद के रूपों में कार्पोरेट पूंजीवाद, वित्तीय क्षेत्र में पूंजीवाद, सामाजिक पूंजीवाद आदि।

4. पूंजीवाद व्यवस्था में उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व मौजूद होता है।

उत्तर बोध प्रश्न–3

1. उतपादन की एक इकाई को उत्पादन करने के लिए आवश्यक पूंजी की मात्रा को पूंजी उत्पादन अनुपात कहते हैं।

2. अर्थव्यवस्था में किये गये निवेश के स्तर व जी0डी0पी0 में वृद्धि के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या करने वाला पूंजी उत्पादन अनुपात कहलाता है।

3. पूंजीवाद अनुपात वृद्धिमान और निम्न पूंजी उत्पाद अनुपात हो सकता है।

4. वृद्धिमान पूंजी उत्पादन अनुपात के माध्यम से पूंजी स्टाक को बढ़ाया जा सकता है।

1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. बचत एवं निवेश से आप क्या समझते है?
2. सकल बचत दर से आप क्या समझते हैं?
3. सकल घरेलू उत्पाद से आप क्या समझते हैं?
4. पूंजीवादी व्यवस्था क्या है?
5. पूंजीवाद के प्रकार बताइये।
6. पूंजी उत्पादन अनुपात से आप क्या समझते हैं?
7. वृद्धिमान एवं निम्न पूंजी उत्पाद अनुपात में अन्तर बताइये।
8. पूंजी निर्माण से आप क्या समझते हैं?

MAEC-103

खण्ड–02 इकाई–03

निर्धनता एवं आर्थिक विषमतायें

<u>इकाई की रूपरेखा</u>

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 आर्थिक विषमतायें

1.3 भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक विषमता के कारण

1.4 आर्थिक विषमता दूर करने के उपाय

1.5 भारत में निर्धनता के प्रमुख कारण

1.6 भारत में निर्धनता के ऐतिहासिक कारण

1.7 निर्धनता उन्मूलन की आवश्यकता

1.8 निर्धनता दूर करने के उपाय

1.9 निष्कर्ष

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि–

- निर्धनता एवं आर्थिक विषमता क्या है?
- निर्धनता के क्या कारण हैं एवं इसे कैसे दूर किया जा सकता है?

- आर्थिक विषमता के क्या कारण हैं एवं इसे कैसे दूर किया जा सकता है?
- आर्थिक विषमता एवं निर्धनता दूर करने के उपाय का ज्ञान होगा

1.1 प्रस्तावना (Introduction)-

वैश्विक आबादी गरीबी से काफी प्रभावित होती है, जिससे बड़ी संख्या में लोग प्रभावित होते हैं। गरीबी और असमानता की उपस्थिति कई चुनौतियों को जन्म दे सकती है जो व्यक्तियों की सामाजिक गतिविधियों में पूर्ण भागीदारी में बाधा डालती है। गरीबी की समकालीन परिभाषाओं में अन्य आयाम भी शामिल हैं जैसे निरक्षरता दर, कुपोषण के परिणामस्वरूप अपर्याप्त टीकाकरण, स्वास्थ्य देखभाल तक सीमित पहुंच, अपर्याप्त कार्य संभावनाएं और स्वच्छ पेयजल और स्वच्छता सुविधाओं का अपर्याप्त प्रावधान। इसके अतिरिक्त, इस घटना को कई सामाजिक सूचकांकों के माध्यम से देखा जा सकता है, जैसे संसाधनों तक सीमित पहुंच, अन्य। गरीबी को कई आर्थिक चुनौतियों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जिनमें अपर्याप्त पूंजी, प्रशिक्षित मानव संसाधनों की कमी, विकास दर में असमानताएं और मुद्रा असंतुलन शामिल हैं। ये सभी कारक किसी भी राष्ट्र में गरीबी के उद्भव में

योगदान करते हैं। गरीबी और बेरोजगारी के प्रचलित मुद्दों ने बड़ी संख्या में व्यक्तियों को आत्महत्या जैसे कृत्यों में शामिल होने के लिए मजबूर किया है।

आर्थिक विषमताएँ

अर्थशास्त्र और अनुबंध सिद्धांत के क्षेत्र में सूचना विषमता की अवधारणा लेनदेन के भीतर निर्णय लेने की प्रक्रियाओं की जांच से संबंधित है, जिससे एक पक्ष के पास दूसरे पक्ष की तुलना में अधिक या बेहतर मात्रा में ज्ञान होता है। इस विषमता की उपस्थिति लेन-देन में शक्ति असमानता को जन्म देती है, जिसके परिणामस्वरूप संभावित रूप से लेन-देन टूटने की घटनाएं होती हैं। आर्थिक असमानता व्यक्तियों के विभिन्न समूहों, जनसांख्यिकीय क्षेत्रों या राष्ट्रों के बीच आर्थिक स्थितियों में असमानताओं से संबंधित है। आर्थिक असमानता में कई आयाम शामिल हैं, जिनमें आय असमानता, धन असमानता और संचित संपत्तियों में असमानता शामिल है जिन्हें अक्सर धन अंतर के रूप में जाना जाता है। अर्थशास्त्री अक्सर आर्थिक असमानता, अर्थात् धन, आय और उपभोग की जांच करने के लिए तीन अलग-अलग माप विधियों की ओर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं।

किसी देश की अर्थव्यवस्था पर्याप्त रूप से प्रगति कर रही है या नहीं इसका आकलन। किसी देश की आर्थिक स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करना केवल उसकी राष्ट्रीय

आय और उत्पादन की वृद्धि पर निर्भर नहीं है। देश के भीतर आय और उत्पादन के समान वितरण का आकलन करना भी आवश्यक है। यदि आय और धन का वितरण समान नहीं है, तो यह आर्थिक प्रगति के सकारात्मक मूल्यांकन में बाधा उत्पन्न कर सकता है। इस अध्ययन में, हमारा उद्देश्य पूरे देश में आय और धन वितरण की प्रकृति का पता लगाना है, साथ ही व्यक्तिगत और क्षेत्रीय वितरण पैटर्न की जांच करना है। संसाधनों के आवंटन में समानता और असमानता दोनों की उपस्थिति का आर्थिक परिदृश्य पर क्या प्रभाव पड़ा है? ये सभी कारक राष्ट्रीय आय और धन के आवंटन से जुड़े हुए हैं, जो पूरी अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक विषमताओं व असमानताओं के कारण

भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक प्रकार की आर्थिक विषमताएँ विद्यमान है। आर्थिक विषमताओं व असमानताओं के कारणों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है-

- जन्मजात योग्यताओं में विभिन्नता
- कर चोरी
- मुद्रास्फीति
- जनसंख्या में तीव्र गति से वृध्दि

- अवसरों की असमानता
- व्यवसाय के स्वरुप में अन्तर
- आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति
- बेरोजगारी की समस्या
- सम्पत्ति एवं भू-स्वामित्व की विषमता

बोध प्रश्न-1: आर्थिक विषमता को परिभाषित कीजिए एवं आर्थिक विषमता के क्या कारण है?

……………

आर्थिक विषमता: कैसे खत्म होगी असमानता

स्वतंत्रता प्राप्त करने के 75 वर्ष बीत जाने के बावजूद, हमारे देश की आबादी के समृद्ध और गरीब वर्गों के बीच आर्थिक असमानता में असमानता बनी हुई है और विकास की एक चिंताजनक प्रवृत्ति प्रदर्शित करती है। आर्थिक असमानता भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति और प्रगति में एक महत्वपूर्ण बाधा उत्पन्न करती है। पिछले वर्ष के आर्थिक आंकड़े, जो कि COVID-19 महामारी से प्रभावित थे, इस आशंका को बढ़ा रहे हैं। वित्तीय वर्ष 2020-21 के दौरान, भारत में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली आबादी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, जिसका अनुमान लगभग 75 मिलियन व्यक्ति

था। इसके साथ ही, देश में अरबपतियों की संख्या में 37 प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई। यह आंकड़ा डर पैदा करता है.

इस घटना की संभावित व्याख्या यह है कि पूरे समाज के लिए आर्थिक विकास को प्राथमिकता देना आर्थिक एजेंडे में एक प्रमुख विशेषता नहीं है। अन्यथा, यह तर्क दिया जा सकता है कि इस समय तक गरीबी समाप्त हो जानी चाहिए थी। हालाँकि, यह स्पष्ट है कि समुदाय के अंदर व्यक्तियों का एक छोटा सा हिस्सा अधिकांश आर्थिक धन अर्जित कर रहा है। विश्व गरीबी में भारत का योगदान उसकी आनुपातिक जनसंख्या हिस्सेदारी से परे है। विश्व की लगभग 17 प्रतिशत आबादी के साथ भारत, दुनिया भर में व्याप्त कुल गरीबी का 20 प्रतिशत है। जीवन के सभी क्षेत्रों के व्यक्तियों के लिए आर्थिक असमानता को दूर करने के प्रयासों में सक्रिय रूप से शामिल होना आवश्यक है। सरकारों और उनकी आर्थिक नीतियों पर निर्भरता कम करना महत्वपूर्ण है।

आम जनता को अपनी आर्थिक स्थिति को लगातार बढ़ाने की आवश्यकता होगी। आम तौर पर यह देखा गया है कि औसत भारतीय आबादी व्यक्तिगत आर्थिक उन्नति के साधन के रूप में नौकरी को प्राथमिकता देती है। इस विशेष सपने में, व्यक्ति अपनी सभी क्षमताओं को बढ़ाने का प्रयास करता है। हालाँकि, ऐसे उदाहरणों में जब व्यक्ति

बड़ी आबादी द्वारा लगाई गई बाधाओं के कारण अपनी आकांक्षाओं को प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं, तो वे खुद को रियायतें देने के लिए मजबूर हो सकते हैं और इसके बजाय ऐसी आजीविका का पीछा कर सकते हैं जो आसानी से सुलभ हो। इसके बाद, उसका उद्देश्य अपनी क्षमताओं को बढ़ाने की खोज से दूर हो जाता है। आर्थिक विकास की पूरी प्रक्रिया के दौरान गतिशीलता में गिरावट से आर्थिक असमानता पैदा होती है। इसके विपरीत, सामान्य आबादी के व्यक्तियों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी योग्यताओं में लगातार वृद्धि करें, जिससे उनकी आर्थिक क्षमता में वृद्धि हो। यह स्पष्ट है कि समकालीन परिवारों के अंदर, एक प्रचलित प्रवृत्ति मौजूद है जहां वित्तीय सहायता पर निर्भर व्यक्तियों की संख्या राजस्व उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों की संख्या से अधिक है। वर्तमान में, देश में नौकरी या व्यवसाय से जुड़े व्यक्तियों की संख्या 650 मिलियन से अधिक है, शेष आबादी समर्थन के लिए उन पर निर्भर है। इसमें गृहिणियां, बच्चे और बुजुर्ग जैसे व्यक्ति शामिल हैं। यह चित्रण भारतीय संस्कृति के भीतर आर्थिक असमानता की कठोर वास्तविकता को प्रभावी ढंग से उजागर करता है। वर्तमान समय में, देश में महिलाओं के लिए प्रगति करना और अपने परिवार के आर्थिक प्रयासों में समान योगदानकर्ता के रूप में सक्रिय रूप से शामिल

होना आवश्यक है। इस प्रयास में न केवल उनकी अपनी आर्थिक स्थिति को बढ़ाने की क्षमता है बल्कि यह आर्थिक असमानताओं को कम करने के साधन के रूप में भी काम करता है। आर्थिक एजेंडे में महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता को प्राथमिकता देने पर जोर दिया जाना चाहिए।

भारतीयों के रूप में, यह जरूरी है कि हम अपने दृष्टिकोण का पुनर्मूल्यांकन करें, यह पहचानते हुए कि हमारी उपभोग क्षमता की निरंतर वृद्धि को आर्थिक प्रगति के प्राथमिक निर्धारक के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। तर्क की उपरोक्त पंक्ति समाज के भीतर आर्थिक असमानता की अभिव्यक्ति में योगदान दे रही है। यह इस तथ्य के कारण है कि, एक तरफ, यह व्यक्तियों की वित्तीय तरलता को कम करता है, वहीं दूसरी तरफ, इसके परिणामस्वरूप कुछ चुनिंदा लोगों के बीच मुनाफे का संकेंद्रण होता है। औसत साधन वाले लोगों के लिए वित्तीय निवेश को प्राथमिकता देना आवश्यक है, जिससे उनकी वित्तीय सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। भारतीय अर्थव्यवस्था अब मुद्रास्फीति और एक जटिल कर संरचना की चुनौतियों से जूझ रही है, जिसने औसत नागरिक को एक ऐसी दुविधा में फंसा दिया है जिससे उनके सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद खुद को बाहर निकालना मुश्किल हो रहा है। इस परिस्थिति के परिणामस्वरूप, वह अपने बच्चों को इष्टतम शैक्षिक संसाधन प्रदान करने में असमर्थ

है, जिससे बेहतर आर्थिक अवसरों की उनकी संभावनाएँ कम हो जाती हैं। चाहे वह भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी), भारतीय प्रबंधन संस्थान (आईआईएम), या अन्य प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थान हों, उनकी शिक्षा की लागत अत्यधिक है, जो इसे आम जनता के लिए वहन करने योग्य नहीं है। आर्थिक असमानता अर्थव्यवस्था के कामकाज में एक महत्वपूर्ण बाधा उत्पन्न करती है और समाज के भीतर व्यक्तियों पर मनोवैज्ञानिक बोझ डालती है। सरकारें अपनी आर्थिक नीतियों में औद्योगीकरण को प्राथमिकता दे सकती हैं क्योंकि अर्थव्यवस्था की मांगों को पूरा करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। हालाँकि, व्यक्तियों के लिए इस प्रयास में सक्रिय रूप से योगदान देना उतना ही महत्वपूर्ण है।

भारत में निर्धनता के प्रमुख कारण

भारत में गरीबी के कारणों में सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक प्रभावों सहित कई प्रकार के कारक शामिल हैं।

- **भारत में निर्धनता के ऐतिहासिक कारण**

भारत में विदेशी प्रभुत्व की एक लंबी अवधि थी, जिसके दौरान शासक शक्तियों का प्राथमिक उद्देश्य देश के विकास को बढ़ावा देने के बजाय उसका शोषण करना था।

परिणामस्वरूप, भारत की जनता को स्थायी दरिद्रता का अनुभव हुआ। भारत को पहले "सोने की चिड़िया" कहा जाता था। विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा देश के संसाधनों को लूटा गया। देश के स्वर्ण भंडार की कमी के परिणामस्वरूप इसकी आबादी की आर्थिक भलाई में गिरावट आई।

- **भारत में निर्धनता के राजनीतिक कारण**

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, देश के राजनीतिक नेताओं ने भारत के अंदर व्यापक विकास को बढ़ावा देने के प्रति वास्तविक प्रतिबद्धता की कमी दिखाई। निर्वाचित अधिकारियों ने मतदाताओं के रूप में अपने मतदाताओं को प्राथमिकता दी, लेकिन सत्ता का पद संभालने के बाद अपने वास्तविक दायित्वों की उपेक्षा की। राजनीतिक दृढ़ संकल्प की कमी के कारण देश की आर्थिक स्थिति कमजोर बनी रही।

- **भारत में निर्धनता के सामाजिक कारण**

परंपराएँ, नकारात्मक सांस्कृतिक प्रथाएँ, व्यक्तिगत आराम प्राथमिकताएँ, सामाजिक असमानताएँ, भेदभावपूर्ण प्रथाएँ, पूर्वाग्रह और जाति-आधारित भेदभाव अतिरिक्त सामाजिक चर हैं जो व्यक्तियों की दरिद्रता में योगदान करते हैं। ये कारक न केवल काम

की संभावनाओं में बाधा डालते हैं बल्कि समग्र आय स्तर पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। अधिक जनसंख्या को अक्सर गरीबी में योगदान देने वाला प्राथमिक कारक माना जाता है। भारत में गरीबी का प्राथमिक कारण कुछ सामाजिक व्यवहारों को माना जा सकता है, जैसे दहेज प्रथा, धार्मिक उग्रवाद, अंध विश्वास और अशिक्षा।

निर्धनता एक आर्थिक समस्या है प्रमुख आर्थिक कारण हैं:-

- ✓ जनसंख्या वृद्धि
- ✓ आवश्यक वस्तुओं के मूल्य स्तर में वृद्धि
- ✓ बेरोजगारी
- ✓ तकनीक और कौशल कर अभाव
- ✓ प्रशिक्षण संस्थानों की कमी
- ✓ सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों कर अभाव
- ✓ उद्योगों का अभाव

निर्धनता उन्मूलन की आवश्यकता

गरीबी एक सामाजिक कलंक का प्रतिनिधित्व करती है जो बड़े पैमाने पर व्यक्तियों और समाज दोनों को प्रभावित करती है। आर्थिक अविकसितता और सामाजिक और सांस्कृतिक अविकसितता के बीच संबंध इस तथ्य से उत्पन्न होता है

कि गरीबी शिक्षा तक पहुंच को प्रतिबंधित करती है, अज्ञानता को बढ़ावा देती है और संज्ञानात्मक विकास में बाधा डालती है। गरीबी को लेकर सामाजिक कलंक को मिटाना एक महत्वपूर्ण मामला है जिस पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रचलित आर्थिक परिप्रेक्ष्य यह मानता है कि किसी भी स्थान पर गरीबी की उपस्थिति, समय और स्थान की परवाह किए बिना, समग्र समृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण और स्थायी खतरा पैदा करती है। यदि आर्थिक असमानता, जिसे अक्सर गरीबी कहा जाता है, का लगातार अस्तित्व लंबे समय तक बना रहता है, तो इससे सामाजिक वर्गों में शत्रुता पैदा होने की संभावना है, जो अंततः वर्ग-आधारित विरोध और हिंसा में परिणत होगी।

यह गरीबी के सार्वभौमिक और सतत उन्मूलन को सुनिश्चित करने की आवश्यकता को रेखांकित करता है, क्योंकि यह सामाजिक कल्याण, शांति और समृद्धि की उन्नति से संबंधित है।

बोध प्रश्न–2: निर्धनता उन्मूलन की आवश्यकता एवं निर्धनता के क्या कारण है?

....

निर्धनता दूर करने के उपाय

निर्धनता दूर करने के निम्न उपाय किये जाने चाहिये

- शिक्षा का प्रसार महत्वपूर्ण है, क्योंकि व्यक्तियों को न केवल साक्षरता के लिए प्रयास करना चाहिए, बल्कि एक व्यापक शिक्षा के लिए भी प्रयास करना चाहिए जो ज्ञान के अधिग्रहण और प्रचार को बढ़ावा दे।
- व्यक्तियों को तकनीकी प्रशिक्षण में संलग्न होने का अवसर दिया जाना चाहिए।
- शिक्षा, चिकित्सा देखभाल, बेरोजगारी लाभ और पेंशन जैसी आवश्यक सेवाओं के प्रावधान को जनता के लिए सुलभ बनाने के साथ, सामाजिक सुरक्षा की नींव को बढ़ाना जरूरी है।
- रोजगार की संभावनाओं की व्यवस्था सुनिश्चित करने की जरूरत है.
- व्यक्तियों के लिए लाभकारी रोजगार में शामिल होने के कई अवसर होने चाहिए, जो पारस्परिक सम्मान और गरिमा की विशेषता हो।
- यह अनुशंसा की जाती है कि ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी और बड़ी दोनों कृषि कंपनियाँ बनाई जाएँ।
- यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि गरीबी का सामना करने वाले लोगों, विशेष रूप से गरीबी सीमा से नीचे रहने वाले लोगों को कम और सस्ती

कीमतों पर गेहूं, दाल, चावल, शिक्षा, दवा और कपड़े जैसी मूलभूत आवश्यकताओं तक पहुंच प्राप्त हो।

- जनसंख्या विस्तार को नियंत्रित करने के लिए प्रयास करने की आवश्यकता है।
- उत्पादन तकनीक में आवश्यक परिवर्तन किए जाएँ।
- न्यूनतम आवश्यर्कता कार्यक्रम' को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए।
- देश के पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाए।
- 'स्वरोजगार के लिए सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ।

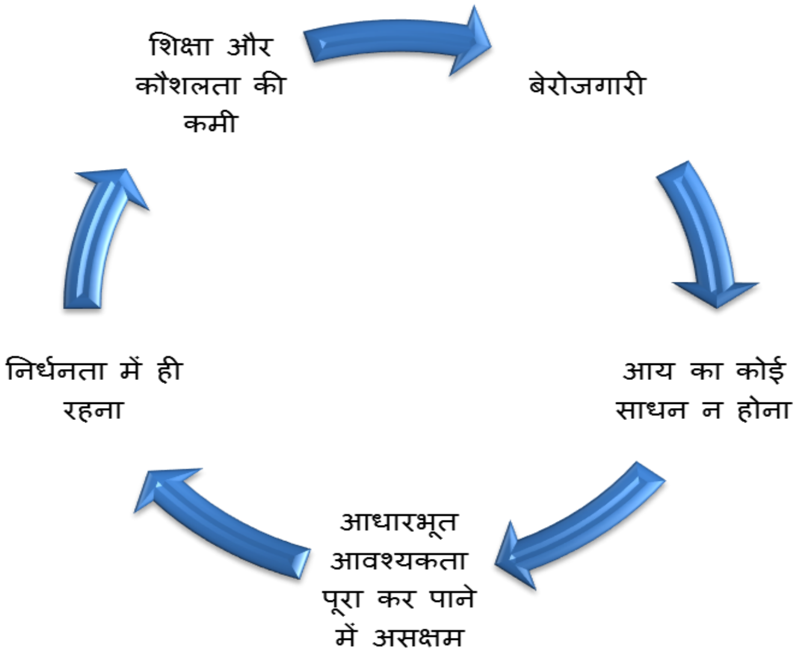

चित्र.1 निर्धनता के प्रभावी कारक

बोध प्रश्न-3ः आर्थिक विषमता एवं निर्धनता को दूर करने के उपायों की चर्चा कीजिए।

....

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत आर्थिक विकास दर पर असमानता के प्रतिकूल प्रभावों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इस अध्ययन में, हम असमानता और गरीबी के बीच परस्पर क्रिया पर विशेष जोर देते हुए सिद्धांत का पुनर्मूल्यांकन करते हैं। हम पूर्व निष्कर्षों को सफलतापूर्वक पुन: प्रस्तुत करते हैं जो आर्थिक विकास पर असमानता के हानिकारक प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं। फिर भी, हमारा विश्लेषण दर्शाता है कि उच्च स्तर की गरीबी वाले देशों में आर्थिक विकास पर असमानता का प्रतिकूल प्रभाव अधिक स्पष्ट हो जाता है, एक बार दोनों कारकों पर विचार किया जाता है। असमानता, गरीबी और आर्थिक विकास के बीच महत्वपूर्ण संबंध। इस अध्ययन के प्राथमिक निष्कर्षों से संकेत मिलता है कि यह दावा कि अलगाव में असमानता का आर्थिक विकास पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है, बहुत अधिक मुखर हो सकता है। असमानता की उपस्थिति, जब गरीबी के ऊंचे स्तर के साथ मिलती है, तो आर्थिक विकास की गति पर हानिकारक और सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **https://ncert.nic.in/textbook/pdf/ihss203.pdf**
2. **https://afeias.com/knowledge-centre/current-content/आर्थिक-विषमता-के-परिणाम**
3. https://jantaserishta.com/editorial/economic-inequality-how-inequality-will-end-1094820?infinitescroll=1
4. **https://www.scotbuzz.org/2022/04/bharat-mein-nirdhanta-ke-karan.html**
5. एलेसिना, ए. और पेरोटी, आर. (1996)। आय वितरण, राजनीतिक अस्थिरता और निवेश, यूरोपीय आर्थिक समीक्षा 40(6): 1203-1228।
6. अल्वेरेडो, एफ. और गैस्पारिनी, एल. (2015)। विकासशील देशों में असमानता और गरीबी में हालिया रुझान, ए. एटकिंसन और एफ. बॉर्गुइनन (संस्करण), हैंडबुक ऑफ इनकम डिस्ट्रीब्यूशन, वॉल्यूम में। 2, एल्सेवियर-नॉर्थ हॉलैंड, अध्याय 9, पीपी. 697-805।
7. गैलोर, ओ. और ज़ीरा, जे. (1993)। आय वितरण और व्यापक अर्थशास्त्र, आर्थिक अध्ययन की समीक्षा 60: 35-52।

8. हाल्टर, डी., ओच्स्लिन, एम. और ज़्वेइमुल्लर, जे. (2014)। असमानता और विकास: उपेक्षित समय आयाम, जर्नल ऑफ़ इकोनॉमिक ग्रोथ 19((1)): 81-1044

9. रैवेलियन, एम. (2016)। गरीबी का अर्थशास्त्र: इतिहास, मापन और नीति, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, एनवाई।

10.डीनिंगर, के., और स्क्वॉयर, एल. (1997)। 'आर्थिक विकास और आय असमानता: कड़ियों की पुनः जांच', वित्त और विकास, मार्च, 38-41।

11.फोसु, ए.के. (2009)। 'असमानता और गरीबी पर विकास का प्रभाव: उपसहारा अफ्रीका के लिए तुलनात्मक साक्ष्य', जर्नल ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज, 45(5): 726-745।

<u>बोध प्रश्नों के उत्तर</u>-1

1. आर्थिक विषमता से आशय किसी राष्ट्र में आय, धन व सम्पत्ति या संचित सम्पत्तियों के असमान वितरण से है।

2. किसी देश की अर्थव्यवस्था पर्याप्त रूप से प्रगति कर रही है कि नहीं इसका आकलन करने के लिए आर्थिक विषमता का आकलन भी आवश्यक है।

3. आर्थिक विषमता के कारणों में जन्मजात योग्यताओं में विभिन्नता, कर चोरी, मुद्रास्फीति, अवसरों की असमानता आदि है।

उत्तर बोध प्रश्न-2

1. आर्थिक अविकसितता और सामाजिक और सांस्कृतिक अविकसितता के बीच सम्बन्ध इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि गरीबी या निर्धनता समाज को हर क्षेत्र में पीछे धकेलती है। अंततः निर्धनता उन्मूलन अति आवश्यक है।

2. निर्धनता एक आर्थिक समस्या है जिसके प्रमुख कारण निम्न हैं-

   (1) जनसंख्या वृद्धि

   (2) मूल्य में वृद्धि

   (3) बेरोजगारी

   (4) तकनीक और कौशल का अभाव

   (5) प्रशिक्षण संस्थानों की कमी

   (6) उद्योगों का अभाव

उत्तर बोध प्रश्न-3

1. शिक्षा का प्रसार, निर्धनता दूर करने का मुख्य उपाय।

2. व्यक्तियों को तकनीकी प्रशिक्षण।

3. ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी-बड़ी दोनों कृषि कंपनियां बनायी जाये।

4. न्यूनतम आवश्यकता कार्क्रम को प्रभावी ढेंग से लागू किया जाय।

5. रोजगार की संभावनाओं की व्यवस्था समान रूप से सुनिश्चित की जाये।

1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. निर्धनता को परिभाषित कीजिए।
2. आर्थिक विषमता से आप क्या समझते हैं।
3. निर्धनता के प्रमुख कारण बताइये।
4. आर्थिक विषमता कैसे दूर किया जा सकता है।
5. कर चोरी रोकने के उपाय बताइये।
6. बेरोजगारी की समस्या पर निबन्ध लिखिए।
7. भारत में निर्धनता के राजनीतिक कारण क्या है?
8. निर्धनता के प्रमुख आर्थिक कारण क्या है?

खण्ड – 2

इकाई – 4

भारत में बेरोजगारी एवं अल्प रोजगार एवं रोजगार नीति

इकाई की रूपरेखा

2.4.0– उदेश्य

2.4.1– प्रस्तावना

2.4.2– बेरोजगारी की अवधारणा

2.4.3– बेरोजगारी के प्रकार

2.4.4– बेरोजगारी के अन्य प्रकार

2.4.5– भारत में बेरोजगारी की स्थिति

2.4.6– भारत में बेरोजगारी के कारण

2.4.7– भारत में बेरोजगारी निवारण के उपाय

2.4.8– भारत में पंचवर्षीय योजनाओ में बेरोजगारी उन्मूलन के प्रयास

2.4.9– भारत में बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रम

2.4.10–सारांश

2.4.11–बोध प्रश्न

2.4.12– कुछ उपयोगी पुस्तके

1.0– उद्देश्य–

1–प्रस्तुत ईकाई में हम बेरोजगारी की अवधारणा बारे जानने का प्रयास करेंगे।

2–प्रस्तुत ईकाई में हम बेरोजगारी के प्रकार के बारे में जानने का प्रयास करेंगे।

3–प्रस्तुत ईकाई में भारत बेरोजगारी के अन्य प्रकार के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

4–प्रस्तुत ईकाई में बेरोजगारी की प्रवृति के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

5–प्रस्तुत ईकाई में भारत में बेरोजगारी के कारणों का अध्ययन करेंगे।

6–प्रस्तुत ईकाई में भारत में बेरोजगारी निवारण के उपायों का अध्ययन करेंगे।

7–प्रस्तुत ईकाई में बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रम के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.4.1 प्रस्तावना–

वर्तमान में भारत विश्व की सबसे तेज विकास करने वाली अर्थव्यवस्थाओं में से एक है जो जनसंख्या में प्रथम स्थान रखती है जिसका जनसंख्या लाभांश लगभग 62 प्रतिशत है अर्थात कुल आबादी की 62 प्रतिशत जनसंख्या युवा होने के पश्चात भी उसका संपूर्ण लाभ नहीं प्राप्त हो पा रहा है इसका सबसे बड़ा कारण बेरोजगारी है भारत में बेरोजगारी के विभिन्न कारण है जैसे की क्षेत्रीय असंतुलन भी देखने को मिलता है देश में कुछ क्षेत्र में रोजगार के अवसर अधिक पाए जाते हैं जबकि कुछ क्षेत्रो में रोजगार के अवसर कम पाए जाते हैं किसी क्षेत्र में अधिकांश संगठित एवं औपचारिक रोजगार उपलब्ध है तो किसी क्षेत्र में अधिकांश असंगठित एवं अनौपचारिक रोजगार उपलब्ध है।

अतः बेरोजगारी का आशय है कि कोई व्यक्ति प्रचलित मजदूरी दर पर काम करने के लिए इच्छुक एवं तैयार है परंतु उसे काम प्राप्त नहीं होता है अर्थात जब कोई व्यक्ति प्रचलित पारिश्रमिक पर भी काम करने की इच्छुक एवं सक्षम व्यक्तियों को कोई कार्य नहीं प्राप्त होता तब ऐसे व्यक्ति को बेरोजगार कहते हैं तथा ऐसी समस्या को बेरोजगारी की समस्या कहा जाता है सामान्य रूप से इसमें 15 से 59 आयु वर्ग के लोगों व्यक्तियों को कार्यशील माना जाता यदि इन आयु वर्ग के व्यक्तियों को नियोजित रूप से कोई काम नहीं प्राप्त होता है तो उन्हें बेरोजगार माना जाता है।

2.4.2 बेरोजगारी की अवधारणा–

रोजगार की समस्या के वैज्ञानिक विश्लेषण में बेरोजगारी से आशय उस स्थिति से है जिसमें लोग मजदूरी की प्रचलित दरों पर काम करने के लिए इच्छुक हैं परंतु उनको काम करने का अवसर उपलब्ध नहीं होता है इस प्रकार की बेरोजगारी को अनैच्छिक बेरोजगारी कहते हैं जिसके अंतर्गत आने वाला व्यक्ति अपनी इच्छा से बेरोजगार नही रहता है यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है की बेरोजगारी या कार्यकारी जनसंख्या में केवल उन लोगों को शामिल किया जाता है जो काम करने योग्य अर्थात शारीरिक मानसिक दृष्टि से स्वस्थ एवं न्यूनतम आयु 18 वर्ष को प्राप्त कर चुके हो, काम करने की इच्छा रखता हो, वह वृद्ध, बीमार, अपाहिज, पागल, भिखारी आदि ना हो तथा किसी दूसरे प्रकार के उत्पादक कार्यों के लिए आयोग्य व्यक्ति कार्यकारी जनसंख्या की श्रेणी में नहीं आते है।

कार्यकारी जनसंख्या का एक भाग या तो रोजगार का इच्छुक नहीं होता या फिर प्रचलित दरों से अधिक मजदूरी पर काम करने को तैयार होता है इस प्रकार के लोगों को स्वेच्छा से बेरोजगार माना जाता है तथा ऐसी स्थिति को ऐच्छिक बेरोजगारी कहते हैं सामान्य रूप से बेरोजगारी शब्द का प्रयोग अनैच्छिक बेरोजगारी के अर्थ में ही किया जाता है अतः बेरोजगारी के अनेक आर्थिक एवं सामाजिक दुष्परिणाम होते हैं जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए बहुत गंभीर व घातक होते हैं जिसके व्यापक परिणाम होते हैं जैसे कि राष्ट्रीय उत्पादन की मात्रा में कम हो जाती है, पूंजी निर्माण में कमी आती है, व्यापार तथा व्यवसाय की प्रगति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, निर्धनता में वृद्धि होती है, सामाजिक सुरक्षा में कमी होती है जैसे की चोरी, डकैती, आदि की बुराइयों में वृद्धि होती है।

2.4.3– बेरोजगारी के प्रकार –

भारत में बेरोजगारी को प्रायः शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रो के आधार पर विभाजित करने पर शहरी बेरोजगारी के अंतर्गत औद्योगिक बेरोजगारी और शिक्षित बेरोजगारी आती हैं जबकि ग्रामीण बेरोजगारी के अंतर्गत अदृश्य बेरोजगारी और मौसमी बेरोजगारी आती है।

औद्योगिक बेरोजगारी –

औद्योगिक बेरोजगारी का आशय उन व्यक्तियों से है जो तकनीकी एवं गैर तकनीकी रूप से औद्योगिक कार्य करने की क्षमता तो रखते हैं परंतु उन्हें उनके कार्य क्षमता अनुरुप रोजगार प्राप्त नहीं होता है।

शिक्षित बेरोजगारी –

शिक्षित बेरोजगारी से अभिप्राय उन पढ़े लिखे व्यक्तियों से है जो शिक्षण–प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात भी अपनी योग्यता तथा कार्य दक्षता अनुरूप रोजगार नहीं प्राप्त कर पाते हैं उन्हें शिक्षित बेरोजगार कहा जाता है।

संरचनात्मक बेरोजगारी–

संरचनात्मक बेरोजगारी से तात्पर्य अवसंरचनात्मक कमी, औद्योगिक पिछड़ापन, पूंजी की कमी, तकनीकी पिछड़ापन इत्यादि से है जिससे कि किसी भी देश में उसके कार्यशील श्रम बल का अनुकूलतम उपयोग नहीं हो पाने के कारण वहां के लोगों को रोजगार उपलब्ध नहीं हो पता है।

प्रच्छन्न बेरोजगारी या छिपी हुई बेरोजगारी–

जब किसी कार्य में आवश्यकता से अधिक श्रम बल कार्यरत हो उस श्रम बल को कार्य से हटा लेने पर उसके उत्पादन में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आती है अर्थात उन श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता शून्य होती है ऐसी बेरोजगारी की स्थिति को प्रच्छन्न बेरोजगारी कहते हैं अधिकांशतया यह कृषि क्षेत्र में देखने को मिलती हैद्य अल्प रोजगार– जब किसी श्रमिक को जितने समय काम मिलना चाहिए उससे कम समय उसको काम मिलता है तो इस अवस्था को अल्प रोजगार की अवस्था कहते हैं इसे अर्थशास्त्रियों द्वारा दो भागों में दृश्य अल्प रोजगार तथा अदृश्य अल्प रोजगार में बांटा गया है दृश्य अल्प रोजगार जिसमें की किसी व्यक्ति को सामान्य घंटे से कम काम मिलता है अर्थात यदि किसी व्यक्ति को प्रतिदिन 8 घंटे की बजाय 3 घंटे ही काम मिले तो उसे दृश्य अल्प रोजगार कहते है तथा अदृश्य अल्प रोजगार के अंतर्गत किसी व्यक्ति को उसकी योग्यता एवं दक्षता अनुसार काम ना मिल पाने की स्थिति हैद्य जैसे की किसी इंजीनियरिंग पास व्यक्ति साफ–सफाई का काम करना पड़े।

घर्षणात्मक बेरोजगारी–

घर्षणात्मक बेरोजगारी का तात्पर्य किसी उत्पादन प्रक्रिया में तकनीकी या प्रौद्योगिकी परिवर्तन के कारण कार्य करने वाले व्यक्ति को शिक्षण एवं प्रशिक्षण के अकुशलता के चलते उसे कुछ दिनों के लिए बेरोजगार रहना पड़ता है ऐसी स्थिति को घर्षणात्मक बेरोजगारी कहते हैं यह बेरोजगारी प्रमुख रूप से अस्थाई प्रवृत्ति की होती है श्रमिक आवश्यक तकनीकी प्रशिक्षण प्राप्त कर पुनः रोजगार प्राप्त कर सकता है फिर भी निरंतर विकास के कारण इस प्रकार की बेरोजगारी सदैव कुछ ना कुछ श्रमिकों के साथ लगी रहती है जो कि लगभग स्थाई प्रवृत्ति को ही दिखाती हैद्य जैसे की कोई व्यक्ति टाइपराइटर पर टाइपिंग करता है और उसे बाद में कंप्यूटर पर टाइपिंग करने के लिए दे दिया जाए इस दौरान उससे कुछ समय के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए बेरोजगार रहना पड़ सकता है।

मौसमी बेरोजगारी–

यह जलवायु में परिवर्तन के कारण वस्तुओं की मांग और आपूर्ति में असंतुलन के फलस्वरुप श्रमिकों को बेरोजगार रहना पड़ता है जैसे की स्वेटर एवं कंबल बनाने वाले श्रमिकों को गर्मी के दिनों में बेरोजगार रहना पड़ता है या कृषि व्यवसाय से संबंधित श्रमिकों को फसल कटने के पश्चात एवं नई फसल बोने तक के दिनों में बेरोजगार रहना पड़ता है।

खुली बेरोजगारी–

जिसका अभिप्राय ऐसी बेरोजगारी से है जिसमें श्रमिकों के पास काम करने की योग्यता क्षमता एवं इच्छा होने के पश्चात उन्हें कुछ समय तक कोई रोजगार प्राप्त नहीं होता है जैसे की अधिकांशत ग्रामीण क्षेत्रो से शहरी क्षेत्रो में श्रमिक पलायन करते हैं जो की कुछ समय के लिए वह बेरोजगार रहते है खुली बेरोजगारी की श्रेणी में आते है।

चक्रीय बेरोजगारी–

यह बेरोजगारी अर्थव्यवस्था में चक्रीय उतार–चढ़ावों के कारण आर्थिक क्रियाकलापों में परिवर्तन अर्थात अर्थव्यवस्था में मंदी के परिणाम स्वरूप रोजगार अवसरों में कमी आती है उसे चक्रीय बेरोजगारी कहते हैं अधिकांशतया पूंजीवादी अथवा बाजार तंत्र पर आधारित विकसित देशों में देखी जाती है जिसकी प्रकृति अस्थाई होती है जो की आर्थिक क्रियाओ में सुधार के पश्चात समाप्त हो जाती है।

योजना आयोग द्वारा स्वीकृत बेरोजगारी के प्रकार –

योजना आयोग द्वारा स्वीकृत बेरोजगारी अपनाई गई जिसका आकलन राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन करता है निम्नलिखित है

सामान्य स्थिति बेरोजगारी–

यह बेरोजगारी के दैनिक आंकड़ों को प्रदर्शित करता है जिसमें व्यक्तियों की सामान्य गतिविधियों के बारे में जानकारी एकत्रित करने का प्रयास किया जाता है है कि सर्वेक्षण में शामिल व्यक्तियों में कितने लोगों को रोजगार प्राप्त हुआ है कितने लोगों को रोजगार प्राप्त नहीं हुआ है जिसमें 365 दिनों में से कोई व्यक्ति 183 दिन या इससे अधिक रोजगार प्राप्त करता है तो उसे रोजगार प्राप्त के रूप में माना जाएगा यदि कोई व्यक्ति 183 दिनों से कम रोजगार प्राप्त करता है तो वह बेरोजगारी की श्रेणी में आएगा।

साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी–

इसमें राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा किसी व्यक्ति के सप्ताह के सामान्य गतिविधियों को प्रदर्शित करता है जिसमें की कोई व्यक्ति किसी भी दिन एक घंटे भी कम प्राप्त करता है तो उसे रोजगार में मान लिया जाएगा तथा वह बेरोजगारी कि श्रेणी में नहीं आएगा।

दैनिक स्थिति बेरोजगारी–

इसके अंतर्गत राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा सप्ताह के 7 दिनों में से प्रतिदिन की गतिविधियों एवं कार्यों का अध्ययन किया जाता है अर्थात एक निश्चित समय दर है जो प्रति सप्ताह बेरोजगारों के श्रम दिनों का प्रति सप्ताह कुल श्रम दिनों से अनुपात है जिसमें यदि कोई भी व्यक्ति किसी दिन भी 1 घंटे से अधिक एवं 4 घंटे से कम कम प्राप्त करता है तो उसे आधे दिन कार्यरत माना जाएगा और यदि 4 घंटे से अधिक काम प्राप्त करता है तो वह पूरे दिन कार्यरत माना जाएगाद्य इसे बेरोजगारी की सर्वोत्तम माप माना जाता है क्योंकि इसमें खुली तथा आंशिक सभी प्रकार की बेरोजगारी शामिल हो जाती है।

2.4.4 भारत में बेरोजगारी की स्थिति–

भारत में बेरोजगारी की समस्या आर्थिक नियोजन के समय से ही विद्यमान थी जिसके समाधान के लिए भारत की प्रथम चार पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार विकास के लक्ष्यो पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया और यह माना गया कि आर्थिक विकास के साथ रोजगार का सृजन

भी होता रहेगा परन्तु ऐसा ना हो पाने के कारण वर्ष 1956 में भारत में बेरोजगारी 5 मिलियन से बढ़कर वर्ष 1973–74 में भारत में बेरोजगारी 10 मिलियन तक पहुंच गई जिससे निपटने के लिए पांचवी पंचवर्षीय योजना में रोजगारपरक संवृद्धि को संवृद्धि रणनीति के रूप में स्वीकार किया गया जिससे कि बेरोजगारी को दूर किया जा सके जिसके लिए 1973 में जगदीश भगवती की अध्यक्षता में भगवती कमेटी बनायी गई।

बेरोजगारी की समस्या का समाधान करने के लिए छठी पंचवर्षीय योजना में आई.आर.डी.पी, एन.आर.ई.पी, ट्राईसेम, आर.एल.ई.जी.पी. जैसे अनेक कार्यक्रम भारत सरकार द्वारा चलाए गए तथा छठी पंचवर्षीय योजना के पश्चात सभी योजनाओं में बेरोजगारी की समस्या के समाधान पर विशेष ध्यान दिया गया जिसके लिए 2004 में रोजगार प्राप्ती को कानूनी अधिकार का दर्जा देने के लिए महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण गारंटी एक्ट लाया गया।

भारत में हेड काउंट को ही बेरोजगारी के दर के रूप में स्वीकार किया जाता है पर बेरोजगारी की सही स्थिति स्पष्ट करने के लिए श्रम भागीदारी अनुपात तथा बेरोजगारी दर आवश्यक है।

श्रम भागीदारी दर – श्रम भागीदारी दर को अर्थव्यवस्था में विद्यमान कार्यशील जनसंख्या 16 वर्ष से 64 वर्ष के आयु वर्ग में जो वर्तमान में कार्यरत हैं या रोजगार की तलाश कर रहे हैं के रूप में परिभाषित करते हैं।

बेरोजगारी की दर – यदि हम बेरोजगार लोगों को श्रम बाजार में काम के लिए आए हुए लोगों के प्रतिशत के रूप में व्यक्त करें तो उसे हम बेरोजगारी की दर कहेंगे।

परंपरागत रूप में पीरियाडिकल लेबर फोर्स रिपोर्ट 2018 के अनुसार पहले बेरोजगारी दर 2 से 3 प्रतिशत रही है जिसे राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन भी मानता था जो रोजगार तथा बेरोजगारी से संबंधित सभी संकेत पर प्रकाश डालता है पी.एल.एफ.एस. का गठन अमिताभ कुंडू की संस्तुतियों पर किया गया जिसे 2017 में राष्ट्रीय सांख्यिकी ऑफिस द्वारा स्वीकार किया गया यह सर्वेक्षण ग्रामीण परिवारों के संबंध में वार्षिक रूप से तथा शहरी परिवारों के लिए त्रैमासिक रूप से आंकड़े एकत्रित करता है जिसका उद्देश्य रोजगार तथा बेरोजगार संबंधित प्रमुख संकेत को श्रम जनसंख्या अनुपात के द्वारा श्रम भागीदारी दर तथा बेरोजगारी दर का अनुमान लगाना है।

वर्ष 2018–19 के रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2017–18 में बेरोजगारी की दर 6.5 प्रतिशत थी जो की वर्ष 2018–19 में घटकर 5.8 प्रतिशत हो गई इसमें शहरी बेरोजगारी दर वर्ष 2018–19 में 7.7 प्रतिशत रही जो की वर्ष 2017–18 में 7.8 प्रतिशत रही थी द्य इस अवधि में ग्रामीण बेरोजगारी दर जो वर्ष 2017–18 में 5.3 प्रतिशत थी जो घटकर वर्ष 2018–19 में 5 प्रतिशत हो गई।

2.4.5 भारत में बेरोजगारी के कारण–

भारत में रोजगार विहीन संवृद्धि–

स्वतंत्रता पश्चात से भारत में आर्थिक संवृद्धि दर काफी कम रही जिसका प्रभाव रोजगार संवृद्धि दर पर भी रहा है दीपक नायर के अनुसार यह रोजगार विभिन्न संवृद्धि सहयोग मात्र नहीं थी यह उन आर्थिक नीतियों का परिणाम थी जिसमें पूरा ध्यान संवृद्धि पर था लेबर ब्यूरो के बेरोजगारी सर्वेक्षण के आंकड़ों के अध्ययन से विनोद अब्राहम ने निष्कर्ष निकला की 3 वर्षों की अवधि में वर्ष 2013–14 से वर्ष 2015–16 के बीच 37.4 लाख से लेकर 53 लाख रोजगार हानि हुई स्वतंत्रता के बाद शायद पहली बार हुआ कि रोजगार की मात्रा में गिरावट हुई है हालांकि ऐसे चरण अवश्य आए हैं जब रोजगार संवृद्धि की दर बहुत कम रही है 1993–94 से 1999–2000 के बीच लगभग एक प्रतिशत प्रतिवर्ष तथा वर्ष 2004–05 से वर्ष 2011–12 के बीच एक प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से भी कम रही थीद्य महेश व्यास के अनुसार वर्ष 2016–17 के आंकड़ो के अनुसार विमुद्रीकरण तथा वस्तु सेवा करके चलते रोजगार सृजन में शिथिलता रही थी वर्ष 2016 में रोजगार में लगे लोगों की संख्या 406.50 मिलियन थी जो 2017 में 405 मिलियन से भी कम रह गई जो कि संभवतः विमुद्रीकरण का परिणाम रहा होगा।

जनसंख्या में वृद्धि–

स्वतंत्रता पश्चात् से ही भारत में मृत्यु दर में तेजी से कमी आई है जिससे कि देश में तीव्र जनसंख्या वृद्धि के परिणाम स्वरूप श्रम की पूर्ति में भी तेजी से वृद्धि हुई है लेकिन अर्थव्यवस्था का विकास उस तीव्रता से नहीं हुआ है जिससे की रोजगार की बढ़ती मांगों को पूरा कर पाना संभव हो सके तथा ग्रामीण जनसंख्या के तीव्र वृद्धि से कृषि में प्रच्छन्न बेरोजगारी बढ़ी है शहरी क्षेत्र में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या भी तेजी से बढ़ी है साथ ही साथ शहरों में स्थाई रूप से निवास करने वाले लोगों के रोजगार के अवसरों में कमी हुई है तथा गांव से शहरों की ओर पलायन करने वाले ग्रामीणों को भी बेरोजगारी की समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

अनुपयुक्त तकनीक का प्रयोग–

भारत में श्रम प्रधान देश होते हुए भी भारतीय औद्योगिक क्षेत्रो द्वारा विकसित देशों की तर्ज पर पूंजी प्रधान तकनीक अपनाने के कारण बेरोजगारी की समस्या बढ़ी है क्योंकि पूंजीवादी देश के तर्ज पर स्वचालित ऑटोमेटिक मशीनों का प्रयोग भारत में बेरोजगारी में वृद्धि का कारण बना है।

दोष पूर्ण शिक्षा प्रणाली–

भारत में शिक्षा प्रणाली का दोषपूर्ण होना भारत में बढ़ती बेरोजगारी के मुख्य कारणों में से एक है क्योंकि भारत में मुख्यतः परंपरागत शिक्षा पर जोर दिया जाता है जिसका की व्यवहारिक जीवन में उपयोग बहुत कम होता है तथा तकनीकी शिक्षा में जोर ना दिए जाने के

कारण मानव श्रम का सम्पूर्ण विकास नहीं हो पा रहा हैद्य मनुष्य के लोगों को व्यापक स्तर पर रोजगार प्राप्त हो सकेद्य गुर्नार मिर्डल के अनुसार कला, कॉमर्स, विज्ञान ऐसी शिक्षा है जिसका उपयोग व्यवहारिक जीवन में नहीं है यह लोग न केवल अल्प शिक्षित है बल्कि सच पूछा जाए तो उनकी शिक्षा गलत प्रकार की है।

2.4.6 भारत में बेरोजगारी के अन्य कारण–

भारत के लघु एवं कुटीर उद्योगों में लगातार कमी हुई है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि आधारित उद्योगों का संचालन ना हो पाना।

भारत में रोजगारपरक कौशल, तकनीक एवं प्रशिक्षण का अभाव।

स्वरोजगार की इच्छा का अभाव तथा लोगों में उद्यमशीलता का अभाव।

कृषि अर्थव्यवस्था की एक मौसमी व्यवसाय के रूप में होने के कारण।

बचत एवं निवेश का निम्न स्तर होना।

राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव ।

परंपरागत हस्तकला उद्योग का व्यवसायीकरण ना हो पाना।

रोजगार सृजन कार्यक्रमों एवं योजनाओं का सुचारू रूप से क्रियान्वयन ना हो पाना।

आय तथा संपत्ति के आसमान वितरण के कारण वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन में लगातार होती कमी।

श्रमिकों में तकनीकी प्रशिक्षण का अभाव आदि कारण है।

2.4.7 भारत में बेरोजगारी दूर करने के उपाय–

भारत में बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए पूंजी निर्माण की दर को बढ़ाया जाना चाहिए जिससे कि आर्थिक विकास तीव्र गति से वृद्धि कर सके जिससे की रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हो ।

रोजगार वृद्धि के लिए उपभोग वस्तुओं से संबंधित उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

ऐसी तकनीक का प्रयोग होना चाहिए जो उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ श्रम प्रधान भी हो।

लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाए एवं इसके लिए लोगों को पर्याप्त प्रशिक्षण एवं संसाधन मुहैया कराया जाए।

कौशल विकास हेतु संचालित कार्यक्रमों का क्रियान्वयन सुचारू रूप से कराया जाए ।

कृषि क्षेत्र में बहु फसलों को बढ़ावा दिया जाए जिससे कि कृषि मौसम आधारित व्यवसाय बनकर न रह जाए साथ ही साथ वाणिज्यिक या व्यावसायिक फसलों को बढ़ावा दिया जाए।

पशुपालन मत्स्य पालन जैसी गतिविधियों का प्रशिक्षण एवं प्रोत्साहन दिया जाए।

स्वरोजगार में कार्यरत लोगों की सहायता पूंजी एवं प्रशिक्षण के द्वारा की जाए।

रोजगार संबंधित योजनाओं का क्रियान्वयन सुचारू रूप से किया जाए।

औद्योगिक संसाधनों का वितरण एवं विकेंद्रीकरण किया जाए जिससे कि बड़े शहरों में बेरोजगारी की समस्या पर नियंत्रण किया जा सके।

सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजी गहन उत्पादन विधियों के स्थान पर श्रम गहन उत्पादन विधियों का प्रयोग किया जाए।

2.4.8 भारत में पंचवर्षीय योजनाओ में बेरोजगारी उन्मूलन के प्रयास –

भारत में आयोजन काल के आरंभ से ही बेरोजगारी समस्या के समाधान के लिए तथा रोजगार सृजन के लिए आयोजकों ने इस पर ध्यान देते हुए कहा कि तेज आर्थिक संवृद्धि तथा श्रम गहन क्षेत्रो जैसे लघु एवं कुटीर उद्योगों पर विशेष ध्यान देने से बेरोजगारी की समस्या स्वतः ही समाप्त हो जाएगी परंतु ऐसा नहीं हुआ उदाहरण के तौर पर हम दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह अनुमान लगाया गया कि पहली पंचवर्षीय योजना में जो बेरोजगारो की संख्या 50 लाख थी वह द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान बेरोजगारों की संख्या में 15 से 20 लाख प्रतिवर्ष की वृद्धि अपेक्षित थी जिसमें दूसरी पंचवर्षीय योजना में 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष आर्थिक संवृद्धि का लक्ष्य रखा गया और यह अनुमान लगाया गया कि इस संवृद्धि दर को प्राप्त करने पर पिछले सभी बेरोजगारों को 10 वर्ष की अवधि में रोजगार प्राप्त हो जाएगा इससे यह स्पष्ट होता है कि रोजगार को विकास का लक्ष्य तो माना गया परंतु केंद्रीय लक्ष्य के रूप में इसे स्वीकार नहीं किया गया ना ही इसे पूरी तरह से अवशिष्ट माना गया और यह प्रयास निरंतर जारी रहा की यह आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण तत्व बना रहे।

रोजगार के प्रति तीसरे तथा चौथी योजना में भी इसी प्रक्रिया को अपनाया गया परंतु रोजगार के संबंध में उपलब्धियां बहुत ही कम रही जिसमें सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि 3.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही जबकि रोजगार में वृद्धि तो 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही तथा श्रम शक्ति में वृद्धि इससे अधिक 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहे इसके परिणाम स्वरूप बेरोजगारों की संख्या जो 1956 में लगभग 50 लाख थी वह वर्ष 1973–74 में बढ़कर एक करोड़ हो गईद्य तत्पश्चात आर्थिक आयोजकों के लिए इस बेरोजगारी की वृद्धि के कारण अपने विचारों में परिवर्तन करने पड़े तथा आयोजको ने बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए पांचवी पंचवर्षीय योजना में आर्थिक

संवृद्धि को रोजगार युक्त बनाने तथा गरीबी व बेरोजगारी निदान के लिए कुछ विशिष्ट कार्यक्रमों शुरू करने पर जोर दिया।

छठी पंचवर्षीय योजना में रोजगार नीति के दो उद्देश्य निर्धारित किए गए जिसमें अल्प रोजगार की बड़े पैमाने पर पाई जाने वाली समस्या का निदान तथा दीर्घकालीन बेरोजगारी की समस्या को कम करने का प्रयास इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए रोजगार उन्मुक्त आर्थिक विकास की आवश्यकता थी जिसके लिए कुछ रोजगार कार्यक्रम चलाए गए जैसे की समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ऑपरेशन फ्लड द्वितीय, डेरी प्रोजेक्ट, फिश फार्मर्स डेवलपमेंट एजेंसी, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण युवकों को रोजगार के लिए प्रशिक्षण योजना आदि कार्यक्रम चलाए गए जिससे कि अस्थाई तौर पर ही राहत प्रदान की जा सके।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में रोजगार के नए अवसर प्रदान करने पर भी काफी जोर दिया गया जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के अंतर्गत मजदूरी रोजगार तथा स्वरोजगार कार्यक्रम चलाया गया।

आठवीं पंचवर्षीय योजना में रोजगार वृद्धि का लक्ष्य 2.6 प्रतिशत से 2.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया ताकि 10 वर्ष की अवधि में लगभग पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त की जा सके जिसे प्राप्त करने के लिए रोजगार लोच अधिक वाले क्षेत्रों व उप क्षेत्रो के पक्ष में उत्पाद संरचना को पुनः व्यवस्थित करने पर जोर दिया गया जिसमें कृषि का क्षेत्रीय विविधीकरण करके बेकार पड़ी भूमि का विकास कर ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कृषि कार्यों में रोजगार सृजन के अवसर में वृद्धि करने का प्रयास करके विकेंद्रित उद्योग क्षेत्र के विकास पर तथा संगठित व सेवा क्षेत्र के विकास पर जोर दिया गया।

नवी पंचवर्षीय योजना में उन क्षेत्रों पर जोर दिया गया जो श्रम गहन प्रौद्योगिकी अपनाते है तथा उन क्षेत्रों पर जहां बेरोजगारी एवं अल्प रोजगार अधिक है आदि पर विशेष जोर दिया गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में अतिरिक्त रोजगार अवसर उपलब्ध कराने के लिए कृषि व सम्बद्ध व्यवसायों लघु एवं मध्यम माध्यमों ग्रामीण गैर–कृषि क्षेत्रो तथा शिक्षा व स्वास्थ्य जैसे कुछ सामाजिक सेवा क्षेत्र के विकास पर जोर दिया गया तथा नीतियों में इस प्रकार परिवर्तन किया गया की जिससे निर्माण, पर्यटन, संचार व सूचना प्रौद्योगिकी तथा वित्तीय सेवाओं जैसी उच्च श्रम गहनता वाली गतिविधियों का तेजी से प्रसार हो सके।

11वीं पंचवर्षीय योजना में भारत सरकार द्वारा 5 वर्षो में 5 करोड़ 80 लाख रोजगार अवसर प्रदान करने की बात कही गई जिसमें एक करोड़ 70 लाख रोजगार व्यापार, होटल, वस्त्र क्षेत्र में एक करोड़ 20 लाख उद्योगों से तथा एक करोड़ 20 लाख अवसंरचना निर्माण के द्वारा प्रदान करने का प्रयास किया जायेगा।

12वीं पंचवर्षीय योजना में विनिर्माण क्षेत्र को विकास का महत्वपूर्ण माध्यम बनाने पर जोर दिया गया जिससे कि वर्ष 2022 तक 100 मिलियन रोजगार सृजित किया जा सके साथ ही साथ श्रम प्रधान विनिर्माण क्षेत्रों जैसे– टेक्सटाइल, कपडा, चमड़ा एवं फुटवियर, रत्न व जवाहरात, खाद्य संसाधनो इत्यादि उद्योगों में रोजगार की व्यापक अवसर सृजित किए जाएंगे जिसके लिए योजनाओ के द्वारा कौशल विकास पर जोर दिया गया जिससे कि युवा श्रम लाभ का सदुपयोग किया जा सके।

2.4.9 भारत में बेरोजगारी उन्मूलन मुख्य योजना कार्यक्रम–

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार का कार्यक्रम– इसे राज्य सरकार द्वारा छठी पंचवर्षीय योजना में प्रारंभ कर सातवीं पंचवर्षीय योजना तक लागु रखा गया जिसमें ग्रामीण जनसंख्या जो की मजदूरी पर निर्भर करते हैं तथा जिनके पास साल की कुछ महीनो में कोई काम नहीं होता है इन जैसे लोगों के लिए विकास परियोजनाओं और विशिष्ट वर्गों की रोजगार सृजन योजनाओं में सामंजस्य बनाया गया कि रोजगार के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्र का विकास भी हो सके जिसमें केंद्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा संसाधनो की हिस्सेदारी 50रू50 की होगीद्य जिसमें केंद्र सरकार द्वारा राज्यों को उपलब्ध संसाधनों का आवंटन 50 प्रतिशत खेतिहर मजदूरों एवं सीमांत किसानों को दिया जाना था तथा 50 प्रतिशत संसाधन प्रत्येक राज्य में गरीबों को दिया जाता था इस कार्यक्रम के अंतर्गत उतनी ही मजदूरी निर्धारित की जाती थी जितनी इन क्षेत्रों में कृषि की न्यूनतम मजदूरी होती थी इसे अन्त में 1989–90 में जवाहर रोजगार योजना में सम्मिलित कर दिया गया।

खेतिहर मजदूर रोजगार गारंटी कार्यक्रम–

खेतिहर मजदूर रोजगार गारंटी कार्यक्रम को 1983 में प्रारंभ किया गया जिसमें भूमिहीन श्रमिकों के लिए रोजगार सृजन किया जा सके जिसका उद्देश्य मजदूर परिवारों में कम से कम एक सदस्य को लगभग साल में 100 दिन रोजगार प्रदान करना था इस कार्यक्रम के द्वारा खेतिहर मजदूरों को रोजगार प्रदान करने के उद्देश्य से आधारिक अवसंरचना के निर्माण के कार्यक्रमों को अपनाने का लक्ष्य था उदाहरण के तौर पर अनुसूचित जातियों जनजातियों तथा मुक्त बंधुवा मजदूरों के लिए इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत मकान का निर्माण करना, सामाजिक वानिकी व फॉर्म वानिकी के कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालय का निर्माण करना, लघु सिंचाई योजनाओं, भूमि जल संरक्षण, ग्राम तालाबों का निर्माण, भूमि का विकास तथा बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना, प्राथमिक स्कूलों के लिए भवनों का निर्माण, गांव को जोड़ने वाली सड़कों का निर्माण आदि कार्यो को किया जाता था जिसे केंद्र सरकार द्वारा शत–प्रतिशत वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराए जाते थे एवं राज्य सरकारों द्वारा इसका क्रियान्वयन किया जाता थाद्य इसे 1 अप्रैल 1989 को जवाहर रोजगार योजना में सम्मिलित कर दिया गया।

ग्रामीण युवक स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना–

इस योजना को 1979 में प्रारंभ किया गया जिसका उद्देश्य प्रतिवर्ष 2 लाख ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार का प्रशिक्षण देना था जिसके अंतर्गत प्रत्येक विकासखंड से 40 युवकों को प्रशिक्षण के लिए चुना जाना था इनमें से केवल वही युवक चुने जाने थे जिनकीं वार्षिक आय 3500 से कम आय वाले ग्रामीण परिवारों से थे जिसमें 33 प्रतिशत कम से कम ग्रामीण युवतियों को होना जरूरी था इसे छठी पंचवर्षीय योजना में 10.05 लाख युवाओं को प्रशिक्षण देने का लक्ष्य रखा गया था लेकिन वास्तव में 9.40 लाख युवओं को ही प्रशिक्षण दिया जा सका प्रशिक्षण पाने वालों में 34.8 प्रतिशत महिलाएं 31.5 प्रतिशत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की थी तथा अप्रैल 1999 में इस योजना को स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना में सम्मिलित कर दिया गया।

जवाहर रोजगार योजना–

यह योजना ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों की एक महत्वपूर्ण योजना थी जिसका प्रारंभ 1989–90 में हुआ इसमें राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा खेतिहर मजदूर रोजगार गारंटी कार्यक्रम को शामिल किया गया था इसका मुख्य उद्देश्य इस योजना में उन ग्रामीण परिवारों को सहायता पहुंचाने का लक्ष्य था जिन्हें वर्ष में लगभग 6 महीने तक ही काम उपलब्ध हो पता है तथा वर्ष के बाकी 6 महीने बेरोजगार रहते हैं ऐसे परिवारों के कम से कम एक सदस्य को वर्ष में 50 से 100 दिन तक रोजगार उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया जिसमें से 30 प्रतिशत महिलाओं के लिए रोजगार आरक्षित किए गए तथा ग्रामीण पंचायत कों पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई जिससे कि वह रोजगार योजना को पंचायतो द्वारा चला सके।

इसके लिए प्रत्येक ग्राम पंचायतो को जिसकी आबादी 3000 से 4000 है वर्ष में 80 हजार से 1 लाख ₹ रुपये तक की सहायता धनराशि प्रदान करने की व्यवस्था की गई इसके लिए राज्यों को साधनों का आवंटन ग्राम पंचायतो में निवास कर रही गरीबी रेखा से नीचे जनसंख्या के अनुपात, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा खेतिहर मजदूरों की जनसंख्या के अनुपात तथा कृषि उत्पादकता के स्तर के आधार पर किया जाता थाद्य तथा इस रोजगार कार्यक्रम को क्रियान्वित करने का दायित्व ग्राम पंचायतो को सौपा गया क्योंकि पंचायती राज संस्थाओं के मजबूत होने तथा उनके प्रत्यक्ष चुनाव होने से समाज के गरीब वर्गों को लाभ पहुंचने की पर्याप्त संभावना रहती थीद्य अप्रैल 1999 में जवाहर रोजगार योजना को पुनर्गठित किया गया एवं इसे जवाहर ग्राम समृद्धि योजना का नाम दिया गया।

रोजगार आश्वासन योजना –

रोजगार आश्वासन योजना को अक्टूबर 1993 में आरम्भ कर 1,772 पिछडे विकासखंडो में प्रारंभ किया गया इन विकासखंडो में सूखाग्रस्त, रेगिस्तानी पहाड़ी और आदिवासी क्षेत्रों को शामिल किया गया जिसमें सभी 5,448 ग्रामीण विकासखण्डो तक इस योजना का लाभ पहुंचाया गया जिसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण मजदूरी रोजगार की भारी कमी के समय गरीबी रेखा के नीचे ग्रामीण गरीबों के लिए मजदूरी रोजगार के अतिरिक्त अवसर सृजित करना थाद्य वर्ष 1999–2000 में इस रोजगार कार्यक्रम को पुनर्गठित करके सितंबर 2001 में इसे जवाहर ग्राम समृद्धि योजना में मिलाकर संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना का गठन किया गया ।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम –

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का प्रारम्भ 1978–79 में छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान प्रारंभ किया गया जिसका मूल उद्देश्य राष्ट्रीय स्तर पर गरीबी उन्मूलन रखा गया यह एक व्यापक स्वरोजगार कार्यक्रम था जिसमें प्राथमिक क्षेत्र में पशुपालन, रेशम कीट पालन एवं भूमि आधारित गतिविधियां द्वितीयक क्षेत्र में बुनाई, हथकरघा, हस्तशिल्प तथा तृतीयक क्षेत्र में सेवा क्षेत्र और व्यावसायिक गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया गया जिसके अंतर्गत सभी विकासखंडों में एक करोड़ 50 लाख परिवारों को लाभ पहुंचाने का लक्ष्य रखा गयाद्य जिसमें प्रत्येक विकासखंड में औसतन 3,000 परिवारों की सहायता प्राप्त होने का अनुमान था और परिवारों को संसाधन का आवंटन सरकारी व संस्थागत साख के माध्यम से उपलब्ध कराने और इनमें औसतन सहायता साख अनुपात 1:2 का था।

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना–

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना का आरम्भ अप्रैल 1999 में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को कुछ अन्य संबंधित कार्यक्रमों के साथ मिलाकर एक नए स्वरोजगार कार्यक्रम के रूप में संचालित किया गया इसका उद्देश्य ग्रामीण निर्धनों के लिए स्वरोजगार उपलब्ध कराना था जिसके अंतर्गत स्वरोजगार में संलग्न लोगों को बैंकों से ऋण व सरकारी धनराशि की सहायता पहुंचना था ताकि वह गरीबी रेखा को पार कर सकेद्य स्वर्ण जयंती ग्रामीण स्वरोजगार योजना को राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के रूप में पुनर्गठित किया गया जिसको बाद में राष्ट्रीय आजीविका मिशन के नाम से जाना गयाद्य राष्ट्रीय आजीविका मिशन का उद्देश्य गरीब परिवारों को लाभदायक स्वरोजगार तथा कौशल मजदूरी वाले रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने में सक्षम बनाना तथा गरीबी को कम करना था ।

संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना–

संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना को सितंबर 2001 में इसे जवाहर ग्राम समृद्धि योजना और रोजगार आश्वासन योजना को मिलाकर प्रारंभ किया गया जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में अतिरिक्त मजदूरी रोजगार की व्यवस्था करना जिससे ग्रामीणों को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध हो सके और

ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक सामाजिक और आर्थिक आधारिक संरचना का निर्माण करना साथ ही साथ यह सुनिश्चित करना कि इस कार्यक्रम का लाभ उन सभी ग्रामीण गरीब उठा सकेद्य जो गांव के आस–पास शारीरिक और कार्यकुशल काम करने के लिए तत्पर हों जिसे पंचायती राज संस्थाओं द्वारा लागू करने का प्रावधान किया गया।

स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार–

स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना को दिसंबर 1997 में शहरी रोजगार और गरीबी निवारण की विभिन्न योजनाओं के स्थान पर आरंभ किया गया एवं 1 अप्रैल 2009 को इस योजना का पुनर्गठन किया गया इस योजना में शहरी क्षेत्र के बेरोजगारों व अल्प बेरोजगार के लोगों को लाभकारी रोजगार प्रदान करने की व्यवस्था की गई जिसका मुख्य उद्देश्य अतिरिक्त सामाजिक आर्थिक रूप से उपयोगी सार्वजनिक संपत्तियों के निर्माण कार्य में शहरी गरीबों को मजदूरी उपलब्ध कराने की भी व्यवस्था थी पुनर्गठित स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना के पांच भागों में विभाजित थाद्य शहरी स्वरोजगार कार्यक्रम, शहरी स्त्री स्वरोजगार कार्यक्रम, शहरी गरीबों में रोजगार प्रोत्साहन के लिए कौशल प्रशिक्षण, शहरी मजदूर रोजगार कार्यक्रम, शहरी सामुदायिक विकास नेटवर्क कार्यक्रम ।

2.4.10 सारांश–

भारत में आयोजन काल के आरंभ से ही बेरोजगारी समस्या के समाधान के लिए तथा रोजगार सृजन के लिए आयोजकों ने इस पर ध्यान देते हुए कहा कि तेज आर्थिक संवृद्धि तथा श्रम गहन क्षेत्रो जैसे लघु एवं कुटीर उद्योगों पर विशेष ध्यान देने से बेरोजगारी की समस्या स्वतः ही समाप्त हो जाएगी परंतु ऐसा नहीं हुआ उदाहरण के तौर पर हम दूसरी पंचवर्षीय योजना में यह अनुमान लगाया गया कि पहली पंचवर्षीय योजना में जो बेरोजगारो की संख्या 50 लाख थी वह द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान बेरोजगारों की संख्या में 15 से 20 लाख प्रतिवर्ष की वृद्धि अपेक्षित थी जिसमें दूसरी पंचवर्षीय योजना में 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष आर्थिक संवृद्धि का लक्ष्य रखा गया और यह अनुमान लगाया गया कि इस संवृद्धि दर को प्राप्त करने पर पिछले सभी बेरोजगारों को 10 वर्ष की अवधि में रोजगार प्राप्त हो जाएगा इससे यह स्पष्ट होता है कि रोजगार को विकास का लक्ष्य तो माना गया परंतु केंद्रीय लक्ष्य के रूप में इसे स्वीकार नहीं किया गया ना ही इसे पूरी तरह से अवशिष्ट माना गया और यह प्रयास निरंतर जारी रहा की यह आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण तत्व बना रहे।

2.4.11 बोध प्रश्न–

1– बेरोजगारी की अवधारणा से आप क्या समझते हैं ?

2– बेरोजगारी के प्रकारों की व्याख्या करें।

3– भारत में बेरोजगारी की प्रवृत्ति की विवेचना कीजिए।

4– भारत में बेरोजगारी के कारणों की व्याख्या कीजिए।

5– भारत में बेरोजगारी निवारण नीतियों की व्याख्या कीजिए।

6– भारत में पंचवर्षीय योजनाओं में बेरोजगारी उन्मूलन के प्रयासों के व्याख्या कीजिए।

7– भारत में बेरोजगारी उन्मूलन कार्यक्रमों का उल्लेख कीजिए।

2.4.12 कुछ उपयोगी पुस्तके –

भारतीय अर्थव्यवस्था : ए. एन. अग्रवाल

भारतीय अर्थशास्त्र : लक्ष्मी नारायण नाथूराम

आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं भारत में आर्थिक नियोजन : प्रो.जी.एल.गुप्ता

भारतीय अर्थव्यवस्था :डॉक्टर ममोरिया एवं जैन

भारतीय अर्थव्यवस्था : एस.के. राय

भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास और योजनाओं की चुनौतियां : ए. एन. अग्रवाल

रुद्र दत्त एवं सुंदरम : भारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी : भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

MAEC-103

खण्ड-02 इकाई-05

जनांकिकीय आपात्र : भारत में जनसंख्या वृद्धि दर

<u>इकाई की रूपरेखा</u>

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 जनांकिकीय के अध्ययन से संबंधित महत्वपूर्ण बातें

1.3 जनसख्या क्या है?

1.4 जनसख्या का मात्राओं संख्या तक वितरण

1.5 जनगणना अवधि

1.6 प्रवास या देशांतर

1.7 जीवन प्रत्याशा

1.8 परिवार नियोजन

1.9 निष्कर्ष

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य (Objectives)

इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि-

- जनसंख्या क्या है एवं जनसंख्या आर्थिक विकास में किस तरह सहायक है।

- भारत की जनसंख्या का आकार और संख्यात्मक वितरण समझ पायेंगे।
- जनगणना अवधि समझ पायेंगे।
- जन्म दर, मृत्यु दर किसे कहते हैं? समझ पायेंगे।
- जीवन प्रत्याशा समझ सकते हैं।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)-

प्रत्येक देश का आर्थिक विकास सीधे तौर पर उसकी जनसंख्या के जनसांख्यिकीय श्रृंगार से जुड़ा होता है। जनसंख्या राष्ट्र की संपत्ति है और यह राष्ट्र का दायित्व भी है। किसी भी देश में आर्थिक विकास और खुशहाली का स्तर काफी हद तक उस देश की जनसंख्या और उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करता है। कि आज पूरे विश्व की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, जो एक ऐसा मुद्दा है जो इस तथ्य के कारण पूरी मानवता के लिए गंभीर चिंता का विषय है कि इसका तेजी से विस्तार हुआ है।यह ज्ञात है कि 1872 में पहली जनगणना के बाद से वर्ष 2001 तक भारत की जनसंख्या में निरंतर वृद्धि हुई है, जब सबसे हालिया जनगणना की गई थी, जिसमें कई जनगणनाओं की संख्या को ध्यान में रखा गया था। भारत की जनसंख्या के साथ-साथ विश्व की भी। वर्ष 2001 में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 2.15 प्रतिशत थी; वर्ष 2011 तक, यह दर गिरकर 1.76 प्रतिशत हो गई थी, और साक्षरता में वृद्धि के साथ-साथ साक्षरता की दर में भी वृद्धि हुई है। **वर्ष 2011 की जनगणना के इन निष्कर्षों ने निश्चित रूप से सभी को रोमांचित किया है, क्योंकि वे बताते हैं कि 2011 के बाद से जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 2.15 प्रतिशत से घटकर 1.76**

प्रतिशत हो गई है।[1] 2001 में साक्षरता दर 64.83 प्रतिशत थी, लेकिन 2011 की जनगणना के समय तक यह बढ़कर 74.04 प्रतिशत हो गई। इसके अतिरिक्त, इस समय अवधि के दौरान साक्षरता लिंग अंतर में 4.91 प्रतिशत की कमी आई थी। निम्नलिखित लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए, भारत में जनसांख्यिकीय पैटर्न और उनके प्रभावों की बेहतर समझ प्राप्त करने के लिए प्रदान किए गए अध्ययन के माध्यम से एक प्रयास किया गया है।

जनांकिकी यह एक ऐसा विज्ञान है जो मानव जनसंख्या के विषय को शोध आधारित बनाता है, क्योंकि यह मानव की संख्या और उसकी माननीय विशेषताओं से जुड़ा हुआ विषय है। अतः यह सतत परिवर्तनशील प्रवृत्तियों को भी अध्ययन शील बनाता है क्योंकि किसी भी क्षेत्र चाहे वह देश,राज्य , जिला, नगर, गांव जो भी हो, मानव कि संख्या कि वृद्धि से बढ़ती है। इस प्रक्रिया में जनसंख्या के निर्धारक तत्व लैंगिक स्वरूप, आयु, संरचना, वैवाहिक स्थिति और शैक्षिक प्रगति पर आधारित वर्गीकृत विषयों में परिवर्तन हेतु अनुचरित की जाती हैं। इससे संबंधित समस्त सूचनाएं आंकड़ों को भी संलिप्त करती हैं, जनांकिकी विज्ञान है, वैज्ञानिकता, इसकी आवरण प्रकृति है। इसके क्रमबद्ध अध्ययन को ही विज्ञान का रूप माना गया है, जो किसी विशेष घटना या तथ्य के परिणामों को गणितीय आधार पर सिद्ध करने में सक्षम रहता है। जनांकिकी के अध्ययन को क्रमबद्ध करते हुए निम्न बातों को ज्ञान के रूप में संरक्षित करना अति आवश्यक होता है, जो निम्न वत है-

- व्यापक विशेषताओं के एकत्रीकरण और परीक्षा के माध्यम से व्यक्तियों और आबादी के समूहों का अध्ययन जनसांख्यिकीय विश्लेषण के रूप में जाना जाता है।

---

[1] योजना - 2011 भारत की जनगणना, 538 योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली 110001

- जब यह समझने की बात आती है कि ग्राहकों को कैसे बेचना है और उपभोक्ता मांग में भविष्य में बदलाव के लिए रणनीतिक रूप से तैयार करना है, तो कंपनियों को जनसांख्यिकीय डेटा एक बहुत ही उपयोगी संसाधन के रूप में मिलेगा।
- विपणन अनुसंधान करने और कॉर्पोरेट रणनीतियों को विकसित करने के लिए एक विधि के रूप में जनसांख्यिकी के उपयोग को तीन तकनीकी रुझानों के अभिसरण द्वारा महत्वपूर्ण बढ़ावा दिया जा रहा है: इंटरनेट, बड़ा डेटा और कृत्रिम बुद्धि।
- कई बार, विभिन्न बाजार खंडों को उनकी आयु या पीढ़ियों के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है।
- जनसांख्यिकीय डेटा के लिए विभिन्न अनुप्रयोग हैं जिनका उपयोग किसी विशेष समुदाय की व्यापक विशेषताओं की गहन समझ प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है।

तथ्यपरक अध्ययन के माध्यम से ही जनांकिकी के अंतर्गत जनगणना की सहायता से जनसंख्या को गणितीय मानकों के अनुसार अध्ययन किया जाता है, जो की जनगणना के संख्यात्मक मान को परिलक्षित करती है। कारक परिणाम के माध्यम से जनांकिकी के विश्लेषणात्मक अध्ययन को संचालित किया जाता है। [2] सार्वभौमिकता के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को जनांकिकी सत्यता सिद्ध करने हेतु उपयोग किया जाता है। राम जन्म के सिद्धांतों की सत्यता का परीक्षण भी आवश्यक होता है। **जननांग एक स्थैतिक विज्ञान नहीं बल्कि प्रायोगिक विज्ञान के अंतर्गत आता है। यही कारण है कि यह एक निश्चित अवधि के अंतर्गत जनसंख्या में होने वाले परिवर्तनों और भविष्य में जनसंख्या में होने वाले परिवर्तनों को अनुमान के माध्यम से अनुचारित करता है।जनसंख्या का मूल अर्थ मानव जाति की**

[2] डी.एस. बघेल, जनांकिकीय- विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, 110007

संख्यात्मक गणना से है। [3]यह वह क्षेत्र होता है, जहां पर मानव स्वयं के द्वारा अपने रहने हेतु आवास का निर्माण करता है, उस क्षेत्र की कुल परिसीमा ही जनसंख्या कहलाती है। जनसंख्या अनुकरण, एक संसाधन के रूप में भी मानी जा सकती है। विश्व के सभी संसाधनों में मानवीय संसाधन अर्थात जनसंख्या संसाधन का एक बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी क्षेत्र या देश के लिए प्राकृतिक संपदा ओं का उपयोग, वहां पर रहने वाले लोगों द्वारा किया जाता है। वही लोग देश के जनता के रूप में माने जाते हैं। मानव के विवेक, बुद्धि, क्षमता इत्यादि के माध्यम से प्राकृतिक संपदा का सदुपयोग संभव हो पाता है, यही कारण है कि किसी भी देश में, वहां की प्राकृतिक संपदा ओं को मूल्यवान साधन के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार किसी भी देश की जनसंख्या भी उस देश के महत्वपूर्ण संसाधनों में से एक है क्योंकि देश के मानव संसाधन ही देश की स्थिति को सुदृढ़ करते हैं और देश को उन्नति के पथ पर अग्रसर करते हैं। देश में रहने वाले जनसामान्य ही देश की उन्नति, अवनति में जिम्मेदार होते हैं। मानव जाति को पृथ्वी के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों के संबंध में जानकारी की जिज्ञासा शुरू से ही चली आ रही है। प्राचीन काल से मध्यकाल तक आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, उद्देश्यों की पूर्ति हेतु जनसंख्या की आवश्यकता होती है, भूगोल वक्ताओं के अनुसार जनसंख्या ही सामाजिक वैज्ञानिकों के लिए एक शब्द का मूल विषय रहा है, फिर भी इसके ऐतिहासिक और क्षेत्रीय प्रतिरोध का विश्लेषण लगातार आधुनिक काल में भी किया जा रहा है। इस प्रकार धीरे-धीरे उचित स्थान पर मानव जाति को प्रमुख रूप से देखा जाता है। वर्तमान रूपरेखा के आधार पर जनसंख्या भूगोल की सामान्य परिभाषा निम्न प्रकार से है-

---

[3] **डॉक्टर डी एस बघेल डॉ किरण बघेल 2012**

जनसंख्या भौगोलिक रूप में भूगोल की वह शाखा है, जिसमें जनसंख्या के वितरण, स्थानांतरण, संगठनात्मक और परिवर्तन में पाई जाने वाली क्षेत्रीय अभिनितियों और निश्चित क्षेत्र की जनसंख्या में जनसंख्या तथा पर्यावरण के मध्य पाए जाने वाले अंतर संबंधों से उत्पन्न सामाजिक, आर्थिक मापदंडो का अध्ययन किया जाता है। [4]

बोध प्रश्न–1: जनांकिकीय से आप क्या समझते हैं? समग्र विवरण द्वारा समझाइये।

....

भारत में जनसंख्या वृद्धि दर

जनसंख्या के आकार के मामले में चीन के बाद भारत दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश है। ये दोनों देश दुनिया के सबसे अधिक आबादी वाले देशों की सूची में शीर्ष दो स्थानों पर आसानी से कब्जा कर लेते हैं। सतह क्षेत्र पर विचार करते समय यह आश्चर्यजनक है, क्योंकि एक वर्ग किलोमीटर भूमि में लगभग 400 व्यक्ति ही पाए जा सकते हैं। तुलना करने पर, जर्मनी में एक वर्ग किलोमीटर में रहने वाले आधे से अधिक लोग संयुक्त राज्य अमेरिका में एक वर्ग किलोमीटर में रहते हैं, जो जर्मनी में जनसंख्या घनत्व का दसवां हिस्सा भी नहीं है। साथ ही, भारत एक ऐसा देश है जहां शहरीकरण की एक महत्वपूर्ण मात्रा है। रेगिस्तान और पहाड़ी क्षेत्रों में केवल विरल आबादी है, फिर भी कुछ शहरी क्षेत्रों में प्रति वर्ग किलोमीटर में 25,000 से अधिक लोग बसे हुए हैं। न्यूयॉर्क राज्य में यह संख्या सिर्फ 10,000 है। साठ प्रतिशत से कुछ अधिक आबादी देश के मुख्य शहरों में से एक को देश के उपजाऊ वर्गों में से एक कहती है। चीन के बाद दुनिया में महानगरीय शहरों की

---

[4] **जनांकिकी की विवेक प्रकाशन डॉ किरण बघेल 1984**

संख्या के मामले में भारत दूसरा सबसे बड़ा देश है, जिसमें चालीस शहर हैं जिनमें से प्रत्येक में दस लाख से अधिक लोग रहते हैं।

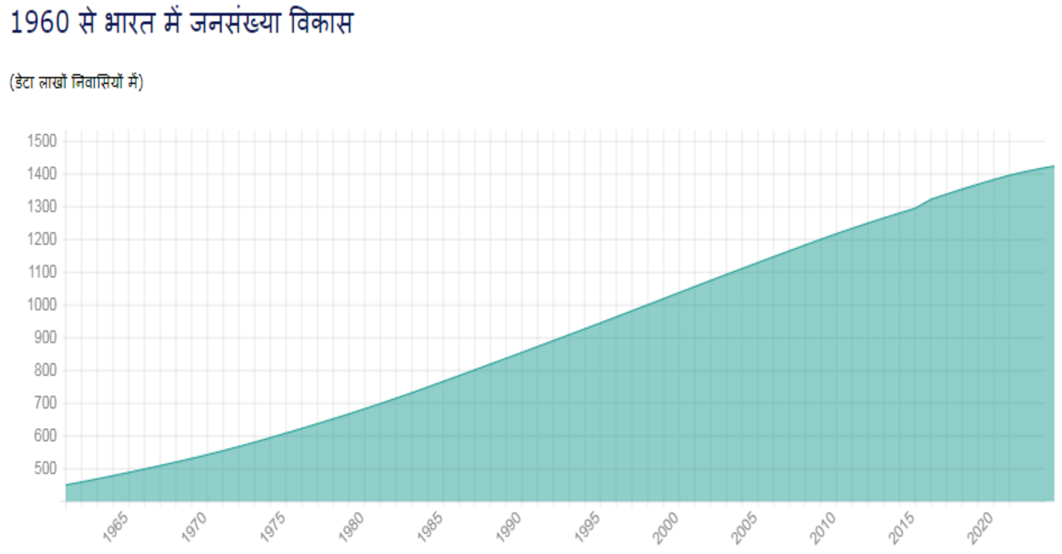

https://www.worlddata.info/asia/india/populationgrowth.php

भारत की जनसंख्या का आकार और संख्यात्मक आधार पर वितरण-

मानव एक ऐसा प्राणी है जो पूरी पृथ्वी पर दूर-दूर तक फैल कर उसके समस्त भौगोलिक और धरातल के स्वरूप को परिवर्तित और परिमार्जित करने की क्षमता रखता है। ऐसी परिस्थितियों में मानव अपने विकास के विभिन्न स्थानों पर, चरणबद्ध तरीके से बढ़ते हुए, समय-समय पर प्रकृति के द्वारा प्रदत की गई है। भौतिक संसाधनों की श्रखला को उपयोग करते हुए उसका समायोजन करता रहता है। **जनसंख्या का आकार मानव के विकास की प्रकृति और उसके स्वरूप को निश्चित करता है जबकि इसका माननीय वितरण मनुष्य को विभिन्न भौतिक संसाधनों के साथ समायोजित करते हुए, उनके स्वरूप में समय**

के साथ लगातार परिवर्तन को प्रदर्शित करता है।[5] जनसंख्या और कृषि, फसल उत्पादन का आपस में एक महत्वपूर्ण संबंध रहा है। किसी भी देश की जनसंख्या के विकास हेतु अनाज का होना आवश्यक होता है। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या के विकास के प्रति वितरण प्रणाली के आधार पर और घनत्व के माध्यम से विश्लेषण करते हुए अथक प्रयास किया गया है ताकि कृषि उत्पादकता के नियोजन को विद्वान संसाधनों के ऊपर आधारित करते हुए जनसंख्या से जोड़ कर देखा जाए तभी जाकर हमें वास्तविक रूप से भारत में रहने वाले लोगों की जनसंख्या वृद्धि के बारे में सही जानकारी का अधिभार प्राप्त हो पाता है। अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत जनसंख्या के शुरुआती अनुमान और उसके विकास के स्वरूप के परिपेक्ष में बहुत सारी स्पष्ट सूचनाएं अभी भी उपलब्ध नहीं है तथापि निश्चित प्रकार से यह परिकल्पना संयोजित की जा सकती है कि उक्त क्षेत्र में प्रारंभिक ऐतिहासिक काल में जनसंख्या बहुत ही कम या यत्र तत्र लोपित हुई पाई जाती थी किंतु नव प्रस्तर युग की क्रांति के पश्चात नवीन भू दृश्य और प्राचीन कृषि प्रणाली के विकसित होने के साथ-साथ, अन्य क्षेत्रों में भी जनसंख्या का समय समय पर स्थानांतरण होता रहा। ब्रिटिश शासन काल के पूर्व जनसंख्या के विकास में अब तक लगभग समान स्थिति बनी रही।

बोध प्रश्न-2: भारत की जनसंख्या का आकार को संख्या तक आधार पर वितरण बताइये।

....

[5] देवेन्द्र उपाध्याय,: जनसंख्या विस्फोट सं. - कल्याणी शिक्षा परिषद् दरियागंज नई दिल्ली - 110002

जनगणना की अवधि-

अध्ययन क्षेत्र में सन उन्नीस सौ नौ से उन्नीस सौ इक्कीस तक जनसंख्या की वृद्धि निरुद्ध रही, क्योंकि यह एक ऐसा समय था जिस समय हमारे भारत में पूर्ण रूप से जन स्वास्थ्य संबंधी सेवाएं सुलभ नहीं थी। ऐसी परिस्थितियों में सन 1921 के पश्चात जनसंख्या के विकास में एक मामूली वृद्धि दर्ज की गई। चंद्रशेखर जी के अनुसार ब्रिटिश शासन काल के स्थापित होने के बाद युद्ध का निवारण होने पर, जन स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं और सेवाओं की व्यवस्थाओं की उपलब्धता बीसवीं सदी के पश्चात तेजी से विकसित हुई। जनसंख्या का दस वर्षीय विकास स्वरूप, प्रारंभिक 10 वर्षीय अवधि के भीतर जनसंख्या का अनुमान शहरी और ग्रामीण स्तर पर देखा जाता है। उनमें यह संख्या 4.65% थी किंतु दस वर्षों के अंतराल के पश्चात इसने अपनी वृद्धि दर को सामान्य से बढ़ाया और या दर बढ़कर 7.36% हो गई। सन 1911 से 1921 के मध्य की अवधि में संपूर्ण क्षेत्र में कई बार अनावृष्टि और संक्रामक बीमारियों जैसे महामारी आने के कारण जनसंख्या में मामूली गिरावट देखी गई, क्योंकि उस समय में मूलभूत स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध नहीं थी किंतु जैसे-जैसे भारत स्वतंत्रता की ओर आगे बढ़ा , वैसे वैसे भारत में स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं में सुधार गणित किया गया। जैसे-जैसे भारत ने स्वयं को स्वतंत्रता की ओर अपने को अग्रसारित किया। स्वास्थ्य सेवाओं, प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं और बच्चों के स्वास्थ्य को स्वतंत्रता के पश्चात विशेष महत्व दिया जाए, ताकि भारत में मृत्यु दर को घटाया जा सके। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में मृत्यु दर में भारी गिरावट आई, स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धि के कारण लोगों में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई। जिससे भारत में जनसंख्या वृद्धि में अभूतपूर्व वृद्धि दर्ज की गई। पिछले कुछ समय में जनसंख्या वृद्धि दर की रफ्तार थोड़ी धीमी हो गई है, सन 1971 से लेकर 81 तक वृद्धि दर 2.5% वार्षिक से घटकर 2011- 16 में

1.3% रह गई है। हाल के समय में भारत के सभी प्रमुख राज्य में जनसंख्या वृद्धि में मामूली कमी देखने को मिली है। यहा तक कि उन राज्यों में भी है जिसमें स्वास्थ्य सेवाएं अधिक विकसित नहीं थी, जैसे बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, दक्षिण के राज्यों में, पश्चिम, बंगाल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, असम, हिमाचल प्रदेश में जनसंख्या वृद्धि कम हो गई है। इसका मुख्य कारण यह भी है कि 1980 के दशक से लगातार भारत में कुल गर्भधारण में लगातार गिरावट देखने को मिली है, जबकि उभरती हुई अर्थव्यवस्था से तो यह पता चलता है कि भारत में गर्भधारण दर में पहले के मुकाबले काफी कमी आई है। **7.3 प्रतिस्थापन स्तर के आधार पर प्रजनन क्षमता कुल गर्भधारण दर से सामान्यतया 2.1 पाई गई है जो कि पूर्व आंकड़ों से संकुचित प्रतीत होती है। इस लिंगानुपात को देखते हुए यह पता चलता है कि भारत में कुल गर्भधारण की कारगर प्रतिस्थापन की दर सामान्य से काफी अलग है और अगर हम अपने से बड़ी अर्थव्यवस्थाओं से तुलना करते हैं तो हम पाते हैं की प्रति व्यक्ति आय कम होने के बावजूद भारत की वर्तमान गर्भधारण दर 2.3 रहे, किंतु यह अन्य एशियाई देशों के बराबर नहीं है।**[6]

जनसंख्या वृद्धि के तत्व और उनके अंतर निर्भरता-जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख तीन घटक जो किसी भी सामाजिक एवं देश की जनसंख्या में परिवर्तन लाने में सक्षम होते हैं यह हैं ,उच्च जन्म दर, प्रजनन दर, मृत्यु दर, प्रवास।

उच्च जन्म दर -उच्च जन्म दर का कारण है, उच्च प्रजनन दर। यदि प्रजनन की मात्रा बढ़ेगी तो जनसंख्या में वृद्धि होना बड़ा ही स्वाभाविक हो जाता है। प्रजनन दर के मूल तत्व एक दूसरे में अंतर्निहित होते हैं निर्धारित तत्वों के बारे में विवरण करते समय इन अंतर्निहित तत्वों को बिंदुवार उल्लेख करना अति आवश्यक हो जाता है ।

[6] **जनांकिकी और भारत में जनसंख्या पुष्प राज प्रकाशन इलाहाबाद**

मृत्युदर -मृत्यु एक शाश्वत सत्य के रूप में हमारे समाज में विद्यमान है। यह जीवन स्तर को ही पूर्ण रूप से नष्ट कर देता है और यह एक अवश्य शंभावी तत्व है। मनुष्य अपने स्वास्थ्य को ठीक ठाक रखकर अपने जीवन में अपने स्वास्थ्य स्तर को विस्तारित कर सकता है । विभिन्न प्रकार की वाह्य तत्वों को दूर करते हुए जैसे कुपोषण, बीमारियां, दुर्घटनाएं और अस्वस्थता, मृत्युदर की प्रस्तुतियों को विस्तारित करते हैं और वैकल्पिक तत्वों से परे अनुकूल तत्व को घटाने का प्रयास करते है । जननाकी में यह घटना जनसंख्या के आकार उनके वितरण और गठन में न्यूनता लाती है।

प्रवास या देशांतर- एक ऐसा निर्धारित तांत्रिक घटक है जो किसी भी स्थान सामाजिक परिस्थिति या देश की जनसंख्या में तेजी से परिवर्तन लाने में सक्षम रहता है। यह प्रवास अंतः प्रवाह और वाह्य प्रवास किसी भी रूप में समाज में वितरित या स्थापित हो सकता है।वाह्य प्रवास एक विशुद्ध रूप में अंतरराष्ट्रीय प्रवास के रूप में कल्पित रहता है वाह्य प्रयास को साक्ष्य के आधार पर, आर्थिक आधार पर, सामाजिक आधार पर, राजनीतिक आधार पर, अंतर्निर्मित करने के लिए अनेक कार्य को संप्रेषित करते हैं।

उच्च जन्म दर, उच्च प्रजनन दर के मूल घटक-जन्म कभी भी शून्यता को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता यह सृष्टि द्वारा निर्मित कार्य है, अतः शून्यता का सामान्य अर्थ सृष्टि के समापन से है या सृष्टि के रुकने से है। हां जन्मदर उच्चतम है, अतः समाज में जनसंख्या का बढ़ना स्वाभाविक होता है जन्म दर से आशय यह होता है कि प्रति व्यक्ति हजार जनसंख्या पर जीवित मनवो की साधारण संख्या। यहां पर दो साधारण शब्द प्रजनन दर और जन्म दर के अंतर को समझना अति आवश्यक हो जाता है। जन्म किसी भी व्यक्ति विशेष से जुड़ा हुआ एक ऐसा महत्वपूर्ण घटक है जो प्रजननता, व्यक्ति के सामूहिक स्वरूप से संबंधित एक जैविक प्रक्रिया को प्रदर्शित करता है, संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इसमें व्यक्ति से

संबंधित जीवन कि घटनाओं के माध्यम से सामूहिक रूप से अध्ययन में प्रयोग लाया जाता है। जांच के अनुसार प्रजनन तर्तिक वित्त जन्म की संख्या पर आधारित, जनसंख्या की यथार्थता को प्रदर्शित करता है।

प्रजनन क्रिया मूल रूप से तीन बातों से प्रभावित रहती है,प्रजनन की शक्ति ,प्रश्न के अवसर और प्रजनन संबंधी निर्णय प्रजनन से जुड़े हुए निर्धारित सभी तत्व इन 3 प्राथमिक कारणों को प्रभावित करते हुए प्रजनन दर में वृद्धि लाने में संभव रहते हैं, अतः जो भी कार्य क्रम शीलता पर अपना प्रभाव डालता है वह या तो प्रजनन के अवसर प्रदान करता है, जिसमें शैक्षिक स्तर, सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था आदि का संतोषजनक ना होना, धार्मिक रीति रिवाज और समाज में लड़कों के महत्त्व इत्यादि सामाजिकता को विनिश्चित करने हेतु प्रमुख तत्वों में उल्लेखनीय रहते है।[7] जैसे शैक्षिक स्तर, वैवाहिक स्तर, नगरीकरण, आर्थिक स्तर, वैवाहिक स्वरूप, व्यवसायिक स्वरूप, धार्मिक स्वरूप, सामाजिक रीति रिवाज, सामाजिक गतिशीलता आदि। शैक्षिक स्तर के प्राथमिक कारकों को अगर ध्यान दें तो हम पाते हैं कि नैसर्गिकता के निर्धारक तत्व ही सृजनात्मकता को बढ़ाते या घटाते हैं। अतः नैसर्गिकता के निर्धारित तत्वों में शैक्षिक स्तर का बहुत ही बड़ा महत्वपूर्ण स्वरूप है यह नैसर्गिकता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने में सक्षम रहता है और इस विधि में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है , शिक्षा मानव को बुद्धिमान और विवेकशील बनाकर समझ के योग्य बनाती है जिस कारण से व्यक्ति पारिवारिक महत्व की चीजों को समझने में सक्षम होता है जैसे बच्चों का क्या महत्व है, बच्चे कितने होने चाहिए, जन्म कब होना चाहिए, दो बच्चों के बीच समय अंतराल कितना होना चाहिए, छोटे परिवार या बड़े परिवार से क्या लाभ है, ऐसे अनेक प्रश्न है जो शिक्षा से विमुख व्यक्ति के लिए अनुत्तरित

---

[7] **जय प्रकाश मिश्रा जनांकिकी साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा**

रह जाते हैं, एक शिक्षित व्यक्ति ही अपने परिवार के वर्तमान और भविष्य को सुरक्षित रखने में सक्षम रहता है इसका मूल कारण यह है एक शिक्षक निर्णय लेने में स्वयं को सक्षम पाता है उसके परिवार में आर्थिक संसाधनों की उपलब्धता ही उसे सामाजिक स्तर पर पारिवारिक स्तर पर सांस्कृतिक स्तर पर उसे सक्षम बनाती है। विभिन्न सर्वेक्षणों से यह निष्कर्ष मिलता है कि शैक्षिक स्तर में वृद्धि होने पर जन्म दर सामान्य रूप से घटती है ,जो कहीं ना कहीं अंतर निर्भरता की भावना को अनुशंसित करती है, वृद्धि के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक अनेक ऐसे जनांकिकीय परिवर्तन उपलब्ध होते हैं जिनके फलस्वरूप जन्मदर अवश्यंभावी रूप से घटती है। शिक्षा और उसके स्तर को बनाए और नियमित रखने के लिए लोग अपने वैवाहिक आयु में वृद्धि को प्रमुखता से लेते हैं।

जनसंख्या वृद्धि से जुड़े विषयों के विद्वानों के अनुसार प्रमुख बिंदु-लाइसेंन ने अपने शोध में पाया कि वर्ष 2048 में भारत की जनसंख्या विश्व की सबसे बड़ी जनसंख्या के रूप में अग्रसारित होगी जो वर्ष 2017 की 1.38 बिलियन जनसंख्या से बढ़कर 1.6 बिलियन हो जाएगी और वर्ष इक्कीस सौ के आते-आते यह जनसंख्या 1.09 बिलियन अनुमानित की जा सकती है, सामान्य शोध और घटनाओं के आधार पर माने तो वर्ष इक्कीस सौ में भारत विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश होगा, एक अध्ययन में यह पाया गया है कि भारत में 20 वर्ष से 64 वर्ष की उम्र के बीच कामकाजी वयस्कों की गणना में गिरावट दर्ज की गई है जो वर्ष 21 में वर्ष 2017 से लगभग 602 मिलियन से घटकर 578 मिलियन हो जाएगी ।

देश में जनसंख्या वृद्धि होने के अनेकों कारण जैसे प्रथम जीवन प्रत्याशा में धनात्मक परिवर्तन, परिवार नियोजन के प्रति न्यूनता, बाल विवाह, अशिक्षा, धार्मिक कारण और

रूढ़िवादिता, गरीबी, अवैध प्रवासी , **जीवन प्रत्याशा में वृद्धि-** जैसे-जैसे स्वतंत्र स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में स्वास्थ्य सेवाओं में परिवर्तन आया मृत्यु, दर में भारी गिरावट दर्ज की गई, मृत्यु दर घटने का परिणाम ही है कि जनसंख्या का वृद्धि होना, क्योंकि लोगों में स्वास्थ्य सेवाएं आसानी से उपलब्ध हो जाती है अतः मृत्युदर का घटना एक सामान्य बात है, **अतः ऐसी परिस्थितियों में यह पाया गया है कि भारत में भी जीवन प्रत्याशा में बढ़ोतरी की तरफ देश अग्रसर हो रहा है, ग्रामीण क्षेत्रों में भी छोटे-छोटे ब्लॉक स्तर, ग्राम स्तर पर, चिकित्सालय की व्यवस्था सरकार द्वारा की गई है, जिसमें अनेक ऐसे पद भी सृजित किए गए हैं जो ग्रामसभा स्तर पर, लोगों को सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र आसानी से पहुंचाते हैं और वहा पहुंचा कर उनका वहां पर मुफ्त इलाज किया जाता है।** [8]जिसके फलस्वरूप जीवन प्रत्याशा में वृद्धि दर्ज की गई है, अब केंद्र सरकार और राज्य सरकार के सहयोग से एंबुलेंस की व्यवस्थाएं भी बड़े स्तर पर लागू की गई, इस व्यवस्था में रास्ते में दुर्घटना के दौरान ग्राम सभा स्तर पर, शहरी स्तर पर, कस्बों के स्तर पर, एक सामान्य नंबर पर मिलाने पर सरकारी एंबुलेंस फ्री में उन्हें उनके उक्त स्थान से लेकर सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, जिला अस्पताल या मेडिकल कॉलेज पहुंचाने का कार्य करती है ऐसी एंबुलेंस में अनेक ऐसी सुविधाएं दी गई हैं जो जीवन की रक्षा करने में सहायक सिद्ध होती हैं यह भी एक कारण है जिसके माध्यम से भारत में जीवन प्रत्याशा में वृद्धि दर्ज की गई है। केंद्र सरकार के माध्यम से अनेक अन्य भी ऐसी सुविधाएं उपलब्ध कराई गई हैं जिनमें की सिर्फ शहरी क्षेत्रों के या फिर मध्यमवर्गीय परिवारों के अतिरिक्त भी निचले स्तर के लोग जो आर्थिक रूप से अक्षम हैं और अच्छी स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ नहीं ले पा रहे हैं उनके लिए भारत सरकार ने आयुष्मान कार्ड योजना या स्वास्थ्य कार्ड योजना

---

[8] **मंगला सिंह मानव भूगोल के मूल तत्व मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी**

की शुरुआत की है, जिसके माध्यम से ऐसे सभी राशन कार्ड धारक जिनकी की आय भारत सरकार की एक न्यूनतम सीमा को छूती है, उनके लिए भारत सरकार द्वारा आयुष्मान कार्ड योजना की शुरुआत की गई है इस कार्ड योजना के माध्यम से उन सभी निचले वर्ग के लोगों के लिए इस कार्ड के माध्यम से मुफ्त इलाज की सुविधा केंद्र सरकार के माध्यम से उपलब्ध कराई जाती है। इस सुविधा का लाभ केवल आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को ही उपलब्ध कराया जाता है। इस सुविधा में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए पांच लाख तक का इलाज सरकारी अस्पतालों के साथ-साथ प्राइवेट अस्पतालों में भी मुफ्त इलाज की सुविधा उपलब्ध कराता है। जिसके कारण भी कमजोर तबके के लोग भी चिकित्सा सुविधाओं का लाभ आसानी से प्राप्त कर लेते हैं यह भी एक विशेष कारण है जिसके कारण जीवन प्रत्याशा में वृद्धि होती है और यह वृद्धि जनसंख्या वृद्धि में अपना प्रमुख रोल अदा करती है। इसी प्रकार सरकार द्वारा अभिनीत ऐसी योजनाएं चलाई जा रही हैं जिनके माध्यम से जीवन प्रत्याशा में लगातार वृद्धि हो रही है फिर वह चाहे नवजात शिशु हो, गर्भस्थ महिला हो या बुजुर्ग व्यक्ति, प्रत्येक व्यक्ति को स्वास्थ्य सुविधाएं हेतु अनेक योजनाएं सरकार द्वारा मुफ्त उपलब्ध कराई गई हैं। जिनसे वह स्वयं को स्वस्थ और इलाज कराने में सहजता महसूस करता है। प्राचीन काल में बच्चों को अनेक बीमारियां ऐसी होती थी, जिनका पता भी नहीं चलता था और जिसके कारण नवजात शिशुओं की मृत्यु हो जाती थी किंतु जैसे-जैसे विज्ञान ने प्रगति की, अनेक ऐसे जांच और टीके सरकारी योजनाओं के माध्यम से बच्चों को लगाए जाते हैं ताकि बच्चों को महामारी के माध्यम से होने वाली अनेक बीमारियों से सुरक्षित रखा जा सके। हमारे देश में जो सबसे बड़ा कार्यक्रम आंदोलन के रूप में चलाया गया, वह था पोलियो मुक्त भारत, जिसमें पोलियो ड्राप पिलाकर 6 वर्ष तक के बच्चों को पोलियो जैसी घातक बीमारियों से बचाने का प्रयास

किया गया और वर्ष 2014 में भारत ने स्वयं को पोलियो मुक्त घोषित कर दिया था। यह सारी सुख सुविधाएं भारत सरकार द्वारा भारतीय जनों को बिना किसी शुल्क के उपलब्ध कराई जाती है। **महिलाओं के गर्भ में कन्या भ्रूण हत्या के भी अनेक उदाहरण मिले हैं जिसमें लोग, पुरुष या लड़के की इच्छा रखते हुए कन्या भ्रूण को नष्ट करा देते थे किंतु सरकार ने कड़े कानून बनाकर गर्भ में पल रहे कन्या भ्रूण की रक्षा हेतु अनेक ऐसे नियम और कानून बनाए और कन्याओं के जन्म से लेकर उनकी शिक्षा तक के लिए अनेक ऐसी योजनाओं का अनावरण किया है, जिनके माध्यम से लोगों को कन्याओं के प्रति दूषित भावना रखने में उन्मुक्ता महसूस होती है। यह सब अनेक ऐसे कारण हैं जिनके माध्यम से जीवन प्रत्याशा में वृद्धि दर्ज हुई है और जैसे-जैसे वैज्ञानिकों द्वारा अनेक स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं में प्रगति की जा रही है वैसे-वैसे जीवन प्रत्याशा में लगातार वृद्धि हो रही है।**[9]

परिवार नियोजन की आवश्यकता –

प्राचीन काल परिवार को सीमित रखने का कोई भी उपाय मौजूद नहीं था अतः ऐसी परिस्थितियों में लोग सामान्यतया बच्चे के जन्म की संख्या को सीमित करने में अक्षम रहते थे किंतु जैसे-जैसे विज्ञान ने प्रगति की, अनेक ऐसे संसाधन मौजूद हुए जिनके माध्यम से हमारे भारतीय समाज में लोग अपने परिवार को सीमित अथवा अपने अनुसार बढ़ाने में सक्षम थे यही विधि थी जिसके माध्यम से लोग अपने परिवार को सीमित रखने में सहज महसूस करते थे अनेक ऐसी विधियां चिकित्सा विभाग में वर्तमान समय में उपलब्ध हैं जिनके माध्यम से लोग अपने परिवार को सीमित रख सकते हैं।इनके प्रयोग से बच्चों में एक लंबा अंतर रख सकते हैं ताकि दो बच्चों की परवरिश में उन्हें किसी भी तरह की कोई परेशानी ना हो। स्वतंत्रता के पश्चात इसके लिए किए जाने वाले उपायों की अधिकता के

---

[9] **रामदेव जनसंख्या भूगोल वसुंधरा प्रकाशन गोरखपुर**

कारण भी जनसंख्या वृद्धि तेजी से हुई। वर्तमान समय में भी अनेक विकल्प होने के बावजूद भी ग्रामीण क्षेत्रों में लोग पारिवारिक वृद्धि या बच्चों की संख्या में कमी लाने में अक्षम रहते हैं।यही कारण है कि पारिवारिक वृद्धि के माध्यम से हो रही जनसंख्या वृद्धि को सीमित करने के लिए सरकार ने परिवार नियोजन के अनेक उपाय सूचित किए हैं और उनका प्रचार-प्रसार भी टीवी, रेडियो,

आशा बहू व अन्य स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के द्वारा ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में किया जाता है ताकि लोग अपने परिवार को सीमित रखकर उन्हें सुचारू रूप से आर्थिक रुप में सक्षम कर सकें।

बाल विवाह-यह भी एक बड़ा कारण है जनसंख्या वृद्धि का, बाल विवाह होने के कारण अज्ञानता वश बच्चे इस बात को कदापि स्वीकृत नहीं कर पाते कि उन्हें कितनी संतान की आवश्यकता है अज्ञानता और अशिक्षा के चलते वह लगातार बच्चों को जन्म देते रहते है ,इसी जन्म देने के फलस्वरूप बाल माता की मृत्यु गर्भ धारण के दौरान होने की संभावना प्रबल रहती है अतः ऐसी परिस्थितियों में वह परिवारिक वृद्धि तो कर लेते हैं लेकिन अज्ञानता वश मां को पारिवारिक वृद्धि के चलते अपने जान गवानी पड़ती है। बाल विवाह हमारे भारतीय समाज में प्राचीन काल से बड़ा ही प्रज्वलित मुद्दा रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों पहले अनेक ऐसे महापुरुष आए जिन्होंने बाल विवाह का विरोध किया क्योंकि बाल विवाह में लोग 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों का विवाह कर देते थे। ऐसे बच्चों को सही मायने में किसी प्रकार का ज्ञान गृहस्थ जीवन के प्रति नहीं होता था अतः ऐसी अज्ञानता वश वह एक ऐसी गलतियां करते थे जिसका प्रभाव उनके सामाजिक और पारिवारिक जीवन पर पड़ता था।

अशिक्षा-यह भी एक मूल मुद्दा है जनसंख्या वृद्धि का, मूल रूप से यही इकलौता ऐसा एक कारण है जो सभी कारणों के लिए स्वयं को जिम्मेदारी देने में सक्षम रहता है क्योंकि यह एक ऐसा कारण है जो किसी भी काल में किसी भी उम्र के व्यक्ति को, हर स्तर पर शोषित होने के लिए मजबूर कर सकता है। अशिक्षा के कारण ही सामाजिक स्तर पर लोग स्वयं को समाज के साथ ले जाने में अक्षम रहते हैं। अशिक्षा के कारण ही लोग अज्ञानता वश चार पांच बच्चों को जन्म तो देखते हैं किंतु उनके अनुरूप उनके पालन पोषण करने के लिए उनके पास पर्याप्त धन उपलब्ध नहीं हो पाता है, जिसके चलते बच्चे निचले स्तर का जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाते हैं और उन्हें अपनी बाल्यावस्था में ही मजदूरी जैसे कार्यों को करते हुए अपना भरण-पोषण करना पड़ता है। अशिक्षा इकलौता ऐसा कारण है, जनसंख्या वृद्धि के लिए जो प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक समान प्रभाव जनसंख्या वृद्धि पर डालने में सक्षम रहताहै , क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके कारण मनुष्य में अनेक ऐसे गुणों और ज्ञान का विकास होता है जिससे वह स्वयं के जीवन में आने वाली कठिनाइयों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण के अंतर्गत सही रास्ते को चुनने में सक्षम हो पाता है। अन्यत्र वह अपने जीवन में जन्म काल से ही अनेक ऐसी गलतियां करता है जिसका भरण उसी पूरे जीवन काल के दौरान करना पड़ता है। **यही कारण है कि भारत सरकार ने मूल रूप से अशिक्षा को खत्म करने के लिए अनेक ऐसे शैक्षिक अभियानों को चलाया, जिनसे हमारे भारतीय समाज में शैक्षिक स्तर को एक सामान्य चरण पर लाया जा सके। कुछ अभियान ऐसे हैं जैसे सर्व शिक्षा अभियान, प्रौढ़ शिक्षा अभियान, यह ऐसे अभियान है जिसमें सरकार अनेक ऐसी मुफ्त**

योजनाएं लाती है जिनके माध्यम से व्यक्ति अपने लिए एक छोटा और सकारात्मक स्थान सामाजिक रूप से बनाने में सक्षम हो पाता है।[10]

धार्मिकता और सामाजिक रूढ़िवादिता-समाज में एक प्रमुख कारण जनसंख्या वृद्धि का धार्मिकता और रूढ़िवादिता भी है जिसमें व्यक्ति आंखें बंद करके भरोसा करता है और वह कभी भी या प्रयास नहीं करता कि मैं खुली आंखों से उक्त परिस्थितियों के अनुसार अपने लिए निर्णय लेने की क्षमता कर सकूं। अतः ऐसी परिस्थितियों में धार्मिक और सामाजिक रूढ़िवादिता, ऐसी परिस्थितियां हैं जिनमें व्यक्ति को अपने सिद्धांतों और निर्णयों से समझौता करना पड़ता है।

गरीबी -भारतवर्ष की सबसे पुरानी और सबसे बड़ी समस्या गरीबी है , गरीबी के कारण ही व्यक्ति अपने आप को सामाजिक परिस्थितियों में सुगमता से रखने में अक्षम रहता है, गरीबी एक ऐसा कारण है जो जनसंख्या वृद्धि के लिए भी एक नई समस्या के रूप में भारत में जन्मा है । गरीबी के कारण व्यक्ति हर क्षेत्र में स्वयं को उपेक्षित पाता है, स्वास्थ्य सेवा हो, पारिवारिक परिस्थितियां हो, रोटी का मामला हो, मकान का मामला हो, हर क्षेत्र में व्यक्ति का शोषण होता है, गरीबी अशिक्षा को जन्म देती है, गरीबी से पीड़ित व्यक्ति स्वयं को समाज में उपेक्षित ही महसूस करता है। गरीबी भी सामाजिक रूप से एक ऐसा कारण है जो जनसंख्या वृद्धि के लिए एक बड़े भयावह रूप में उत्पन्न हुआ। गरीबी के कारण ही व्यक्ति अपने परिवार के सभी सदस्यों को फिर वह चाहे बच्चे ही क्यों ना हो उनको छोटे-मोटे कार्यों में मजदूरों के रूप में लगाता है ताकि उसे अपने भरण-पोषण के लिए आवश्यक धन आसानी से उपलब्ध हो जाए। गरीबी का प्रतिरूप बड़ा ही अवलंबित है, क्योंकि गरीबी के कारण ही व्यक्ति अनेक ऐसे संसाधनों को अपने लिए नहीं

---

[10] **कुमार जनांकिकी साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा**

जुटा पाता जिनसे वह स्वयं के परिवार को सीमित रख सकता है, अतः ऐसी परिस्थितियों में भी उसके परिवारिक वृद्धि होना स्वाभाविक सा लगता है। भारतवर्ष की सबसे बड़ी समस्या में गरीबी और अशिक्षा का बहुत बड़ा अहम रोल है, जो किसी भी व्यक्ति को समाज के देश के सहयोग में अक्षम बनाती है। राज्य सरकार और केंद्र सरकारों द्वारा अनेक ऐसी योजनाएं चलाई गई हैं जिनसे आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए रोजगार के अवसर स्वास्थ्य के अवसर, शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराए जा सके और उन्हें देश की मुख्यधारा से जोड़ा जा सके ताकि वह भी देश के विकास में कदम से कदम मिला कर चल सकें और अपने को सामाजिक रूप से उपस्थित होने से बचा सके। **अवैध प्रवासी-** जनसंख्या वृद्धि का एक आंशिक कारण इसको भी माना जा सकता है अवैध प्रवासी के अंतर्गत जब कोई छोटा जनसमूह किसी दूसरे राज्य या किसी दूसरे देश से आकर भारत में रहने लगता है और अपना जीविकोपार्जन करने लगता है तो इन्हें अवैध प्रवासी कहते हैं। इनके पास किसी भी प्रकार का कोई भी नागरिक संबंधी दस्तावेज उपलब्ध नहीं होता है। ऐसी परिस्थितियों में यह लोग अवैध तरीके से नागरिक संबंधी दस्तावेजों को बनवाकर भारत के विभिन्न राज्यों जोकि अंतरराष्ट्रीय सीमा से लगे हुए हैं, रहना प्रारंभ करते हैं वहीं पर यह कई छोटे-मोटे रोजगार के माध्यम से अपना जीविकोपार्जन करते हैं। **उदाहरण के लिए कई बार नेपाल से, बांग्लादेश से छोटे-छोटे जनसमूह टुकड़ों में अपने परिवार के साथ गुपचुप तरीके से अंतरराष्ट्रीय सीमा को पार कर भारत में आकर रहना प्रारंभ कर देते हैं यह लोग भी भारतीय जनसंख्या वृद्धि में सहयोग प्रदान करते हैं और ऐसे लोग कभी भी जनगणना में पूरी तरीके से सहयोग प्रदान नहीं कर पाते हैं क्योंकि इनके पास भारत के**

नागरिक होने का कोई भी साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता, ऐसे लोगों को भारत के सीमावर्ती क्षेत्रों से बाहर निकालना भी बहुत आसान नहीं होता है।[11]

थमिक तौर पर इन सभी मान्यताओं को, उद्देश्यों की परिपूर्णता के अनुसार सूचित करती हुई जनसंख्या परिवर्तन के सिद्धांतों को प्राकृतिक वृद्धि और कारणों से प्रस्तुत करते हुए, उनके आंतरिक संबंधों को स्थापित करते हुए जनसंख्या वृद्धि के कारको को प्रकट करने का कार्य किया गया है। सामान्य शब्दों में कहें तो यह ऐसे तत्व होते हैं जो किसी भी मनुष्य को स्वयं की ओर आकर्षित करते हैं जिससे मनुष्य का निजी निवास को छोड़कर दूसरी तरफ बसने का मन कहता है। दूसरी तरफ कुछ आंशिक तत्व होते हैं जो किसी भी व्यक्ति को अपने मूल स्थान को छोड़ने के लिए बाध्य करते हैं। इसके कारण प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक, जननांग की राजनीतिक और सामाजिक तत्वों पर आधारित हो सकते हैं, अतः इन बातों का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि किस प्रकार जनसंख्या वृद्धि में अलग-अलग कारकों के माध्यम से उक्त वृद्धि को दर्शित किया जा सकता है। देखा जाए तो मानव संसाधन किसी भी क्षेत्र की प्रमुख परिसंपत्ति होती है। मानव संसाधन की संख्या की अपेक्षा इसकी गुणवत्ता अधिक महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इसी पर देश की आर्थिक विकास की प्रावस्था निर्भर करती है। संसार में चीन के बाद भारत सबसे घनी आबादी वाला देश है। जनसंख्या के वितरण का अध्ययन उसके सामान्य घनत्व से किया जाता है। भारत में जनसंख्या का घनत्व सर्वत्र एक समान नहीं है जनसंख्या के घनत्व के आधार पर भारत को प्रमुख हिस्सों में विभक्त किया जा सकता है। अधिक घनत्व वाले भूभाग, मध्यम घनत्व वाली भूभाग और निम्न घनत्व वाली भू भाग ,उन सभी कारकों के आधार पर जनसंख्या के घनत्व और वितरण को प्रभावित करने वाले घटकों को भी प्रमुख वर्गों में बांटा जा

[11] **डॉ मिश्रा जेपी जनांकिकी साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा**

सकता है, जैसे भौतिक कारक और सामाजिक आर्थिक कारक। सन 1921 से लगातार भारत की जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि दर्ज की जा रही है क्योंकि जनसंख्या की वृद्धि दर लगातार अपनी प्रतिशतता में बढ़ोतरी कर रही है। जनसंख्या वृद्धि दर का निर्धारण, जन्म दर, मृत्यु दर और प्रवासी लोगों की संख्या के माध्यम से किया जाता है। जनसंख्या घनत्व और उसके वितरण में असमानता के समान ही वृद्धि दर को भी संपूर्ण देश में असमान के आधार पर सृजित किया गया है। जनसंख्या प्रवास, जनसंख्या वृद्धि की दर को प्रभावित करने का एक कारण मात्र है। मानवीय प्रवास को विभिन्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है इस तरह प्रभास स्थाई, अस्थाई के अनुसार भी बांटा जा सकता है, जहां से प्रवास होता है, जिस स्थान से प्रवास होता है उसके आधार पर प्रवासी जनसंख्या को गांव से, नगर से तथा ग्रामीण क्षेत्रों के आधार पर प्रतिपादित किया जाता है। प्रवास इन चारों प्रकारों को, दो बड़ी अंतः श्रेणियों में विभाजित करता है, एक अंतर राज्य प्रवास, एक अंतरराष्ट्रीय प्रवास। कुल मिलाकर देखा जाए तो अनेक कारक मिलकर भारत जनसंख्या वृद्धि को प्रतिपादित करते हैं और आने वाले समय में यह एक ऐसी परिस्थिति को जन्म देंगे जिससे भारत विश्व में जनसंख्या के प्रथम पायदान पर पहुंच जाएगा, किंतु यह वृद्धि भारत के लिए बहुत ही हानिकारक है क्योंकि जनसंख्या के साथ-साथ उक्त जनसंख्या के लिए खाने की व्यवस्था आदि आपूर्ति हेतु एक बड़े मात्रा में अनाज की आयात की आवश्यकता होगी और अगर हम कोई चीज बाहर से आयात करते हैं तो उस पर घरेलू चीजों की अपेक्षा अन्य कर लग जाने की वजह से उसकी कीमत बहुत अधिक बढ़ जाती है जिससे बढ़ी हुई कीमत का सामान देश में लोगों को आपूर्ति हेतु मिलेगा। जिन व्यक्तियों के पास आर्थिक क्षमता होंगी, वहीं उक्त परिस्थितियों में सक्षम रखने में समर्थ हो पाएंगे और कम आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोग स्वयं को सक्षम रखने में असमर्थ साबित होगे,

जैसे धीरे-धीरे वह एक बड़ी समस्या के रूप में भारत में विकसित होगा, अतः इसे सरकार स्तर पर, राज्य स्तर पर, ग्राम स्तर पर, शहर स्तर पर, हमें ध्यान देने की आवश्यकता है, ताकि हम अपने जनसंख्या वृद्धि के कारण न्यून करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के स्तर पर लगातार प्रयास करें ताकि छोटे –छोटे प्रयास आपस में इकट्ठा होकर एक बड़े प्रयास को जन्म देंगे, जिसके फलस्वरूप हमें जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम के लिए एक सकारात्मक मार्ग मिलेगा, जो हमें उक्त कार्य के पूर्ण हेतु सही दिशा की ओर संलग्न करेगा।

बोध प्रश्न–3ः जनसंख्या और आर्थिक विकास में सम्बन्ध की विवेचना कीजिए।

....

निष्कर्ष

भारत में तीव्र जनसंख्या वृद्धि ने इस प्रकार आर्थिक विकास को बाधित किया है और इसने जनता की गरीबी में किसी भी तरह की कमी को रोका है। निष्कर्ष निकालने के लिए, जनसंख्या विस्फोट गरीबी को बढ़ाता है, बेरोजगारी की स्थिति को खराब करता है, प्रति व्यक्ति आय को कम करता है और अनुत्पादक लोगों के अनुपात में वृद्धि करता है, पूंजी निर्माण में बाधा डालता है और परिवार नियोजन के व्यापक कार्यक्रम के माध्यम से लोगों को अक्षम बनाता है ताकि आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त संसाधन जारी किए जा सकें। देश का विकास। यह पाया गया है कि भारत में गरीबी भी तीव्र जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण है। गरीबी बेहतर शिक्षा और बेहतर जीवन स्तर को रोकती है। इस प्रकार, जनसंख्या विस्फोट गरीबी का कारण और प्रभाव दोनों है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. योजना - 2011 भारत की जनगणना, 538 योजना भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली 110001
2. डी.एस. बघेल, जनांकिकीय- विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली, 110007
3. डॉक्टर डी एस बघेल डॉ किरण बघेल 2012
4. जनांकिकी की विवेक प्रकाशन डॉ किरण बघेल 1984
5. देवेन्द्र उपाध्याय,: जनसंख्या विस्फोट सं. - कल्याणी शिक्षा परिषद् दरियागंज नई दिल्ली - 110002
6. जनांकिकी और भारत में जनसंख्या पुष्प राज प्रकाशन इलाहाबाद
7. जय प्रकाश मिश्रा जनांकिकी साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा
8. मंगला सिंह मानव भूगोल के मूल तत्व मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन वाराणसी
9. रामदेव जनसंख्या भूगोल वसुंधरा प्रकाशन गोरखपुर
10. कुमार जनांकिकी साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा
11. डॉ मिश्रा जेपी जनांकिकी साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा

बोध प्रश्नों के उत्तर-1

1. प्रदेश देश का आर्थिक विकास सीधे तौर पर उसकी जनसंख्या के जनसांख्यिकीय श्रृंगार से जुड़ा होता है।

2. जनांकिकी एक ऐसा विज्ञान है जो मानव जनसंख्या के विषय को शोध आधारित बनाता है।

3. व्यापक विशेषताओं के एकीकरण और परीक्षा के माध्यम से व्यक्तियों और आबादी के समूहों का अध्ययन जनसांख्यिकीय विश्लेषण के रूप में जाना जाता है।

4. जनांकिकी के अन्तर्गत जनगणना की सहायता से जनसंख्या को गणितीय मानकों के अनुसार अध्ययन किया जाता है।

5. जनांकिकी विज्ञान है, वैज्ञानिकता, इसकी आवरण प्रकृति है।

उत्तर बोध प्रश्न-2

1. जनसंख्या के मामले में चीन के बाद भारत दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश है?

2. भारत में प्रतिवर्ग किलोमीटर में लगभग 400 व्यक्ति पाए जाते हैं।

3. रेगिस्तान और पहाड़ी क्षेत्रों में केवल बिरल आबादी है फिर भी कुछ शहरी क्षेत्रों प्रतिवर्ग किलोमीटर 25000 से अधिक लोग बसे हुए हैं।

4. जनसंख्या के आकार में परिवर्तन लोन में तीन घटक उच्च जन्म दर, मृत्यु दर एवं प्रवास।

उत्तर बोध प्रश्न-3

1. प्रत्येक देश का आर्थिक विकास सीधे तौर पर अपनी मानव संसाधन पर प्रत्यक्षतः निर्भर होती है।
2. जनसंख्या का आकार मानव विकास की प्रकृति को उसके स्वरूप को निश्चित करता है।
3. जनंसख्या ही विभिन्न भौतिक संसाधनों के साथ समायोजित विकास स्थापित करता है।
4. कृषि फसल का उत्पादन जनसंख्या पर ही निर्भर होता है।

1.10 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. जनांकिकी से आप क्या समझते हैं?
2. विकास से आप क्या समझते हैं?
3. जनसंख्या वृद्धि दर का विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?
4. भारत में जनसंख्या वृद्धि दर पर एक निबन्ध लिखिए।
5. जनांकिकीय का अध्ययन करने में किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।
6. जन्म दर, मृत्यु दर एवं जीवन प्रत्याशा को परिभाषित कीजिए।

जनसंख्या और आर्थिक विकास

प्रस्तावना

किसी देश में जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के बीच घनिष्ठ और पारस्परिक संबंध होता है। जनसंख्या एक तरह से श्रम का एक स्रोत है जिसका उपयोग देश के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए किया जा सकता है। दूसरी ओर, इसे एक उपभोक्ता समूह के रूप में भी देखा जा सकता है जो देश के संसाधनों की बड़ी मात्रा का उपयोग करता है और समाप्त करता है। हालाँकि, पहले के समय के कुछ अर्थशास्त्रियों ने बताया है कि **किसी देश में जनसंख्या में वृद्धि और जनसंख्या की तीव्र वृद्धि उसकी अर्थव्यवस्था से जुड़ी होती है। परन्तु कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों का मत है कि यद्यपि किसी देश में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ सकती है, उसके प्राकृतिक एवं भौतिक संसाधन सीमित होते हैं, फलस्वरूप यह स्थिति देश के आर्थिक विकास में बाधक सिद्ध हो सकती है।**[1] इन तर्कों के बीच जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धांत जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के बीच संबंध को स्पष्ट करने का प्रयास करता है। यह स्पष्ट है कि अतीत में अर्थशास्त्रियों और जनसांख्यिकीविदों ने जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के बीच अंतर-संबंधों को एक आशावादी दृष्टिकोण के साथ-साथ एक निराशावादी दृष्टिकोण से भी माना है। जिन लोगों ने इसे आशावादी रूप से देखा, उन्होंने जनसंख्या वृद्धि के प्रति एक सौम्य रवैया अपनाया; यानी, उन्होंने माना कि किसी देश की जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना आवश्यक नहीं है। उनके अनुसार जनसंख्या की वृद्धि बुरे परिणाम नहीं लाती है। निराशावादी इसे अलग तरह से देखते हैं और दावा करते हैं कि यदि किसी देश को विकास की उच्च स्थिति प्राप्त करनी है, तो जनसंख्या वृद्धि की दर को कम किया जाना चाहिए। अर्थात्, उनका दावा है कि

---

[1] Bloom D.E and Canning D (2001), "Cumulative Causality, Economic Growth and the Demographic Transition", In: N Birdsall A, Kelly and S. Sinding (eds.), Population Matters: Demographic Change, Economic Growth and Poverty in the Developing World, Oxford: Oxford University Press, pp. 165-197.

आर्थिक विकास की प्रक्रिया के दौरान जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित किया जाना चाहिए। सभी निराशावादियों की राय है कि एक उच्च प्रजनन दर और इसके परिणामस्वरूप तेजी से जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास पर एक बाधा के रूप में कार्य करती है।

विकास किसी भी देश से उस देश में रह रही जनता के माध्यम से ही उस देश के आर्थिक और सामाजिक विकास साध्य किए जा सकते हैं। **किसी भी देश की प्रगति ही उस देश की जनता का या सामाजिक आलंबन का बहुत बड़ा प्रादर्स होता है। सभी प्रकार के उत्पादन का जन्मदाता मनुष्य ही है। वही अपने शरीर की शारीरिक शक्ति ,बौद्धिक शक्ति और अनेक भौतिक साधनों के माध्यम से नए-नए प्रयोगों को उपयोग करके उत्पादकता को जन्म देता है।**[2] आर्थिक विकास का मार्ग यहीं से संचालित होता है। किसी भी मानव के लिए अपने संसाधनों को अंगीकृत कर उसे समन्वित करना ही वास्तविक रूप से देश सेवा का प्रतीक माना जाता है। सेवा को उपभोग है और उपभोग को सेवा में परिवर्तित करके राष्ट्रीय धन का अधिकाधिक उत्पादन किया जाता है। यदि किसी देश में प्राकृतिक संसाधनों की पर्याप्त व्यवस्था हो तो वह देश कभी भी गरीबी की ओर उन्मुख नहीं हो सकता है ,जबकि वहां पर जनसमूह की संख्या और कार्य के प्रति कुशलता, आवश्यक रूप से आसानी से उपलब्ध की जाती । ऐसी परिस्थितियों मे किसी भी देश के विकास के लिए वहां शारीरिक कार्य हेतु हाथों की संख्या की अधिकता और आर्थिक विकास हेतु उत्पादन को जन्म देने वाली व्यवस्था का अनुपालन होना आवश्यक होता है। **किसी समाज की अर्थव्यवस्था का विकास उसकी जनसंख्या की वृद्धि के साथ अटूट रूप से जुड़ा हुआ है। आबादी के आकार, संरचना, संरचना और प्रवासन पैटर्न जैसे कारकों के आधार पर आर्थिक विकास की गति तेज या धीमी हो सकती है।**[3] एक विकसित राष्ट्र जिसका जनसंख्या घनत्व कम है और नियोजित लोगों का अनुपात कम है, को अपनी अर्थव्यवस्था के विकास की दर के साथ रहने के लिए जनसंख्या में वृद्धि देखनी होगी। दूसरी ओर, जनसंख्या में कोई भी वृद्धि एक गरीब राष्ट्र की

---

[2] Becker, G. S., Glaeser, E. L. and Murphy, K. M., 1999. Population and economic growth. The American Economic Review, 89(2), pp. 145-149

[3] Deaton A and Christina H Paxson (1995), "The Effects of Economic and Population Growth on National Saving and Inequality", Demography, 34(1), pp. 97-114

अर्थव्यवस्था के लिए नकारात्मक होगी, जिसमें उच्च जनसंख्या घनत्व और रोजगार योग्य व्यक्तियों का उच्च अनुपात है। मानव जाति न केवल एक उपभोक्ता है, बल्कि एक उत्पादक भी है, और उत्पादन और खपत की दरों के बीच एक स्वस्थ संतुलन बनाने के लिए, हर समय जनसंख्या का एक विशेष स्तर होना चाहिए। अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति उपयुक्त स्तर स्थापित करने के लिए उपयोग किया जाने वाला प्राथमिक कारक है। जनसंख्या नीति बनाते समय निम्नलिखित सिद्धांतों को ध्यान में रखा जाना चाहिए: 1) यह समाज के आर्थिक विकास पर आधारित होना चाहिए; 2) चूँकि अर्थव्यवस्था और जनसंख्या आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं, इन दोनों पर एक ही समय में काम किया जाना चाहिए; और 3) लोगों के जीवन की मात्रा और जीवन की गुणवत्ता दोनों पर एक ही समय में काम किया जाना चाहिए। जब उचित रूप से संबोधित किया जाता है, तो किसी समाज की बढ़ती आबादी और उसकी बढ़ती अर्थव्यवस्था के बीच संबंध से संबंधित मुद्दों से उस समुदाय में आर्थिक विकास की दर और भौतिक भलाई के स्तर दोनों में तेजी से वृद्धि हो सकती है।

जन समूहों का आर्थिक विकास पर प्रभाव-

सामान्य रूप से देखें तो किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था को मापना राष्ट्रीय आय के संदर्भ में लिया जाता है किंतु राष्ट्रीय आय कभी भी आर्थिक विकास के स्तर को प्रतिपादित नहीं करती है क्योंकि इसमें जनसंख्या से जुड़े हुए पहलू पर किसी भी प्रकार से ध्यान नहीं दिया जाता है। राष्ट्र की आय में वृद्धि होने का साफ मतलब यह है के जन समूहों में निर्धनता को सीमित किया जाए। ऐसा उस परिस्थिति में होता है, जब जनसंख्या के वृद्धि की गति को राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि से ज्यादा तेज देखा जाता है ।आर्थिक विकास के पैमाने को जानने के लिए हमें किसी भी देश के प्रति व्यक्ति आय को निकालना आवश्यक हो जाता है ।किसी भी राष्ट्र की कुल आय में वहां पर रहने वाले लोगों की भागीदारी पूर्ण रूप से अपेक्षित रहती है ।

प्रति व्यक्ति आय = सकल घरेलू आय/ जनसंख्या

यदि किसी भी परिस्थिति में प्रति व्यक्ति आय की व्यवस्थाओं में परिवर्तन होता है अर्थात आय में वृद्धि होती है तो इसका बहुत सा साधारण अर्थ है कि देश का आर्थिक विकास अपनी गति से विकसित हो रहा। किसी भी

जनसंख्या के कारण प्रति व्यक्ति आय पर पड़ने वाले प्रभाव को अध्ययन के माध्यम से जानकर हम यह कह सकते हैं कि जनसंख्या आर्थिक विकास को प्रभावित कर रही है। जनसंख्या के, प्रति व्यक्ति आय पर पड़ने वाले प्रभाव को निम्नलिखित दो तरह के विश्लेषण के माध्यम से बताया जा सकता है। जनसंख्या के माध्यम से ही आर्थिक विकास में वृद्धि हो सकती है इस विचार को विद्वानों ने अपने अपने शब्दों के माध्यम से विस्तारित किया है ।**प्रोफेसर हेनसन ने कहा है कि जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास की एक पूर्व शर्त के रूप में निर्धारित है। प्रोफेसर हर्ष मैन के अनुसार जनसंख्या का दबाव आर्थिक विकास की अनुशंसा को विस्तारित करता है। जहां पर निवेश के माध्यम से बढ़ती हुई जनसंख्या बाजारों के विस्तार को उत्साहित करती है।** [4]जिस कारण से निवेश से अनुचित होती हुई प्रेरणा को बल प्राप्त होता है। उक्त जनसंख्या वृद्धि के फल स्वरुप उत्पादन और रोजगार में वृद्धि संभव हो पाती है। जनसंख्या वृद्धि के माध्यम से ही किसी देश के आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिल पाता है। इस संबंध में अनेक लोगों ने अपने अपने माध्यम से तर्क प्रस्तुत किए हैं।

श्रम शक्ति का विस्तार-

जनसंख्या वृद्धि के माध्यम से क्षेत्र में एक निश्चित परिवेश में मानवीय बल में वृद्धि होती है, जिसके माध्यम से एक बड़े कार्य को करने में आसानी होती है। श्रम उत्पादन क्षमता को बढ़ाता है क्योंकि उत्पादकता श्रम शक्ति पर आधारित होती है ।आर्थिक विकास प्राकृतिक संसाधनों के माध्यम से ,श्रम शक्ति के माध्यम से, पूंजी और तकनीक के माध्यम से अपनी परिसीमा को विस्तारित करता है। इसमें से श्रम शक्ति ही एक ऐसा साधन है जो आर्थिक विकास को बढ़ाने में मदद करता है क्योंकि विकास की प्रक्रिया में यही एकमात्र ऐसा साधन है जो प्रायोगिक तौर पर अपनी उत्पादकता को प्रत्यक्ष रुप से दर्शित करता है। साइमन इट्स ने बताया कि जनसंख्या वृद्धि के माध्यम से ही समाज में श्रम की शक्ति का विस्तार होता है ।किसी भी देश के विकास के लिए वहां श्रम शक्ति का होना अति आवश्यक होता है और श्रम शक्ति का आपूर्ति का स्रोत जनसंख्या होती है। इस प्रकार कार्यकारी श्रम शक्ति की आपूर्ति के स्रोत के रूप में जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास के प्रेरण के रूप में अपने को आच्छादित करती है और अंततः उत्पादन की मात्रा को भी आवश्यकता अनुरूप बढ़ाने में

[4] **चौबे पीके 2000 भारत में जनसंख्या नीति**

सक्षम रहती है। उदाहरण के लिए देखें तो हम पाते हैं कि हमारे भारतीय समाज में ग्रामीण व्यवस्थाओं में परिवार बड़े बड़े होते हैं जिन में सदस्यों की संख्या 10 से 15 तक होती है। इतनी संख्या के कारण ही लोग ग्रामीण खेती बाड़ी से जुड़े कार्यों को आसानी से करने में सक्षम रहते हैं, जिस कारण से उन्हें श्रम शक्ति के कृषि में उपयोग के लिए धन की व्यवस्था नहीं करनी पड़ती है क्योंकि उन्हें परिवार के सदस्यों के माध्यम से ही सहयोग प्राप्त हो जाता है ।अतः खेती में लगने वाले धन में भी कमी आती है उत्पादकता में वृद्धि होती है और उसी प्रकार उनकी आर्थिक संपन्नता में भी वृद्धि होती है। यही कारण है कि श्रम की शक्ति को आपूर्ति का स्रोत माना जाता है क्योंकि श्रम शक्ति ही किसी भी क्षेत्र में उत्पादकता को बढ़ाने में सक्षम रहती है। उत्पादकता ही आवश्यकताओं की आपूर्ति को पूर्ण करने में सक्षम रहती है। जब श्रम शक्ति के माध्यम से हमारी उत्पादकता हमारी आपूर्ति से अधिक होती है तो हम उसका प्रयोग, अपने उपयोग के बजाय निर्यात के माध्यम से दूसरों को उपलब्ध कराते हैं, जिससे हमें उस आपूर्ति के बदले धन की आपूर्ति होती है ।**धन की आपूर्ति से हम अपनी आर्थिक विकास की आवश्यकता को पूर्ण करते हैं। आर्थिक विकास ही किसी भी देश का मूल आधार होता है क्योंकि यही वह एक कारण है जिसके माध्यम से किसी भी देश में उसके विकास के पंखों को ऊर्जा प्राप्त होती है।** [5]

बाजारों का विस्तारीकरण-

आर्थिक विकास प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित होता है ।किसी भी देश की जनसंख्या में समृद्धि उसकी श्रम शक्ति की आपूर्ति का द्योतक होती है ।इस दृष्टि से श्रम और उत्पादकता एक दूसरे के पूरक होते हैं जहां श्रम की अधिकता होगी, वहां उत्पादकता स्वयं ही अपनी मात्रा में बढ़ोतरी कर लेगी। किंतु इसका एक पहलू और भी है कि यदि किसी देश या परिक्षेत्र की जनसंख्या में वृद्धि होती है तो वहां उसकी उत्पादकता भी घटती है क्योंकि उपयोग करने वालों की संख्या में वृद्धि, किसी भी क्षेत्र में होने वाली आपूर्ति को बढ़ा देती है,जिससे उस वस्तु के उपभोग की मात्रा में बढ़ोतरी हो जाती है। जनसंख्या यदि आर्थिक विकास का एक साधन मात्र

---

[5] सिन्हा एंड सिन्हा 2005 जनसंख्या के सिद्धांत मयूर पेपरबैक्स नोएडा

है, अर्थात लोग केवल धन की उत्पादकता को ही बढ़ाने में विश्वास नहीं करते अपितु धन का उपयोग स्वयं की अन्य जरूरी आवश्यकता को पूरा करने के लिए भी करते हैं। जिससे बाजारों में विस्तारीकरण होता है ।जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पादकता में वृद्धि होती है ,उत्पादकता बढ़ने के कारण उपभोग में वृद्धि हो जाती है, उपभोग में वृद्धि ही बाजार के विस्तारीकरण की आवश्यकता को अनुचरित करती है। पूर्णता के इस अर्थ में जनसंख्या वृद्धि के माध्यम से ही उपभोक्ताओं की संख्या में वृद्धि होती है, उपभोक्ताओं की संख्या में वृद्धि के कारण ही वस्तुओं के लिए उनकी मांग सामान्य परिस्थितियों के अनुसार बढ़ जाती है। इस तरह बाजारों में विस्तारीकरण की प्रक्रिया का विकास होता है। जब बाजारों में विस्तारीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि होती है, जिससे बाजारों में पूंजी निवेश में वृद्धि संभव हो पाती है। बाजारों में पूंजी निवेश में वृद्धि के कारण ही उत्पादकता के क्षेत्र में विविधता आती है। पूंजी के माध्यम से ही आर्थिकआर्थिक क्षेत्रों में नए उद्योगों को बढ़ावा देने में मदद मिलती है ।नए उद्योगों की वृद्धि की साथ ही बाजार में उद्योगों में रोजगार के अवसर में भी वृद्धि होती है जिससे लोगों की आय में वृद्धि होना स्वाभाविक है जो कहीं ना कहीं लोगों के प्रति उपयोग आने वाली वस्तुओं और उपभोग की वस्तुओं में वृद्धि की ओर आकर्षित होता है। जनसंख्या की वृद्धि के कारण ऐसी परिस्थिति आने के फल स्वरुप उत्पादकता और आय में एक सामान्य वृद्धि दर्ज की जाती है जो किसी भी देश या समाज में आर्थिक समृद्धि की क्षमता को बढ़ावा देती है। इस प्रकार देखा जाए तो जनसंख्या वृद्धि के माध्यम से ही वस्तुओं की अतिरिक्त मांग का सृजन होता है जो कहीं ना कहीं किसी भी देश के आर्थिक विकास को बल प्रदान करता है ।जनसंख्या वृद्धि से ही देश को आर्थिक विकास मिलने में अनुशीलन स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है जो आर्थिक ता के आधार पर लोगों के रहन-सहन ,खान-पान और उपभोग की वस्तुओं में तरह-तरह के विविधताओं को जन्म देने में सक्षम प्रतीत होती है। स्पष्ट शब्दों में कहे तो आर्थिक समृद्धि एक संकुचित धारणा को प्रदर्शित करती है जबकि आर्थिक विकास समृद्धि अर्थव्यवस्था को परिलक्षित करता है। आर्थिक विकास आर्थिक आवश्यकताओं से जुड़ी हुई वस्तुओं, प्रणव संस्थाओं में गुणात्मक परिवर्तनों को उत्प्रेरित भी करता है। यह प्रौद्योगिकी संरचनात्मक बदलाव से जुड़े हुए समृद्धि के तत्वों को निर्धारित करने में भी सक्षम रहता है। आर्थिक विकास में वृद्धि और गिरावट दोनों ही परिस्थितियां विद्यमान होती हैं। एक

अर्थव्यवस्था में वृद्धि को बढ़ा सकती है किंतु विकास को कतई भी सीमित नहीं कर सकती क्योंकि और योगिक विकास और संरचनात्मक परिवर्तनों में उतार-चढ़ाव के कारण ही गरीबी बेरोजगारी और आय में असमानता जैसी परिस्थितियां अपने को प्रत्यक्ष करने में सक्षम हो पाती हैं। **वास्तव में विकास और वृद्धि का अभिप्राय परिस्थितियों पर आधारित होता है ना कि अर्थव्यवस्था के विकसित होने पर क्योंकि विकास एक साम्यावस्था में अपने आप को परिवर्तित करने हेतु प्रेरित कर सकता है जो कि पहले से संतुलन की अवस्था को बदलकर स्वयं में शिथिलता लाता है जबकि वृद्धि दीर्घकाल में होने वाले निरंतर परिवर्तन से उत्पन्न होती है और जनसंख्या में वृद्धि होने पर धीरे-धीरे अपने स्वरूप में बदलाव लाती है।** [6]

सनस्थापित विकास की व्यवस्थाएं-

इसका सामान्य अभिप्राय वर्तमान में जनसंख्या का भविष्य काल के लिए साधनों को सीमित करते हुए सुरक्षित रखने की आवश्यकता पर बल देना है अर्थात दोनों ही समय वर्तमान और भविष्य काल में जनसंख्या हेतु साधनों का समान रूप से सभी के उपभोग के लिए सुरक्षित रखना है। शुरू से ही विकास की प्रक्रियाओं का आकलन किया जाए तो यह प्रतीत होता है कि यह कई चरणों से गुजर कर यहां तक आई है। पहले आर्थिक वृद्धि से ,आर्थिक विकास से मानव विकास तथा संस्थापक विकास को बल मिला है। अल्पविकसित देश लगातार जनसंख्या वृद्धि के कारण अपने प्राकृतिक संसाधनों को पूर्ण रूप से सदुपयोग में नहीं ला पाते हैं यही कारण है कि वृद्धि के लिए हम इनका दुरुपयोग करना प्रारंभ कर देते हैं ।जैसे बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया जाना ,इस परिस्थिति को अनु चरित करता है। उदाहरण के लिए बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण बिजली की आवश्यकता ओं की पूर्ति के लिए पानी का दोहन किया जाना या किसी क्षेत्र में रोजगार के साधन को बढ़ाने के लिए अत्यधिक मात्रा में प्राकृतिक एवं उपस्थित अन्य साधनों का दोहन होना, इन प्रक्रियाओं को आसानी से परिभाषित करने में सक्षम रहता है। यही कारण है कि पर्यावरण में मौजूद आकाश की ओजोन परत में छिद्र हो गया है। इस तरह की समस्याएं ही अर्थव्यवस्था में अपने आप को संतुलित करती हैं। मानव संसाधन देश की पूंजी होता है। अतः इसे हमें बचाए

[6] **एसएन 1972 भारत की जनसंख्या समस्या टाटा मैकग्रा हिल कंपनी मुंबई**

रखना चाहिए अथवा इसके विकास में अवरोध उत्पन्न हो जाएगा, यदि हमें इसे बचाए रखना है तो हमें अर्थव्यवस्था को संतुलित अवस्था में रखने की आवश्यकता है, ताकि भविष्य में पैदा होने वाली जनसंख्या को प्राकृतिक साधन जैसे साफ पानी ,साफ हवा और अन्य मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कठिनाइयों का सामना ना करना पड़े। यदि हम विकास के नाम पर ही इस तरह के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन प्रारंभ कर देंगे तो भविष्य में हमें अपने लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करना संभव ना होगा।

विकास की माप की आवश्यकता-

कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक वृद्धि को प्रति व्यक्ति आय के आधार पर मापते हैं जो राष्ट्रीय उत्पाद से होने वाली विधि पर आधारित होता है। पहले इस तरह की माप के आधार पर किसी भी तरह का प्रश्नचिन्ह नहीं लगा था किंतु विकसित अर्थव्यवस्था ने इससे लोगों के प्रति वस्तुओं और सेवाओं की आवश्यकता ओं की पूर्ति के लिए आवश्यक मान लिया है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में आर्थिक वृद्धि को आर्थिक बुराइयों के आधार पर गणना में रखा जाता है क्योंकि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में अपनी आर्थिक वृद्धि से जुड़ी वस्तुओं में कमी के कारण आपूर्ति को पूर्ण करने में सक्षम नहीं हो पाती हैं। जिसके कारण से देश में दूसरी समस्याएं जैसे आय की असमानता, गरीबी और बेरोजगारी जैसी स्थिति स्वत ही उभर कर आ जाती है। लेकिन यदि हम वर्तमान स्थिति में देखें तो इक्षित आर्थिक वृद्धि पर प्रश्न चिह्न लगा प्रति दिखाई देता है। जो ना केवल इन समस्याओं को सीमित करने के लिए दर्शित है बल्कि इसका प्रभाव हमारे पर्यावरण पर भी प्रतीत होता है। किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक वृद्धि आवश्यक होती है ।यह उसके विकास के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं होती है क्योंकि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि ही देश में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को परिलक्षित करती है। यह इन वस्तुओं और सेवाओं के प्रयोग से होने वाले कल्याण को मापने में स्वयं को असफल दिखाती है। प्रति व्यक्ति आय को राष्ट्रीय आय और वृद्धि में सामाजिक लागत के आधार पर उन्हें संतुलित रखने की आवश्यकता होती है। राष्ट्रीय आय में बहुत सी वस्तुओं और सेवाओं को शामिल नहीं किया जाता है। जैसे घरेलू कार्य से उत्पादित चीजें। वह ना केवल बाजार से होकर गुजरती हैं बल्कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में इस तरह की स्थिति को प्रति व्यक्ति आय के आधार पर प्रभावित भी करती हैं। बड़ी हुई राष्ट्रीय आय प्राकृतिक

संसाधनों के दुरुपयोग और आय के वितरण को भी वर्णित करने में अक्षम रहती है किंतु वितरण आर्थिक कल्याण के स्तर को प्रभावित करने में सक्षम रहता है। क्योंकि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में जहां आय में असमानता अधिक मात्रा में पाई जाती है। आय का एक बड़ा हिस्सा कुछ लोगों के हाथों तक ही सीमित रहता है। आधुनिक अर्थशास्त्री विकास को व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण की दृष्टि से अनुपालन करते हैं जो मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के अवसर को इकट्ठा करने में आने वाली आय और धन के वितरण की आवश्यकता को प्रचारित करते हैं। यह प्रवृत्ति आर्थिक कल्याण के विकास को परिभाषित करती है। ऐसी अवस्था में विकास की संभावनाओं में वृद्धि होती है जिससे की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होना, स्वाभाविक प्रतीत होता है और साथ ही साथ आय की असमानता को भी सीमित करने में सहायता प्राप्त होती है। यही कारण है कि कुछ अर्थशास्त्रियों ने विकास को सामाजिक और मूलभूत आवश्यकता का सूचक माना प्रारंभ कर दिया है।

आर्थिक वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक-किसी भी देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करने में प्राकृतिक संसाधनों का प्रमुखता से योगदान होता है। अर्थशास्त्र के अनुसार प्राकृतिक संसाधन ही मूल रूप से किसी भी देश की पूंजी को प्रदर्शित करते हैं। **पूर्णता के आधार पर यदि हम देखें तो हम पाते हैं, प्राकृतिक संसाधन का मूल अर्थ भूमि से है या इस की उपजाऊ शक्ति, वन संपदा ,खनिज पदार्थ, संसाधन और बनावट पर आधारित होते हैं। अल्पविकसित देशों में प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग सही ढंग से नहीं किया जाता है।**[7] यही कारण है कि उस देश का विकास पूर्णरूपेण नहीं हो पाता है। अतः प्राकृतिक संसाधनों के सदुपयोग के लिए रोजगार ,खाद्यान्न और आर्थिक सुधार में कोई विशेष प्रगति प्रतीत नहीं होती है। अल्पविकसित देशों में तकनीकी ज्ञान का भी अभाव एक ऐसा कारण है जिसके कारण अल्पविकसित देश अपने प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण रूप से उपयोग करने में अक्षम रहते हैं।

पूंजी-

---

[7] https://www.mpgkpdf.com/2021/08/factors-affecting-economic-growth.html

आर्थिक विकास की प्रमुख रुकावट पूंजी है। अल्प विकसित देशों में धन की कमी के कारण ही वहां पर उद्योगों का विकास संभव नहीं हो पाता है। नकरसे ने कहा है जिस दिन में पूंजी की कमी महसूस नहीं होती है उस देश के लोग अपनी आवश्यकताओं के माध्यम से उत्पादन क्रियाओं को अधिकतर उपभोग के रूप में खर्च करने में अक्षम रहते हैं। अतः उन्हें अपने हिस्से की पूंजीगत वस्तुओं मशीनों परिवहन निर्माण और यंत्र निर्माण में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यही कारण है कि पूंजी निर्माण का अभिप्राय पूंजी को पूंजीगत वस्तुओं में लगाना मात्र है जिससे उत्पादकता और राष्ट्र की आय में समृद्धि को दर्शाया जा सके। अल्पविकसित देशों में पूंजी के निर्माण को बढ़ावा देने के लिए उपभोक्ताओं के माध्यम से बचत के लिए प्रोत्साहित करना अति आवश्यक हो जाता है। वास्तविक मांग में वृद्धि करना ही बचत को इकट्ठा या बचत को एकत्रित करना माना जाता है क्योंकि पूंजीगत तरलता, आर्थिक जननी है पूंजी निर्माण की, अर्थव्यवस्था में इस का बहुत बड़ा महत्व है। यह बड़ी हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने और रोजगार के अवसर को जुटाने में सहायक सिद्ध होती हैं। अल्पविकसित देशों में पूंजी की कमी के कारण ही उत्पादकता घट जाती है ।यही कारण है जो देश गरीबी के कुचक्र में फंसे हुए हैं उनके लिए पूंजी निर्माण अति आवश्यक होता है। श्रम-मानव श्रम किसी भी देश के लिए उसकी वास्तविक शक्ति होती है। यदि उसका प्रयोग सकारात्मक कार्यों में लगाया जाए तो। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में पूंजी की कमी के कारण सामाजिक विकास पर ध्यान नगर के बराबर ही जाता है। जिससे श्रम में अज्ञानता और कुशलता जैसे तत्वों का समागम बढ़ जाता है। यही कारण है कि प्रति व्यक्ति उत्पादन क्षमता प्रभावित हो जाती है ।यदि श्रम का विशेष उपयोग किया जाए तो उत्पादकता में वृद्धि संभव है। आर्थिक वृद्धि में श्रम के विस्तारीकरण को महत्व दिया जाता है। हर श्रमिक कुशल होगा तो वह समय की बचत को बढ़ाएगा और नई-नई मशीनों को चलाने में समर्थ होगा, जिससे उत्पादकता कई गुना बढ़ जाती है । यह एक ऐसा कारक है जो किसी भी देश के आर्थिक विकास को बल देने में सहायक होता है।

आर्थिक विकास में तकनीक का प्रयोग ना करना भी पिछड़ेपन को बढ़ावा देता है। अल्पविकसित देशों में उत्पादन तकनीक विकसित नहीं हो पाती है। जिस वजह से उत्पादकता प्रभावित होती है। औद्योगिक विकास उद्योग और शोध संसाधनों के बीच में मंद आदान-प्रदान और श्रम की अधिकता पूंजी की कमी नवप्रवर्तन

तकनीक को प्रयोग में लाने में रुकावट उत्पन्न करता है। क्योंकि अल्पविकसित देशों में प्रभावित संस्थाओं की कमी होती है ।अतः उन देशों के लिए तकनीक को खोजना आसान नहीं होता है। ऐसी अवस्था में अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में इस तरह की तकनीक को आयात करने के लिए धन की आवश्यकता होती है जो उस देश में अर्थव्यवस्था के लिए सही नहीं होता है। अधिकतर उत्पादन क्षेत्रों में उत्पाद के आधार पर आधुनिक तकनीक का प्रयोग करना चाहिए ताकि उत्पादकता को बढ़ाते हुए लोगों को उस तकनीक के प्रति जागरूक किया जा सके। वर्तमान समय में तकनीक के माध्यम से ही हम अपनी आर्थिक उन्नति को बढ़ावा देने में सक्षम हो पाएंगे।

मानव संसाधन पर आधारित विकास-

अल्प विकसित देशों में आर्थिक विकास में विकसित मानव संसाधन एक बहुत बड़ी रुकावट के रूप में प्रदर्शित है। ऐसे देशों में देश के विकास के लिए आवश्यक कुशलता और कुशल व्यक्तियों की कमी सदैव रहती है। अल्पविकसित मानव संसाधन के कारण ही उत्पादन में अधिकतर परंपरागत तकनीक का प्रयोग किया जाता है जिससे कार्य कुशलता में कमी आने के कारण अथवा उत्पादकता आसानी से घट जाती है। **यदि कुछ क्षेत्रों में आयातित नई तकनीक का प्रयोग किया जाता है तो उस तकनीक और मशीनों का ठीक ढंग से प्रयोग ना करने के कारण भी उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। और सही ढंग से प्रयोग ना कर पाना अविकसित मानव संसाधन से नीचे उत्पादकता कार्यकुशलता में कमी, औद्योगिकीकरण के अभाव और सीमित व्यवसाय और परंपरागत रीति-रिवाजों जैसी अवधारणाओं को अर्थव्यवस्था में संचारित करने में सक्षम रहता है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में मूलभूत सुविधाओं की कमी बनी रहती है जो उत्पादन के क्षेत्रों को प्रभावित करती है** [8]।इन देशों में यातायात के साधन, संचार के साधन, बाजार के छोटे आकार के कारण ,इन संसाधनों में कुशलता का सही प्रयोग नहीं हो पाता है। व्यापार के मुख्य केंद्र बड़े-बड़े शहरों में स्थित होने के कारण ग्रामीण क्षेत्र पिछड़े रहते हैं। यही कारण है कि 70 से 80% जनसंख्या जो ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान रहती है उसकी कार्यशैली में सदैव मंदी की प्रावस्था बनी रहती है। अल्प विकसित देशों में उद्यमी योग्यता का भी

[8] **सिन्हा एंड सिन्हा 2005 जनसंख्या के सिद्धांत मयूर पेपरबैक्स नोएडा**

अभाव दर्शित होता है ।एक श्रमिक मे कुशल प्रबंधन की कमी, बाजार का आकार का छोटा होना, औद्योगिकरण की भावना को सीमित करता है। पूंजी का भाव निजी संपत्ति का भाव ,कच्चे माल और आर्थिक सुविधाओं के अभाव के कारण भी कुशल उद्यमी नवप्रवर्तन की क्षमता को दर्शित करने में अक्षम रहता है। हालांकि यह आर्थिक विकास में एक बहुत बड़ी रुकावट को प्रदर्शित करता है और उद्यमी को भी पनपने में अवरोधित करता है। यही कारण है कि आर्थिक विकास के क्षेत्र में दूसरे तत्वों के साथ-साथ उद्यमी का भी अहम स्थान परिलक्षित होता है जो आर्थिक विकास में एक बहुत महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में रहता है।

राजनीतिक आधार पर और प्रशासनिक आधार पर बाधाएं-

अल्प विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के बीच राजनैतिक और प्रशासनिक ढांचागत व्यवस्था का भी एक बड़ा अहम रोल होता है यह किसी भी देश में विकास के संतुलन प्रावस्था को स्थिर करने में जिम्मेदार होता है। किंतु यदि राजनैतिक भ्रष्टाचार, देश में बार-बार सरकार का बदलना, राजनीतिक दलों द्वारा अन्य कारणों जैसे हड़ताल या सरकारी मशीनरी के दुरुपयोग जैसे कारणों से देश के विकास के पथ में अवरोध उत्पन्न होता है। यदि दूसरे कारण देखे तो हम पाते हैं कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति का देश आधारित राजनीति पर हावी होना ,स्वार्थ सिद्धि के लिए दूसरे देशों पर आश्रित होना, आर्थिक सहायता के लिए दूसरे देशों से मदद मांगना इत्यादि भी आर्थिक विकास की संभावनाओं को उपचारित करता है। देश का आर्थिक विकास राजनैतिक और प्रशासनिक ढांचे पर आधारित होता है। **यही वह कारण है जो देश में बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और धार्मिक आधार पर विविधताओं को जन्म देते हैं। प्रशासनिक ढांचा सदैव से राजनीति से उत्प्रेरित रहता है जिसके कारण ही लोग सरकारी कार्यों में पूरी तरह से मन को नहीं लगाते। जिस कारण से प्रशासनिक दक्षता घट जाती है। प्रशासनिक दक्षता घटने के कारण ही सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों में अनेक अवरोध प्रतीत होते हैं।** [9]

बाहरी प्रति प्रभावी करण-विकास और अल्प विकास पर आधारित देश सदैव से आर्थिक संबंधों को आर्थिक विकास से जुड़ी एक कड़ी मानते हैं, व्यापार का परंपरागत सिद्धांत इस बात का द्योतक होता है कि दोनों के

---

[9] **चौबे पीके 2000 भारत में जनसंख्या नीति**

बीच आर्थिक संबंध इस प्रकार के होता है कि विपक्ष को लाभ प्राप्त हो सके। गुनार मिलन का यही विचार था कि व्यापार सिद्धांत अंतरराष्ट्रीय व्यापार के संतुलन को सैद्धांतिक रूप से प्रस्तुत करता है क्योंकि बाजार उत्पादन के माध्यम से होने वाले साधनों और समानता ओं के बारे में विचार नहीं करते हैं ।उनका कहना था कि आर्थिक विकास एक चक्रव्यू के समान होता है जिसमें जो देश जितना अधिक विकसित होता है उसे उतना ही लाभ प्राप्त होता है।

सामाजिक सांस्कृतिक बाधा-औद्योगिक दिशा में सामाजिक आधार पर, सांस्कृतिक आधार पर, जनसंख्या वृद्धि और विकास के बीच अनेक बाधाएं उत्पन्न होती हैं, जो जाति पर आधारित, धर्म पर आधारित ,सामाजिक बुराइयों पर आधारित और सांस्कृतिक परंपराओं से प्रेरित होती हैं और देश में विभाजन को बढ़ावा देती हैं। नकरसे के अनुसार आर्थिक विकास अधिकतर मानवीय गुणों के आधार पर सामाजिक सिद्धांतों के आधार पर राजनैतिक परिस्थितियों से जुड़ाव दर्शित करता है। एक श्रमिक के रूप में यदि उसकी योग्यताओं का आकलन हम जाति के आधार पर, धर्म के आधार पर या सामाजिक स्तर के आधार पर करेंगे तो यह आर्थिक विकास में सबसे बड़ी रूकावट के रूप में स्वयं को दर्शित करेगा, क्योंकि उत्पादन में संभावित योगदान से किसी भी तरह का कोई संबंध प्रतीत नहीं होता है। परिणाम स्वरूप कुशलता को बड़ी क्षति पहुंचती है।

अविभाज्य मितव्यता-मितव्ययिता को पिक्यूनियरी इकोनॉमिक्स भी कहते हैं, जो कीमत स्तर को अपनी प्रवेश क्षमताओं के आधार पर दर्शित करती है। इसका सामान्य अभिप्राय उद्योगों में उत्पादन की मात्रा को उसकी आवश्यकता अनुरूप बढ़ाना होता है। बाजार में पूर्ण प्रतियोगिताओं की संतुलित अवस्था में केवल एक ही कीमत पर आधारित होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे के लिए व्यक्तिगत आधार पर अनुक्रमित होना आवश्यक होता है ।पूर्ण प्रतियोगिता की अवस्था को किसी भी अल्पविकसित अवस्था में प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को एक दूसरे से विकेंद्रित करती हैं और एक समान प्रणाली को इस आवश्यकता के अनुरूप संतुलित अवस्था में आने में असफल करती हैं। किसी भी अल्पविकसित देश के लिए अपनी वर्तमान कीमतों को उत्पादन के आधार पर एकीकृत करना आसान नहीं

होता, ऐसे कार्यों में निवेश को पूर्ण रूप से संरक्षित रखा जाता है। **आवश्यकताओं को अर्थव्यवस्था के आधार पर विभिन्न उद्योगों में विस्थापन के रूप में रखा जाता है ताकि बाजार के आकार को प्रतिस्थापित किया जा सके और लोग विभिन्न उद्योगों में अपनी रुचि को बढ़ा सकें, ताकि एक उद्योग दूसरे उद्योग के लिए ग्राहक के रूप में आच्छादित हो। इससे उभय पक्षीय लाभ को पनपने का मौका मिलता है।** [10]

जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका-अधिक जनसंख्या वाले अल्पविकसित देश जैसे भारत,पाकिस्तान ,इंडोनेशिया इत्यादि को मूलता कृषि पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है। यही कारण है कि इन देशों के आर्थिक विकास के लिए कृषि का योगदान अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। वास्तव में अल्पविकसित देश अपनी इच्छा से ही किसी समस्या को अनदेखा नहीं कर सकते हैं। कुछ पहले ऐसा माना जाता था कि विकास की समस्या, औद्योगीकरण की समस्या पर आधारित होती है। कुछ लोगों ने यह तर्क दिया था कि अल्पविकसित देश अपनी आर्थिक स्थिति में तभी सुधार ला सकते हैं जब उनके वहां औद्योगिकरण की प्रावस्था को उत्पन्न किया जा सके। अत्यधिक जनसंख्या वाले अल्प विकसित देश अपने यहां औद्योगिकरण की व्यवस्थाओं को बढ़ाने के लिए मूल रूप से अपने कृषि आधारित संसाधनों पर निर्भर होते हैं। कृषि आधारित संसाधन ही उनकी आर्थिक वृद्धि को प्रभाव भी बनाते हैं। कृषि क्षेत्र में औद्योगिकरण करना ,देश की अर्थव्यवस्था में विकास को अनुशंसित करना माना जाता है। और जनसंख्या वृद्धि से जन्म लेने वाली समस्याएं जैसे बेरोजगारी की समस्या, का निदान भी औद्योगीकरण के माध्यम से ही संभव हो पाता है। औद्योगिकरण का मूल अर्थ अर्थव्यवस्था को उत्पादन के माध्यम से स्थानांतरित करना होता है। अतः इस अभिप्राय को सभी पक्षों के साथ लिया जाना ही औद्योगिकरण कहलाता है। उत्पादन के साधनों के माध्यम से उत्पादन को उपयोग करते हुए बड़े बड़े उद्योगों को स्थापित करना और उस तरह संचालित करना कि औद्योगिकरण देश की क्षमता को विस्तारित करें, ताकि संपर्क अर्थव्यवस्थाओं को उत्पादन की दृष्टि से ,औद्योगिक तरीकों के माध्यम से यह स्थानांतरित किया जा सके। इन दोनों का सामान्य अर्थ यह है कि औद्योगिकरण ही मूल रूप से प्रारंभिक और आखिरी सीढ़ी होती है जो आर्थिक विकास को त्वरित चढ़ाव की

[10] **सिन्हा एंड सिन्हा 2005 जनसंख्या के सिद्धांत मयूर पेपरबैक्स नोएडा**

ओर संचालित करती है। औद्योगीकरण का प्रथम विचार जो आर्थिक विकास से संबंधित होता है। मूल रूप से हल्के, भारी उद्योग यातायात संकुल श्रमिकों या तकनीकी ज्ञान पर आधारित होता है। यही कारण है कि विकसित देश अल्पविकसित देशों को अपने यहां की औद्योगिक तकनीकों के माध्यम से विकास की ओर उन्मुख करने में मदद करते हैं। औद्योगिकरण ही कृषि विधि के चरण को बढ़ाने में काफी मददगार होता है। विकसित देशों का आर्थिक इतिहास इस बात का द्योतक होता है कि आर्थिक विकास के साथ ही कृषि विकास को विस्तारित करना अति लाभकारी होता है। शारीरिक श्रम में वृद्धि होने पर ही खाद्यान्न वस्तुओं की मांग में बढ़ोतरी होती है ।जिसमें भोजन महत्वपूर्ण रूप में है। यही कारण है कि कृषि उत्पादों को बाजार में उपलब्ध होने के कारण ही आर्थिक संसाधनों में जीवन निर्वाह की प्रवृत्ति को ढालने की आवश्यकता होती है। नगदी फसलें जो औद्योगिकीकरण में उपयोगी फसलों के रूप में प्रसिद्ध हैं उन्हें सामान्य रूप से विकसित देशों में उत्पादन की ओर बढ़ाना चाहिए ,ताकि कृषि संबंधी उद्योगों को प्रोत्साहन मिल पाए और इससे ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्थाओं को एक दूसरे से जुड़ने का मौका मिलेगा। औद्योगीकरण के माध्यम से ही कुशल मजदूरों को उपभोक्ता से जुड़ी वस्तु प्राप्त हो पाती है, जो उनकी विकास की वृद्धि में उनकी आवश्यकताओं के चरण को प्रेरित करती है। जिससे औद्योगिक क्षेत्रों में उत्पादन तत्वों को काफी बढ़ावा मिलता है। भारत की तरह ही अनेक बड़े अल्पविकसित देशों को भी संसाधनों को जुटाने की आवश्यकता है और कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है ताकि वह अपने औद्योगिक क्षेत्रों को विस्तारित करके अपनी पूंजी को बढ़ा सकें। यदि कोई देश अपने विकास के लिए दीर्घकालिक संसाधनों को विकसित करना चाहता है तो उसे अपने उद्योगों की तरफ ध्यान देना होगा, ताकि उनकी अर्थव्यवस्था में क्षमता विस्तारित हो सके और उद्योगों को विकसित करने के लिए उसमे तकनीक और पूंजी की बड़ी मात्रा को संचालित किया जा सके।

निष्कर्ष

यह स्पष्ट है कि अतीत में, अर्थशास्त्रियों और जनसांख्यिकीविदों ने जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के बीच अंतर-संबंधों को एक आशावादी तरीके के साथ-साथ एक निराशावादी तरीके से माना। आशावादी दृष्टिकोण वालों पर विचार करते हुए उन्होंने जनसंख्या वृद्धि के प्रति स्वागत योग्य दृष्टिकोण अपनाया-

अर्थात् किसी देश की जनसंख्या को सीमित करना आवश्यक नहीं समझा। लेकिन निराशावादी यह विचार व्यक्त करते हैं कि यदि किसी देश को विकास की उचित स्थिति तक पहुँचना है, तो जनसंख्या वृद्धि की गति को कम किया जाना चाहिए। देखा जाए तो जनसंख्या वृद्धि किसी भी देश में श्रम शक्ति को उत्पादित करने में सक्षम रहती है किंतु यह अपने हिसाब अनेक समस्याओं को भी जन्म देती है। क्योंकि अगर जनसंख्या वृद्धि होती है तो हमें उस जनसंख्या हेतु उसके भरण-पोषण के लिए मूलभूत आवश्यकताओं की बढ़ोतरी की भी आवश्यकता पड़ती है। अतः उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमें अनेक तरह की व्यवस्थाओं का प्रयोग करना पड़ता है। उत्पादकता को बढ़ाने में जनसंख्या का अहम रोल होता है किंतु हम इस बात को भी कभी भी नकार नहीं सकते, कि जनसंख्या वृद्धि ही किसी भी उत्पादित वस्तु को उसके सामान्य उपभोग से बढ़ा देती है, जिससे उस वस्तु की आपूर्ति उस समय की जनसंख्या के अनुरूप घट जाती है ।अतः यह कहीं ना कहीं हमारी आर्थिक विकास की धारा को अवरोधित करती है क्योंकि यदि जनसंख्या वृद्धि होगी, साधन सीमित होंगे, तो उत्पादकता घट जाएगी, उत्पादकता कटेगी तो उपभोग की वस्तुएं भी घटेगी ,उपभोग की वस्तुओं में कटौती होने पर उन वस्तुओं की मांग अधिक होने के कारण उनके प्रयोग के लिए अधिक धन खर्च करने की आवश्यकता होगी, जो कहीं ना कहीं आर्थिक विकास को गिरावट की ओर प्रदर्शित करेगी। अतः जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ हमें उत्पादकता और उपभोग में एक संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता होती है ताकि हम अपने देश के आर्थिक विकास को भी उन्नति के मार्ग पर अग्रसर कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Bloom D.E and Canning D (2001), "Cumulative Causality, Economic Growth and the Demographic Transition", In: N Birdsall A, Kelly and S. Sinding (eds.), Population Matters: Demographic Change, Economic Growth and Poverty in the Developing World, Oxford: Oxford University Press, pp. 165-197.

2. Becker, G. S., Glaeser, E. L. and Murphy, K. M., 1999. Population and economic growth. The American Economic Review, 89(2), pp. 145-149
3. Deaton A and Christina H Paxson (1995), "The Effects of Economic and Population Growth on National Saving and Inequality", Demography, 34(1), pp. 97-114
4. **चौबे पीके 2000 भारत में जनसंख्या नीति**
5. **सिन्हा एंड सिन्हा 2005 जनसंख्या के सिद्धांत मयूर पेपरबैक्स नोएडा**
6. **एसएन 1972 भारत की जनसंख्या समस्या टाटा मैकग्रा हिल कंपनी मुंबई**
7. https://www.mpgkpdf.com/2021/08/factors-affecting-economic-growth.html
8. **सिन्हा एंड सिन्हा 2005 जनसंख्या के सिद्धांत मयूर पेपरबैक्स नोएडा**
9. **चौबे पीके 2000 भारत में जनसंख्या नीति**
10. **सिन्हा एंड सिन्हा 2005 जनसंख्या के सिद्धांत मयूर पेपरबैक्स नोएडा**

खण्ड – 3

इकाई – 2 – भारतीय भूमि व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

3.2.0 उद्देश्य

3.2.1 प्रस्तावना

3.2.2 भारत में भूमि सुधार

3.2.3 भूमि सुधार के उद्देश्य

3.2.4 भारत में भूमि सुधार की आवश्यकता

3.2.5 योजना काल में भूमि सुधार

3.2.6 जमींदारी उन्मूलन

3.2.6.1 जमींदारी उन्मूलन की विशेषताएँ

3.2.7 काश्तकारी प्रथा में सुधार

3.2.8 भूमि की उच्चतम सीमा

3.2.9 चकबंदी

3.2.10 भूमि सुधार की धीमी गति के कारण या हानियां

3.2.11 भूमि सुधार की सफलता के लिए सुझाव

3.2.12 शब्दावली

3.2.13 प्रश्नावली

3.2.14 संदर्भ ग्रंथ

3.20 उद्देश्य –

1–प्रस्तुत ईकाई में हम भारत में भूमि सुधार की जानकारी प्राप्त करेंगें।

2–प्रस्तुत ईकाई में भारत में भूमि सुधारों आवश्यकता एवं उद्देश्य की जानकारी प्राप्त करेंगे।

3–प्रस्तुत ईकाई में योजना काल में भूमि सुधार के बारे जानकारी प्राप्त करेंगें।

4–प्रस्तुत ईकाई में भारत में चकबंदी जमींदारी उन्मूलन की जानकारी प्राप्त करेंगें।

5–प्रस्तुत ईकाई में भारत में जमींदारी एवं उन्मूलन की विशेषता का अध्ययन करेंगें।

6–प्रस्तुत ईकाई में भूमि सुधार की धीमी गति के कारण या हानियां का अध्ययन करेंगें।

7–प्रस्तुत इकाई में हम भारत में काश्तकारी प्रथा में सुधार की जानकारी प्राप्त करेंगें।

8–भारत में भूमि सुधार की सफलता के लिए सुझाव की जानकारी प्राप्त करेंगें।

3.2.1 प्रस्तावना

कृषि, अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी होती है अर्थात अर्थव्यवस्था का विकास कृषि पर निर्भर करता है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के उत्थान के लिए कृषि का विकास नितान्त आवश्यक है। कृषि उत्पादन में वृद्धि करने तथा कृषकों के जीवन–सतर को ऊँचा उठाने के लिए संस्थागत तत्वों (Institutional Factors) तथा तकनीकी तत्वों (Technical Factors) दोनों का ही महत्व है। तकनीकी तत्वों का संबंध अच्छे बीज, अच्छी खाद, सिंचाई की सुविधा, आधुनिक यन्त्र तथा उपकरण आदि से है। संस्थागत तत्वें का संबंध भू–स्वामित्व प्रणाली, भूमि जोतों, भूमि के वितरण आदि से है।

प्रो0 मिर्डल के अनुसार, ''मनुष्य तथा भूमि में पाए जाने वाले संबंध के योजनात्मक तथा संस्थागत पुनर्गठन को भूमि सुधार कहते हैं।''

अर्थशास्त्री ''भूमि सुधार'' शब्द का प्रयोग विस्तृत तथा संकुचित दोनों अर्थों में करते हैं। विस्तृत अर्थों में भूमि सुधार शब्द का प्रयोग व्यवस्था संबंधी उन सभी सुधारों के लिए किया जाता है जिनके फलस्वरूप कृषि की उत्पादकता बढ़ती है। जैसे साख, विपणन, मध्यस्थों की समाप्ति, लगान संबंधी सुधार आदि। इसके विपरीत संकुचित अर्थ में भूमि सुधार शब्द का प्रयोग उन सब सुधारों के लिए किया जाता है जिनका संबंध ''भूमि स्वामित्व'' तथा ''भूमि जोत'' दोनों में होने वाले सुधारों से है। डा. बी.बी. सिन्धु के अनुसार ''पट्टेदार तथा कृषि ढांचे की प्रणाली में किसी विशेष उद्देश्य के लिए किये जाने वाले परिवर्तनों को भूमि सुधार कहा जाता है।''

भूमि सुधारों में भूमि व्यवस्था संबंधी निम्नलिखित सुधार शामिल किए जाते हैं –

1. वितरण संबंधी उपाय (Distributive Measures) : इसके अन्तर्गत भूमि के काश्तकारों में वितरण करने संबंधी उपाय शामिल होते हैं। इसके दो पहलू हैं, (1) एक तो मध्यस्थों को समाप्त करके उनसे भूमि ले ली जाती है। (2) दूसरे मध्यस्थों की समाप्ति से प्राप्त भूमि का वास्तव में काश्त करने वाले किसानों में वितरण किया जाता है।

2. काश्तकार संबंधी उपाय (Tenancy Measures) : इन उपायों का संबंध (1) लगान का निर्धारण, (2) काश्त अधिकार की सुरक्षा, तथा (3) भूमि की उच्चतम सीमा से है।

3. कृषि पुनर्गठन संबंधी उपाय (Agrarian Reorganisation Measures) : उपविभाजन तथा विखण्डन को दूर करने के उपाय जैसे चकबन्दी तथा सहकारी खेती इसी के अन्तर्गत है।

3.2.2 भूमि सुधार के उद्देश्य-

भारत में औपनिवेशिक शासन के समय जमींदारी व्यवस्था आर्थिक शोषण पर आधारित थी इस व्यवस्था के द्वारा एक ऐसे शोषक वर्ग का जन्म हो गया था जो केवल और केवल दूसरो की मेहनत पर पलता था इस शोषक वर्ग में साहूकार जमींदार वा अन्य मध्यस्थ शामिल थे जो वास्तविक किसानो से उनके उत्पादन का हिस्सा छीन लेता था अतः सामाजिक एवं आर्थिक समानता सुनिश्चित करने के लिए निम्न लिखित प्रमुख उद्देश्य अपनाये गए थे

: भारत में भूमि सुधार का उद्देश्य पुरानी भूमि व्यवस्था को समाप्त कर एक ऐसी नई भूमि व्यवस्था को जन्म देना जिसमें भूमि पर खेती करने वाला किसान ही उसका वास्तविक स्वामी हो

भूमि व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले सभी प्रकार के शोषण व सामाजिक अन्याय को समाप्त करना

भूमि सुधार के द्वारा भूमिहीन किसानों काश्तकारों को भूमि वितरण करके सामाजिक एवं आर्थिक समानता सुनिश्चित करना जिससे कि ग्रामीण गरीबी बेरोजगारी की समस्या का हल किया जा सके

प्राकृतिक संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण करना अर्थात आर्थिक न्याय के सिद्धांत को लागू करने से है

ग्रामीण जनसंख्या के सभी वर्गों को समान अधिकार व समान अवसर प्रदान करके सामाजिक न्याय स्थापित करने का प्रयास करना

भूमि सुधार के द्वारा जनजातियों के हितों की रक्षा हो सके साथ ही पूंजीपतियों द्वारा जनजातियों की भूमि पर अनैतिक रूप से कब्जा करने के प्रयास को रोकना

भूमि सुधार का मुख्य लक्ष्य कृषि उपादन में वृद्धि करना है।

आय का समान वितरण तथा सामाजिक कल्याण में वृद्धि भूमि सुधार के माध्यम से प्राप्त की जाती है।

कृषि विकास संबंधी कोई भी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक किसान में अधिक उत्पादन करने का उत्साह न हो।

भूमि सुधार कार्यक्रमों से न केवल भूमि का बंटवारा समान होता है बल्कि भूमिहीन किसानों को भी भूमि प्राप्त हो जाती है।

भूमि सुधार से न केवल शोषित किसान वर्ग को सामाजिक न्याय प्राप्त होता है बल्कि इससे आर्थिक विकास के लिए आवश्यक एक सन्तुष्ट परिश्रमी श्रम वर्ग की उत्पत्ति भी होती है।

3.2.3 भारत में भूमि सुधार

भारत में भूमि सुधार संबंधी नीति संविधान में निर्धारित राज्यनीति के निर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy) के अनुच्छेद 39 के संदर्भ में बनाई गई हैं। इसके अनुसार सरकार को अपनी नीति इस ढंग से बनानी चाहिए जिससे समाज के भौतिक साधनों के स्वामित्वए अधिकार और उन पर नियंत्रण का लोगों के बीच इस प्रकार बंटवारा हो कि आम जनता के कल्याण के लिए उपयोगी सिद्ध हो

3.2.5 भारत में भूमि सुधार की आवश्यकता

भारत में कृषि बहुत ही पिछड़ी हुई है। कृषि के पिछड़े होने के बहुत से कारण हैं जिनमें से मुख्य कारण भूमि संबंधी दोषपूर्ण नीति है। हेरोल्डमान के अनुसार, ‘‘भारत में ग्रामीण प्रगति की मुख्य बाधा तकनीकी नहीं बल्कि भारतीय कृषि का संस्थागत ढांचा है।

योजना आयोग ने भूमि संबंधी नीति के निम्नलिखित मुख्य दोष बताए हैं –

(1) राज्य सरकार तथा किसान के बीच जमींदार आदि मध्यस्थ की उपस्थिति।

(2) काश्तकारी–प्रथा में असुरक्षा होने के कारण काश्तकार भूमि में सुधार करने का प्रयत्न नहीं करते।

(3) लगान अधिक होने के कारण किसानों को अधिक उत्पादन करने के लिए बहुत कम प्रेरणा होती है।

(4) भूमि के उपविभाजन और विखण्डन के कारण खेती के नये व वैज्ञानिक तरीके अपनाना सम्भव नहीं होता।

(5) भूमि के असमान वितरण के फलस्वरूप गांवों की अधिकतर जनसंख्या के पास या तो बहुत कम भूमि है या बिल्कुल भी नहीं है।

(6) भारत में प्रति हेक्टेयर उपज कम होने के कारण अधिकतर किसान निर्धन हैं।

भारत में भूमि सुधार का महत्व निम्न तत्वों से स्पष्ट हो जाता है –

1. **उत्पादन में वृद्धि (Increse in Production)** : भूमि सुधार के कारण एक ऐसा वातावरण तैयार होता है जिससे किसान खेती में अधिक दिलचस्पी लेते हैं तथा कड़ी मेहनत के लिए तत्पर रहते हैं।

2. **प्रोत्साहन (Incentive)** : भारत में अधिकतर भूमि पर काश्तकारी प्रथा है इसलिए काश्तकार को साधनों का उचित उपयोग करने के लिए कोई प्रोत्साहन या प्रेरणा नहीं है। इसके लिए यह आवश्यक है कि भू–धारण प्रणाली ऐसी हो जिससे किसान भूमि का स्वामी बन सके या उसे यह भरोसा रहे कि उसे अपनी मेहनत तथा निवेश का पूरा लाभ मिल सकेगा।

3. आयोजित विकास (Planned Development) : भूमि सुधार के फलस्वरूप किसानों से सरकार का सीधा सम्पर्क होने के कारण भूमि का उपयोग देश की योजनाओं के अनुसार

किया जा सकेगा। सरकार द्वारा उपलब्ध सुविधाओं का उचित उपयोग किया जा सकेगा। कृषि क्षेत्र में उत्पन्न बाजार योग्य अधिशेष का सरकार नियोजित ढंग से उपयोग कर सकेगी।

4. सामाजिक न्याय (Social Justice) : भूमि सुधार के कारण भारत के करोड़ों किसानों को सामाजिक न्याय प्राप्त हो सकेगा। भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित होने के कारण धन के वितरण तथ्ज्ञा आय की असमानताएं कम हो सकेंगी।

5. आय में वृद्धि (Increase in Income) : भूमि सुधार के कारण कृषि जोतों के आकार में वृद्धि होने से किसान की आय में वृद्धि होगी। उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। वे खेती की नई तकनीक अपना सकेंगे।

मुख्य भूमि सुधार

भारत में भूमि सुधार के संबंध में दो दृष्टिकोण अपनाये गये हैं –

1. व्यक्तिगत दृष्टिकोण (Micro Appraoch) : इस दृष्टिकोण का संबंध भूमि के स्वामित्व संबंधी सुधारों से है। इन सुधारों में मुख्यरूप से तीन सुधार शामिल किये जाते हैं – (1) जमींदारी उन्मूलन, (2) काश्तकारी सुधार, तथा (3) भूमि की उच्चतम सीमा।

2. सामूहिक दृष्टिकोण (Macro Approach) : इस दृष्टिकोण का संबंध भूमि के एकत्रीकरण से है। इसमें दो प्रकार के सुधार शामिल किए जाते हैं – (1) चकबन्दी, तथा (2) सहकारी खेती। सन 1947 के बाद भारत में निफन भूमि सुधार किए गए हैं –

1. जमींदारी उन्मूलन
2. काश्तकारी प्रथा में सुधार
3. भूमि की अधिकतम सीमा

4. चकबन्दी
5. सहकारी खेती
6. भूमि संबंधी नवीनतम रिकार्ड

3.2.6 जमींदारी उन्मूलन

भारत में जमींदारी प्रथा का विकास ऐतिहासिक तथा राजनीतिक कारणों से हुआ। इस प्रथा के अन्तर्गत भूमि का स्वामी एक जमींदार होता है। वह किसानों को लगान पर भूमि काश्त करने के लिए देता है। उन किसानों को भूमि से कभी भी बेदखल किया जा सकता है। जमींदार सरकार को लगान देने के लिए उत्तरदायी होता है। धीरे–धीरे इस प्रथा में कई दोष पैदा हो गये। स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न राज्यों में जमींदारी–प्रथा को समाप्त करके के लिए कानून बनाए जाने लगे। अब लगभग सभी राज्यों से जमींदारी–प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया है।

3.2.6.1 जमींदारी उन्मूलन की विशेषताएँ

इसकी मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

1. **जमींदारी के अधिकारों का उन्मूलन –** जम्मू और कश्मीर को छोड़कर बाकी सब राज्यों में जमींदारों से जीम लेकर उसके बदले उन्हें मुआवजा दिया गया। इस प्रकार जमींदारों के अधिकारों का उन्मूलन कर दिया गया,

2. **मुआवजे का आधार –** मुआवजे का आधार अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग था। उत्तर प्रदेश में शुद्ध सम्पत्ति रखा गया तथा कुछ राज्यों में शुद्ध आय रखा गया।

3. **मुआवजे का भुगतान –** कुछ राज्यों में यह बांडों में दिया गया। बांडों की अवधि 14 से 40 वर्ष के बीच थी। इन बांडों के भुगतान के लिए सरकार ने एक जमींदारी उन्मूलन कोष की स्थापना की है।

4. भूमिधर – जमींदारों से ली गई भूमि उन्हीं लोगों को दे दी गई जो इस पर खेती करते थे। उन्हें भूमिधर कहा गया है। इनमें जो भी किसान भूमि पर अधिकार करना चाहते थे उन्हें अपने लगान का कई गुना सरकार को देना पड़ा। उत्तर प्रदेश में यह राशि लगान की दस गुना निश्चित की गई।

5. शामलात भूमि पर सरकार का अधिकार – गांव की बंजर भूमि, चरागाह अर्थात जो जमींदार के पास थे उन पर सरकी अधिकार हो गया।

6. जमींदारों को खुद खेती करने के लिए छूट – जमींदार जिस के फलस्वरूप काश्तकार सरकार को स्वयं लगान देगा। अतएव लगान देने की सीधी जिम्मेदारी काश्तकारी की हो गई।

7. लगान देने का दायित्व – जमींदारी उन्मूलन के फलस्वरूप काश्तकार सरकार को स्वयं लगान देगा। अतएव लगान देने की सीधी जिम्मेदारी काश्तकारी की हो गई।

जमींदारी उन्मूलन देश में सुधार की दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम है। इसके फलस्वरूप एक ऐसे वर्ग का उन्मूलन हो गया जो काम किए बिना लगान वसूल करता था। इस उन्मूलन से सरकार के साथ किसान का सीधा सम्पर्क स्थापित हो गया।

3.2.7 काश्तकारी प्रथा में सुधार

भारत में तीन प्रकार की काश्तकारी प्रथाएं पाई जाती हैं : (क) दखली काश्तकारी (ख) गैर दखली काश्तकारी, तथा (ग) उप–काश्तकार

ये सुधार निम्नलिखित हैं :

1. लगान का नियमन और निर्धारण – प्रथम योजना के अन्तिम वर्षों में योजना आयोग ने राज्यों को सुझाव दिया था कि लगान का नियमन करके उन्हे कुल उपज का 1/5

से लेकर 1/4 भाग तक सीमित कर दिया जाए। गुजरात, महाराष्ट्र तथा राजस्थान में लगान की अधिकतम उपज का 1/6 भाग तक सीमित की गई है।

2. पट्टे की सुरक्षा – इसका अर्थ है कि काश्तकारों के भूमि पर कृषि करने संबंधी अधिकार स्थायी होने चाहिए। भू–स्वामी अकारण उनसे भूमि वापिस न ले सके अर्थात उन्हें भूमि से बेदखल न किया जा सके। उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली में काश्तकार से तब तक भूमि वापस नहीं ली जा सकती जब तक वह नियमित रूप से लगान चुकाता रहता है।

3. काश्तकारों को स्वामित्व का अधिकार – काश्तकारों को उस भूमि के स्वामित्व का अधिकार दिलाया गया है जिसपर वे पट्टेदार के रूप मे ंखेती किया करते थे काश्तकारों के स्वामित्व का अधिकार दो प्रकार से दिलाया जाता है –

(क) काश्तकार को पट्टे की भूमि का स्वामी घोषित किया जाता है। इस अवस्था में काश्तकार अपने भू–स्वामी को कीमत आसान किश्तों में चुकाता है।

(ख) सरकार भू–स्वामी से पहले स्वयं भूमि ले लेती है और उसे मुआवजा चुका देती है। फिर सरकार इस भूमि का स्वामित्व अधिकार काश्तकार को हस्तांरित कर देती है और उनसे मुआवजा प्राप्त कर लेती है।

4. लगान में छूट – जब बाढ़, सूखे इत्यादि दैवी प्रकोपों के समय सरकार भू–स्वामियों को मालगुजारी माफ कर देती है तब भू–स्वामियों को भी काश्तकारों को लगान माफी देना अनिवार्य कर दिया गया है।

5. काश्तकारों को मुआवजा – काश्तकार खेती की दशा को सुधारने के लिए भूमि पर सुधार कार्य करता है, जैसे कुआं खुदवाना, पेड़ लगाना, खेत में रखवाली के लिए मकान बनवाना आदि। यदि भू–स्वामी स्वयं खेती करने के लिए काश्तकार से भूमि वापस ले लेता है तो उसे इन सुधारों के लिए काश्तकार को मुआवजा देना होगा।

6. कुर्की से छूट – यदि काश्तकार लगान चुकाने में असमर्थ होता है तो भू–स्वामी लगान के बदले उसके पशु, औजार तथा खड़ी फसल की कुर्की नहीं करवा सकता है।

7. बेगार की मनाही – भू–स्वामी अपने काश्तकार से किसी प्रकार की बेगार, अनुचित उपहार तथा नजराना इत्यादि नहीं ले सकता। बेगार को गैर–कानूनी घोषित किया गया है।

3.2.8 भूमि की उच्चतम सीमा

भारत में भूमि की उच्चतम सीमा का विचार सबसे पहले प्रो0 आर0के0 मुखर्जी ने राष्ट्रीय योजना समिति को प्रस्तुत किया। भूमि की उच्चतम सीमा के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं – (1) भूमि के स्वामित्व तथा उपयोग की असमानता को कम करना जिसमें सबको सामाजिक लाभ प्राप्त हो सके। (2) कृषि से प्राप्त आय से असमानता को कम करना। (3) कृषि मजदूरों को स्वयं रोजगार के अवसर प्रदान करना। (4) भूमि के स्वामित्व की इच्छा को पूरा करना।

भूमि की उच्चतम सीमा दो प्रकार की होती है :

1. वर्तमान जोतों की उच्चतम सीमा – इसमें वर्तमान जोतों की उच्चतम सीमा निर्धारित की जाती है। यदि किसी के पास इस सीमा से अधिक भूमि है तो वह भूमि सरकार से ले लेगी।

2. भूमि की भावी प्राप्ति पर उच्चतम सीमा – इसमें यह निश्चित किया जाता है कि कोई व्यक्ति या परिवार भविष्य में नई भूमि खरीदकर अपनी वर्तमान जोतों को अधिक से अधिक कितना बढ़ा सकता है।

देश के लगभग सभी राज्यों में भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी गई है। भूमि की अधिकतम सीमा निश्चित करने के बारे में राष्ट्रीय दिशा निर्देश के अनुसार कोई

परिवार साल में दो फसल देने वाली अच्छी जमीन 4 हैक्टेयर से 7 हैक्टेयर तक तथा सिंचाई रहित 22 हैक्टेयर भूमि रख सकता है।

उच्चतम सीमा के निर्धारण में छूट – योजना आयोग ने दूसरी पंचवर्षीय योजना में कई प्रकार के खेतों को जोतों की उच्चतम सीमा संबंधी कानून से मुक्त रखने की सिफारिश की थी। इसका उद्देश्य था कि कृषि की कुशलता औश्र उत्पादकता पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े।

(1) चाय, काफी तथा रबड़ के बगान,

(2) फलों के बाग,

(3) पशुपालन तथा ऊन पैदा करने के लिए भेड़ पालने के खेत,

(4) चीनी के कारखानों के गन्ने के खेत,

(5) ऐसे बड़े फार्म जो बड़े–बड़े चकों के रूप में हों जिनमें अधिक पूंजी लगी हो तथा स्थायी इमारतें बनी हों, तथा

(6) धर्मार्थ संस्थाओं की भूमि आदि।

उच्चतम सीमा के निर्धारण की छूट की यह सूची काफी लम्बी थी। सन 1972 की नई नीति में छूट की सूची छोटी कर दी गई है। इसके अनुसार यन्त्रीकरण फार्म, निजी ट्रस्टों की जमीन आदि से छूट की व्यवस्था हटा ली गई है। इस प्रकार वर्तमान नीति के फलस्वरूप अधिक वेशी भूमि मिलने की सम्भावना है।

3.2.8.1 उच्चतम सीमा के लाभ

जोतों की अधिकतम सीमा निर्धारण के पक्ष में निम्न तर्क दिए जा सकते हैं –

1. **साधन कृषि को प्रोत्साहन –** कृषि अनुसंधान कार्यों से यह स्पष्ट हो गया है कि बड़े खेतों के आकार की तुलना में लघु और मध्यम आकार के खेचतों की उत्पादनशीलता अधिक होती है।

2. **भूमि का समान वितरण –** भारत में कृषि भूमि के वितरण एवं जोतों के आकार में भारी विषमता देखने को मिलती है। लगभग 85 प्रतिशत जोतें एक हेक्टेयर से भी कम की है। 18.3 प्रतिशत जोतों का आकार 1 से 2 हैक्टेयर के बीच है, 13.5 प्रतिशत जोतें 2 से 4 हैक्टेयर की हैं।

3. **कृषि आय समान वितरण –** अधिकतम जोत सीमा निर्धारण से जहां एक ओर भूमि के वितरण की असमानता में कमी आयेगी वहीं दूसरी ओर कृषि–आय का समान वितरण करना भी सरल हो जाएगा।

4. **सहकारी कृषि को प्रोत्साहन –** बड़े किसान अपने निजी स्वार्थ के कारण सहकारी कृषि का विरोध करते हैं। अधिकतम जोत निर्धारण से बड़े खेत समाप्त हो जाएंगे

5. **चकबंदी को प्रोत्साहन –** अधिकतम जोत निर्धारण से उपयुक्त आकार के खेत हो जाएंगे अर्थात बड़े व अत्यन्त छोटे आकार के खेत नहीं रहेंगे। इससे चकबंदी कार्य अपनाने में विरोध समाप्त हो जाएगा।

6. **समजावादी समाज की स्थापना –** बड़े आकार के खेत समाजवादी अर्थव्यवस्था के अनुकूल नहीं है।

7. **रोजगार में वृद्धि –** खेतों का आकार घटने से श्रम–प्रधान तकनीक अपनाई जाती है। जोतों की सीमा निर्धारण से अधिकांश खेत लघु तथा मध्यम आकार के हो जाएंगे जिससे अधिक लोगों को रोजगार प्राप्त होगा।

8. **अधिक उत्पादन –**

9. सुरक्षा की भावना –

3.2.8.2 सीमा निर्धारण की हानियां

सीमा निर्धारण की निम्न लिखित हानियाँ है –

1. अर्थव्यवस्था में असन्तुलन – प्रो.डी.आर. गाडगिल के अनुसार, ''यदि गैर–कृषि आय पर सीमा लगाने का विचार नहीं किया जाता तो कृषि–आय पर सीमा लगाना न केवल अन्यायपूर्ण होगा वरन् समाज में भारी असन्तुलन उत्पन्न कर देगा। अर्थात् जातों की सीमा निर्धारण से कृषि गैर–कृषि क्षेत्र में विषमताएं बढ़ जाएंगी।

2. भूमिहीन श्रमिकों की दशा में सुधार नहीं – जोतों की सीमा निर्धारण से केवल 35 लाख एकड़ भूमि प्राप्त होगी जबकि भूमिहीन कृषकों की संख्या देश में लगभग 4.76 करोड़ है। अर्थात प्रत्येक कृषक को बहुत थोड़ी भूमि मिल सकेगी जिससे उनकी स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हो सकेगा।

3. अनार्थिक जोतों का निर्माण – जोतों की सीमा निर्धारण के पश्चात यदि उत्तराधिकारी नियमों के अन्तर्गत जोतों का उपविभाजन तथा विखंडन होता रहा तो कुछ वर्षों में ही देश में समस्त खेत अनार्थिक जोत के हो जाएंगे जिसका कृषक की कुशलता तथा कृषि–क्षेत्र के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

4. विपणन योग्य अतिरेक में कमी – बड़े आकार के खेतों पर कृषि करने का उद्देश्य व्यावसायिक होता है जिस कारण विपणन योग्य अतिरेक अधिक होता है। परन्तु छोटे खेतों पर कृषि उपभोग के लिए की जाती है और उनका विपणन योग्य अतिरेक बहुत कम होता है। खेतों के आधार समान हो जाने पर विपणन योग्य अतिरेक में कमी आ जाएगी।

5. सामाजिक संघर्ष होना – कृषि जोतों की उच्चतमसीमा लागू करके जो आधिक्य वचाली भूमि प्राप्त होगी उसके पुनर्वितरण में पारस्परिक वैमनस्य औश्र संघर्ष की भावना उत्पन्न होगी जिससे समाज की शांति भंग हो जाएंगी।

6. आधुनिक ढंग से कृषि नहीं – जोतों का आकार छोटा हो जाने से आधुनिक यन्त्रों जैसे : ट्रैक्टर, थ्रेशर, कल्टीवेटर आदि का उपयोग नहीं हो सकेगा और बड़े पैमाने के कृषि लाभ से वंचित होना पड़ा। अतः उत्पादन लागत अधिक आएगी और बचत घट जाएगी जिससे पूंजी निर्माण कम होगा।

7. सीमा निर्धारण में कठिनाई होना – सभी क्षेत्रों की भूमि समान उर्वरा शक्ति की नहीं होती। इस कारण जोतों की उच्चतम सीमा भी सभी क्षेत्रों मे ंएकसमान निर्धारित नहीं की जा सकती। अतः सीमा निर्धारण में बड़ी कठिनाई आएगी।

7. **अन्य तत्व** – पूंजी निर्माण पर प्रतिकूल प्रभाव आधिक्य वाली भूमि प्राप्त करने के लिए सरकार की क्षतिपूर्ति करने में कठिनाई होगी। औद्योगिक विकास पर भी उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।अधिकतम जोत निर्धारण के पक्ष और विपक्ष में दिए गए तर्कों के आधार पर हमारी स्पष्ट राय यह है कि जोतों की उच्चतम सीमा निर्धारण से कृषि संरचना में सुधार होगा

3.2.9 चकबंदी

भारत में किसानों के खेत छोटे और बिखरे हुए हैं। जब तक खेतों का आकार उचित नहीं होगा, किसान अपने साधनों का ठीक प्रयोग नहीं कर सकेगा। स्ट्रिकलैंड के शब्दों में, ''चकबन्दी वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसानों को इस बात के लिए मनाया जाता है कि वे अपने इधर–उधर बिखरे हुए खेतों के बदले में उसी किस्म और कुल उतने ही आकार का एक या दो खेत ले लें।''

3.2.10 चकबन्दी के प्रकार

भारत में चकबन्दी के दो तरीके अपनाए गए हैं जो इस प्रकार हैं :

1. **ऐच्छिक चकबन्दी** – यदि किसान अपनी इच्छा से चकबन्दी करने को तैयार हो जाए तो इसे ऐच्छिक चकबन्दी कहेंगे। इस ढंग से चकबन्दी करने के प्रयत्न भारत में सर्वप्रथम सहकारी समितियों द्वारा पंजाब में 1921 में किया गया। यह तरीका सबसे अच्छा है।

2. **अनिवार्य चकबन्दी** – कानून द्वारा जब चकबन्दी अनिवार्य रूप में की जाती है तो उसे अनिवार्य चकबंदी कहते हैं। यह दो प्रकार की हो सकती है :

(अ) आंशिक अनिवार्यता – इसके अनुसार यदि गांव के अधिकतर लोग चकबन्छी को तैयार हों तो बाकी लोगों को भी कानून के अनुसार चकबन्दी जरूर करानी पड़ती है।

(आ) पूर्ण अनिवार्यता – इसमें कानून बनाकर सरकार अपनी ओर से ही अनिवार्य चकबन्दी करती हैं इसके लिए सबसे पहला कानून 1947 में पास किया गया था। **3.2.9.2**

चकबन्दी से लाभ

भारत में किसानों के लिए चकबन्दी के लाभ इतने अधिक हैं कि यदि ग्राम सुघार के सारे लाभ तराजू के एक पलड़े में रखे जाएं और चकबन्दी के लाभ दूसरे पलड़े में रख दिए जाएं तो चकबन्दी वाला पलड़ा भारी रहेगा।

चकबन्दी के लाभ निम्नलिखित हैं –

(1) चकबन्दी कराने के पश्चात वैज्ञानिक ढंग से खेती की जा सकती है।

(2) एक खेत से दूसरे खेत में जाने में जो समय, मेहनत और रूपया खर्च होता है वह बच जाता है।

(3) किसान को अपनी भूमि की उन्नति के लिए कुछ धन खर्च होता है वह बच जाता है।

(4) चकबन्दी के कारण खेतों की मेड बनाने के लिए भूमि बेकार नहीं करनी पड़ती।

(5) सिंचाई अच्छी प्रकार से की जाती है।

(6) सर्वप्रकार की खेती करने से खर्च कम होता है और आय बढ़ जाती है।

(7) गांव में मुकदमेबाजी कम हो जाती है।

(8) चकबन्दी के बाद जो फालतू भूमि निकलती है उसमें बगीचे, स्कूल, पंचायत घर, सड़कें, खेल का मैदान बनाये जा सकते हैं।

3.2.9.3 चकबन्दी की कठिनाइयां

भारत में चकबन्दी संबंधी कई कठिनाइयां पाई जाती हैं :

1. रिकार्ड की कमी – बहुत से क्षेत्रों में भूमि के अधिकार से संबंधित रिकार्ड नहीं पाये जाते हैं।

2. प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी – चकबन्दी का काम एक तकनीकी काम है। इसके लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों की जरूरत पड़ती है। भारत में ऐसे लोगों की बहुत कमी है।

3. खर्च – चकबन्दी करने पर खर्च आता है। इस खर्च को पूरा करना भी एक समस्या है। पंजाब में चकबन्दी के लिए फीस ली जाती है।

4. किसानों की अज्ञानता – भारत का किसान रूढ़िवादी है। वह अपने पूर्वजों की जमीन छोड़ना नहीं चाहता है। सरकारी कर्मचारियों ने घूस आदि लेवकर उसे भी बदनाम कर दिया है।

5. किसानों का विरोध – बड़े और धनी किसान जिनके पास उपजाऊ भूमि के अधिक भाग होते हैं वे चकबन्दी का विरोध करते हैं।

6. भूमि की कीमतों में अन्तर – चौथी पंचवर्षीय योजना के अनुसार चकबन्दी की एक मुख्य कठिनाई गांवों में भूमि की कीमतों में पाया जाने वाला अन्तर है। यह अन्तर मुख्यरूप से सिंचाई की सुविधा के कारण होता है।

3.2.10 सहकारी खेती

सहकारी खेती से अभिप्राय उस व्ययस्था से है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक किसान अपनी भूमि का स्वामी बना रहता है। लेकिन कृषि संबंधी कार्य अन्य लोगों के साथ मिलकर करता है। जो लाभ मिलता है वह आपस में बांट लिया जाता है। सहकारी खेती विशेष रूप से उपविभाजन तथा विखण्डन की समस्या के समाधान में सहायक होती है। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद के अनुसार, ''सहकारी खेती वह है जिसमें प्रत्येक कृषक का अपनी भूमि पर पूर्ण स्वामित्व होता है लेकिन खेती सामूहिक रूप से की जाती है।''

पंचवर्षीय योचजनाओं में सहकारी खेती को काफी महत्व दिया गया है। इन समय देश मे लगभग 9800 सहकारी खेती समितियां कार्य कर रही हैं। इनकी सदस्य संख्या 3.25 लाख है तथा इनके पास 5.7 लाख हैक्टेयर भूमि है।

3.2.10 भूमि सुधार की हानियां

योजना आयोग द्वारा श्री पी.एस. आपू की अध्यक्षता में भूमि सुधारों का मूल्यांकन करने के लिउ एक समिति गठित की गई थी। इस समिति के अनुसार भूमि सुधार लागू करने में मुख्य कठिनाइयां इस प्रकार हैं : राजनीतिक मनोबल का अभाव, नौकरशाही की लापरवाही, कानूनी बाधाएं, भूमि संबंधी रिकार्ड का अभाव, गरीब किसान एवं कृषि मजदूरों के संगठन का अभाव आदि। मुख्य कारण निम्न रहे हैं –

1. असमन्वय – भूमि सुधार नीति को धीरे–धीरे और असमन्वित रूप से लागू किया गया। विभिन्न उपायों को अलग–अलग लागू किया गया, इस कारण समस्या का पूरा हल न हो सका। जमींदारी उन्मूलन जैसे सुधारों में दो से दस वर्ष लग गए।

2. राजनैतिक इच्छा का अभाव – भूमि सुधार को कुशलतापूर्वक लागू करने के लिए राजनैतिक इच्छा का अभाव था। इन सुधार को लागू करने की जिम्मेदारी राज्य सरकारों की है। इन सरकारों पर बड़े जमींदारों का प्रभाव है। इसलिए सरकारें अनेक सुधारों को लागू करने के प्रभावपूर्ण उपाय नहीं अपना सकीं।

3. भूमि सुधार संबंधी कानूनों में विभिन्नता – भूमि सुधार की धीमी गति का एक कारण यह भी है कि विभिन्न राज्यों में भूमि सुधार संबंधी कानून भिन्न–भिन्न हैं। इसके फलस्वरूप इन्हें राष्ट्रीय स्तर पर एक साथ लागू नहीं किया जा सकता।

4. भूमि संबंधी रिकार्डों का अपूर्ण होना – भारत में भूमि संबंधी रिकार्ड अपूर्ण है, इसके कारण स्वामित्व का निर्धारण करने में कठिनाई होती है।

5. सरकारी कार्यक्रम – भूमि सुधार कार्यक्रम एक सरकारी कार्यक्रम बनकर रह गया हैं काश्तकारों निर्धन किसानों, भूमिहीन कृषि मजदूरों द्वारा इसे लागू करने के लिए जोर नहीं डाला जाता। वे अपनी अज्ञानता तथा निर्धनता के कारण इस प्रोग्राम को लागू करने में असमर्थ हैं। उनके द्वारा मांग के अभाव के कारण यह कार्यक्रम धीरे–धीरे सरकार द्वारा लागू किया जा रहा है।

6. भूमि सुधार संबंधी दोषपूर्ण कानून – भूमि सुधारों के संबंध में बनाये गये कानून काफी दोषपूर्ण रहे हैं तथा उन्हें धीरे–धीरे लागू किया जाता है। इसके फलस्वरूप जमींदारों को इन कानूनों से बचने का पूरा–पूरा समय मिल जाता है।

7. मुकदमेंबाजी – भूमि सुधार संबंधी कानूनों के दोषपूर्ण होने के कारण काफी मुकदमेंबाजी होती है। इसके फलस्वरूप सुधारों का लागू होना रूक जाता है तथा सरकार और लोगों को काफी धन खर्च करना पड़ता है।

8. प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन का अभाव – भूमि सुधारों की सबसे बड़ी कमी उनके प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन का अभाव है। जमींदार उन्मूलन में बहुत समय लग गया। कई राज्यों में भूमि की अधिकतम सीमा संबंधी कानून लागू होता बाकी है। चकबन्दी की गति धीमी रही है। सहकारी खेती को कोई विशेष सफलता हासिल नहीं हुई। श्री गुन्नर मिर्डल ने ठीक ही कहा है, ''भूमि सुधार जिस ढंग से क्रियान्वित किए गए हैं, उनमें सामान्यतः उसकी भावनाओं तथा अभिप्राय को हताश होना पड़ा है।''

9. वित्त का अभाव – भारत में भूमि सुधार के कारण जहाँ भूमिहीन किसानों की भूमि का अधिकार प्राप्त हुआ है वहां उन्हें कृषि के अन्य साधनों की पूर्ति के लिए कोई वित्तीय सहायता नहीं दी गई है। इसके फलस्वरूप निर्धन किसान इन भूमि सुधारों का कोई लाभ नहीं उठा सका है। भारत में कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए केवल भूमि के पूर्णवितरण से लाभ नहीं होगा, इसके लिए कृषि के ढांचे में परिवर्तन करना आवश्यक है।

3.2.11 भूमि सुधार की सफलता के लिए सुझाव

भूमि सुधार कार्यक्रम की सफलता के लिए निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं –

1. कुशल प्रशासन – भूमि सुधार के विभिन्न कार्यक्रमों को लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य जिला व तहसील स्तर पर प्रशासकीय मशीनरी कुशल होनी चाहिए। इन अधिकारियों को भूमि सुधार संबंधी कानूनों का पूर्णज्ञान होना चाहिए।

2. सरल कानूनी प्रक्रिया – भूमि सुधार संबंधी कानून प्रक्रिया को सरल बनाया जाए। इनसे संबंधित मुकदमों का फैसला करने के लिए विशेष न्यायालय स्थापित किए जाएं। इन न्यायालयों द्वारा भूमि सुधार संबंधी झगड़ों का निर्णय कम खर्च व शीघ्रतापूर्ण से हो सकेगा।

3. नवीनतम रिकार्ड – भूमि संबंधी नवीनतम रिकार्ड तैयार किए जाएं, जिससे भूमि के स्वामित्व के विषय में शीघ्र फैसला किया जा सके। भूमि संबंधी आंकड़ों को निरन्तर नवीन रखने की दशा में उचित प्रयत्न किए जाने चाहिए।

4. भूमि सुधार कानून – राजकृष्णन समिति के अनुसार भूमि सुधार संबंधी कानूनों को संविधान की 9वीं सूची में शामिल किया जाना चाहिए, जिससे भूमि सुधार को किसी भी अदालत में चुनौती न दी जा सके।

5. वित्त की सुविधा – भूमि सुधारों के कारण जिन किसानों को भूमि प्राप्त हो उन्हें वित्त संबंधी सुविधाएं दी जानी चाहिए, जिसमें वे भूमि का उचित उपयोग कर सकें।

6. भूमि सुधारों का कुशल क्रियान्वयन – भूमि सुधार कार्यक्रमों की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उनका कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन किया जाए। इसके लिए एक निर्धारित कार्यक्रम तैयार किया जाए।

7. कानूनों का प्रचार – गांव के लोगों में भूमि सुधार संबंधी कानूनों का पूरी तरह प्रचार किया जाए। इन्हें विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित किया जाए। ब्लाक अधिकारियों तथा ग्राम सेवकों द्वारा अपने–अपने क्षेत्र में इनका अधिक से अधिक प्रचार किया जाना चाहिए।

8. उच्चतम सीमा के फलस्वरूप प्राप्त भूमि का शीघ्र वितरण – भूमि पर उच्च्तम सीमा लागू करने से जो अधिक भूमि प्राप्त होती है उसका निर्धन तथा भूमिहीन किसानों में तुरन्त वितरण किया जाना चाहिए। उन किसानों को खेती संबंधी अन्य साधन भी दिये जाने चाहिए जिससे वे उस भूमि का उचित उपयोग कर सकें।

9. ग्राम समितियाँ – भूमि सुधारों को कुशलतापूर्वक लागू करने के लिए ग्राम समितियां स्थापित की जानी चाहिए। इन समितियों में उन लोगों को भी सदस्य बनाया जाए जिन्हें भूमि सुधार के लाभ प्राप्त होते हैं। यह समितियां भूमि सुधारों को लागू करने के विषय में उचित कदम उठाएंगी। पंचायतों भी इस कार्य के सहयोग दे सकती है।

संक्षेप में, भारत में कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए तथा निर्धन किसानों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि भूमि सुधारों को कुशलतापूर्वक लागू किया जाए। डा. रामकृष्ण की अध्यक्षता में गठित भूमि सुधार कमेटी की रिपोर्ट को लागू किया जाना चाहिए।

3.2.12 प्रश्नावली

1. भूमि सुधारों से क्या अभिप्राय है। भारत में भूमि सुधारों के क्या उद्देश्य हैं।
2. भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न भूमि सुधारों का वर्णन करें।
3. भूमि सुधारों की धीमी प्रगति के लिए क्या कारण है। इसकी सफलता के लिए उपाय सुझाएं।

4. भूमि सुधार क्या है ? इसके क्या उद्देश्य होते हैं ? भारत में जो भूमि सुधार हाल में किए गए हैं उनका भूमि के स्वामित्व और प्रयोग के स्वरूप पर आपकी राय में क्या प्रभाव होगा।
5. 1947 के बाद भारत में विभिन्न भूमि सुधार उपायों के कार्यकरण का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
6. सहकारी खेती क्या है ? सहकारी खेती के गुण और दोषों का उल्लेख कीजिए।
7. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :–

   (अ) भूमि की सीमा

   (ब) जमींदारी प्रथा का अन्त

   (स) काश्तकारी सुधार

   (द) भूमि सुधार की सफलताएं

3.2.13 शब्दावली

यथेच्छ काश्तकार वे होते हैं जो निश्चित दर से लगान भूस्वामी को देते हैं, इस भूमि से उन्हें बेदखल करने का अधिकार भूस्वामी को नहीं होता है और न ही भू–स्वामी को लगान बढ़ाने का अधिकार होता है –

बेदखल काश्तकार – वे होते हैं, जिन्हें भू–स्वामी जब चाहे भूमि से बेदखल कर सकता है तथा लगान में परिवर्तन कर सकता है।

उपकाश्तकार वे होते हैं जो भूस्वामी से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित नहीं होते हैं, तथा उस काश्तकार से भूमि प्राप्त करते हैं जिसने भू–स्वामी से भूमि ली है।

रैयतवारी व्यवस्था – सर्वप्रथम Thomas Munroin 1792 ई0 में मद्रास में लागू किया था। इस व्यव्स्था में काश्तकार ही पूर्ण भू–स्वामी होता था, तथा वह भूमि को बेचना, हस्तांरित करना, खेती के लिये देना जैसे काय करता था।

महालवाड़ी व्यवस्था – यह व्यवस्था सर्वप्रथम आगरा व अवध में सन् 1833 ई0 में प्रारम्भ की गयी इस व्यवस्था में भूमि का स्वामित्व संयुक्त रूप से समस्त व गाँव का रहता था। मालगुजारी नम्बरदार वसूल करता था और सरकारी कोष में जमा करता था।

जमींदारी व्यवस्था – सन् 1965 ई0 में ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा 26 लाख रूपये मुगल शासन को देकर बंगाल, बिहार, एवं उड़ीसा राज्यों में भूमिकर वसूल करने के अधिकार प्राप्त कर लिया। इस व्यवस्था में जमींदार भू–स्वामी होता था, वह किसी को भी काश्तकार रख सकता था तथा किसी को भी बेदखल कर सकता था। जमींदारी दो प्रकार के बंदोबस्त के अन्तर्गत दी जाती थी (1) स्थायी (2) अस्थायी

आर्थिक जोत – आर्थिक जोत से तात्पर्य उस जोत से है जिस पर निर्भर रहने वाला परिवार वर्ष भर उस पर कार्य करते हुए पर्याप्त मात्रा में आय प्राप्त कर सकता हो।

पारिवारिक जोत – पारिवारिक जोत वह जोत है जो स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार तथा कृषि की वर्तमान प्रणाली के अन्तर्गत एक औसत आकार वाले परिवार के लिये उसे सहायता सहित एक हल इकाई अथवा एक कार्य इकाई के बराबर हो।

चकबन्दी – चकबन्दी से आशय कृषक की अलग–अलग स्थानों पर बिखरी हुई भूमि को एक स्थान पर कर देने की क्रिया से है।

3.2.14 कुछ उपयोगी पुस्तके

रुद्र दत्त एवं सुंदरम भारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

ए. एन. अग्रवाल भारतीय कृषि की समस्याएं

जी.एस. भल्ला और डी.एस. त्यागी भारत में कृषि विभाग द्वारा एक जिले के अध्ययन स्तर का नमूना

पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद कृषि विकास के विकल्प, एलाइड पब्लिशर्स न्यू दिल्ली 1980

खण्ड–3

इकाई– 2

कृषि विकास की प्रवृत्ति उपलब्धियां एवं समस्याएं

इकाई की रूप रेखा

3.21 उद्देश्य

3.2.2 प्रस्तावना

3.2.3 पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन व उत्पादकता की प्रवृत्तियॉ

3.2.4 पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि का विकास

3.2.5 संभाव्य एवं वास्तविक उत्पादकता

3.2.6 निम्न उत्पादकता के कारण

3.2.7 कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने के उपाय एवं सरकारी प्रयास

3.2.8 सारांश

3.2.9 शब्दावली

3.2.10 बोध प्रश्न

3.2.11 संदर्भ पुस्तकें

3.21 उद्देश्य

1–प्रस्तुत ईकाई में हम पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन व उत्पादकता की प्रवृत्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

2–प्रस्तुत इकाई में पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि का विकास की जानकारी प्राप्त करेंगे।

3–प्रस्तुत इकाई में हम सामान्य एवं वास्तविक उत्पादकता की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4–प्रस्तुत इकाई निम्न उत्पादकता के कारणों की जानकारी प्राप्त करेंगे ।

5–प्रस्तुत ईकाई में कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने के उपाय एवं सरकारी प्रयासों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.2.2 प्रस्तावना

कृषि सभी उद्योगों की जननी, मानवजीवन की पोषक, प्रगति की सूचक तथा सम्पन्नता का प्रतीक मानी जाती है। यह एक प्रधान व्यवसाय होने के कारण राष्ट्रीय आय का स्रोत तथा रोजगार एवं जीवनयापन का प्रमुख साधन है। यह भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। कृषि का महत्व होने पर भी इसमें पिछड़ापन देखने को मिलता है। यद्यपित नियोजन काल के फलस्वरूप दीर्घकालीन गतिहीनता की स्थिति समाप्त हुई है, कई फसलों की उपज बढ़ाने में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। खाद्यान्नों के क्षेत्र में लगभग आत्मनिर्भरता की स्थिति है। भारतीय कृषि में कई खाद्यान्नों का उत्पादन करने में विश्व में प्रमुख स्थान है परन्तु इसमें अभी भी निम्न उत्पादकता पायी जाती है। इसके कारणों को हम वर्गीकृत कर सकते हैं। जैसे– सामान्य कारण, संस्थागत कारण, तकनीकि कारण कृषि उत्पादन को बढ़ाने हेतु सरकार द्वारा कई प्रयास किये गये हैं।

3.2.3 कृषि उत्पादन व उत्पादकता की प्रवृत्तियां–

कृषि उत्पादन के मुख्य रूप से दो हिस्से है– खाद्यान्न तथा अखाद्यान्न भारत में कुल कृषि उत्पादन में खाद्यान्नों का हिस्सा दो तिहाई से थोड़ा कम है। यह इस बात से स्पष्ट है कि कृषि उत्पादन के सूचकांकों में खाद्यान्नों व अखाद्यान्नों को क्रमशः 62.9 तथा 37.1 भार दिया गया है। खाद्यान्नों में सबसे महत्वपूर्ण चावल है। दूसरा स्थान गेहूँ का है जिसका भार 14.5 है। अखाद्यान्नों में सबसे अधिक महत्व खाद्य तेलों का है जिनका भार 12.6 है। गन्ने का भार 8.1 तथा रूई का 4.4 है।

कृषि उत्पादन व उत्पादकता की प्रवृत्तिया सारणी मे ंदी गई हैं। पहले सारणी पर विचार करें। जहॉ तक खाद्यान्न उतपादन का सम्बन्ध है, कुल उत्पादन 1950–51 में 508 लाख टन था जो आठवीं योजना में बढ़कर 1890 लाख टन तथा नौवीं योजना में 2029 लाख टन हो गया। दसवीं योजना के प्रथम वर्ष 2002–03 में सूखे की स्थिति के कारण, खाद्यान्न उत्पादन कम होकर 1748 लाख टन रह गया परन्तु 2003–04 में बढ़कर यह 2132 लाख टन हो गया।दसवीं योजना में खाद्यान्नों का उत्पादन 2022 लाख टन रहा जो नौवीं योजना के वार्षिक औसत उत्पादन से भी कम था। परन्तु दसवीं योजना के अन्तिम वर्ष 2006–07 में खाद्याान्नों का उत्पादन 2173 लाख टन के उच्च्व स्तर तक पहुँच गया। 2008–09 में यह और बढ़कर 2344 लाख टन तक जा पहुँचा। 2009–10 में खाद्यान्नों का उत्पादन 2182 लाख टन रह गया।

सारणी 1.1 कृषि उत्पादन की प्रवृत्ति, 1950–51 से 2011–12

1950–51	पहली योजना	दूसरी योजना	तीसरी योजना	वार्षिक योजनाएं	चौथी योजना	पांचवी योजना	छठी योजना	सातवीं योजना	आठवीं योजना	नौवीं योजना	दसवीं योजना	2010–11	2011–12′
	1951-56	1956-61	1966-69	1966-69	1969-74	1974-79	1980-85	1985-90	1992-97	1997-02	2002-07	2010-2011	2011-12
2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15
206	250	303	351	359	418	473	545	651	787	873	856	953	1034
64	79	97	111	155	254	298	412	483	629	713	702	859	902
55	75	87	88	97	83	108	113	109	107	78	72	67	60
26	34	34	39	45	60	50	60	62	67	71	82	101	102
17	27	36	46	56	61	63	73	76	98	116	140	213	213
61	66	65	63	62	64	71	60	54	49	45	36	42	44
84	101	117	111	103	109	117	118	125	133	131	133	181	170
508	632	740	810	878	1030	1181	1381	1550	1890	2029	2020	2416	2526
62	55	67	73	72	83	89	117	139	219	212	232	311	301
571	553	803	1092	1043	1281	1588	1749	1964	2584	2924	2770	3392	3512
30	39	48	54	55	59	68	75	84	122	108	160	334	352
33	39	44	57	49	55	52	64	89	81	96	101	100	109

अप्रैल, 2012 को भारत सरकार के कृषि मंत्रालय द्वारा जारी तीसरे अग्रिम अनुमान के अनुसार।

1. कपास और पटसन के अलावा, सब आंकड़े लाख टन में हैं। कपास के लिए आंकड़े लाख टन में है जहॉ एक गांठ 170 किलोग्रम पटसन के लिए आंकड़े भी लाख गांठ में है परन्तु यहॉ एक गांठ 180 किग्रा।

2. तिलहन के आंकड़ों में कालम 2 से 8 तक में पांच तिलहन, मूंगफली, रेपसीड व सरसों, अलसी, तिल तथा अरण्डी शामिल है। बाद के कालम में इनके अलाव चार और तिलहन शामिल हैं। सोयाबीन, सूरजमुखी सम्मिलित तथा कुसुम।

3.2.4 पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि का विकास–

खाद्यान्न उत्पादन–

विश्लेषण के दृष्टिकोण से पूरी सारणी को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है– 1. तीसरी योजना से पहले की अवधि तथा तीसरी योजना के बाद की अवधि। तीसरी योजना के बाद की अवधि को अक्सर हरित क्रान्ति का काल कहा जाता है तथा जैसाकि सारणी से स्पष्ट है। इस अवधि में गेहूॅ के उत्पादन में तेज वृद्धि हुई। दूसरी योजना में गेहूॅ का उत्पादन औसतन 97 लाख टन प्रति वर्ष तथा तीसरी योजना में औसतन 111 लाख टन प्रति वर्ष था। चौथी योजना में गेहूॅ का उत्पादन बढ़कर 250 लाख टन प्रति वर्ष तक जा पहुॅचा। तब से वृद्धि की यह प्रवृत्ति बनी रही है और दसवीं योजना में गेहूॅ उत्पादन बढ़ते –बढ़ते औसतन 702 लाख टन तक पहुॅच गया। ग्यारहवीं योजना के अंतिम वर्ष 2011–12 में गेहूॅ का उत्पादन बढ़कर 902 लाख टन हो गया। 1980 के दशक से चावल के उत्पादन में भी काफी वृद्धि हुई है हालांकि कुछ वर्षों में वृद्धि रूक रूक कर हुई है। चावल का उत्पादन तीसरी योजना में औसतन 351 लाख टन प्रति वर्ष से बढ़कर दसवीं योजना में औसतन 856 लाख टन प्रति वर्ष तक पहुॅच गया। 2011–12 में चावल का उत्पादन 1034 लाख टन हुआ है। इस प्रकार पूरी योजना अवधि में पहली बार चावल का उत्पादन 10 करोड़ टन से अधिक हुआ है। जैसा कि सारणी से स्पष्ट है। ज्वार और बाजरा का उत्पादन अधिकतर योजना अवधि में लगभग स्थिर सा बना रहा है। मक्का का उत्पादन भी काफी समय तक लगभग स्थिर सा रहा परन्तु हाल के वर्षों में नये संकर बीजों के प्रयोग से मक्का का उत्पादन तेजी से बढ़ा है। 2006–07 में मक्का का उत्पादन 151 लाख टन था जो 2010–11 में बढ़कर 213 लाख टन तक जा पहुॅंचा। संकर बीजों की उच्च उत्पादकता के कारण हाल के वर्षों में मक्का की बीजों के जहॉ तक दालों का प्रश्न है, उनकी वार्षिक आवश्यकता देश में 170 लाख टन आंकी गई है। परन्तु पूरी योजना अवधि में दालों का उत्पादन इस स्तर से काफी कम रहा है। दालों की आपूर्ति मांग की तुलना में लगातार कम रही है जिससे देश की बड़ी मात्रा में दालों का आयात करना पड़ा है। वस्तुतः पिछले कुछ वर्षों से दालों का आयात वर्ष 30 लाख टन के आसपास रहा है जिससे भारत विश्व में दालों का सबसे बड़ा आयातक है।

अखाद्यान्न उत्पादन–

जहॉ तक अखाद्यान्नों का संबंध है, तिलहनों के उत्पादन में 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में 990 के दशक के कुछ वर्षों तथा इस शताब्दी के प्रथम दशक के कुछ वर्षों में काफी वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए तिलहनों का उतपादन 1987–88 में 127 लाख टन से बढ़कर 1990–91 में 186 लाख टन तथा 1998–99 में 247 लाख टन हो गया। परन्तु इसके बाद तिलहनों के उत्पादन में गिरावट हुई। 2002–03 में इनका उत्पादन मात्र 148 लाख टन था। परन्तु उसके बाद उत्पादन में फिर वृद्धि हुई। 209–10 में तिलहनों का उत्पादन 249 लाख टन था जो 2010–11 में 311 लाख टनप के रिकार्ड स्तर तक पहुॅच गया।। परन्तु दालों की तरह ही तिलहनों की मांग और आपूर्ति में व्यापक अन्तर है जिसके कारण देश को बड़ी मात्रा में खाद्य तेलों का आयात करना पड़ा है। उदाहरण के लिए 2011–12 में तिलहनों की मांग 155 लाख टन थी और इस मांग का 60 प्रतिशत आयातों द्वारा पूरा किया गया। इस वर्ष खाद्य तेलों के आयात पर लगभग 35000 करोड़ रूपये का खर्च हुआ। आम उपभोग के लिए आवश्यक इस

वस्तु के आयात पर इतनी भारी रकम का खर्च युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि इसका उत्पादन अपने ही देश में करना संभव है।

कपास के उत्पादन में, जो आठवीं योजना में औसतन 122 लाख टन प्रति वर्ष तथा नौवीं योजना में औसतन 101 लाख टन प्रति वर्ष था, हाल के वर्षों में तेज वृद्धि हुई है। इस कारण 2002 में बीटी काटन का प्रयोग था। 2002 के बाद से बीटी काटन के अधीन क्षेत्र में तेज वृद्धि हुई है तथा अब कपास अधीन क्षेत्र के लगभग 90 प्रतिशत में बीटी काटन बोई जाती है। इसी का यह परिणाम है कि कपास का उत्पादन जो दसवीं योजना में औसतन 160 लाख टन था, 2011–12 में बढ़कर 352 लाख टन तक जा पहुॅच परन्तु कई आलोचकों ने यह मत व्यक्ति किया है कि बीटी काटन के प्रयोग पर पाबंदी लगाने की जरूरत है क्योंकि इससे कई चर्म रोग हो सकते हैं तथा यह पशुओं के लिए घातक है।

अखाद्यान्न वर्ग में पटसन का उत्पादन पूरी योजना अवधि में रूक–रूक कर बहुत कम गति से बढ़ा है। जहॉ तक गन्ने की उत्पादन का संबंध है, 1952–53 से 2002–03 की चालीस वर्श की अवधि में इसमें सतत रूप से वृद्धि हुई है। परन्तु 2003–04 तथा 2004–05 में गन्ने के उत्पादन में तेज गिरावट हुई। 2006–07 में गन्ने का उत्पादन 2922 लाख टन था जो 2010–11 में 3392 लाख टन हो गया। 2011–12 में गन्ने का उत्पादन 3512 लाख टन हो गया।

सारणी 1.2 में प्रति हैक्टर उत्पादकता में वृद्धि दी गई है। जैसा कि सारणी से स्पष्ट है सभी खाद्यान्नों की प्रति हेक्टर उत्पादकता 1950–51 से 2010–11 की अवधि में साढ़े तीन गुणा हो गयी है। यदि हम संपूर्ण योजना अवधि पर विचार करें तो सबसे अधिक वृद्धि गेहॅू उत्पादकता में दिखाई पड़ती है। चावल की उत्पादकता भी पिछले कुछ दशकों में काफी बढ़ी है। ज्वार तथा बाजरा की उत्पादकता मं वृद्धि बहुत कम हुई। जैसाकि उपर कहा गया है संकर बीजों के प्रयोग के परिणामस्वरूप, हाल के वर्षों में मक्का की उत्पादकता में तथा बीटी काटन के प्रयोग के परिणामस्वरूप, कपास की उत्पादकता में तेज वृद्धि हुई है। जैसाकि सारणी 1.2 से स्पष्ट है मक्का की उत्पादकता जो 2000–01 में 1822 किलोग्राम प्रति हेक्टर थी, 2010–11 में बढ़कर 2507 किलोग्राम प्रति हेक्टर हो गई। इसी अवधि में कपास की उत्पादकता 190 किलोग्राम प्रति हेक्टर से बढ़कर 510 किलोग्राम प्रति हेक्टर हो गई। यदि हम संपूर्ण योजना अवधि पर विचार करें तो इस पूरी अवधि में दालों की उत्पादकता में प्रति वर्ष औसतन एक प्रतिशत प्रति वर्ष से भी कम वृद्धि हो पाई। इसके परिणामस्वरूप, घरेलू उपभोग की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए देश को बड़े पैमाने पर दालों का आयात करना पड़ा है। तिलहनों की उत्पादकता 1950–51 में 481 किलोग्राम प्रति हेक्टर थी जो 2000–01 में 810 किलोग्राम प्रति हेक्टर तथा 2010–11 में 1159 किलोग्राम प्रति हैक्टर हो गई।

सारणी 1.2 प्रमुख फसलों की प्रति हेक्टर उत्पादकता

फसल	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	2000-01	2010-11

1	2	3	4	5	6	7	8
चवल	668	1013	1123	1336	1740	1901	2210
गेहूँ	655	851	1307	1630	2231	2708	2933
ज्वार	383	533	466	660	814	764	966
बजरा	288	286	622	458	658	688	1069
मक्का	547	926	1279	1159	1518	1822	2507
छालें	441	539	524	473	578	544	689
सब खाद्यान्न	552	710	872	1023	1380	1626	1921
थ्तलहन	481	507	579	532	771	810	1159
क्पास	88	125	106	152	225	190	510
पटसन	1043	1049	1186	1245	1833	2026	2344

सारणी 1.2 की तरह इसमें कालम 2 से 4 तक पांच तिलहन शामिल हैं जबकि कालम 5 से 8 तक चार और तिलहन कुल संख्या 9 शामिल हैं।

3.2.5.1 संभाव्य एवं वास्तविक उत्पादकता–

अन्य देशों में कृषि की उत्पादकता की तुलना भारत से करने पर पता चलता है कि हमारे देश में कृषि उत्पादकता का स्तर कितना कम है। भारत में गेहूँ की उत्पादकता इंग्लैंड की तुलना में मात्र 37 प्रतिशत है। चीन की तुलना में भी भारत में गेहूँ की उत्पादकता मात्र 61 प्रतिशत है। जहाँ तक चावल का संबंध है, भारत में चावल की उत्पादकता चीन में उत्पादकता का 49 प्रतिशत तथा अमेरिका में उत्पादकता का 40 प्रतिशत है। जहाँ तक मक्का का प्रश्न है, भारत में उसकी उत्पादकता चीन में उत्पादकता की 38 प्रतिशत और अमेरिका तथा फ्रांस में उत्पादकता की एक चौथाई से भी कम है।

न केवल भारत में कृषि उत्पादकता अन्य देशों की तुलना में कम है, वह संभाव्य की तुलना में भी बहुत कम है। यह बात सारणी 1.4 से स्पष्ट हो जाती है।

सारणी 1.4 : संभाव्य एवं वास्तविक उत्पादकता

किलोग्राम प्रति हैक्टर

फसल	**संभाव्य उत्पादकता**	**वास्तविक उत्पादकता 2010–11**
चवल	4000 / 5810	2240
गेहूँ	6000 / 6800	2938
ज्वार	3000 / 4200	956

मक्का	6000 / 8000	2507
क्पास	700 / 850	510
पटसन	2500 / 3000	2334
गन्ना	96000 / 112000	69000

गेहूँ के लिए भी 2010–11 में उत्पादकता मात्र 2938 किलोग्राम प्रति हेक्टर थी जबकि संभाव्य उत्पादकता 6000 से 6200 किलोग्राम प्रति हैक्टर है। चावल की 2010–11 में वास्तविक उत्पादकता 2240 किलोग्राम प्रति हैक्टर थी जबकि संभाव्य उत्पादकता 4000 से 5800 किलोग्राम प्रति हैक्टर है। अन्य फसलों के लिए भी इसी प्रकार की स्थिति पाई जाती है।

3.2.6 निम्न उत्पादकता के कारण –

मुख्य कृषि फसलों में विश्व में भारत के स्थान पर विचार करें तो कुछ और आश्चर्यजनक जानकारी सामने आती है। अधिकतर कृषि फसलों में भारत विश्व के सबसे बड़े उत्पादक देशों में से एक है। उदाहरण के लिए विश्व में धान तथा गेहूँ के अधीन भारत में सर्वाधिक क्षेत्र है तथा वह इनका दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। परन्तु उत्पादकता में चावल में भारत का स्थान 52वां तथा गेहूँ में 38 वां है। दालों के अधीन भारत में सर्वाधिक क्षेत्र है। और वह विश्व में दालों का सबसे बड़ा उत्पादक है परन्तु उत्पादकता में उसका स्थान केवल 133 वां है।

यद्यपि योजनावधि में कृषि उत्पादकता में कुछ सुधार हुआ है यद्यपि आज भी यह विश्व के विकसित तथा अल्प विकसित दोनों ही प्रकार के देशों की तुलना में कम है। उत्पादकता कम होने के अनेक कारण हैं जिन्हें हम तीन श्रेणियों में रख सकते हैं। क. सामान्य कारण ख. संस्थागत कारण तथा ग. तकनीकी कारण

सामान्य कारण–

सामाजिक वातावरण– भारतीय गावों का सामाजिक वातावरण कृषि विकास में बाधक समझा जाता है। रूढ़ियों में ग्रस्त अन्धविश्वासी, भाग्यवादी एवं अज्ञानी कृषक को उत्पादकता के नीचे स्तर के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है। सतही ढंग से समस्या पर विचार करने पर यह ठीक लगता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि सीधा सादा लगने वाले कृषक वर्तमान उत्पादन सम्बन्धों की सीमा के भीतर अपने साधनों का आवंटन कुशलतापूर्वक करता है। डब्ल्यू. डेविड हापर सेनापुर गांव के अध्ययन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारतीय कृषक अपने भौतिक स्रोतों का कुशलता के साथ पूरा–पूरा उपयोग करते हैं। जी एस सहोटा भी भारतीय कृषि में साधनों के आबंटन के विश्लेषण द्वारा यह निष्कर्ष निकालते हैं इस दावे का समर्थन कर पाना कठिन है कि भारतीय कृषक रूढ़ियों में ग्रस्त हैं और उनका आचरण विवेकपूर्ण एवं मितव्ययी

नहीं है अथवा श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य है अथवा किसी प्रकार भी पूंजी की सीमांत उत्पादकता अधिक है।

2. भूमि पर जनसंख्या का दबाव–

भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता हुआ दबाव एक हद तक जोतों के उप विभाजन एवं अपखंडन के लिएउत्तरदायी है। बहुत छोटे खेतों पर उत्पादिता का स्तर नीचा ही होगा।

3. कृषि योग्य भूमि की कमी –

भारत सरकार द्वारा लगाये गये एक अनुमान के अनुसार देश की कुल 32 करोड़ 90 लाख हैक्टर भूमि में से लगभग आधी अधःपतन या अवनति की शिकार है। लगभग 43 प्रतिशत भूमि पर अत्यधिक अधःपतन हो चुका है। जिसके परिणामस्वरूप 33–67 प्रतिशत उत्पादकता हानि हो रही है। और लगभग 5 प्रतिशत भूमि तो अब कृषि योग्य रह हीनहीं गई है। 199 मे ंप्रकाशित एक अध्ययन में सी. ब्रैन्डन एवं के0 हौमान ने अनुमान लगाया था कि भारत में मिट्टी के अधःपतन के परिणामस्वरूप प्रति वर्ष 1.9 बिलियन डालर मूल्य के कृषि उत्पादन की हानि होती है।

संस्थागत कारण–

1. भूस्वामित्व प्रणाली–

भारतीय कृषि के अल्पविकास तथा उत्पादिता के नीचे स्तर के लिए शायद सबसे महत्वपूर्ण कारण जमींदारी प्रथा रही है। स्वतंत्रता के बाद मध्यस्थों को समाप्त करने के लिए जो कानून बनाये गये, उनसे भूमि का थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रीकरण बना रहा और वास्तविक खेती करने वालों की जमींदारों से कोई खास भूमि नहीं मिली। पट्टेदारों एवं लगान निर्धारण सम्बन्धी व्यवस्थाओं के अन्तर्गत काश्तकारों को विशेष सुरक्षा नहीं मिली। आज भी अधिकांश काश्तकारों की पट्टेदारी सुरक्षित नहीं है। और उन्हें अनुचित रूप से अधिक लगान देना होता है। इस भूस्वामित्व प्रणाली में केवल तकनीकी सुधारों के द्वारा उत्पादिता को बढ़ा सकना कठिन है। यदि कृषि में निवेश की मात्रा को बढ़ाना है तो आर्थिक आधिक्य को हड़पने वाले सूदखोर महाजनी वर्ग और लगानखोर जमींदार वर्ग का अस्तित्व ही समाप्त करना होगा।

2. साख एवं विपणन सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव–

प्रायः यह मान लिया जाता है कि भारतीय किसान के निर्णय मूल्य प्रेरणाओं द्वारा प्रभावित नहीं होते। दूसरे शब्दों में भारतीय कृषक आकर्षक मूल्यें पर भी उत्पादन बढ़ानेके लिए तत्पर नहीं होते। प्रायः विपणन सुविधाओं के अभाव में अथवा उचित ब्याज पर साख न मिलने पर काश्तकार जरूरी मात्रा में निवेश नहीं कर पाते। यदि सररकार छोटे किसानों को साख प्रदान करने के लिए किसी संगठन को विकसित कर सकती है। सहकारी समितियों को सम्पन्न किसानों

के नियंत्रण से मुक्त करा कर इनसे छोटे किसानों को साख दिलाने के लिए तत्पर है, निश्चय ही उत्पादिता में सुधार हो सकता है।

3. अनार्थिक जोतें–

भारत में राष्ट्रीय सेंपिल सर्वेक्षण के अनुसार 1961–62 में लगभग 52 प्रतिशत जोतें 2 हैक्टर से कम थीं। 2005–06 में लगभग 83 प्रतिशत जोतें 2 हैक्टर से कम थीं। न केवल ये जोतें अत्यन्त छोटी हैं अपितु बहुत छोटै–छोटे टुकड़ों में बटी हुई हैं। इसलिए इन पर केवल श्रम प्रधान तकनीकों से ही खेती हो सकती है। जब तक भारत में कृषि क्षेत्र से अतिरिक्त श्रम का स्थानांतरण नहीं होता और जोतों की चकन्दी द्वारा अथवा सहकारी या सामूहिक खेती के गठन द्वारा कृषि की आधुनिक रीतियों को अपनाया नहीं जाता, उस समय तक उत्पादकता में अधिक वृद्धि होना मुश्किल लगता है।

तकनीकी कारण–

1. पुरानी कृषि तकनीक–

भारत में कृषि विधियां पुरानी हैं। लकड़ी के हल और बैल अब भी अधिकांश किसानों द्वारा प्रयोग किये जाते हैं। उर्वरकों एवं अधिक उपज देने वाले बीजों का प्रयोग अब भी सीमित है। संक्षेप में भारतीय कृषि परम्परागत है। इसलिए उत्पादकता कम है।

2. सिंचाई की अपर्याप्त व्यवस्था–

भारत में कृषि के अधीन कुल क्षेत्र के केवल 45.3 प्रतिशत पर सिंचाई की व्यवस्था है और लगभग 55 प्रतिशत भूमि पूर्ण रूप से वर्षा पर आरित है। भारत में वर्षा मानसूनी हवाओं से होती है और प्रायः अनिश्चित रहती है। अतः उन सभी देशों में जहॉ सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध नहीं है। उत्पादकता का स्तर नीचा होना स्वाभाविक है। भारत में सिंचाई की व्यवस्था दोषपूर्ण है। सिंचाई के कार्यक्रमों में पूर्ण समन्वय न होने के कारण संभाव्य का पूरा उपयोग नहीं होता। इसके अलावा सिंचाई की लागत में लगातार वृद्धि के कारण छोटा किसान सिंचाई की व्यवस्था का लाभ उठाने में असमर्थ रहता है।

3.2.7 कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने के उपाय–

1. उर्वरक–

उन्नत किस्म के बीजों को उर्वरकों की काफी बड़ी मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। कृषि वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया है कि भारतीय किसान भूमि की उत्पादकता को बनाये रखने के लिए आवश्यक खाद की मात्रा का केवल दसवां हिस्सा ही प्रयोग करते हैं। जहॉ 2009–10 में पंजाब में प्रति हेक्टर उर्वरकों का प्रयोग 237.1 किलोग्राम था वहॉ राजस्थान में यह मात्र 48.3 किलोग्राम था। इसी प्रकार, मध्य प्रदेश में उर्वरकों का प्रति हैक्टर प्रयोग मात्रा 81.4 किलोग्राम तथा उड़ीसा में 57.6 किलोग्राम था। रमेश चंद एस.एस. राजू और एल एम पाण्डेय के अनुसार,

अधिकतर राज्यों में कृषि उत्पादन को बढ़ाने में उर्वरकों के प्रयोग में वृद्धि एक महत्वपूर्ण विकल्प है।

2. सिंचाई–

विभिन्न राज्यों में सिंचाई के अधीन क्षेत्र 14 से 97 प्रतिशत के बीच है। पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में कुल सिंचाई संभाव्य तथा सिंचाई स्तर से अधिक सिंचाई सुविधाओं का प्रसार हो चुका है। अन्य सभी राज्यों में कुल सिंचाई संभाव्य तथा सिंचाई के विद्यमान स्तर से व्यापक अन्तर है। रमेश चन्द एस एस राजू और पाण्डेय के अनुसार बिहार मे ंजल संसाधन इतने हैं कि सिंचाई का प्रसार एकल कृषित भूमि तक किया जा सकता है। तथा फसलों की गहनता में वृद्धि द्वारा इसे और बढ़ाया जा सकता है

6. बिजली की खपत–

2001–02 से 2003–04 के बीच बिजली की खपत असम में मात्र 9 किलोवाट, उड़ीसा में 30 किलोवाट तथा हिमाचल प्रदेश में 34 किलोवाट थी। कृषि में इस्तेमाल होने वाली बिजली केरल, जम्मू व कश्मीर, बिहार, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में 80 किलोवाट से 300 किलोवाट के बीच थी जबकि आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, पंजाब तथा तमिलनाडु में यह 1000 किलोवाट से अधिक थी।

7. फसलों की गहनता–

हालांकि पिछले कुछ दशकों में सिचाई सुविधाओं का प्रसार हुआ है तथापि अधिकतर राज्यों में फसलों की गहनता का स्तर बहुत कम है। आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, महाराष्ट, गुजरात तथा राजस्थान में 30 प्रतिशत से कम क्षेत्र पर एक से अधिक फसल उगाई जाती है। दोहरी फसल के अधीन क्षेत्र के प्रसार मात्र से ही कृषि उत्पादन को बढ़ाने की काफी संभावनाएं है।

8. बेहतर प्रौद्योगिकी–

बेहतर प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा कृषि उत्पादन को बढ़ाने की काफी संभावनाएं हैं। उपलब्ध जानकारी के आधार पर स्पष्ट है कि किसानों के खेतों पर बेहतर प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा उत्पादकता का जो स्तर प्राप्त किया जा सकता है तथा उत्पादकता का जो स्तर वास्वत में प्राप्त किया जा रहा है, उन दोनों में व्यापक अन्तर है। इसलिए यह आवश्यक है कि किसानों को बेहतर प्रौद्योगिकी उपलब्ध करायी जाये।

9. पौधों का संरक्षण–

भारत में प्रति वर्ष कीड़े मकोड़े चूहों तथा बीमारियों के कारण फसलों के उत्पादन का 10 से 30 प्रतिशत बर्बाद हो जाता है। क्रौप केयर फाउंडेशन ऑफ इण्डिया के एक अनुमान के अनुसार कीटों व बीमारियों के परिणामस्वरूप भारत को प्रति वर्ष डेढ़ लाख करोड़ रूपये के

बराबर कृषि उत्पादन को हानि होती है। अधिकतर किसानों को कीटनाशक दवाईयों तथा अन्य औषधियों के बारे में उपयुक्त जानकारी नहीं है। इसलिए आवश्यक है कि अब इस कार्यक्रम को सरकारी स्तर पर लागू किया जाये। इस उद्देश्य के लिए सरकार को चाहिए कि कम दामों पर खेतों में दवाइयों व औषधियों का छिड़काव अपने कर्मचारियों से करवायें।

5. साख और विपणन सुविधाओं का विकास—

उन्नत किस्म के बीजों उर्वरकों, कीटनाशक दवाओं, कृषि मशीनरी तथा सिंचाई सुविधाओं के प्रयोग के लिए काफी वित्तीय साधनों की आवश्यकता होती है और ये साधन अक्सर छोटे व सीमांत किसानों के पास नहीं होते। इसलिए यह आवश्यक है कि सहकारी ऋण संस्थाओं को बड़े किसानों के चंगुल से मुक्त कराया जाए और उन्हें इस बात के निर्देश दिये जायें कि वे छोटे व सीमांत किसानों को और ऋण उपलब्ध करायें। वाणिज्यिक बैंको तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को भी इसी प्रकार के निर्देश देने की आवश्यकता है।

6. उत्पादकों की प्रेरणाएं—

उत्पादकों को ऐसी प्रेरणाएं प्रदान करने की जरूरत है जिनसे वे अधिक उत्पादकता प्राप्त करने के लिए प्रेरित हों। प्रेरणाएं निम्न प्रकार की हो सकती है।1. भूमि सुधार कानूनों का कड़ाई से पालन, 2. कृषि आगतों को समय पर उपलब्ध कराना 3. फसलों की उचित कीमत 4. फसलों का बीमा करना ताकि फसल बर्बाद होने पर भी किसान को नुकसान न हो 5. उच्च उत्पादकता प्राप्त करने वाले किसानों को इनाम देना इत्यादि।

7. बेहतर प्रबन्धन—

जैसे उत्पादकता बढ़ाने के लिए उद्योगों में बेहतर प्रबन्धन की आवश्यकता पड़ती है। उसी प्रकार कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए बेहतर प्रबन्धन आवश्यक है। यह तभी हो पायेगा जब किसानों को भूमि सिंचाई सुविधाओं तथा कृषि उपकरणों के ओर बेहतर प्रयोग के लिए प्रशिक्षण दिया जाये। साथ ही कृषि क्षेत्र में विज्ञान व टेक्नोलाजी के प्रसार की आवश्यकता है।

8. कृषि अनुसंधान—

वर्तमान में कृषि अनुसंधान का कार्य इंडियन कौंसिल आफ एग्रीकल्चर रिसर्च, विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों तथा अन्य विशिष्ट संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है। उन अनुसंधानों के परिणामस्वरूप विभिन्न फसलों के उच्च उत्पादकता वाले बीजों को बनाया गया है। परन्तु अधिकतर सफलता फिलहाल गेहूँ के क्षेत्र में ही प्राप्त हुई हैं। अन्य फसलों के लिए अभी बहुत अनुसंधान करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही साथ विभिन्न क्षेत्रीय प्रयोगशालाओं में भूमि की किस्म जानने के लिए भूमि संरक्षण के लिए, कृषि मशीनरी का बेहतर प्रयोग जानने के लिए तथा विभिन्न बीमारियों को रोकने के लिए दवाइयों का पता लगाने हेतु अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कृषि में उत्पादन तथा उत्पादकता को बढ़ाने के लिए गंभीर प्रयास किया। 1966 में हरित क्रान्ति के आगमन से कृषि की दशा में तेजी से सुधार हुआ और उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हुइ।। कृषि के क्षेत्र में नवीन तकनीक अपनायी गयी, उन्नतशील बीजों का प्रयोग बढ़ा, सिंचाई की सुविधाओं में वृद्धि हुई तथा अन्य ढॉचागत सुविधाएं बढ़ाई गयीं, आगतों में सब्सिडी दी गयी, उसर भूमि सुधार कार्यक्रम चलाये गये तथा फसल बीमा आदि योजनाएं चलायी गयीं। इन सबका सम्मिलित प्रभाव यह हुआ कि खाद्यान्न उत्पादन जो 1950–51 में 5 करोड़ टन था वह 1970–71 में बढ़कर 13.8 करोड़ टन हो गया और पुनः क्रमशः 2007–08 में 23 करोड़ टन हो गया।

1. कृषि अनुसंधान एवं विकास हेतु कृषि विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों तथा शोध संस्थाओं की स्थापना की गयी। इस संबंध में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद कार्य कर रहा है।

2. देश में उन्नतशील बीज उपलब्ध कराने के लिए रा0 बीज निगम तथा बड़े–बड़े कृषि फर्मों की स्थापना की गयी । 2009–10 में देश में 257.11 लाख कुन्तल प्रामाणिक बीजों का वितरण किया गया।

3. सिंचाई सुविधाएं बढ़ाई गयी। देश में लघु मध्यम व बड़ी सिंचाई परियोजनाओं को चालू किया गया। केन्द्रीय जल आयो का गठन किया गया। देश के विभिन्न भागों में मौजूद 63 महत्वपूर्ण जलाशयों के संचयन क्षमता में वृद्धि की गयी।

4. कृषकों के छोटे–छोटे और बिखरे खेतों को एक स्थान पर लाने के लिए चकबन्दी कार्यक्रम लागू किया गया।

5. देशमें विभिन्न स्थानों पर रासायनिक खाद बनाने के कारखाने स्थापित किये गये।

6. फसलों को कीटाणुओं एवं रोगों से बचाने क`लिए केन्द्रीय कृषि मंत्रालय द्वारा संचालित समन्वित कीट प्रबंध योजना के अंतर्गत कृषकों तथा कृषि प्रसार अधिकारियों, को चावल, कपास, सब्जियों, दलहनों तथा तिलहनों के सम्बन्ध में समन्वित कीट प्रबन्ध तकनीक के विभिन्न पहलुओं के बारे में प्रशिक्षण प्रदान किया गया।

7. कृषकों को नवीन तकनीकों को समझाने तथा उनको कार्य में लाने के लिए सरकार द्वारा प्रशिक्षण सुविधाओं की व्यवस्था की गयी है।

8. कृषि मूल्यों में स्थायित्व लाने के लिए कृषि लागत एवं मूल्य आयोग की स्थापना की गयी है।

9. कृषकों को वित्त एवं साख की सुविधा प्रदान किये जाने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में बैंको की शाखाएं खोली गयी है।

10. ग्रामीण क्षेत्रों में परिवहन एवं विपणन व्यवस्था में सुधार किया गया है। गांवों को बाजारों से तथा शहरों से सड़कों द्वारा जोड़े जाने का प्रयास किया जा रहा है।

11. देश में कृषि यंत्रीकरण को बढ़ावा दिये जाने का प्रयास किया जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप देश मे ंलघु जोतों के बाहुल्य के बावजूद जुताई कार्यों के लिए मशीनों के चुनिंदा प्रयोग में महत्वपूर्ण वृद्धि परिलक्षित हो रही है।

12. इसके अतिरिक्त देश में सहकारी खेती को बढ़ावा देने का प्रयास कियागय है। तथा जोतों के आकार छोटा होने से रोकने के लिए सम्बन्धित कानून में परिवर्तन किये गये हैं।

3.2.8 सारांश–

भारतीय कृषि व्यवसाय के रूप में मूल्यांकन करना कठिन होता है। क्योंकि भारत में कृषि एक जीवनशैली है। संभवतः यही कारण है कि भारत में कृषि की उत्पादकता तथा सुधार सम्बन्धी कार्यक्रमों में उतनी तत्परता नहीं देखने को मिलती जितनी कि औद्योगिक क्षेत्रों में। निम्न उत्पादकता कृषि का पिछड़ापन तथा किसानों की आर्थिक स्थिति एक ऐसा दुष्चक्र बनता है जिसको तोड़ने के लिए एक वृहद् आर्थिक सुधार परक कार्यक्रम की आवश्यकता है। कृषि उत्पादकता में राज्यवार विषमताएं भी देखने को मिलती हैं। जहॉ क्रांति द्वारा पंजाब, हरियाणा, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश में उत्पादकता में समग्र वृद्धि देखने को मिलती है वहीं अन्य राज्यों की स्थिति अभी भी पिछड़ी हुई है। कृषि उत्पादन में विस्तार विविधता तथा कृषि उतपादकता में वृद्धि करने के लिए कृषि सुधार अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इन सुधारों का क्रियान्वयन भी सावधी से किया जाना चाहिए। इसमें क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने का भरपूर प्रयास किया जाना चाहिए। यह एक द्वैत नीति है कि एक ओर हम उद्योगों तथा विनिर्माण में उत्पादकता में वृद्धि पर शोध एवं परिचर्चा करते हैं कृषि उत्पादकता दूरगामी परिणामों को ध्यान में न रखकर हम अपनी ही जड़ों को काटने का व्यवहार कर रहे हैं। यह भी आवश्यक है कि जिन क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता अधिक है वहॉ किसानों के हितों को ध्यान में रखकर उनकी उपज का उचित मूल्य दिलाना चाहिए। इस कार्य के लिये सरकारी मशीनरी के अलावा समाजसेवी संस्थाओं तथा एनजीओ की महत्वपूर्ण भूमिका है जो क्षेत्रीय स्तर पर इस कार्य को सरकार की मदद से उचित दिशा दिला सकते हैं।

3.2.9 शब्दावली–

1. खाद्यान्न– फसलें जिनक उत्पादन खाद्य आवश्यकताओं की पूति हेतु किया जाता है।

2. अखाद्यान्न– वे फसलें जिनका उत्पादन अखाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किया जाता है।

3. कृषि आगत– उत्पादन में प्रयुक्त बीज, खाद, पानी तथा कीटनाशकों को कृषि आगत कहते हैं।

4. विपणन– अधिक उत्पादन की बाजार में बिक्री हेतु की गयी प्रक्रिया।

5. अनार्थिक जोत– खेतों के छोटे आकार जिसके कारण उन पर किसी भी आधुनिक तकनीकि काप्रयोग संभव नहीं होता।

6. कृषि उत्पादकता– प्रति हैक्टर उत्पादन होने वाली फसलें, भारत उत्पादन मं भले ही अग्रणी है परन्तु निम्न उत्पादकता की समस्या से ग्रस्त है।

3.2.10 बोध प्रश्न

1. भारत में कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता की वस्तु स्थिति का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत कीजिए।

2. भारत में कृषि उत्पादकता की प्रमुख विशेषताएं क्या है? निम्न उत्पादकता के कारणों का उल्लेख कीजिए।

3. भारत सरकार द्वारा कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के प्रयासों का उल्लेख कीजिए।

4. पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि उत्पादन में होने वाली वृद्धि की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

3.2.11 कुछ उपयोगी पुस्तके–

1. रुद्र दत्त एवं सुंदरम भारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

2. ए.एन. अग्रवाल भारतीय कृषि की समस्याएं

3.जी.एस. भल्ला और डी.एस. त्यागी भारत में कृषि विभाग द्वारा एक जिले के अध्ययन स्तर का नमूना

4.पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

5.भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद कृषि विकास के विकल्प, एलाइड पब्लिशर्स न्यू दिल्ली 1980

खण्ड –3

इकाई–4

हरित क्रान्ति एवं सतत क्रान्ति की आवश्यकता

इकाई की रूपरेखा

3.4.1–उद्देश्य

3.4.2–प्रस्तावना

3.4.3–हरित क्रान्ति का अर्थ

3.4.4–भारत में हरित क्रान्ति का प्रभाव

3.4.4.1–खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता

3.4.4.2–उन्नत बीजो का विकास

3.4.4.3–फसलों के पैटर्न में परिवर्तन

3.4.4.4–सार्वजनिक कृषि अनुसंधान प्रणाली का विकास

3.4.4.5–उर्वरक एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयोग

3.4.4.6–कृषि में यंत्रीकरण का उपयोग

3.4.5–हरित क्रान्ति की कमियां

3.4.5.1–व्यवसायिक कृषि का प्रारम्भ

3.4.5.2–छोटे किसानों एवं बटाईदारों का आर्थिक पतन

3.4.5.3–भारतीय कृषि में संस्थानात्मक सुधारो का अभाव

3.4.5.4–किसानों के आय में बढ़ती हुई असमानताएं

3.4.5.5–श्रम विस्थापन की समस्या

3.4.6–भारत में सतत हरित क्रान्ति की आवश्यकता

3.4.1 उद्देश्य–

1– हरित क्रान्ति एवं भारत में हरित क्रान्ति के प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

2–प्रस्तुत ईकाई में हम हरित क्रान्ति में उन्नत बीजो के विकास द्वारा खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

3–प्रस्तुत ईकाई में हम कृषि में सार्वजनिक अनुसन्धान प्रणाली के विकास का अध्ययन करेंगे।

4–प्रस्तुत ईकाई में कृषि में यंत्रीकरण एवं कीटनाशक दवाओ के प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

5–प्रस्तुत ईकाई में हम हरित क्रान्ति की कमियों का अध्ययन करेंगे।

6–प्रस्तुत ईकाई में हम भारतीय कृषि में संस्थात्मक सुधारो के आभाव का अध्ययन करेगें।

7–प्रस्तुत ईकाई में हम श्रम विस्थापन की समस्या एवं आय की बढ़ती असमानताओ का अध्ययन करेंगे।

8– प्रस्तुत ईकाई में हम भारत में सतत हरित क्रान्ति की आवश्यकता का अध्ययन करेंगे।

3.4.2 प्रस्तावना–

हरित क्रांति 1960 के दशक में भारत में एम.एस. स्वामीनाथन के नेतृत्व में पारंपरिक कृषि को त्याग कर आधुनिक तकनीकी कृषि का प्रारंभ 1960–61 में कृषि गहन जिला कार्यक्रम (आई.ए.डी.पी.) भारत के 7 जिलों में एक मार्गदर्शी परियोजना के रूप में किया गया जिसमें अधिक उपजाऊ किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, कृषि यंत्रीकरण, बेहतर सिंचाई एवं नई तकनीक के साथ प्रारंभ किया गया द्यक्योंकि हरित क्रान्ति से पहले भारत में पारंपरिक कृषि अधिकांशतः देशी आदानो अर्थात कार्बनिक खादो, बैलों, साधारण हलो एवं अन्य कृषि औजारों एवं पारम्परिक तकनीको के प्रयोग से होती थी जिसमें आधुनिक मशीनरी एवं यंत्रीकरण का प्रयोग नगण्य मात्र था द्यअतः भारत में कृषि क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ाने के लिए पहले संगठित प्रयास 1960 के दशक में गहन कृषि जिला कार्यक्रम के लिए चुने गए सात जिलों के मार्गदर्शी परियोजना पायलट प्रोजेक्ट की सफलता से उत्साहित होकर अक्टूबर 1965 में भारत सरकार द्वारा गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम (आई.आई.ए.पी.) के अंतर्गत पूरे भारत में 114 जिलों में इसे लागू किया गया जिसमें भारत में 1960 के दशक में खाद्यान्नों की संकट की समस्या का समाधान के लिए 1966 में मेक्सिको से लाये गए गेहूं एवं चावल की अधिक उपज देने वाले बीजों का प्रयोग किया गया जिससे पहले की तुलना में प्रति हेक्टेयर अधिक कृषि उत्पादकता प्राप्त होना प्रारंभ हो गया देश को खाद्य संकट से बचने के लिए एवं आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से वर्ष 1966 में कृषि क्षेत्र के विकास के लिए नई कृषि नीति अपनाई।

3.4.3 हरित क्रान्ति का अर्थ–

हरित क्रांति नाम देने का श्रेय विलियम गैड को जाता है तथा इसके जन्मदाता नॉर्मन ए. बोरोलॉग को माना जाता है जो कि सी.आई.एम.एम.वाई.टी. संस्थान जो कि गेहूं तथा मक्का के उन्नत शोध केंद्र मेक्सिको में गेहूं की प्रसिद्ध प्रजाति लर्मा रोजो 64 ए और सोनार 64 ए. को

विकसित किया थाद्य भारत में हरित क्रान्ति के प्रसार में एम्.एस.स्वामीनाथन का महत्वपूर्ण योगदान रहा जिन्होंने पारंपरिक कृषि के तरीकों के स्थान पर आधुनिक कृषि के तरीकों के अपनाने पर जोर दिया हरित क्रांति शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है हरित शब्द कृषि फसलों का सूचक है जबकि क्रांति शब्द का तात्पर्य किसी घटना में तीव्र गति से परिवर्तन होने तथा उन परिवर्तनों को प्रभाव आने वाले लंबे समय तक रहने से हैं हरित क्रांति उस अवधि को प्रदर्शित करता है जिसमें कृषि अधिक उपज देने वाले बीजों की किस्मों एवं सिंचाई सुविधाओं, कीटनाशकों और उर्वरकों का उपयोग साथ ही कृषि में यंत्रीकरण जैसे की ट्रैक्टर एवं अन्य आधुनिक कृषि यंत्रों का प्रयोग करके कृषि में प्रति हेक्टेयर उत्पादन में वृद्धि करने से हैद्य भारतीय कृषि वैज्ञानिकों ने गेहूं की प्रसिद्ध प्रजाति लर्मा रोजो 64 ए. और सोनार 64 ए. से सोनार 64 ए. से शरबती सोनार तथा लर्मा रोजो 64 ए. से पूषा लर्मा विकसित किया जिसके कारण भारत में हरित क्रांति हुई अर्थात खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि हुई।

3.4.4 भारत में हरित क्रान्ति का प्रभाव –

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में नीति निर्माताओ द्वारा मुख्य रूप से खाद्यान फसलों गेहूं और चावल के उत्पादन में भारत को आत्मनिर्भर बनाने का लक्ष्य प्राप्त करने के उद्देश्य कृ षि को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए पहले पहली पंचवर्षीय योजना में ही बड़ी सिंचाई परियोजनाएं, भूमि सुधार, जमीनों के अधिकार, और काश्तकारों को दिए जाने वित्त व्यवस्था में किए गए सुधारो से सहकारी संस्थाओं को बहुत बढ़ावा मिला और कृषि समर्थन प्रणाली में संस्थागत बदलाव लाने का प्रयास शुरू किया गया इन प्रयासों का परिणामस्वरूप 1956–57 में देश में खाद्यान्नों गेहूं, चावल, मोटे अनाज और दालों के उत्पादन में वृद्धि हुई परंतु उत्पादन के अनुपात में जनसंख्या वृद्धि अधिक होने के कारण भारत में खाद्यान्नों का संकट बना रहा जो की विदेशों से आ रहे खाद्यान्न आयतों पर निर्भर थाद्य द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कृषि की प्राथमिकता को कुछ कम करके अर्थव्यवस्था में तेजी लाने के लिए औद्योगिक विकास पर जोर दिया गया और 1960 के दशक तक भारत में खाद्यान्नों का आयात बराबर बढ़ता रहा जो की मुख्यतः अमेरिका से पी.एल. 40 गेहूं आयात किया जाता थाद्य भारत में भीषण सुखा पड़ जाने के कारण और वर्ष 1965 में भारत और पाकिस्तान से युद्ध होने के कारण खाद्यान्नो की समस्या के समाधान के लिए सरकार द्वारा पी.एल.40 गेहूं की अमेरिका से मांग की गयी पर अमेरिका द्वारा पाकिस्तान का पक्ष लेते हुए भारत पर दबाव बनाए जाने के लिए गेहूं आयात पर पाबंदी लगा दी जिससे निपटने के लिए तीसरी पंचवर्षीय योजना में तत्कालीन सरकार द्वारा देश को अनाज उत्पादन के मामले में आत्मनिर्भर बनाने का दृढ़ संकल्प लिया ।

3.4.4.1 खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता–

भारत सरकार ने खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए देश में कृषि क्षेत्र में नवाचार करते हुए प्रयोग के तौर पर मैक्सिकन गेहूं लर्मा रोजो 64 ए की बौनी एवं अर्द्धबौनी फंगस रोधी और कई गुना अधिक उपज देने वाली किस्म को उत्पादन करने के लिए डॉक्टर एम्.एस. स्वामीनाथन के नेतृत्व में उत्तर भारत में लागू किया गया जिससे की चार से पांच टन प्रति हेक्टेयर गेहूं का उत्पादन प्राप्त हुआ जबकि देशी गेहूं के बीजों से प्रति हेक्टेयर 1 या 2 टन उत्पादन प्राप्त होता थाद्य अतः इस सफलता से प्रोत्साहित होकर भारत में नई किस्म के

बीजों को उगाने के लिए एम.एस. स्वामीनाथन स्वयं किसानों के बीच जाकर उन्हें प्रोत्साहित किया एवं सरकार ने किसानो को कृषि विभागों, अनुसंधान और विकास संस्थाओं द्वारा अच्छे किस्म के बीज, उर्वरक, मशीनरी, सिंचाई सुविधाओं और वैज्ञानिक परामर्श की उपलब्धता निरंतर बनाए रखी।

3.4.4.2 उन्नत बीजो का विकास –

हरित क्रांति के बाद की अवधि में मुख्य रूप से कृषि अनुसंधान और विकास कार्य में प्रयास के लक्षणों पर केंद्रित रही जो खाद्य सुरक्षा को स्थाई रूप से बनाए रखने और प्राकृतिक संसाधनों के कुशलतम प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी तथा हरित क्रान्ति के समय विभिन्न फसलों की विभिन्न प्रकार की उन्नत किस्म विकसित की गई जिनकी उत्पादन क्षमता अत्यधिक थी और जो की बीमारियों एवं कीड़ों से से बचाव कर सकती थी जो जीवीय और अजीवीय दबाव को सहन कर सकती थीद्य जिनमें पौष्टिक गुण अधिक थे कुछ किस्म में तो भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के नेतृत्व में विकसित की गई जिंसों जिनमें गेहूं की एच.डी. श्रृंखला की किस्में शामिल है जिनका विकास नई दिल्ली के भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आई.सी.आर.ए.) ने किया था यह किस्में अधिक उपज देने वाली जंगरोधक भी थी एवं वैज्ञानिकों का यह दावा था कि जलवायु के अनुरूप यह किसमें ढल सकती थीद्य देश में गेहूं की खेती के कुल 317 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल में से 140 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल में गेहूं की एच.डी. श्रृंखला की किस्म उगाई जा रही थी जिसकी उत्पादकता 1946–47 में गेहूं 669 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर थी तथा हरित क्रान्ति के पश्चात 3424 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर हो गई हैद्य इसी प्रकार चावल की भी अधिक उत्पादन देने वाली किस्मों के साथ ही ऐसी विशिष्ट किस्में विकसित की गई जो सुखा या बाढ़ जैसी दोनों स्थितियों में अधिक उत्पादन प्रदान करती थी जिसमें आई.ए.आर.आई द्वारा विकसित बासमती चावल की किस्म अपनी शानदार खुशबू और सुंदर आकर्षक रंग रूप के कारण पूरे विश्व में जानी जाती है जिसमें पूसा 1121 की किस्म तो दुनिया भर में सबसे लंबे दानों वाले चावलों के रूप में मशहूर थीद्य इसी प्रकार तिलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए कृषि अनुसंधान और विकास को विज्ञान और टेक्नोलॉजी के विभिन्न प्रयोगों की मदद से प्रति हैक्टेयर उत्पादकता बढ़ाने की ओर ध्यान केंद्रित किया गया।

भारत में कृषि उत्पादकता बढ़ाने में मूल भूमिका उन्नत बीजों की रही ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि भारत में हरित क्रांति सफलता का 20 से 25 प्रतिशत तक योगदान उन्नत किस्म की बीजों का रहा जो की वर्ष 1966 में खरीफ फसलों के मौसम में नई किस्म के मैक्सिकन गेहूं की प्रजाति लर्मा रोजो 64 ए तथा सोनार 64 से विकसित बीजों द्वारा प्रति हैक्टेयर अधिक उत्पादकता प्राप्त हुई तथा चावल की बौनी और अधिक उत्पादन देने वाली आई.आर.8 किस्म के बीज जो की अंतरराष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान फिलिम्पिंस मनीला के द्वारा विकसित किए गए थे इन्हें भारत में आयात करके भारत के दक्षिणी और पूर्वी किसानों में वितरित किया गया यह 105 दिन के कम समय में 6 से 7 टन प्रति हेक्टेयर उत्पादन प्रदान करने वाली किस्म थी जिसे भारतीय वैज्ञानिकों ने विकसित कर 10 टन प्रति हेक्टेयर तक का रिकॉर्ड उत्पादन प्राप्त किया जबकि भारत में देशी किस्म के बीजों से 2 टन प्रति हेक्टेयर तक धान का उत्पादन प्राप्त होता थाद्य उन्नत किस्म के बीजों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा पंजीकृत बीज उत्पादकों के खेतों को चुना गया साथ ही भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

ने लुधियाना के पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश के जी.बी. पंत कृषि विश्वविद्यालय तथा अन्य शोध संस्थानों में भारतीय जलवायु व परिस्थितियों के अनुकूल नए किस्म के बीज तैयार करने के लिए तथा आयातित बीजों को भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने के लिए शोध कार्य को प्रोत्साहित किया।

3.4.4.3 फसलों के पैटर्न में परिवर्तन–

भारत में नई कृषि रणनीति के लिए उन्नत प्रजाति के बीज और उन्नत उत्पादकता के साथ ही फसलों में गहनता तथा नए क्रॉपिंग पैटर्न को जन्म दिया जिससे कि धान, ज्वार, बाजरा तथा मक्का की फसलों को कम समय में तैयार होने वाले बीजों की प्रजाति के विकास के कारण एक नया और अधिक लाभप्रद फसलों का फसल चक्र प्राप्त हुआ जिसमें आलू, जौ एवं तिल की फसले शामिल थी।

3.4.4.4 कृषि में सार्वजनिक अनुसंधान प्रणाली का विकास –

भारत में कृषि अनुसंधान के विकास के लिए कृषि और कृषि सम्बद्ध विज्ञानों की उच्च शिक्षा देने के लिए वर्ष 1948 में भारत में सिर्फ 17 कृषि कॉलेज थेद्य जो संबंधित राज्यों के कृ षि विभागों के प्रशासनिक नियंत्रण में चलाए जाते थे वर्ष 1948–49 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष और महान शिक्षाविद् डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने ग्रामीण युवाओं को वैज्ञानिक प्रशिक्षण और कौशल विकास की सुविधा उपलब्ध कराने के उद्देश्य ग्रामीण विश्वविद्यालय खोले जाने की अनुशंसा की उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री पंडित गोविंद बल्लभ पंत ने उनके सुझाव पर त्वरित कार्यवाही करते हुए कृषि विश्वविद्यालय का मॉडल तैयार करने के लिए विशेषज्ञ समिति गठित की और इसी समिति के सुझाव में वर्ष 1960 में उत्तर प्रदेश सरकार ने रुद्रपुर में उत्तर प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना की जो देश का पहला कृषि विश्वविद्यालय था।

वर्ष 1950 और 1960 के दशक में फसलों से संबंधित सार्वजनिक संस्थाओं का विकास भारत के नीति निर्माताओ ने खाद्यान्न संकट से निपटने एवं आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए भारत के सार्वजनिक कृषि अनुसंधान प्रणाली को विकसित करने की योजना बनाई एवं कृषि अनुसन्धान की सर्वोच्च संस्था भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा कृषि के समन्वय और सभी जिन्सों के अनुसंधान संभालने का दायित्व दिया गया द्य यह कृषि अनुसंधान एवं कृषि शिक्षा के विकास और प्रसार संसाधनों का मुख्य केंद्र रहा जिसमें वर्तमान में 102 संस्थानों में अनुसंधान विकास की गतिविधियां चल रही है जिसमें से 65 अनुसंधान संस्थान है चार डीम्ड विश्वविद्यालय हैं, जिनमें अनुसंधान की सुविधा उपलब्ध है, 14 राष्ट्रीय अनुसंधान केंद्र हैं, छह राष्ट्रीय ब्यूरो हैं और 13 परियोजना निदेशालय हैं यह संस्थान उच्च कृषि शिक्षा व्यवस्था को बढ़ावा देने के उद्देश्य से राज्यों के 71 कृषि विश्वविद्यालय को परामर्श और आर्थिक सहायता भी प्रदान करता है,यह संस्थान 11 कृषि प्रौद्योगिकी प्रयोग अनुसंधान संस्थानो और 721 कृषि विकास केन्द्रो के माध्यम से प्रौद्योगिकी आकलन प्रदर्शन और क्षमता विकास गतिविधियों में भी सहयोग करता है तथा कृषि विज्ञान केंद्र जिला स्तर की छोटी इकाइयां को भी नियमित करता है जो विस्तार

गतिविधियां चलाने में प्रमुख भूमिका अदा करती हैं एवं प्रयोगशाला से खेत तक कार्यक्रम लागू करने का दायित्व निभाती हैंद्य भारत में पहला कृषि विज्ञान केंद्र राष्ट्रीय स्तर पर कृषि प्रसार को संस्थागत रूप देने के तरीके सुलझाने के उद्देश्य से 1973 में गठित विशेषज्ञ समिति के कहने पर वर्ष 1974 में पुडुचेरी में खोला गया।

3.4.4.5 उर्वरक एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयोग–

भारत में नियोजन के आरंभिक कालों में कीटनाशक दवाओं का प्रयोग बहुत ही कम हुआ करता था परंतु 1960 के दशक के मध्य में नई कृषि नीति को अपनाने के बाद से ही भारत में काफी मात्रा में कीटनाशक दवाओं के प्रयोग में वृद्धि हुई जो की वर्ष 1970– 71 में 24.3 हजार टन कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया गया कीटनाशक दवाओं के प्रयोग गेहूं एवं धान की फसलों के उत्पादकता में वृद्धि में मुख्य भूमिका निभाई भारत में कृषि के विकास के साथ–साथ उर्वरकों के प्रयोग में भी वृद्धि हुई वर्ष 1952–53 में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग 66 हजार टन था जो की वर्ष 1965–66 में नई कृषि नीति अपनाने के परिणाम स्वरूप 1970–71 में 21.8 लाख टन हो गया जिसके जिसके दो मुख्य कारण रहे पहले किसानों को सस्ते दामों पर रासायनिक उर्वरक उपलब्ध कराए गए जिससे कि उनके प्रयोग से कृषि उत्पादकता में वृद्धि लाई जा सके साथ ही साथ उर्वरक उद्योग को भी लाभकारी प्रतिफल दर प्रदान की जा सके जिसके लिए सरकार ने नवंबर 1970 में उर्वरक प्रतिधारण कीमत की नीति अपनाई जिसके अधीन उत्पादकों को पूरी उत्पादन लागत के ऊपर 12 प्रतिशत कर के उपरांत लाभ का आश्वासन दिया गयाद्य

3.4.4.6 कृषि में यंत्रीकरण का उपयोग–

हरित क्रांति के पश्चात भारत में कृषि यंत्रीकरण एवं मशीनीकरण के प्रयोग में वृद्धि से आधुनिक कृषि की शुरुआत हुई जबकि परंपरागत खेती में बैल, घोड़ा और दूसरे भारवाही पशुओं या मनुष्यों के श्रम द्वारा संपन्न किए जाते थे एवं पुराने औजारों द्वारा खेती केवल जीवन निर्वाह मात्र का साधन होती और उसका पर्याप्त विकास नहीं होता था द्य भारत के पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश जैसे क्षेत्रों में कृषि मशीनीकरण को काफी बढ़ावा मिला इन क्षेत्रों में संपन्न किसानों ने बड़े पैमाने पर ट्रैक्टर, पंपसेट, थ्रेसर, इत्यादि मशीनों का प्रयोग आरंभ किया जिससे श्रम की बचत हुई और खाद्यान्न उत्पादकता में वृद्धि हुईद्य एन. एस. जोधा के अनुसार कृषि में मशीनीकरण कुछ खास क्षेत्रो में जहां वर्षा कम है और मिट्टी रेतीली है जैसे कि राजस्थान में वहां ट्रैक्टर के द्वारा वर्षा होते ही खेत को कम समय में जुताई करके फसल बोई जा सकती है इस प्रक्रिया में तेजी लाने का उत्पादन पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ता हैद्य

3.4.5 हरित क्रान्ति की कमियां –

3.4.5.1 व्यवसायिक खेती का प्रारम्भ–

भारतीय कृषि में व्यवसायिक खेती का विकास हरित क्रांति के पश्चात अधिक उपज वाले बीजों से आरम्भ हुआ जिसमें अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उर्वरक और सिंचाई पर अधिक निवेश करना पड़ता था जो कि छोटे और मध्यम श्रेणी की किसानों की क्षमता से बाहर थे जबकि छोटे एवं मध्यम श्रेणी के किसानों की संख्या अधिक थी एवं बड़े किसानों की संख्या कम जिससे कि कृषि यंत्रीकरण के लिए भारी मशीनरी में निवेश करने के लिए छोटे किसानों के पास पर्याप्त मात्रा में पूँजी का आभाव था जिससे छोटे किसानो के द्वारा कृषि जीवन निर्वाह के लिए की जाती थी और बड़े किसान और पूंजीपतियो द्वारा भारी मात्रा बीज, उर्वरक, एवं भारी मशीनरी में निवेश करके व्यावसायिक खेती करना प्रारम्भ किया जिससे हरित क्रान्ति का लाभ निर्धन किसानो की अपेक्षा धनी किसानो एवं पूंजीपतियों अधिक लाभ प्राप्त हुआद्य अशोक रुद्र और मजीद और तालिब ने व्यवसायिक खेती का विश्लेषण करने के लिए पंजाब में बड़े किसानों का अध्ययन किया उन्होंने पूंजीवादी किसानों की परिभाषा ऐसे किसानों के रूप में दिया जिनके पास 20 एकड़ से अधिक भूमि थीद्य एवं अध्ययन से यह पता लगाया कि 20 एकड़ से अधिक भूमि वालें किसानों की संख्या 67000 थी जिनके अधीन 26.2 लाख एकड़ क्षेत्रफल हैद्य इस प्रकार 1955—56 और 1967—68 के दौरान बड़े किसानों के स्वामित्व वाले क्षेत्रफल में 9.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई और अधिक गहन अध्ययन से पता चला कि 20—25 एकड़ के आकार वाले फार्म में केवल चार प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि इसकी तुलना में 100 से 150 एकड़ वाले फार्म में 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई अधिकतर वृद्धि नई तकनीकी द्वारा ही संभव हुई।

3.4.5.2 छोटे किसानों एवं बटाईदारों का आर्थिक पतन—

फ्रासिन फ्रकनेल विशेषज्ञ ने किसानों पर हरित क्रान्ति के सामाजिक आर्थिक प्रभाव का अध्ययन किया एवं यह निष्कर्ष पाया की ऐसे किसानों की संख्या अधिक है जिनके अलाभकारी जोतो का आकार दो से तीन एकड़ है उन किसानों ने उर्वरकों की थोड़ी मात्रा प्रयोग करके अपने उत्पादन वृद्धि प्राप्त कर लिया लेकिन कुल उत्पादन में वृद्धि अपर्याप्त होने के कारण इन किसानों के पास भूमि विकास के लिए पूंजी अतिरेक प्राप्त कर पाना संभव नहीं रहा जिससे छोटे किसानों की आर्थिक दशा और भी खराब हो गईद्य जो खेती के लिए कुछ भूमि किराये पर लेकर खेती करते थे या शुद्ध रूप से मुजारे हैं हाल ही के वर्षों में भूमि के मूल्य में वृद्धि के परिणाम स्वरुप लगान में वृद्धि के कारण नई अधिक लाभदायक तकनीक के प्रयोग के प्रभाव से बहुत भू—स्वामियों ने अपनी भूमि पर स्वयं खेती करना प्रारंभ कर दिया और छोटे किसानों एवं बटाईदारों की आय पर जिसका विपरीत प्रभाव पड़ा।

ऐसे किसान जिनकी जोत का आकार 10 एकड़ या इससे अधिक है बहुत ही छोटी संख्या वाले काश्तकार है जो भूमि विकास के लिए विशेष कर छोटी सिंचाई के लिए जो की आधुनिक आदानों के कुशल प्रयोग के लिए एक अनिवार्य शर्त है पूंजी अतिरेक प्राप्त करने की स्थिति में है इसके अतिरिक्त इस वर्ग ने अपने लाभ को और अधिक बढाने के लिए अपने अतिरिक्त लाभ का प्रयोग भूमि क्रय करने के स्थान पर भूमि को उन्नत करने और आधुनिक उपकरण को खरीदने में कियाद्य 20 एकड़ या इससे अधिक भूमि वाले किसानों को सबसे अधिक लाभ प्राप्त हुआ इसका कारण यह है कि उन्होंने कृषि क्रियाओ का यंत्रीकरण किया ताकि दोहरी या बहु—फसली कृषि कर सके एवं इन्होंने मुख्यतः अपने फसलों में व्यावसायिक फसलों का उत्पादन अधिक कर लाभ कमाया जिससे की बहुसंख्या वाले धान उत्पादन क्षेत्र में 75 से 89 प्रतिशत की

आर्थिक स्थिति में गिरावट आई और अधिकतर अनुपात ऐसे किसानों का था जो मौखिक पट्टे पर खेती करने वाले असुरक्षित बटाईदार जिनके जीवन स्तर में कमी आई थी ।

3.4.5.3 भारतीय कृषि में संस्थानात्मक सुधारो का अभाव–

हरित क्रांति में कृषि के संस्थानात्मक सुधारो की आवश्यकता पर बल नहीं दिया गया जिससे कि अधिकतर किसानों को भूमि का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ ना ही भू–धारण के निश्चितिता उपलब्ध हो पाई परिणामतः बड़े पैमाने पर किसानों की बेदखलियां हुई जिसके कारण इन किसानों को विवश होकर बटाईदार की स्थिति स्वीकार करनी पड़ीद्य मिन्हास और श्रीनिवास ने उर्वरक प्रयोग के संबंध में फसल सहभाजन के प्रभाव का अध्ययन किया और उन्होंने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि उर्वरकों पर व्यय कृषको द्वारा उधार प्राप्त करके किया जाता है और इस उधार के लिए उन्हें अधिक ब्याज देना पड़ता है क्योंकि फसल की अवधि न्यूनतम 6 माह एवं अधिकतम एक वर्ष की होती है जिसमें किसान के कुल खर्च का लगभग 20 प्रतिशत ब्याज के रूप में किसानों को देना पड़ता है।

3.4.5.4 किसानों के आय में बढ़ती हुई असमानताएं–

हरित क्रांति के समय कृषि में तकनीकी परिवर्तनों का ग्रामीण क्षेत्रो के आय वितरण पर दुष्प्रभाव अधिक हुआ जिसमें कृषि में तकनीकी परिवर्तन और वितरण संबंधी लाभों के बारे में अध्ययन से सी.एच. हनुमंत राव ने अपने निष्कर्ष में यह बताया कि तकनीकी परिवर्तनों से एक और विभिन्न क्षेत्रों छोटे और बड़े फार्मो के भू स्वामियों के बीच आय की असमानताएं बढ़ी है और दूसरी ओर भूमिहीन मजदूर और किराए पर खेती करने वालों के बीच में भी समस्याएं बढ़ी हैं परन्तु तकनीकी परिवर्तन के लाभ सभी को प्राप्त हुए हैं जिसका अनुभव हमें वास्तविक मजदूरी एवं रोजगार वृद्धि और छोटे किसानों की आय में वृद्धि के रूप में प्राप्त होता है फिर भी हरित क्रांति के प्रधान लाभ प्राप्तकर्ता तो बड़े किसान ही है जो अपने लाभ के लिए उन्नत किस्म के आगतो और ऋण सुविधाओं को प्रयोग करते हैं परंतु आवश्यकता इस बात की है की नीतियों में इस प्रकार परिवर्तन किया जाए की इसका लाभ सभी को सामान रूप से प्राप्त होद्य डॉक्टर वी.के. आर.वी.राव ने अपने अध्ययन में यह बताया कि यह बात सर्वविदित है कि तथाकथित हरित क्रांति जिसने देश में खाद्यान्नों के उत्पादन बढ़ाने में सहायता दी है के साथ ग्रामीण आय में असमानता में वृद्धि हुई बहुत से किसानों को अपने कष्टकारी अधिकार छोड़ने पड़े हैं और ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक एवं आर्थिक तनाव बढ़े हैं अतः भू–सुधार करना अनिवार्य हैद्य डॉक्टर डी.पी. चौधरी हरित क्रांति संबंधी अपने सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष दिया की भू–सुधार के साथ पूंजी बाजार एवं ग्राम संस्थानों में उचित परिवर्तन द्वारा उत्पादन एवं उत्पादकता को अधिकतम करना संभव होगा और यह आय वितरण की असमानताओं को कम करने के साथ पूर्णतया संगत होगा।

3.4.5.5 श्रम विस्थापन की समस्या–

हरित क्रान्ति में कृषि यंत्रीकरण के प्रभाव बढ़ने से श्रम विस्थापन की समस्या भी बढ़ी है इसका अध्ययन करते हुए उमा के. श्रीवास्तव, रॉबर्ट क्राउन और हैडी ने निष्कर्ष में पाया की

हरित क्रांति के दौरान दो प्रकार की नवाचारों के प्रारम्भ होने के प्रभावों की जांच की जिसमें (1) जीव–विज्ञान संबंधी नवाचार (2) यांत्रिक नवाचार, जीव विज्ञान संबंधित नवाचार से हमारा अर्थ कृषि आधारों में किए गए उन परिवर्तनों से है जो भू उत्पादकता को बढ़ाते हैं जैसे कि अच्छे बीज जिन्हें आमतौर पर अधिक उपजाऊ किस्म के बीज कहते हैं और उर्वरको का प्रयोग इस श्रेणी के नवाचार थे इस दृष्टि से हरित क्रांति बीज, खाद, तकनीक में परिवर्तन है तथा यांत्रिक नवाचार में वे नए औजार शामिल किए जाते हैं जो मानव या पशु श्रम का विस्थापन करते हैं अतः हरित क्रांति को जैविकीय एवं यांत्रिक क्रांति कहना उचित होगाद्य श्रम प्रयोग और श्रम विस्थापित करने वाली नवक्रियाओ के शुद्ध प्रभाव का निर्धारण यंत्रीकरण की सीमा करेगी ताकि श्रम का विस्थापन ना होद्य इस अध्ययन का निष्कर्ष यह रहा चुकिं यंत्रीकरण से श्रम की मांग जो बीजो और खादो के विस्तृत प्रयोग से बढ़ रही थी उस पर दुष्प्रभाव पड़ सकता था इसलिए भारत जैसे श्रम अतिरेक वाली अर्थव्यवस्थाओं में समय पूर्व यत्रीकरण को प्रोत्साहन देने से बढ़ते हुए बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं हो सकेगा।

सी.एच.हनुमंत राव रोजगार पर नई तकनीक के अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभावों को इस प्रकार व्यक्त किया कि यदि हरित क्रांति को उन्नत किस्म के बीजो एवं उर्वरकों के प्रयोग का एक मुश्त प्रोग्राम मान लिया जाए तो इसका रोजगार में महत्वपूर्ण योगदान प्रतीत होता हैद्य इसके अतिरिक्त नलकूपों द्वारा भी रोजगार में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है श्रम गुणांक क्षेत्र के संबंध में सबसे अधिक उसके बाद उन्नत किसी के बीजों और सिंचाईयों का नंबर आता है ट्रैक्टरों के प्रयोग का शुद्ध रोजगार प्रभाव नकारात्मक कर सकता है यदि फॉर्म क्रियाओ में ट्रैक्टर प्रयोग पूर्ण हो जाए हार्वेस्ट कंबाइन बड़े पैमाने पर कृषि श्रम का विस्थापन करेंगे जबकि उसके भूमि संवर्धन के प्रभाव नाममात्र होंगे।

भारत में सतत हरित क्रान्ति की आवश्यकता–

वर्ष 1960 के दशक में हरित क्रांति ने खाद्यान्नों की उत्पादन मात्रा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत ने कृषि उत्पादों एवं खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है पर वर्तमान में इसका प्रभाव धीरे–धीरे कम होता जा रहा है कृषि उत्पादन की गिरती हुई वृद्धि दर अर्थव्यवस्था में एक बड़ी समस्या उत्पन्न कर रही है जो फिर से कृषि क्षेत्र के सामने वैसी ही चुनौती है जो की स्वतंत्रता पश्चात थी अर्थव्यवस्था में तीव्र आर्थिक वृद्धि दर के परिणाम स्वरुप लोगों की आय तथा कार्य शक्ति में वृद्धि के कारण बढ़ती हुई जनसंख्या के दबाव के कारण कृषि क्षेत्र में मांग बढ़ी है क्योंकि कृषि क्षेत्र से प्राप्त खाद्यान्नों की आपूर्ति बहुत अधिक वृद्धि के बावजूद भी आज हम पोषण युक्त खाद्यान्नों की भारी कमी से प्रभावित है वर्तमान में तेजी से बढ़ती हुई खाद्य स्फीति इसकी ओर स्पष्ट संकेत करती है।

खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 के कारण भी भविष्य में खाद्यान्नों की मांग में तेजी से वृद्धि होगी पर कृषि क्षेत्र के निराशाजनक उत्पादन एवं लागत में वृद्धि से घटती हुई लाभ की दर, स्थिर उत्पादकता, कृषि क्षेत्र में गिरते हुए सार्वजनिक विनियोग, वर्तमान कृषि ढांचा आदि खाद्यान्न की आपूर्ति के बाधक है जिसके लिए एक अन्य सतत हरित क्रांति की आवश्यकता हैद्य जिसके बारे में 25 जनवरी 2006 को एम.एस. स्वामीनाथन द्वारा कोयंबटूर में हरित क्रांति के बाद सतत क्रांति लाने की बात कही और जिसे पूर्व प्रधानमंत्री डॉक्टर मनमोहन सिंह ने दूसरी हरित क्रांति

के रूप में लाने की आवश्यकता के बारे में कहां जिससे कि देश का वार्षिक खाद्यान्न उत्पादन 210 मिलियन टन से दुगना होकर 420 मिलियन टन हो सके जिससे की बढ़ती हुई जनसँख्या को खाद्यान्नों की समस्या का सामना ना करना पड़ेद्य जबकि ए.पी.जे. अब्दुल कलाम आजाद ने 93 वे राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस 2006 में द्वितीय हरित क्रांति की बात की जिसके लिए एम्.एस. स्वामीनाथन ने उत्कृष्ट उत्पादन तकनीक के प्रयोग, ऑर्गेनिक फार्मिंग को बढ़ावा देना, मिट्टी को अधिक स्वस्थ तथा उर्वरक बनाने, रेन वाटर हार्वेस्टिंग को अनिवार्य बनाने तथा किसानों को उचित मूल्य पर साख सुविधा उपलब्ध कराने पर जोर देने की बात कही।

भारत में प्रथम हरित क्रांति देश में खाद्यान्नों के उत्पादन और उत्पादकता में बहुत अधिक वृद्धि कर खाद्यान्न संकट को दूर कर आत्मनिर्भरता तो प्राप्त कर ली पर इसमें प्रयुक्त होने वाले महंगे कृषि आदानों जैसे की उन्नत संकर बीजो, रासायनिक खाद, कीटनाशको के प्रयोग पर आधारित थी जो पारिस्थितिकी तंत्र के लिए अनुउपयोगी थी पर्यावरण की दृष्टि से भी हानिकारक और छोटे तथा मध्यस्थ किसानों के लिए आर्थिक दृष्टि से महंगी थी एवं यह क्रांति बहुत अधिक सिंचाई पर आश्रित थी एवं मोटे अनाज, दालें तथा तिलहन इसके प्रभाव से अछूते रहे एवं इसके प्रभाव में केवल गेहूं तथा चावल की फसलें केंद्रित रही है इस क्रांति से केवल बड़े किसान ही लाभान्वित हुए जो इसकी ऊंची लागत को वहन करने में सक्षम थे तथा इसमें पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, आंध्र प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भाग ही लाभान्वित हुए जबकि अन्य राज्यों में इस क्रांति का प्रभाव नगण्य रहा इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि कृषि में एक दूसरी क्रांति सतत क्रांति लाई जाए जिससे कि उत्पादन को लक्षित समय में दोगुना कर पारिस्थितिकी तंत्र तथा पर्यावरण के अनुकूल अधिक से अधिक फसलों को अपने में समाहित कर सके जिससे की सस्ती तकनीक तथा सुखा ग्रसित क्षेत्रो या भारी वर्षा वाले क्षेत्र के लिए अधिक उपयोगी हो जिसका सम्पूर्ण लाभ लघु तथा सीमांत किसानों को भी अधिक व्यापक रूप से प्राप्त हो सके सतत क्रांति की आवश्यकता में दाल, तिलहन, फल, सब्जियों के उत्पादन में तथा उत्पादकता के स्तर को बढ़ाने की वरीयता होनी चाहिए जो की प्रथम हरित क्रांति से छूट गई थी।

द्वितीय हरित क्रांति या सतत हरित क्रांति को दो अवधारणाओं के आधार पर प्रयोग में लाया जा सकता है पहला पोषणीय हरित क्रांति के रूप में जिसके अंतर्गत रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर बायो उर्वरक का प्रयोग हो एवं रासायनिक कीटनाशक के स्थान पर बायो कीटनाशकों का प्रयोग हो जल तथा पर्यावरण का संरक्षण हो सके एवं फसल चक्र को संतुलित को बनाए रखा जा सके दूसरा उत्पादों विशेष रूप से खाद्यान्नों के उत्पादन में तीव्र वृद्धि प्राप्त की जा सके जहां हरित क्रांति कृषि के गुणात्मक पहलू को प्रदर्शित करता हैं जबकि दूसरे रूप में व्यक्त हरित क्रांति परिणात्मक रूप को प्रदर्शित करता हैं जो भारतीय अर्थव्यवस्थाओं की समस्याओं के संदर्भ में अधिक उचित लगती है।

सतत हरित क्रांति के जिस प्रारूप की बात ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, मनमोहन सिंह एवं एम्.एस.स्वामीनाथन करते हैं वह पोषणीय हरित क्रांति है जिसके अंतर्गत पूर्ववर्ती हरित क्रांति की तरह सीमित खाद्यान्नों तक ही पहुंच संभव ना हो सके बल्कि सतत हरित क्रांति में कृषि क्षेत्र के संपूर्ण फसलों पर इसका प्रभाव समान रूप से हो जिसमें संपूर्ण कृषि क्रियाओ से संबंधित जैसे खाद्यान्नों उत्पादन के साथ व्यवसायिक फसलों, पशुपालन, डेयरी, पोल्ट्री, सूअर पालन, मत्स्य पालन, एवं रेशम पालन आदि हो सके अब्दुल कलाम ने इसे विस्तृत प्रारूप देते हुए कहा

था कि उनकी दृष्टि से सतत क्रांति फसल प्रबंधन, लागत न्यूनीकरण, मूल्य प्रबंधन, खाद्य प्रसंस्करण तथा विपणन से संबंधित होनी चाहिए जो हरित क्रांति के संपूर्ण कृषि क्षेत्र में एक क्रांतिकारी कदम हो जिसके लिए जनवरी 2004 में भारत सरकार ने 50 हजार करोड रुपए से द्वितीय हरित क्रांति नामक कार्यक्रम शुरू किया जिसके अंतर्गत कृषि के संबंधित सभी क्षेत्र आते हैं यह कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किया गया की औसतीय विकास सुनिश्चित हो सके एवं कृषि क्षेत्र वैश्वीकरण से उत्पन्न सभी चुनौतियों एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापर संगठन के दबाव का सामना कर सके जिससे द्वितीय हरित क्रांति रोजगार, आय, उत्पादकता तथा उत्पादन में वृद्धि लाकर किसानो के कल्याण में वृद्धि कर सके।

सारांश–

भारत में वर्ष 1965–66 के सुखा एवं भारत–पाकिस्तान युद्ध से उत्पन्न खाद्यान्न संकट ने देश के सामने विषम चुनौती खड़ी कर दी थी इसके समाधान के लिए भारतीय कृषि वैज्ञानिकों ने उन्नत किस्म के बीजों, विभिन्न प्रकार के रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाओं, उन्नत कृषि यंत्रों को विकसित कर खाद्य उत्पादन में लगातार वृद्धि की जिससे कि आज भारत खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर हो पाया है लेकिन पोषणीय उत्पादकता में भारत आज भी पीछे है जहां आज विश्व जैवीय खेती पर जोर दे रहा है एवं सभी फसलों को समान रूप से उत्पादित करने का प्रयास कर रहा है जिसकी भारत देश में भी आवश्यकता है इसके लिए एक दूसरी हरित क्रांति एवं सतत हरित क्रांति लानी होगी जिससे कि पोषण युक्त अनाजों का उत्पादन किया जा सके एवं भारत में कुपोषण एवं रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों से होने वाले बीमारियों से लोगों को बचाया जा सके।

भारत में प्रथम हरित क्रांति देश में खाद्यान्नों के उत्पादन और उत्पादकता में बहुत अधिक वृद्धि कर खाद्यान्न संकट को दूर कर आत्मनिर्भरता तो प्राप्त कर ली पर इसमें प्रयुक्त होने वाले महंगे कृषि आदानों जैसे की उन्नत संकर बीजो, रासायनिक खाद, कीटनाशको के प्रयोग पर आधारित थी जो पारिस्थितिकी तंत्र के लिए अनुउपयोगी थी पर्यावरण की दृष्टि से भी हानिकारक और छोटे तथा मध्यस्थ किसानों के लिए आर्थिक दृष्टि से महंगी थी एवं यह क्रांति बहुत अधिक सिंचाई पर आश्रित थी एवं मोटे अनाज, दालें तथा तिलहन इसके प्रभाव से अछूते रहे एवं इसके प्रभाव में केवल गेहूं तथा चावल की फसलें केंद्रित रही है इस क्रांति से केवल बड़े किसान ही लाभान्वित हुए जो इसकी ऊंची लागत को वहन करने में सक्षम थे तथा इसमें पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, आंध्र प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भाग ही लाभान्वित हुए जबकि अन्य राज्यों में इस क्रांति का प्रभाव नगण्य रहा इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि कृषि में एक दूसरी क्रांति सतत क्रांति लाई जाए जिससे कि उत्पादन को लक्षित समय में दोगुना कर पारिस्थितिकी तंत्र तथा पर्यावरण के अनुकूल अधिक से अधिक फसलों को अपने में समाहित कर सके जिससे की सस्ती तकनीक तथा सुखा ग्रसित क्षेत्रो या भारी वर्षा वाले क्षेत्र के लिए अधिक उपयोगी हो जिसका सम्पूर्ण लाभ लघु तथा सीमांत किसानों को भी अधिक व्यापक रूप से प्राप्त हो सके सतत क्रांति की आवश्यकता में दाल, तिलहन, फल, सब्जियों के उत्पादन में तथा उत्पादकता के स्तर को बढ़ाने की वरीयता होनी चाहिए जो की प्रथम हरित क्रांति से छूट गई थी।

बोध प्रश्न–

1–हरित क्रांति से आप क्या समझते हैं?

2– भारत में हरित क्रांति के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।

3– हरित क्रांति द्वारा भारत में खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्रदान करने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए।

4– भारत में कृषि क्षेत्र में सार्वजनिक अनुसंधान प्रणाली के विकास की व्याख्या कीजिए।

5– हरित क्रांति में उन्नत बीज के विकास एवं उर्वरक एवं कीटनाशकों के प्रयोग के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।

6– हरित क्रांति में कृषि में यंत्रीकरण के उपयोग के लाभ एवं हानि की व्याख्या कीजिए।

7– भारत में हरित क्रांति की कर्मियों की विवेचना कीजिए।

8– भारत में सतत हरित क्रांति की आवश्यकता की विवेचना कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तके

भारतीय अर्थव्यवस्था ए. एन. अग्रवाल

भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण नाथूराम

भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉक्टर ममोरिया एवं जैन

भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.के. राय

भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास और योजनाओं की चुनौतियां ए. एन. अग्रवाल

रुद्र दत्त एवं सुंदरम भारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

ए. एन. अग्रवाल रूभारतीय कृषि की समस्याएं

जी.एस. भल्ला और डी.एस. त्यागी रूभारत में कृषि विभाग द्वारा एक जिले के अध्ययन स्तर का नमूना

पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी रूभारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषदरू कृषि विकास के विकल्प, एलाइड पब्लिशर्स न्यू दिल्ली 1980

खण्ड–3

इकाई –4

खाद्य सुरक्षा

इकाई की रूप रेखा

3.4.1–उद्देश्य

3.4.2– प्रस्तावना

3.4.3– खाद्य सुरक्षा का अर्थ

3.4.3.1– मात्रात्मक स्वरुप

3.4.3.2– गुणात्मक स्वरुप

3.4.4– खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता

3.4.4.1– तीव्र जनसंख्या वृद्धि

3.4.4.2– कुपोषण

3.4.4.3– जल अभाव

3.4.4.5– कृषि योग्य भूमि आकर में कमी

3.4.4.6– जलवायु परिवर्तन

3.4.4.7– पर्याप्त मात्रा में बफर स्टाक रखना

3.4.5– सार्वजानिक वितरण प्रणाली

3.4.6– संशोधित वितरण प्रणाली

3.4.7– लक्षित वितरण प्रणाली

3.4.8– सार्वजानिक वितरण प्रणाली के दोष

3.4.8.1– पात्र परिवारों की पहचान

3.4.8.2– गरीबी की परिभाषा

3.4.8.3– रिसाव या भ्रष्टाचार

3.4.8.4– खाद्यान्नों की खराब स्थिति

3.4.9– राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013

3.4.10– एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम

3.4.11– मध्यान भोजन योजना

3.4.12– भारतीय खाद्य निगम

3.4.13– सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के उपाय

3.4.14– सारांश

3.4.15– बोध प्रश्न

3.4.16– कुछ उपयोगी पुस्तके

3.4.1 उद्देश्य–

1– प्रस्तुत ईकाई में हम खाद्य सुरक्षा के अर्थ के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

2– प्रस्तुत ईकाई में हम खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता के बारे में जानेगें।

3– प्रस्तुत ईकाई में सार्वजानिक वितरण प्रणाली के बारे में जानेगें।

4– प्रस्तुत ईकाई में हम संशोधित वितरण प्रणाली के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।

5– प्रस्तुत ईकाई में हम लक्षित वितरण प्रणाली के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।

6– प्रस्तुत ईकाई में हम सार्वजनिक वितरण प्रणाली के दोष के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।

7– प्रस्तुत ईकाई में हम राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।

8– प्रस्तुत ईकाई में हम एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।

9– प्रस्तुत ईकाई में हम मध्यान भोजन योजना के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।

10– प्रस्तुत ईकाई में हम भारतीय खाद्य निगम के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगें।

11– प्रस्तुत ईकाई में हम सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के उपाय की जानकारी प्राप्त करेंगें।

3.4.2 प्रस्तावना–

स्वतंत्रता के पश्चात के वर्षों में कृषि खाद्य पदार्थों की कमी के परिणाम शुरू भारत सरकार के नीति निर्माताओं द्वारा खाद्य सुरक्षा नीति लाई गई जिसका उद्देश्य खाद्यान्न क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना था तथा नीति निर्माता ने यह अनुभव किया कि खाद्य अतिरेक वाले देश खाद्य पदार्थो के निर्यातों का प्रयोग एक ऐसे हथियारों के रूप में करते हैं जिसके द्वारा अन्य देशों की नीतियों को अपने आगे झुकने को मजबूर कर देते हैं प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्र को संबोधित करते हुए अपने प्रसारण में साफ शब्दों में कहा "हमने विदेशों से सहायता प्राप्त की है और हम आवश्यकता पड़ने पर ऐसा करते रहेंगे परंतु मेरे मन में अब यह बात दृढ़ रूप धारण कर चुकी है कि अपनी मूल जरूरत के लिए विदेशों पर निर्भर रहना कितना खतरनाक है जैसे ही हम खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर हो जाएंगे तभी हमारे लिए प्रगति करना और विकास करना संभव रहेगा अन्यथा परिस्थितियों का बदस्तूर प्रभाव बना रहेगा इससे संकट और दुख ही उत्पन्न होगा और कई बार तो लज्जा और अपमान भी सहन करना होगा" जब वर्ष 1965 और 1966 में भारत में भयंकर सूखा पड़ा तब अमेरिकी राष्ट्रपति लिंडन जॉनसन ने भारत को सबक सिखाने के लिए पी.एल.480 कार्यक्रम के अधीन खाद्य सहायता को मासिक आधार पर सीमित कर दिया उनका यह उद्देश्य भारत को इस बात के लिए मजबूर करना था कि वह वियतनाम पर अमेरिकी हमले की निंदा ना करें जिसके लिए भारत में साफ इनकार कर दिया ।

भारत सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कृषि के विकास पर जोर देते हुए बीज, पानी, उर्वरक, टेक्नोलॉजी, अर्थात हरित क्रांति को अपनाया गया जिससे कि भारत के खाद्यान्न आयात पर निर्भरता में कमी हो गई एवं अनाजो की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता में वृद्धि हुई भारत ने वर्ष 1976 में खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली थी इसके पश्चात भारत में खाद्यान्न का आयात नाम मात्र का रह गया गिल्बर्ट ईटइन ने खाद्य क्षेत्र में भारत की आत्मनिर्भरता के प्रयासों की सराहना करते हुए यह कहा कि "सभी प्रकार के अंधकारमय एवं बेबुनियादी भविष्यवाणियों के बावजूद जो कि वर्ष 1960–70 के दशक में भारत के खाद्यान्न के भावी महासंकट व्यक्त होने की संभावना पर बल देती थी आज देश को किसी वास्तविक अकाल का खतरा नजर नहीं आता है" नवी पंचवर्षीय योजना में यह विशेष रूप से उल्लेखित किया गया कि "देश का सबसे पहला प्रयास खाद्य सुरक्षा प्रणाली का निर्माण करना था ताकि अकाल का खतरा देश से एकदम समाप्त किया जा सके अतः इसके सफलता के प्रमाण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं कि पिछले 5 दशकों से किसी प्रकार का कोई भी अकाल या भुखमरी भारत में अभी तक देखी नहीं गई"।

3.4.3 खाद्य सुरक्षा का अर्थ–

खाद्य सुरक्षा का अर्थ सभी लोगों को सभी समयो पर पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न अर्थात भोजन उपलब्ध कराना ताकि वे सक्रिय व स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकें विश्व विकास रिपोर्ट के अनुसार "सभी व्यक्तियों के लिए सभी समय पर एक सक्रिय स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त भोजन की उपलब्धि के रूप में की है" खाद्य एवं कृषि संस्था खाद्य सुरक्षा को स्पष्ट करते हुए कहा "सभी व्यक्तियों को सभी समय पर उनके लिए आवश्यक बुनियादी भोजन के लिए भौतिक एवं आर्थिक दोनों रूप में उपलब्धि के आश्वासन के रूप में की है" तथा पी.वी. श्रीनिवासन ने खाद्य सुरक्षा को स्पष्ट करते हुए कहा कि "इसके लिए यह आवश्यक है कि न केवल समग्र स्तर पर खाद्यान्नों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध हो बल्कि व्यक्तियों परिवारों के पास उपयुक्त क्रय शक्ति भी हो ताकि वह आवश्यकता अनुसार खाद्यान्नों की खरीद कर सके" जहां तक पर्याप्त मात्रा का संबंध है इसके दो स्वरूप मात्रात्मक स्वरूप एवं गुणात्मक स्वरूप हैं।

3.4.3.1 मात्रात्मक स्वरूप–

खाद्य सुरक्षा के मात्रात्मक स्वरूप से आशय किसी देश में खाद्यान्नों की उपलब्धि इतनी होगी वह देश में उत्पन्न होने वाली समस्त माँगों की पूर्ति आसानी से कर सके अर्थात समस्त जनसंख्या के लिए खाद्य पदार्थों की भौतिक उपलब्धि हो सके साथ ही साथ खाद्य पदार्थ को प्राप्त करने के लिए समस्त जनसँख्या के पास पर्याप्त क्रय शक्ति हो अतः मात्रात्मक स्वरूप समग्र जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों की मात्रा उपलब्ध कराने से है जो की एक संकुचित दृष्टिकोण है।

3.4.3.2 गुणात्मक स्वरूप–

खाद्य सुरक्षा के गुणात्मक पहलू से है अर्थात किसी देश की जनसंख्या को खाद्यान्नों की पर्याप्त मात्रा की उपलब्धता के साथ–साथ जनसंख्या की पोषण आवश्यकताओं को भी पूरा करने से है अर्थात सभी के लिए खाद्यान्नों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध हो साथ ही साथ अनाज, दाल, दूध, फल, सब्जियां, अंडे, मछली और मांस, हरी सब्जियां आदि पौष्टिक आहार संपूर्ण जनसंख्या के लिए सुनिश्चित की जा सके जो कि वर्तमान समय में किसी भी देश के लिए चुनौती पूर्ण है अतः इस समस्या से निपटने के लिए भारत सरकार द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली, समेकित बाल विकास सेवाएं तथा दोपहर भोजन कार्यक्रम जैसे विभिन्न कार्यक्रम अपनाए गए हैं।

3.4.4 खाद्य खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता–

3.4.4.1तीव्र जनसंख्या वृद्धि–

भारत में लगातार तीव्र जनसंख्या वृद्धि हो रही हैं जिससे समस्त जनसख्या के लिए खाद्य पदार्थ को उपलब्ध कराना चुनौती पूर्ण है अतः भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उत्पादन

में भी तीव्र वृद्धि करने की आवश्यकता है जिससे कि सभी को पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थ की उपलब्धता हो सके।

3.4.4.2 कुपोषण–

भारत वर्तमान में कुपोषण अर्थात भोजन में न्यूनतम ऊर्जा की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त कैलोरी के अभाव की समस्या से जूझ रहा है जिसका पता हमें ग्लोबल हंगर इंडेक्स रिपोर्ट 2022 में 121 देशो में भारत का 107 वां स्थान से यह स्पष्ट होता है कि भारत से भुखमरी का नामोनिशान मिटाने के लिए अभी लंबा समय तय करना होगा जिसके लिए भारत सरकार 2030 के सतत विकास लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए पूरी दृढ़ता से वचनबद्ध है भारत में इस समय कुपोषण की जो स्थिति है उसे नीतिगत पहल के प्रति उच्च स्तर की राष्ट्रीय वचनबद्धताओं का औचित्य साबित होता है ऐसी पहल से देश में तमाम तरह के कुपोषण से निपटने के लिए प्रमाण और जानकारी पर आधारित होनी चाहिए।

3.4.4.3 जल का अभाव–

आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन के अध्ययन के अनुसार वर्ष 2050 तक विश्व की आधी जनसंख्या को पीने योग्य स्वच्छ पानी की समस्या का सामना करना पड़ेगा पानी की कमी के परिणाम स्वरुप कृषि उत्पादन भी अत्यधिक प्रभावित होगा एवं खाद्य सुरक्षा का मुद्दा भी एक समस्या बनकर उभर सकता है।

3.4.4.4 कृषि योग्य भूमि के आकार में कमी–

भूमि सीमित संसाधनों में से एक है जिसमें की कृषि योग्य भूमि वर्तमान समय में शहरीकरण तथा और अवसंरचनात्मक विकास के चलते कृषि योग्य भूमि के आकार में लगातार कमी होती जा रही है जिससे कि कृषि पर खाद्यान्नों के लिए निर्भरता बढ़ती जा रही है जनसंख्या के तीव्र वृद्धि के दबाव के कारण खाद्यान्नों की मांग भी लगातार बढ़ रही जबकि आपूर्ति मांग की तुलना में कम हो रही है तथा खाद्यान्नों की उत्पादकता में भी पर्याप्त मात्रा में वृद्धि न हो पाने के कारण खाद्यान्नों की कीमतों में लगातार वृद्धि हो रही है जिससे कि भारत में गरीबों के लिए वर्ष भर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना एक बड़ी चुनौती बनती जा रही है।

3.4.4.5 जलवायु परिवर्तन–

वर्तमान समय में खाद्यान्न के लिए जलवायु परिवर्तन एक बड़ी चुनौती है जिसके कारण बढ़ती हुई प्राकृतिक आपदाएं बाढ़, सूखा, अकाल, सुनामी, भू–स्खलन आदि खाद्यान्नों के उत्पादन में समस्याएं उत्पन्न कर रही हैं।

3.4.4.6 पर्याप्त मात्रा में बफर स्टॉक रखना–

योजना आयोग के तकनीकी ग्रुप द्वारा 1988 में 150 तथा 160 लाख टन बफर स्टॉक रखने की सिफारिश की थी जिसका मूल उद्देश्य सट्टेबाजो तथा व्यापारियों द्वारा बाजार में कीमतों के नियंत्रण को प्रभावित करने के लिए जिससे कि उपभोक्ताओं को किसी प्रकार की कोई समस्या उत्पन्न ना हो तथा प्राकृतिक आपदाओं सुखा, बाढ, भूकंप, आदि आने की स्थिति में सभी को खाद्यान्न आसानी से उपलब्ध कराया जा सके।

3.4.5 सार्वजनिक वितरण प्रणाली–

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं को सस्ती कीमतों पर आवश्यक उपभोग वस्तुएं उपलब्ध कराना ताकि उन्हें बढ़ती हुई कीमतों के प्रभाव से बचाया जा सके और जनसंख्या को न्यूनतम आवश्यक उपभोग स्तर प्राप्त करने में सहायता दी जा सके इस प्रणाली में संपूर्ण जनसंख्या को शामिल किया गया जिसमें किसी वर्ग विशेष तक सीमित नहीं रखा गया सार्वजनिक वितरण प्रणाली 1960 एवं 70 के दशक में खाद्य दुर्लभता के समय उपभोक्ताओं के लिए कीमत स्थिरीकरण के उपकरण के रूप में कार्य करने लगी जिससे कि निजी व्यापारी द्वारा दुर्लभता की स्थिति में कीमत वृद्धि कर अधिक लाभ प्राप्त न कर सके खाद्यान्नों के अभाव की स्थिति में खाद्यान्न प्रबंधन और उचित मूल्य पर खाद्यान्नों के वितरण के लिए सार्वजनिक वितरण प्राणाली तैयार की गई थी जिसे राज्य एवं केंद्र सरकार के अधीन चलाया गया ।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली विशेष रूप से खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने एवं भुखमरी से निपटने में मुख्य भूमिका निभाई साथ ही साथ खाद्यान्नों के मूल्य वृद्धि को रोकने में सहयोग किया तथा देश के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ताओं तक खाद्यान्न पहुंच को सुनिश्चित किया 1960 के दशक में हरित क्रांति की सफलता के बाद 1970–80 के दशक में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार जनजाति तथा अधिक गरीबी वाले क्षेत्रों में इस कल्याणकारी कार्यक्रम का दर्जा दिया गया तथा 1985 में यह प्रयास किया गया कि सभी जनजातीय ब्लॉकों में सस्ती दर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाए 1992 तक सार्वजनिक प्रणाली का लाभ बिना किसी विशेष वर्ग को लक्षित किए सभी उपभोक्ताओं को सरकारी राशन की दुकानों या उचित दर की दुकानों के माध्यम से जिसमें मुख्यतः गेहूं चावल प्राप्त कराया जाता था तथा मोटे अनाज जैसे ज्वार, बाजरा, मक्का आदि के वितरण पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था।

3.4.6 संशोधित वितरण प्रणाली–

संशोधित वितरण प्रणाली को जून 1992 में प्रारंभ करके 1775 विकास खंडो में लागू किया गया जहां पर सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम, एकीकृत जनजाति विकास परियोजना, मरुस्थल विकास कार्यक्रम राज्य सरकारों के परामर्श से पहचान किए गए कुछ विशिष्ट पहाड़ी क्षेत्रों को शामिल करके सार्वजनिक वितरण प्रणाली शुरू करने का प्रयास किया गया जिसमें खाद्यान्नों को केंद्रीय निर्गत मूल्य से 50 प्रतिशत कम कीमत पर जारी किया गया था इस प्रणाली के तहत अनाज

की मात्रा 20 किलो प्रति कार्ड प्रति परिवार तक थी जिसे राज्य सरकारों द्वारा पहचान किए गए क्षेत्र में उचित मूल्य की दुकानों तक सार्वजनिक प्रणाली के अंतर्गत शामिल न होने वाले परिवारों के अतिरिक्त राशन कार्ड इत्यादि जैसी अवसंरचना संबंधी आवश्यकताओं और सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुकानों के वितरण हेतु चाय, नमक, दाल, साबुन आदि अतिरिक्त वस्तुओं की पहुंच सुनिश्चित करने के लिए सरकार द्वारा प्रयास किया गया था।

3.4.7 लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली–

इसे भारत सरकार ने जून 1997 में प्रारंभ किया जिसके अंतर्गत राज्यों द्वारा गरीबों के लिए अनाज वितरण की पक्की व्यवस्था की गई थी जिसके अंतर्गत गरीबों की पहचान कर उन तक पारदर्शी एवं उत्तरदाई ढंग से अनाज पहुंचना था जिसके लिए राज्य सरकारों को सुझाव दिए गए कि ग्राम पंचायत और नगर पालिकाओं को शामिल करते हुए गरीबी रेखा से नीचे (बी.पी. एल.) रहने वाले परिवारों की पहचान करें तथा इसमें गरीबी रेखा से नीचे उन परिवारों को रखने की व्यवस्था की गई जिनकी वार्षिक आय 15000 से कम है शुरू में प्रति परिवार 10 किलोग्राम खाद्यान्न प्रति माह देने की व्यवस्था की गई जिसे बाद में बढाकर 25 किलोग्राम प्रति माह कर दी गई तथा 1 अप्रैल 2002 को राशन की मात्रा को बढ़ाकर 35 किलोग्राम प्रति माह प्रति परिवार कर दिया गया।

लक्षित वितरण प्रणाली को अधिक केंद्रित बनाने तथा गरीब आबादी के अत्यंत गरीब वर्ग तक पहुंचने के लिए अंत्योदय अन्न योजना को दिसंबर 2000 में शुरू किया गया तथा गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले बी.पी.एल. परिवारों और गरीबी रेखा से ऊपर रहने वाले ए.पी.एल. परिवारों के लिए निर्गमन कीमतों में काफी अंतर रखा गया मार्च 2000 में सरकार ने निर्गमन कीमत को गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले बी.पी.एल. परिवारों के लिए भारतीय खाद्य निगम की आर्थिक लागत का 50 प्रतिशत और गरीबी रेखा से ऊपर रहने वाले ए.पी.एल. परिवारों के लिए आर्थिक लागत के बराबर सुनिश्चित किया गया उदाहरण के लिए हम यह समझ सकते हैं कि भारतीय खाद्य निर्गमन की वर्ष 2020–21 में आर्थिक लागत 1000 प्रति कुंतल थी इसलिए गरीब रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के लिए निर्गमन कीमत ₹ 500 प्रति कुंतल निर्धारित की गई तथा गरीबी रेखा से ऊपर रहने वालों के लिए निर्गमन कीमत 1000 प्रति कुंतल निर्धारित की गई जिसके परिणाम स्वरूप गरीबी रेखा के ऊपर रहने वाले परिवारों ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली से खाद्यान्नों की खरीद में बहुत कमी कर दी गई जिससे की भारतीय खाद्य निगम के पास भारी भंडार जमा हो गए।

3.4.8 सार्वजनिक वितरण प्रणाली के दोष

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में गरीबों को कम लाभ प्राप्त होता है विभिन्न अध्ययनों के द्वारा यह ज्ञात हुआ कि गरीब जनता को सार्वजनिक वितरण प्रणाली से अधिक लाभ नहीं प्राप्त हुआ है इसका कारण यह रहा कि अधिकतर वस्तुओं के लिए ग्रामीण गरीब जनता के निर्भरता सार्वजनिक वितरण प्रणाली की तुलना में खुले बाजार पर ज्यादा रही है इसी प्रकार शहरी क्षेत्र में रहने वाले गरीब लोगों की खुले बाजार पर निर्भरता अपेक्षाकृत अधिक रही है तथा राशन कार्ड केवल उन्हीं परिवारों को जारी किए जाते हैं जिनके पास निवास स्थान का सही प्रमाण है इसका अर्थ यह हुआ कि बेघर गरीब लोगों तथा उन लोगों के पास निवास स्थान का प्रमाण नहीं है तो ग्रामीण क्षेत्र से शहरी क्षेत्र में काम करने वाले अस्थाई श्रमिक होने की दशा में खाद्य सुरक्षा प्रणाली का लाभ नहीं प्राप्त हो सकता है 2002 में आर. राधाकृष्णन के एक अध्ययन से पता चलता है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली गरीबों तक पहुंच को लेकर कई निष्कर्ष प्राप्त किया जैसे की सार्वजनिक वितरण प्रणाली से जारी की गई खाद्यान्नों की आपूर्ति में व्यापक अंतरराज्यी असमानताएं विद्यमान हैं बिहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश को इस प्रणाली से कम आपूर्ति प्राप्त हुई हालांकि इन राज्यों में निर्धनता बड़े पैमाने पर पाई जाती है तथा राज्य सरकारों के उदासीनता के चलते यह प्रणाली उन राज्यों में बुरी तरह से विफल रही है जिनमें निर्धनों की संख्या अत्यधिक है क्योंकि यह राज्य गंभीर राजकोषीय कठिनाइयों से गुजर रहे हैं इसलिए यह आशा करना कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रसार पर अधिक खर्च करेंगे गलत है।

3.4.7.1 पात्र परिवारों की पहचान–

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए वास्तव में निर्धन लोगों की पहचान करना सबसे बड़ी समस्या है जिससे कि लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली असफल रही है कुछ आलोचकों का मानना है कि बहुत गरीब लोगों को जिन्हें लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली में शामिल करना आवश्यक था इस प्रणाली से बाहर रखा गया मथुरा स्वामीनाथ के अनुसार वितरण प्रणाली के दो मुद्दे हैं वैचारिक मुद्दे, परिचालन के मुद्दे, वैचारिक मुद्दे का संबंध गरीबों की परिभाषा से है जबकि परिचालन मुद्दे का संबंध वास्तव में गरीबों के निर्धारण से है दोनों ही अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की पूरी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इस कार्यक्रम में सही तौर पर उन्हीं लोगों को शामिल किया जाए जिन्हें सार्वजनिक वितरण प्रणाली की नितांत आवश्यकता है।

3.4.7.2 गरीबी की परिभाषा–

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में निर्धन किसे माना जाए इसका निर्धारण इस प्रणाली में 1993–94 में योजना आयोग द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा वर्ष 2000 की कीमतों द्वारा समायोजन के बाद मानदंड के रूप में स्वीकार किया गया यदि हम इस गरीबी रेखा को स्वीकार करते हैं तो 1993–94 में लक्षित रूप में 37 प्रतिशत ग्रामीण जनसँख्या 32 प्रतिशत शहरी जनसंख्या आती

है परंतु सरकारी गरीबी निरपेक्ष व्यय का बहुत कम स्तर अपनाती है कम और घटती बढ़ती आयों का अर्थ यह है कि गरीबी रेखा को किसी स्थिर व अपरिवर्तनीय स्तर पर निर्धारित करना भूल है जिसे मथुरा स्वामीनाथन ने सिद्ध किया कि यदि पोषण स्तर या खाद्यान्नों में हिस्सा जैसी वैकल्पिक कसौटियां अपनाई जाए तो उन लोगों की संख्या जो गरीबी रेखा से नीचे हैं सरकार द्वारा निर्धारित गरीबी रेखा के आधार पर निर्धारित संख्या से कहीं ज्यादा होगी।

3.4.7.3 रिसाव या भ्रष्टाचार–

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में बड़ी मात्रा में जाली कार्ड द्वारा सस्ती दरों पर प्राप्त अनाज को खुले बाजारों में ऊंची कीमतों में बेचा जाता है तथा पात्र लाभार्थी इससे वंचित रह गए जिसका उदाहरण 11वीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेजों में तीन समय बिंदुओं पर प्राप्त होता है 1993–94, 1999–2000 में लक्षित वितरण प्रणाली का 28 प्रतिशत रिसाव था जो 2004–05 में बढ़कर 54 प्रतिशत पहुंच गया अर्थात आधे से ज्यादा जो सार्वजानिक वितरण प्रणाली के लिए जारी किया गया उचित दर की दुकानों में खरीदारों के पास पहुंचने से पहले ही लुप्त हो गया हाल के अनुसंधानों से पता लगा कि समय पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली में रिसाव कम हुआ है उदाहरण के लिए हिमांशु एवं सेन ने अनुमान लगाया कि वर्ष 2011–12 में सार्वजनिक वितरण प्रणाली से रिसाव 35 प्रतिशत था जॉन ड्रेज, हिमांशु, रितिका खेड़ा एवं अभिजीत सेन के अध्ययन में इसे 42 प्रतिशत बताया गया इन दोनों अध्ययनों के निष्कर्ष से स्पष्ट होता है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली से रिसाव जो 2004–05 में प्रतिशत था 2011–12 में कम होकर 35 से 42 प्रतिशत के लगभग हो गया।

3.4.7.4 खाद्यान्नों की खराब स्थित –

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत दी जाने वाली खाद्यान्नों की खराब गुणवत्ता खाद्यान्नों को खरीदते समय निर्धारित गुणवत्ता के अभाव तथा भंडारण में लापरवाही के कारण होती है जिसके कारण अधिकांशत इसका प्रयोग लोगों द्वारा स्वयं उपभोग करने की बजाय पशुओं को खिलाने में किया जाता है

3.4.9 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013–

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक 22 दिसंबर 2011 को लोकसभा में पेश किया गया इस विधेयक में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन 75 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या को तथा 50 प्रतिशत शहरी जनसंख्या को सस्ती कीमतों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने की तथा स्त्रियों एवं बच्चों को पोषण सहायता प्रदान करने की व्यवस्था है विधेयक को पेश करने के बाद उसे एक विशिष्ट कमेटी को सौपा गया ताकि उसकी विभिन्न धाराओं पर पुनः विचार किया जा सके कई सुझावों के प्रकाश में इस विधेयक में संशोधन किए गए और संशोधित राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा विधेयक

2013 पेश किया गया राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 5 जुलाई 2013 को लागू किया गया जिसमें यह कहा गया कि राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम 75 प्रतिशत ग्रामीण जनसँख्या को तथा 50 प्रतिशत शहरी जनसंख्या को लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से सस्ती कीमतों पर खाद्यान्न प्राप्त करने का कानूनी अधिकार देता है।

इस विधेयक में राज्य खाद्य कमीशन स्थापित करने की बात कही गई प्रत्येक कमीशन में एक अध्यक्ष पांच अन्य सदस्य तथा एक सदस्य सचिव होगा इनमें से कम से कम दो महिलाएं तथा एक सदस्य अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का होना अनिवार्य होगा राज्य कमीशन का मुख्य काम विधेयक के कार्य में पर नजर रखना राज्य सरकारों तथा उनकी संस्थाओं को सलाह देना तथा विधेयक के उन लोगों की जांच करना होगा विधेयक अधिनियम के अधीन जिन लोगों को खाद्यान्न प्राप्त करने का अधिकार दिया गया उन्हें खाद्यन्न ना मिलने की स्थिति में राज्य सरकार से खाद्य सुरक्षा भत्ता प्राप्त करने का अधिकार होगा।

राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने जनवरी 2011 में राष्ट्रीय खाद सुरक्षा विधेयक मसौदे पर अपने अंतिम सुझाव प्रस्तुत किया प्रस्तावित राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम का उद्देश्य देश के सभी नागरिकों को हर समय पर्याप्त भोजन उपलब्ध कराने हेतु खाद्यान्नों के सार्वजनिक वितरण के माध्यम से उपयुक्त व्यवस्था करना क्योंकि भूख एवं कुपोषण से तथा ऐसी जुड़ी समस्याओं से छुटकारा पाना जो कि हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने सिफारिश की है कि खाद्यान्नों का अधिकार निर्धारित करने के लिए परिवार को ईकाई ना मानकर व्यक्ति को ईकाई मानकर खाद्यान्नों का अधिकार निर्धारित किया जाना चाहिए इसके पक्ष में तर्क देते हुए राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने कहा कि प्रति व्यक्ति खाद्यान्न का अधिकार अधिक न्यायोचित है जिन परिवारों में व्यक्तियों की संख्या अधिक होगी उनके खाद्यान्न संबंधी अधिकार भी अधिक होंगे व्यक्ति को आधार बनाने पर परिवारों की सही संख्या का अनुमान लगाने की समस्या समाप्त हो जाएगी क्योंकि सही अनुमान लगाना अधिक कठिन होता है और उसमें गड़बड़ी की काफी संभावनाएं होती हैं।

पात्र व्यक्तियों को प्रत्येक माह 5 किलोग्राम चावल, गेहूं या मोटे अनाज की आपूर्ति क्रमशः तीन एवं दो रुपए में तथा ₹1 प्रति किलो ग्राम की दर पर की जाएगी पात्र व्यक्तियों का चयन राज्य सरकारों द्वारा केंद्र सरकार के निर्धारित मानदंडों के आधार पर किया जाएगा इसमें परिवारों के स्थान पर व्यक्ति के अनुसार खाद्यान्नों का अधिकार स्थापित किया जाएगाद्य खाद्यान्नों की कीमतें आरंभ में 3 वर्षों तक लागू रहेगी और उसके पश्चात केंद्र सरकार द्वारा समय–समय पर उनका निर्धारण इस प्रकार किया जाएगा की वह न्यूनतम समर्थन कीमतों से अधिक ना हो अधिनियम के अधीन पात्र परिवारों का निर्धारण राज्य सरकारे करेंगे और यह 365 दिन के अंदर करना अनिवार्य होगा 6 माह में 6 वर्ष तक के बच्चों के लिए अधिनियम में आयु अनुसार समुचित भोजन की गारंटी दी गई जिससे स्थानीय आंगनबाड़ी के माध्यम से मुफ्त प्रदान किया जाएगा 6 वर्ष

से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के प्रतिदिन एक बार मुफ्त दोपहर भोजन दिया जाएगा सरकारी सहायता प्राप्त तथा स्थानीय निकायों द्वारा चलाई जाने वाले सभी स्कूलों में कक्षा आठ तक के बच्चों के लिए योजना लागू होगी 6 माह से कम आयु वाले बच्चों को पूरी तरह से स्तनपान पर निर्भरता को प्रोत्साहित किया जाएगा प्रत्येक गर्भवती महिला तथा स्तनपान करने वाली माता को स्थानीय आंगनबाड़ी से मुफ्त भोजन दिया जाएगा गर्भ के दौरान और बच्चा पैदा होने से 6 माह तक किस्तों में ₹6000 का मातृत्व लाभ दिया जाएगा।

3.4.10 एकीकृत बाल विकास कार्यक्रम–

बाल विकास कार्यक्रम भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा 2 अक्टूबर 1975 को प्रारंभ किया गया यह केंद्र प्रायोजित योजना है जिसमें 6 वर्ष तक की आयु के बच्चों गर्भवती महिलाओं और स्तनपान करने वाली माताओ के लिए 6 प्रकार की मूल सेवाएं प्रदान करने की व्यवस्था है इस कार्यक्रम के आयोजन तथा परिचालन लागतो का खर्च केंद्र सरकार द्वारा उठाया जायेगा जबकि इसका कार्यान्वयन राज्य सरकारो द्वारा किया जायेगा तथा अपने साधनों से पूरक पोषण सुविधा प्रदान करेंगेद्य पूरक पोषण के साथ प्राथमिक चिकित्सा सुविधा तथा अनौपचारिक शिक्षा सुविधा भी प्रदान करती हैं एक पूरक पोषण जिसके तहत प्रत्येक बच्चे को साल में 300 दिन 500 कैलोरी प्रतिदिन 12 से 15 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन तथा प्रत्येक गर्भवती व स्तनपान कराने वाली महिलाओ को 600 कैलोरी प्रतिदिन तथा 18 से 20 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन उपलब्ध करने का प्रावधान किया गया है।

बीमारियों के खिलाफ प्रतिरक्षण, स्वास्थ्य परीक्षण कर विशेषज्ञों से परामर्श की सुविधा, गर्भस्थ स्त्रियों को स्वास्थ्य एवं पोषण के बारे में शिक्षा 6 माह से 6 वर्ष के बच्चों को अनौपचारिक स्कूल पूर्व शिक्षा जैसे कार्यक्रम बहुत सी परियोजनाओं के माध्यम से लागू किया जा रहा है जिसमें प्रत्येक परियोजना प्रत्येक विकासखंड में स्थित है प्रत्येक एकीकृत बाल विकास योजना में 6 वर्ष से कम आयु वाले 17000 बच्चों या 40 प्रतिशत बच्चों को तथा गर्भवती व स्तनपान कराने वाली 40 प्रतिशत महिलाओं को पोषणयुक्त भोजन प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है जिसे आंगनबाड़ी केन्द्रो के माध्यम से क्रियान्वित किया जाएगा।

एकीकृत बाल विकास में काम करने वाले कर्मचारियों में मुख्य विकास परियोजना के अधिकारी, सुपरवाइजर, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता एवं सहायिका शामिल होंगेद्य एकीकृत बाल विकास योजना में वर्ष 1975 में 33 करोड परियोजनाओं एवं 4891 आंगनबाड़ी केन्द्रो में शुरू की गई जो कि आज यह पूरे देश में लागू हो चुकी है भारत सरकार ने 7076 परियोजनाओ तथा 14 लाख आंगनबाड़ी केन्द्रो को स्वीकृति दी जिसे देश भर में लागू किया गया। इसके अलावा और भी अन्य कदम उठाए गए हैं जैसे की अनुपूरक पोषण कार्यक्रम व अन्य कार्यक्रमों के वित्तीय मानदंडों में संशोधन अनुपूरक पोषण के लिए आवश्यक पोषण आहार मंडलों में संशोधन और विश्व स्वास्थ्य

संगठन के नए विकास मापदण्ड को लागू करना आदिद्य वर्ष 2009–10 से भारत सरकार ने पूर्वोत्तर भारत के लिए केंद्र और राज्य सरकारों के पोषण संबंधी अन्य कार्यक्रमों में 90रू10 के अनुपात में लागत भागीदारी सुनिश्चित की है जिसमें 90 प्रतिशत केंद्र सरकार की भूमिका होगी तथा 10 प्रतिशत राज्य सरकारों की भूमिका होगी जबकि अन्य राज्यों में राज्य और केंद्र का 50रू50 का अनुपात होगा तथा अन्य पोषण कार्यक्रमों में हिस्सा 90रू10 का होगा जिसमें 90 प्रतिशत केंद्र प्रायोजित होगी और 10 प्रतिशत राज्य प्रायोजित योजनाएं होंगी।

3.4.11 मध्यान भोजन योजना–

प्राथमिक शिक्षा को पोषण युक्त सहारा देने के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम मध्यान भोजन योजना की शुरुआत 15 अगस्त 1995 को देश के 248 ब्लॉकों में प्रारंभ केंन्द्र सरकार द्वारा किया गया 1997–98 तक इसे देश के समस्त ब्लॉकों में लागू कर दिया गया इस योजना का मुख्य उद्देश्य स्कूलों में नामांकन दर एवं उपस्थिति में वृद्धि होद्य बच्चे नियमित रूप से स्कूल आए जिससे की बच्चो द्वारा बीच में स्कूल छोड़ देने की रिवायत कम की जा सके जिससे कि बच्चों को नियमित रूप से स्कूल आने में प्रोत्साहित किया जा सके तथा बच्चों द्वारा स्कूल छोड़ने की समस्या को कम किया जा सके साथ ही साथ प्राथमिक स्कूल के बच्चों को बेहतर पोषण अर्थात पौष्टिक आहार उपलब्ध कराया जा सके यह कार्यक्रम विश्व का सबसे बड़ा पोषणकारी कार्यक्रम है जिसके तहत 12 लाख स्कूलों के माध्यम से लगभग 12 करोड़ बच्चों को भोजन उपलब्ध कराया जा रहा है यह सभी राज्य व केंद्र शासित प्रदेशों में लागू है सितंबर 2004 में मध्यान भोजन योजना के तहत सरकारी व सहायता प्राप्त स्कूलों एवं वैकल्पिक व प्रवृत्ति केन्द्रो में कक्षा 1 से 6 तक पढ़ाई कर रहे हैं सभी बच्चों को प्रतिदिन पका–पकाया भोजन उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी जिससे कम से कम 300 कैलोरी एवं 8 से 12 ग्राम प्रोटीन प्राप्त हो सके।

खाद्यान्नों की मुफ्त आपूर्ति के साथ–साथ योजना में केंद्रीय सहायता उपलब्ध कराने के लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गयी

प्रति बच्चा प्रति स्कूल दिन के हिसाब से भोजन बनाने के लिए विशिष्ट वर्ग के राज्यों के लिए ₹100 तथा अन्य राज्यों के लिए 75 रुपए प्रति कुंतल के हिसाब से परिवहन सहायता खाद्यान्नों की लागत परिवहन सहायता तथा भोजन पकाने के लिए सहायता के प्रबंधन अनुपालन एवं मूल्यांकन के लिए दो प्रतिशत के हिसाब से वित्तीय सहायता सूखा प्रभावित क्षेत्र में गर्मी की छुट्टियों के दौरान भी मध्यान भोजन उपलब्ध कराने की व्यवस्था जुलाई 2006 में यह योजना में संशोधन किया गया तथा पूर्वोत्तर राज्यों में भोजन बनाने की सहायता को बढ़ाकर ₹180 पैसे तथा अन्य राज्यों में ₹150 पैसे कर दिया गया अक्टूबर 2007 में योजना का विस्तार करके उसमें

3479 शैक्षिक रूप से पिछड़े खंडो में उच्च प्राइमरी कक्षाओं में अर्थात 6 से 8 में पढ़ रहे बच्चों को शामिल कर लिया गयाद्य 1 अप्रैल 2008 से मध्यान भोजन योजना के अंतर्गत पूरे देश के सभी सरकारी स्कूलों सहायता प्राप्त स्कूलों तथा सर्व शिक्षा अभियान में शामिल सभी संस्थाओं में प्राइमरी व उच्च प्राइमरी कक्षाओं में पढ़ रहे बच्चों को शामिल कर लिया गया जिसमें प्राइमरी कक्षाओं में पढ़ रहे बच्चों को प्रति स्कूल प्रतिदिन बच्चों के हिसाब से 100 ग्राम खाद्यान्न भोजन के रूप में देने की तथा उच्च प्राइमरी कक्षाओं में पढ़ रहे बच्चों को प्रति स्कूल प्रतिदिन डेढ़ सौ ग्राम खाद्यान्न भोजन के रूप में उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गयी जहां कच्चा भोजन देने की व्यवस्था है वहां 3 किलोग्राम खाद्यान्न प्रति बच्चा प्रति माह दिया जाता है मध्यान भोजन योजना में भोजन तैयार करने का पूर्वोत्तर राज्यों में केंन्द्र एवं राज्य का अनुपात 90रू10 के अनुपात में है तथा गैर पूर्वोत्तर राज्यों में केंद्र तथा राज्य का अनुपात 60रू40 के अनुपात में है।(स्रोत– मिश्रा एस.के. पुरी वी.के. हिमालया पब्लिशिंग हॉउस पेज न0 278 वर्ष 2022)

3.4.12 भारतीय खाद्य निगम–

भारतीय खाद्य निगम की स्थापना वर्ष 1965 में हुई थी जिसका मुख्य कार्य सार्वजनिक वितरण प्रणाली को खाद्यान्न उपलब्ध कराने, खाद्यान्न व अन्य सामग्री की खरीदारी करना, भंडारण व संग्रहण, स्थानांतरण, वितरण तथा बिक्री का था भारतीय खाद्य निगम को स्थापित करने का मुख्य उद्देश्य यह था की किसानों को उनकी उत्पादन का उचित मूल्य जो सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम ना हो प्राप्त हो सके तथा उपभोक्ताओं को एक निश्चित कीमत पर खाद्यान्नों की उपलब्धता सुलभ हो सके यह कीमत भारत सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है जिसे निर्गमन कीमत कहते हैं।

भारतीय खाद्य निगम को भारत सरकार के द्वारा यह जिम्मेदारी दी गई की वह अपना एक निश्चित प्रतिरोध भंडार बना कर रखें जिससे कि सूखा, बाढ़ या अन्य आपदाओं में भारत में खाद्यान्नों की समस्या से छुटकारा पाया जा सके वर्तमान के कुछ वर्षों में भारतीय खाद्य निगम की भूमिका बढ़ती गई है तथा भारतीय खाद्य निगम की उपलब्धियां भी बढ़ी हैं जैसे की भारतीय खाद्य निगम द्वारा खाद्यान्नों की कीमत वसूली का काम संभाल गया है जिससे कि कीमत वसूली में काफी वृद्धि होने के परिणाम स्वरूप प्रतिरोध भंडारण में वृद्धि करने तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली की मांग को पूरा करने के लिए उचित मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध कराने में सुलभता बढ़ी है तथा खाद्य निगम द्वारा देश के किसानों से अधिक खाद्यान्नों की खरीद करने के कारण खाद्यान्नों के आयात की आवश्यकता कम हुई है जिससे की विदेशी मुद्रा भंडारण की बचत हुई है तथा पूर्व घोषित कीमतों पर उत्पादन खरीदने के कारण भारतीय खाद्य निगम किसानों को लाभकारी कीमत प्रदान करने में सफल रहा है तथा खाद्यान्नों के उचित निर्गमन कीमत के कारण भारत की जनसंख्या के बड़े भागों को खाद्यान्नों की आवश्यकता को पूरा करने में सहयोग

दिया जा सका है तथा भारतीय खाद्य निगम ने देश में वैज्ञानिक भंडारण व्यवस्था तथा अवसंरचना के निर्माण में सहायता प्रदान की है।

3.4.13 सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के उपाय–

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के द्वारा दिए जाने वाले खाद्यान्न एक देश एक राशन कार्ड योजना के माध्यम से पूरे भारत में कंप्यूटरीकृत बिक्री सुनिश्चित की जाए जिससे कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली में पात्र व्यक्तियों को लाभ मिल सके एवं रिसाव या चोरी कम से कम हो सके।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लाभार्थियों की सूची सार्वजनिक की जाए तथा उसकी पंचायत स्तर पर जांच की जानी चाहिए जिससे कि अपात्र लाभार्थियों की पहचान हो सके तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली से बढ़ रहे राजस्व बोझ को कम किया जा सके।

भारतीय खाद्य निगम के भंडारगृहो को प्रत्येक जिले में बनाया जाना सुनिश्चित किया जाए साथ ही साथ भारतीय खाद्य निगम की खरीद एवं बिक्री इकाइयां प्रत्येक विकासखंड में सुनिश्चित की जाए जहां पर कंप्यूटरकृत माध्यम से बिक्री एवं खरीद सुनिश्चित की जा सके सार्वजनिक वितरण प्रणाली में मापतौल के लिए इलेक्ट्रॉनिक तुला का प्रयोग किया जाये।

3.4.14 सारांश–

भारत सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कृषि के विकास पर जोर देते हुए बीज, पानी, उर्वरक, टेक्नोलॉजी, अर्थात हरित क्रांति को अपनाया गया जिससे कि भारत के खाद्यान्न आयात पर निर्भरता में कमी हो गई एवं अनाजो की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता में वृद्धि हुई भारत ने वर्ष 1976 में खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली थी इसके पश्चात भारत में खाद्यान्न का आयात नाम मात्र का रह गया गिल्बर्ट ईटइन ने खाद्य क्षेत्र में भारत की आत्मनिर्भरता के प्रयासों की सराहना करते हुए यह कहा कि ”सभी प्रकार के अंधकारमय एवं बेबुनियादी भविष्यवाणियों के बावजूद जो कि वर्ष 1960–70 के दशक में भारत के खाद्यान्न के भावी महासंकट व्यक्त होने की संभावना पर बल देती थी आज देश को किसी वास्तविक अकाल का खतरा नजर नहीं आता है“ नवी पंचवर्षीय योजना में यह विशेष रूप से उल्लेखित किया गया कि ”देश का सबसे पहला प्रयास खाद्य सुरक्षा प्रणाली का निर्माण करना था ताकि अकाल का खतरा देश से एकदम समाप्त किया जा सके अतः इसके सफलता के प्रमाण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं कि पिछले 5 दशकों से किसी प्रकार का कोई भी अकाल या भुखमरी भारत में अभी तक देखी नहीं गई“।

3.4.15 बोध प्रश्न–

1–खाद्य सुरक्षा से आप क्या समझते हैं?

2– भारत में खाद्य सुरक्षा की आवश्यकता क्यों है ?

3–भारत में खाद्य सुरक्षा के आवश्यकताओं के कारणों का उल्लेख कीजिए।

4–भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का उल्लेख कीजिए ।

5–सार्वजनिक वितरण प्रणाली में दोषों की विवेचना कीजिए।

6–राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 की विवेचना कीजिए।

7–भारत में खाद्य सुरक्षा के लिए अपनाए गए कार्यक्रमों का उल्लेख कीजिए।

8–सार्वजनिक वितरण प्रणाली में सुधार के उपायों का उल्लेख कीजिए।

3.4.16 कुछ उपयोगी पुस्तके–

भारतीय अर्थव्यवस्था, ए. एन. अग्रवाल

भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण नाथूराम

आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं भारत में आर्थिक नियोजन, प्रो.जी.एल.गुप्ता

भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉक्टर ममोरिया एवं जैन

भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.के. राय

भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास और योजनाओं की चुनौतियां, ए. एन. अग्रवाल

रुद्र दत्त एवं सुंदरम भारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

खण्ड – 3

इकाई – 5

कृषि में विनियोजक की समीक्षा एवं कृषि उत्पाद का मूल्य निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

3.5.1 उद्देश्य

3.5.2 प्रस्तावना

3.5.3 भारत में कृषि विनियोजकों की समस्याएँ

3.5.4 कृषि विनियोग में सुधार हेतु सरकारी प्रयास

3.5.5 कृषि मूल्यों में उच्चावचन के कारण

3.5.6 कृषि मूल्यों के स्थायित्व की आवश्यकता अथवा कृषि मूल्यों में उच्चावचन के परिणाम

3.5.7 कृषि मूल्य स्थिरीकरण का अर्थ

3.5.8 कृषि मूल्यों में स्थिरीकरण के उद्देश्य

3.5.9 भारत में कृषि उत्पादों का मूल्य निर्धारण

3.5.10 कृषि उत्पादों का न्यूनतम मूल्य

3.5.11 न्यूनतम समर्थन मूल्य

3.5.12 वसूली या अधिप्राप्ति मूल्य या क्रय मूल्य

3.5.13 खाद्यान्नों के मूल्य निर्धारण के संबंध में कृषि लागत एवं मूल्य आयोग का दृष्टिकोण

3.5.14 सारांश

3.5.15 बोध प्रश्न

3.5.16 कुछ उपयोगी पुस्तके

3.5.1 उद्देश्य

1–प्रस्तुत ईकाई में हम भारत में कृषि विनियोजक की समस्याओं के बारे में जानेंगे।

2–प्रस्तुत ईकाई में कृषि विनियोग में सुधार हेतु सरकारी प्रयासों के बारे में जानेंगे ।

3–प्रस्तुत ईकाई में कृषि मूल्यों में उच्चावचन के कारणों के बारे में जानेंगे।

4–प्रस्तुत ईकाई में कृषि मूल्य के स्थायित्व की आवश्यकता अथवा कृषि मूल्य में उच्चावचन के परिणाम के बारे में जानेंगे।

5–प्रस्तुत ईकाई में कृषि मूल्य स्थायीकरण का अर्थ एवं उद्देश्यों के बारे में जानेंगे।

6–प्रस्तुत ईकाई में भारत में कृषि उत्पादों का मूल्य निर्धारण के बारे में जानेंगे।

7–प्रस्तुत इकाई में भारत में कृषि उत्पादों का न्यूनतम मूल्य के बारे में जानेंगे।

8–प्रस्तुत ईकाई में वसूली या अधिप्राप्ति मूल्य या क्रय मूल्य के बारे में जानेंगे

3.5.2 प्रस्तावना–

भारत में कृषि में विनियोग की स्थिति अत्यधिक पिछड़ी हुई है। प्राचीनकाल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक देश में कृषि कार्य किसानों द्वारा अपनी और अपने परिवार की उदरपूर्ति के लिए किया जाता था। किन्तु किसान को अपने परिवार की भोजन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी प्रयास करना पड़ता था। इसके लिए उसे नकद धन की आवश्यकता पड़ती थी। अतः वह अपनी फसल का कुछ हिस्सा नकद धनराशि में बेच देता था। किन्तु कृषि फसल को बाजार में बेचने की यह प्रक्रिया सन्तोषजनक नहीं थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जूट और सूती वस्त्र उद्योग के विकास के कारण एवं बीसवीं शताब्दी में चीनी उद्योग के प्रादुर्भाव से कृषि क्षेत्र में व्यापारिक फसलों के

महत्व में वृद्धि हुई। इसी अवधि में नगरीय विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और जनसंख्या वृद्धि की गति अत्यधिक तेज हो गई। अतः नगरों में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या के लिए कृषि पदार्थों की आवश्यकता अधिक अनुभव की जाने लगी। परिणामस्वरूप खाद्यान्नों के विपणन की प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ।

दूसरी ओर देश की स्वतन्त्रता के बाद हुए भूमि सुधारों के फलस्वरूप गाँवों में आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न किसानों का एक ऐसा वर्ग बन गया जिसने कृषि को एक व्यवसाय के रूप में ग्रहण किया। इस वर्ग ने कृषि कार्य अधिक आर्थिक लाभ कमाने के उद्देश्य से शुरू किया। अतः इस वर्ग ने कृषि फसलों के विनियोग हेतु नई–नई व्यवस्थाओं का सूत्रपात किया। इस प्रकार शनैः–शनैः कृषि व्यवस्था में नियमित रूप से निरन्तर सुधार होते रहे।

भारत में कृषि क्षेत्र में सबसे अधिक सुधारों की आवश्यकता विनियोग के क्षेत्र में हैं, कृषि उत्पादन की प्रगति हरित क्रांति के पश्चात् काफी हुई हालॉकि इसमें क्षेत्रीय विषमताऐं पायी जाती हैं। कृषि विनियोग एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें ध्यान न दे पाने के कारण आज किसानों को आत्महत्या करनी पड़ रही है। वर्तमान इकाई में हम कृषि संकट के मूल में पाये जाने वाले कृषि विनियोग की कमियों को उजागर करेंगे तथा इन्हें दूर करने हेतु सुझाव भी देंगे।

3.5.3 भारत में कृषि विनियोजकों की समस्याएँ–

3.5.3.1 छोटे किसानों एवं बटाईदारों का आर्थिक पतन–

फ्रासिन फ्रकनेल विशेषज्ञ ने किसानों पर हरित क्रान्ति के सामाजिक आर्थिक प्रभाव का अध्ययन किया एवं यह निष्कर्ष पाया की ऐसे किसानों की संख्या अधिक है जिनके अलाभकारी जोतो का आकार दो से तीन एकड़ है उन किसानों ने उर्वरकों की थोड़ी मात्रा प्रयोग करके अपने उत्पादन वृद्धि प्राप्त कर लिया लेकिन कुल उत्पादन में वृद्धि अपर्याप्त होने के कारण इन किसानों के पास भूमि विकास के लिए पूंजी अतिरेक प्राप्त कर पाना संभव नहीं रहा जिससे छोटे किसानों की आर्थिक दशा और भी खराब हो गईद्य जो खेती के लिए कुछ भूमि किराये पर लेकर खेती करते थे या शुद्ध रूप से मुजारे हैं हाल ही के वर्षों में भूमि के मूल्य में वृद्धि के परिणाम स्वरुप लगान में वृद्धि के कारण नई अधिक लाभदायक तकनीक के प्रयोग के प्रभाव से बहुत भू–स्वामियों ने अपनी भूमि पर स्वयं खेती करना प्रारंभ कर दिया और छोटे किसानों एवं बटाईदारों की आय पर जिसका विपरीत प्रभाव पड़ा।

ऐसे किसान जिनकी जोत का आकार 10 एकड़ या इससे अधिक है बहुत ही छोटी संख्या वाले काश्तकार है जो भूमि विकास के लिए विशेष कर छोटी सिंचाई के लिए जो की आधुनिक आदानों के कुशल प्रयोग के लिए एक अनिवार्य शर्त है पूंजी अतिरेक प्राप्त करने की स्थिति में है इसके अतिरिक्त इस वर्ग ने अपने लाभ को और अधिक बढाने के लिए अपने अतिरिक्त लाभ

का प्रयोग भूमि क्रय करने के स्थान पर भूमि को उन्नत करने और आधुनिक उपकरण को खरीदने में कियाद्य 20 एकड़ या इससे अधिक भूमि वाले किसानों को सबसे अधिक लाभ प्राप्त हुआ इसका कारण यह है कि उन्होंने कृषि क्रियाओ का यंत्रीकरण किया ताकि दोहरी या बहु–फसली कृषि कर सके एवं इन्होंने मुख्यतः अपने फसलों में व्यावसायिक फसलों का उत्पादन अधिक कर लाभ कमाया जिससे की बहुसंख्या वाले धान उत्पादन क्षेत्र में 75 से 89 प्रतिशत की आर्थिक स्थिति में गिरावट आई और अधिकतर अनुपात ऐसे किसानों का था जो मौखिक पट्टे पर खेती करने वाले असुरक्षित बटाईदार जिनके जीवन स्तर में कमी आई थी ।

3.5.3.2 भारतीय कृषि में संस्थानात्मक सुधारो का अभाव–

हरित क्रांति में कृषि के संस्थानात्मक सुधारो की आवश्यकता पर बल नहीं दिया गया जिससे कि अधिकतर किसानों को भूमि का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ ना ही भू–धारण के निश्चितिता उपलब्ध हो पाई परिणामतः बड़े पैमाने पर किसानों की बेदखलियां हुई जिसके कारण इन किसानों को विवश होकर बटाईदार की स्थिति स्वीकार करनी पड़ीद्य मिन्हास और श्रीनिवास ने उर्वरक प्रयोग के संबंध में फसल सहभाजन के प्रभाव का अध्ययन किया और उन्होंने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि उर्वरकों पर व्यय कृषको द्वारा उधार प्राप्त करके किया जाता है और इस उधार के लिए उन्हें अधिक ब्याज देना पड़ता है क्योंकि फसल की अवधि न्यूनतम 6 माह एवं अधिकतम एक वर्ष की होती है जिसमें किसान के कुल खर्च का लगभग 20 प्रतिशत ब्याज के रूप में किसानों को देना पड़ता है।

3.5.3.3 किसानों के आय में बढ़ती हुई असमानताएं–

हरित क्रांति के समय कृषि में तकनीकी परिवर्तनों का ग्रामीण क्षेत्रो के आय वितरण पर दुष्प्रभाव अधिक हुआ जिसमें कृषि में तकनीकी परिवर्तन और वितरण संबंधी लाभों के बारे में अध्ययन से सी.एच. हनुमंत राव ने अपने निष्कर्ष में यह बताया कि तकनीकी परिवर्तनों से एक और विभिन्न क्षेत्रों छोटे और बड़े फार्मो के भू स्वामियों के बीच आय की असमानताएं बढ़ी है और दूसरी ओर भूमिहीन मजदूर और किराए पर खेती करने वालों के बीच में भी समस्याएं बढ़ी हैं परन्तु तकनीकी परिवर्तन के लाभ सभी को प्राप्त हुए हैं जिसका अनुभव हमें वास्तविक मजदूरी एवं रोजगार वृद्धि और छोटे किसानों की आय में वृद्धि के रूप में प्राप्त होता है फिर भी हरित क्रांति के प्रधान लाभ प्राप्तकर्ता तो बड़े किसान ही है जो अपने लाभ के लिए उन्नत किस्म के आगतो और ऋण सुविधाओं को प्रयोग करते हैं परंतु आवश्यकता इस बात की है की नीतियों में इस प्रकार परिवर्तन किया जाए की इसका लाभ सभी को सामान रूप से प्राप्त होद्य डॉक्टर वी.के. आर.वी.राव ने अपने अध्ययन में यह बताया कि यह बात सर्वविदित है कि तथाकथित हरित क्रांति जिसने देश में खाद्यान्नों के उत्पादन बढ़ाने में सहायता दी है के साथ ग्रामीण आय में असमानता में वृद्धि हुई बहुत से किसानों को अपने कष्टकारी अधिकार छोड़ने पड़े हैं और ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक एवं आर्थिक तनाव बढ़े हैं अतः भू–सुधार करना अनिवार्य हैद्य डॉक्टर डी.पी. चौधरी हरित क्रांति संबंधी अपने सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष दिया की भू–सुधार के साथ पूंजी बाजार एवं ग्राम संस्थानों में उचित परिवर्तन द्वारा उत्पादन एवं उत्पादकता को

अधिकतम करना संभव होगा और यह आय वितरण की असमानताओं को कम करने के साथ पूर्णतया संगत होगा।

3.5.3.4 श्रम विस्थापन की समस्या–

हरित क्रान्ति में कृषि यंत्रीकरण के प्रभाव बढ़ने से श्रम विस्थापन की समस्या भी बढ़ी है इसका अध्ययन करते हुए उमा के. श्रीवास्तव, रॉबर्ट क्राउन और हैडी ने निष्कर्ष में पाया की हरित क्रांति के दौरान दो प्रकार की नवाचारों के प्रारम्भ होने के प्रभावों की जांच की जिसमें (1) जीव–विज्ञान संबंधी नवाचार (2) यांत्रिक नवाचार, जीव विज्ञान संबंधित नवाचार से हमारा अर्थ कृषि आधारों में किए गए उन परिवर्तनों से है जो भू उत्पादकता को बढ़ाते हैं जैसे कि अच्छे बीज जिन्हें आमतौर पर अधिक उपजाऊ किस्म के बीज कहते हैं और उर्वरको का प्रयोग इस श्रेणी के नवाचार थे इस दृष्टि से हरित क्रांति बीज, खाद, तकनीक में परिवर्तन है तथा यांत्रिक नवाचार में वे नए औजार शामिल किए जाते हैं जो मानव या पशु श्रम का विस्थापन करते हैं अतः हरित क्रांति को जैविकीय एवं यांत्रिक क्रांति कहना उचित होगा श्रम प्रयोग और श्रम विस्थापित करने वाली नवक्रियाओ के शुद्ध प्रभाव का निर्धारण यंत्रीकरण की सीमा करेगी ताकि श्रम का विस्थापन ना हो। इस अध्ययन का निष्कर्ष यह रहा चुकिं यंत्रीकरण से श्रम की मांग जो बीजो और खादो के विस्तृत प्रयोग से बढ़ रही थी उस पर दुष्प्रभाव पड़ सकता था इसलिए भारत जैसे श्रम अतिरेक वाली अर्थव्यवस्थाओं में समय पूर्व यत्रीकरण को प्रोत्साहन देने से बढ़ते हुए बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं हो सकेगा।

सी.एच.हनुमंत राव रोजगार पर नई तकनीक के अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभावों को इस प्रकार व्यक्त किया कि यदि हरित क्रांति को उन्नत किस्म के बीजो एवं उर्वरकों के प्रयोग का एक मुश्त प्रोग्राम मान लिया जाए तो इसका रोजगार में महत्वपूर्ण योगदान प्रतीत होता हैद्य इसके अतिरिक्त नलकूपों द्वारा भी रोजगार में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है श्रम गुणांक क्षेत्र के संबंध में सबसे अधिक उसके बाद उन्नत किसी के बीजों और सिंचाईयों का नंबर आता है ट्रैक्टरों के प्रयोग का शुद्ध रोजगार प्रभाव नकारात्मक कर सकता है यदि फॉर्म क्रियाओ में ट्रैक्टर प्रयोग पूर्ण हो जाए हार्वेस्ट कंबाइन बड़े पैमाने पर कृषि श्रम का विस्थापन करेंगे जबकि उसके भूमि संवर्धन के प्रभाव नाममात्र होंगे।

3.5.3.5 भण्डारण सुविधाओं का अभाव – भारतीय कृषकों के पास अपनी उपज को सुरक्षित रखने के लिए पक्के गोदामों का अभाव है। ग्रामीण क्षेत्रों में भण्डारण की उपलब्ध सुविधाएँ इतनी दयनीय हैं कि 10 से 20 प्रतिशत तक संग्रहित खाद्यान्न चूहों द्वारा खा लिया जाता है।

3.5.3.6 विवशतापूर्ण बिक्री – औसत किसान इतना गरीब और ऋणग्रस्त है कि उसमें अच्छे मूल्यों के लिए प्रतीक्षा करने की क्षमता ही नहीं है। उसे ऋण–भार से मुक्ति पाने के लिए फसल तैयार होते ही अपनी अतिरिक्त उपज ग्रामीण साहूकार या व्यापारी के हाथों बेचनी पड़ती है।

ऐसी विवशतापूर्ण बिक्री कृषक की स्थिति को और भी कमजोर बना देती है, क्योंकि साहूकार या व्यापारी द्वारा उसकी उपज बहुत नीचे मूल्यों पर खरीद लिया जाता है।

3.5.3.7 ग्रामीण यातायात की बुरी दिशा – ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात की दशाएँ अत्यधिक खराब हैं। सभी साधनों से सम्पन्न धनी कृषक भी मण्डियों में अपनी उपज ले जाना पसन्द नहीं करते। ग्रामीण क्षेत्रों की अधिकांश सड़कें कच्ची हैं। यह सड़कें वर्षाकाल में प्रयोग के योग्य नहीं रहतीं।

3.5.3.8 मण्डियों में प्रचलित कपटपूर्ण व्यवहार – मण्डियों में सौदेबाजी का तरीका सामान्यतः कृषकों के हितों के विरूद्ध होता है। मण्डी में अपनी उपज बेचने के लिए कृषक 'दलाल' की सेवाएँ लेता है। आढ़ती और दलाल गुप्त भाषा में सौदेबाजी करते हैं। चूँकि दलाल का आढ़ती के साथ नियमित सम्पर्क रहता है और किसान यदा–कदा अपनी उपज बेचने के लिए मण्डी पहुँचता है, इसलिए कीमत निश्चित करते सतय दलाल सामान्यतः आढ़ती का ही पक्ष लेता है। इसके अतिरिक्त, झूठे बाँटों और मापों के प्रयोग द्वारा उपज के बिक्री मूल्य में से विभिन्न प्रकार की कटौतियों द्वारा तथा दूसरे तरीकों से भी मण्डियों में किसानों को लूटा जाता है।

3.5.3.9 मध्यस्थों की अधिकता – भारत में कृषक तथा उसकी उपज के अन्तिम उपभोक्ता के बीव मध्यस्थों (स्थानीय व्यापारी, दलाल, आढ़ती, फुटकर विक्रेता आदि) की संख्या बहुत अधिक है। अतः कृषि–व्यापार का अधिकांश लाभ इन्हीं मध्यस्थों द्वारा हड़प लिया जाता है।

3.5.3.10 मूल्य–सम्बन्धी जानकारी का अभाव – भारत का औसत किसान गरीब, निरक्षर एवं अज्ञानी है। उसे बड़ी मण्डियों में प्रचलित मूल्य की जानकारी ही नहीं होती। अतः कृषक को अपनी उपज का वह मूल्य स्वीकार करना पड़ता है, जो मूल्य स्थानीय व्यापारी उसे बताते हैं।

3.5.4 कृषि विनियोग में सुधार हेतु सरकारी प्रयास

1. तकनीकी कदम – बढ़ती जनसंख्या की खाद्यान्नों के लिए बढती हुई मांग को पूरा करने हेतु तथा औद्योगिक विकास का आधार तैयार किरने के लिए, कृषि अधीन क्षेत्र को बढ़ाने के लिए तथा गठन खेती करने के लिए कई कदम उठाए गए। कृषि अधीन क्षेत्र को बढ़ाने के लिए सिंचाई सुविधाओं के विकास के कार्यक्रम बनाए गए। जहां तक गहन खेती का संबंध है, एक पैकज कार्यक्रम क रूप में 1966 में देश के चुने हुए क्षेत्रों मे ंनई कृषि युक्ति लागू की गई। देश के अन्य क्षेत्रों में इस कार्यक्रम के प्रसार हेतु उच्च उत्पादकता वाले बीजों के उत्पादन कार्यक्रमों पर तथा उर्वरकों व कीटनाशक दवाईयों की आपूर्ति पर विशेष ध्यान दिया गया। इन प्रयासों के

परिणामस्वरूप, कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में काफी वृद्धि हुई। खाद्यान्नों का उत्पादन जो 1950–51 में 5 करोड़ 8 लाख टन था, 2011–12 में बढ़कर 252.6 मिलियन टन हो गया (23 अप्रैल 2012 को जारी अनुमान के अनुसार)।

2. भूमि सुधार – भूमि सुधार कार्यक्रमों का उद्देश्य मध्यस्थों (यथा जमींदारों, जागीरदारों इत्यादि) का उन्मूलन तथा काश्तकारों को भूमि का अन्तरण था। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम अपनाए गए : (i) मध्यस्थों का उन्मूलन ; (ii) काश्तकारी सुधार (जिसमें लगान नियमन, काश्त अधिकार की सुरक्षा, तथा काश्तकारों को मालिकाना अधिकार देने के लिए कदम उठाने की व्यवस्था थी) ; तथा (iii) जोतों पर सीमाबन्दी (ताकि बड़े किसानों व जमींदारों से अतिरिक्त जमीन लेकर उसका वितरण भूमिहीन श्रमिकों तथा सीमान्त किसानों के बीच किया जा सके)। वस्तुतः भुमि सुधारों का मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों की कृषि व्यव्स्था में क्रांतिकारी परिवर्तन करना था।

3. सहकारिता तथा चकबंदी – कृषि के पुनर्गठनके लिए तथा जोतों के उपविभाजन एवं विखण्डन को रोकने के दृष्टिकोण से भारतीय कृषि नीति में सहकारिता तथा चकबंदी के कार्यक्रम अपनाए गए। चकबंदी का उद्देश्य यह था कि किसान को गांव में मौजूद उसके अलग–अलग छोटे–छोटे भूखंडो के स्थान पर एक ही जगह पर भूमि दे दी जाए ताकि समय, धन व भूमि का अपव्यय रोका जा सके और किसान नई तकनीकों का सही प्रयोग करे। सहकारिता का उद्देश्य यह था कि छोटे एवं सीमांत किसान अपनी भूमि व अन्य साधनों का मिलजुल कर इस्तेमाल करें ताकि सब संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग किया जा सके।

4. योजनाओं में जनता की भागीदारी के लिए संस्थाएं – आयोजकों ने महसूस किया कि आर्थिक विकास व प्रगति का कोई भी कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि लोग स्वयं उस कार्यक्रम को अपना समझ कर उसमें बढ़ चढ़कर हिस्सा न लें। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर 1952 में देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरंभ किया गया। यह कार्यक्रम लोगों का अपना कार्यक्रम था जिसका उद्देश्य उनका अपना उत्थान करना था और सरकार एवं प्रशासनिक अधिकारियों की भूमिका केवल इतनी थी कि वे लोगों की मदद करें ताकि वे अपनी मदद खुद

कर सकें। परन्तु सामुदायिक विकास कार्यक्रम का अनुभव अच्छा नहीं रहा। यह कभी भी जनता का अपना कार्यक्रम नहीं बन पाया और सरकारी सहायता पर निर्भर बना रहा। योजना प्रक्रिया में लोगों की हिस्सेदारी को प्रोत्साहित करने के लिए विकेन्द्रीकरण का एक और कार्यक्रम अपनाया गया जिसे 'पंचायती राज' कहा गया। यह कार्यक्रम भ्झी सामुदायिक विकास कार्यक्रम की तरह असफल रहा।

5. संस्थावार साख व्यवस्था – किसानों को ऋण उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से योजनाओं में उपलब्ध कराई। सबसे महत्वपूर्ण कदम था 1969 में 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण। राष्ट्रीयकरण के बाद बैंको ने पैमाने पर किसानों को आसान शर्तों पर ऋण प्रदान किए। कृषि साख के विस्तार के दृष्टिकोण से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भी स्थापना की गई। 1982 में कृषि एवं ग्रामीण विकास के राष्ट्रीय बैंक की स्थापना की गई। संस्थात्मक ऋण व्यवस्था के व्यापक विस्तार से ग्रामीण क्षेत्रों में महाजनों की भूमिका में तेज कमी आई है तथा किसानों का शोषण कम हुआ है।

6. वसूली व समर्थन कीमतें – सरकार विभिन्न फसलों के लिए वसूली व समर्थन कीमतों की प्रति वर्ष घोषणा करती है। इस नीति के अंतर्गत सरकार निश्चित कीमतों पर किसानों से उत्पादन खरीदती है। इस नीति का उद्देश्य यह है कि अधिक उत्पादन की दशा में कीमतों में गिरावट न होने पाए ताकि किसानों को संभावित हानि से बचाया जा सके। पिछले कुछ वर्षों से सरकार काफी ऊँची वसूली कीमतों की घोषणा कर रही है ताकि किसानों को उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके।

7. कृषि आगतों पर आर्थिक सहायता – सरकार ने सिंचाई, बिजली तथा उर्वरक इत्यादि पर काफी आर्थिक सहायता प्रदान की है। इस सहायता का उद्देश्य यह है कि किसानों को सस्ती कीमतों पर कृषि आगत उपलब्ध कराए जा सकें ताकि कृषि में इनका उपयोग बढ़े जिससे कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाया जा सके। समय के साथ आर्थिक सहायता का भार अब बहुत बढ़ चुका है परन्तु इन्हें हटाने या कम करने में सरकार को बहुत कठिनाई आ रही है।

8. खाद्य सुरक्षा व्यवस्था – उपभोक्ताओं को सस्ती कीमतों पर खाद्यान्न व अन्य अनिवार्य उपभोग वस्तुएं उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से सरकार ने योजनाओं के दौरान एक व्यापक वितरण प्रणाली का पूरे देशभर में जाल बिछाया है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली न केवल उपभोक्ताओं को सस्ती कीमतों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराती है बल्कि खाद्यान्नों का बड़ी मात्रा में भंडारण के जरिए एक 'सुरक्षा व्यवस्था' का भी काम करती है ताकि विभिन्न वर्षों में (या देश के विभिन्न क्षेत्रों में) होने वाली खाद्यान्न उत्पादन में कमी की समस्या का समाधान किया जा

कृषि उपज की विनियोग–व्यवस्था को सुधारने के उद्देश्य से नियोजनकाल में सरकार ने कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। सभी शहरों और मण्डियों में गादामों का निर्माण करने के लिए सरकार ने 'अखिल भारतीय गोदाम निगम' की स्थापना की है। ग्रामीण क्षेत्रों में भण्डारण की सुविधाएँ बढ़ाने के लिए 'सहकारी समितियों' को आवश्यक वित्तीय एवं तकनीकी सहायता उपलब्ध कराई जाती है। किसानों की वित्तीय दशा सुधारने, उन्हें साहूकार के चंगुल से बचाने तथा उपज का अच्छा मूल्य प्राप्त करने में समर्थ बनाने के लिए साख समितियों द्वारा साख की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। सरकारी विनियोग की व्यवस्था कृषकों को मध्यस्थों के शोषण से मुक्ति दिलाने के विचार से आरम्भ की गई है। पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण यातायात को महत्व दिया गया है तथा इस दिशा में कुछ प्रगति भी हुई है। नियन्त्रित मण्डियाँ चालू की गई हैं, जिनके माध्यम से कृषकों के हितों को सुरक्षा प्रदान की गई है। बाजार सम्बन्धी सूचनाओं के प्रचार–प्रसार हेतु उपाय किए गए हैं। 'कृषि मूल्य आयोग' की सिफारिशों के आधार पर सरकार प्रमुख फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन–मूल्य निर्धारित करती है। भारतीय खाद्य निगम, भारतीय कपास निगम आदि एजेन्सियों के माध्यम से कृषि पदार्थों की सरकारी खरीद आरम्भ की गई है। बाटों और मापों को प्रमापीकृत किया गया है। कृषि पदार्थों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण की सुविधाएँ बढ़ाई गई हैं।

(1) कृषि मन्त्रालय के अधीन 'विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय' 19 दिसम्बर, 1998 से केन्द्र व राज्य सरकारों को कृषि विपणन नीतियों और कार्यक्रमों तथ्ज्ञा उनके अन्तर्गत विभिन्न योजनाओं को क्रियान्वित करने हेतु परामर्श देने का, कार्य करता है। इसका मुख्यालय फरीदाबाद (हरियाणा) में है और शाखा मुख्यालय नागपुर में है। देशभर में निदेशालय के 5 प्रादेशिक कार्यालय, 57 उप–कार्यालय और 22 प्रयोगशालाएँ कार्यरत हैं।

(2) विपणन सर्वेक्षण – सरकार ने समय–समय पर विभिन्न वस्तुओं का विपणन–सर्वेक्षण कराया है तथा सर्वेक्षण की रिपोर्ट प्रकाशित की है। ये सर्वेक्षण कृषि पदार्थों के विपणन से सम्बन्धित

समस्याओं का पता लगाने तथा उनका समाधान खोज निकालने की दृष्टि से महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

(3) श्रेणीयन एवं प्रमापीकरण – 'कृषि उत्पाद (श्रेणीयन एवं विपणन) अधिनियम, 1937 के अन्तर्गत सरकार ने अनेक वस्तुओं के 'ग्रेडिंग स्टेशन' स्थापित किए हैं। इस अधिनियम में सन् 1986 में संशोधन किया जाता है। श्रेणीकृत वस्तुओं पर कृषि विपणन विभाग की 'एगमार्क' मोहर लगाई जाती है, जो इन वस्तुओं की शुद्धता की प्रतीक है। 'एगमार्क' वस्तुओं का विस्तृत बाजार है तथा ये ऊँची कीमतों पर बिकती है। 'एगमार्क' के लिए आवेदन की गई कृषि–वस्तुओं की किस्म एवं शुद्धता की परख के लिए नागपुर में एक 'केन्द्रीय गुण–नियन्त्रण प्रयोगशाला' तथा देश के विभिन्न भागों में आठ क्षेत्रीय प्रयोगशालाएँ स्थापित की गई हैं। गत कुछ वर्षों से उत्पादक–स्तर पर व्यापारिक फसलों के श्रेणीयन पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है।

(4) नियन्त्रित मण्डियों की स्थापना – कृषि–उपज की विपणन–व्यवस्था मे ंसुधार की दृष्टि से सरकार द्वारा उठाया गया एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम देश भर में 'नियन्त्रित मण्डियों' की स्थापना है। 'नियन्त्रित मण्डियों' की स्थापना से मण्डियों में प्रचलित कपटपूर्ण व्यवहार विलुप्त हो गए हैं तथा बाजार सम्बन्धी खर्चे घट गए हैं। देश की छोटी–बड़ी 5561 मण्डियों मे ंसे 4830 मण्डियाँ नियन्त्रित हैं। अब 70 प्रतिशत से अधिक उपज 'नियन्त्रित मण्डियों' में बेची जाती है। 'नियन्त्रित मण्डी' का प्रबन्ध 'मण्डी समिति' माप, तौल और कटौतियों पर नियन्त्रण रखती है तथा किसानों की दलालों से रक्षा करती है।

(5) प्रमाणित माप और तौल – सरकार ने देश में प्रचलित माप–तौल की विभिन्न प्रणालियों को सफलतापूर्वक मीट्रिक प्रणाली में प्रतिस्थापित कर दिया है। इससे व्यापारियों द्वारा उपज की तौल में कृषकों के साथ धोखाधड़ी करने की सम्भावना कम हो गई है।

(6) भण्डारण की सुविधाएँ– गाँवों और शहरों में गोदामों के निर्माण की दृष्टि से सरकार ने बहुत कुछ किया है। सन् 1957 में स्थापित 'केन्द्रीय गोदाम निगम' कृषि उपज के भण्डारण हेतु गोदामों का निर्माणकरण है एवं उनका संचालन करता है। इस उद्देश्य से राज्य सरकारों ने भी 'राज्य गोदाम निगम' स्थापित किए हैं। आजकल 'भारतीय खाद्य निगम' भी देश के विभिन्न भागों में अपने गादामों का निर्माण कर रहा है। सरकारी क्ष्क्षेत्र में मण्डी स्तर पर और गाँव स्तर पर गोदामों की स्थापना की गई है। सातवीं योजना के प्रारम्भ में विभिन्न एजेन्सियों की कुल भण्डारण–क्षमता 186 लाख टन थी। गोदाम की रसीद के आधार पर कृषक व्यापारिक बैंकों से

ऋण की सुविधा प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी सुविधा 'भारतीय स्टेट बैंक' और 'सहकारी बैंकों' द्वारा भी उपलब्ध करायी जाती है।

(7) बाजार की सूचनाओं का प्रसार – सरकार ने किसानों को मण्डियों की गतिविधियों (कीमत, स्टॉक आदि) से अवगत कराने की ओर विशेष ध्यान दिया है। ऑल इण्डिया रेडियो प्रतिदिन सायं को प्रमुख मण्डियों के भाव प्रसारित करता है। आजकल चूँकि सभी गाँवों में रेडियों सैट उपलब्ध है, इसलिए ये प्रसारण किसानों द्वारा वास्तव में सुने जाते हैं।

(8) ग्रामीण यातायात का विकास – पंचवर्षीय योजनाओं में सरकार ने गाँवों को मण्डियों से मिलाने वाली सड़कों के निर्माण की ओर भी ध्यान दिया है। इस दिशा में 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' का योगदान उल्लेखनीय रहा है। छठी पंचवर्षीय योजना से एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामीण सड़कों के विकास को महत्व दिया गया है। सड़कों के विकास के साथ–साथ बैलगाड़ियों में सुधार के प्रयास भी किये गये हैं। बैलगाड़ियों में रबड़ के टायर लगाने से उनकी भार–वाहन क्षमता में वृद्धि हुई है।

(9) कृषि मूल्य स्थिरीकरण – किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य दिलाने के लिए 1966 से सरकार प्रतिवर्ष फसल के पूर्व की मुख्य खाद्यान्नों के न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती रहती है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य वे मूल्य हैं जो किसानों को यह सुनिश्चित कराते हैं कि अत्यधिक फसलोत्पादन के समय में मूल्यों को इस स्तर से नीचे नहीं गिरने दिया जाएगा तथा इस मूल्य स्तर पर किसान स्वेच्छा से जितनी भी खाद्यान्न आपूर्ति सरकार को करायेंगे, सरकार उसे खरीदने के लिए वचनबद्ध है।

उल्लेखनीय है कि 1985 में स्थापित 'कृषि लागत एवं कीमत आयोग' 'न्यूनतम समर्थन मूल्यों' की घोषणा करता है।

कृषि मूल्यों में उच्चावचन के कारण

कृषि मूल्यों में उच्चावचन के अनेक कारण हैं ; जैसे–किसी कारणवश कृषि उत्पादन अत्यधिक कम होना, देश में उपभोग की मात्रा में वृद्धि हो जाना, मुद्रा पूर्ति में वृद्धि हो जाना, सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि हो जाना आदि। वैसे कृषि मूल्यों में उच्चावचन के लिए निम्नांकित कारण उत्तरदायी माने जाते हैं –

(1) कृषि उत्पादन में कम–बढ़ होना – किसी कारणवश कृषि उत्पादन का कम होना अथवा बढ़ना कृषि मूल्यों को प्रभावित करता है। प्राकृतिक स्थितियाँ अनुकूल होने पर सामान्यतः कृषि उत्पादन में वृद्धि हो जाती है, तो कृषि पदार्थों के मूल्यों में स्वतः गिरावट आ जाती है, किन्तु प्राकृतिक स्थितियाँ प्रतिकूल होने की स्थिति में कृषि पदार्थों के मूल्य अक्सर बढ़ जाते हैं, क्योंकि उत्पादन में गिरावट आ जाती है।

(2) सरकार की साख नीति – सरकार की सीख नीति का भी कृषि मूल्यों पर प्रभाव पड़ता है। जब सरकार की साख नीति में स्थायित्व और कठोर नियन्त्रण रहता है तो कृषि पदार्थों के मूल्यों में स्वतः गिरावट आने लगती है। किन्तु इसके विपरीत स्थितियों में यदि सरकार साख नीति में किसी प्रकार की शिथिलता बरतती है अथवा साख नीति के विस्तार का अनुसरण करती है तो कृषि मूल्यों में वृद्धि होने लगती है। यदि सरकार द्वारा घाटे की वित्त व्यवस्था का अनुसरण किया जाता है तो इसका प्रभाव भी कृषि मूल्यों पर पड़ता है। मुद्रा पूर्ति की स्थिति भी कृषि मूल्यों को प्रभावित करती है।

(3) आयात–निर्यात – आयात निर्यात की प्रवृत्तियाँ भी कृषि पदार्थों के मूल्यों पर अपना प्रभाव डालती हैं। जब सरकार द्वारा किसी कृषि पदार्थ को निर्यात करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी जाती है तो उस कृषि पदार्थ के मूल्य में स्वतः वृद्धि हो जाती है, क्योंकि उस कृषि पदार्थ की उपलब्धि देश में उपभोग के लिए अत्यधिक कम हो जाती है, किन्तु जब सरकार द्वारा किसी कृषि पदार्थ का आयात करने का निर्णय ले लिया जाता है, तो कृषि पदार्थों के मूल्य स्वतः गिरने लगते हैं। उदाहरणार्थ, वर्ष 1996–97 में जब देश में व्यापारियों द्वारा गेहूँ के कृत्रिम अभाव की स्थिति पैदा कर दी गई थी तो गेहूँ के मूल्यों में बहुत अधिक वृद्धि हो गई थी परिणामस्वरूप सरकार द्वारा आस्ट्रेलिया से हजारों टन गेहूँ आयात किया गया था। इस आयात से गेहूँ के मूल्यों में तत्काल गिरावट की प्रवृत्ति देखी गई थी।

(4) सामान्य मूल्य स्तर – जब देश में कृषि पदार्थों को छोड़कर जीवन के उपयोग में आने वाली अन्य उपभोक्ता वस्तुओं का मूल्य स्थिर रहता है, तो कृषि पदार्थों के मूल्यों में भी वृद्धि होने लगती है तो कृषि पदार्थों के मूल्य में स्वतः वृद्धि की स्थिति बन जाती है। यदि सामान्य मूल्य स्तर में गिरावट की प्रवृत्ति होती है तो कृषि पदार्थों के मूल्य भी गिरने लगते हैं।

(5) भण्डारण का प्रभाव – जब देश के व्यापारी औश्र किसान अपने पास कृषि भण्डारण की समुचित व्यवस्था रखते हैं तो उसका प्रभाव कृषि पदार्थों के मूल्यों पर स्वाभाविक रूप से पड़ता है। सामान्यतः देश का व्यापारी और सम्पन्न कृषक कृषि पदार्थों का भण्डारण इस उद्देश्य की

पूर्ति के लिए करते हैं कि देश में कृत्रिम अभाव की स्थिति बनते ही ऊँचे मूल्य पर वे अपने माल को बेचकर अधिकतम लाभ अर्जित कर सकेंगे। किन्तु सरकार द्वारा छापा आदि मारने की क्रियाओं से भण्डारण की इस प्रवृत्ति पर अंकुश तो लगता ही है, किन्तु साथ ही कृषि पदार्थों के मूल्य भी गिरने लगते हैं।

(6) यातायात के साधन – यातायात एवं परिवहन के साधन भी कृषि पदार्थों के मूल्य को प्रभावित करते हैं। यदि देश के विभिन्न भागों में आवश्यक कृषि पदार्थों के भेजने की समुचित और सुविधाजनक स्थितियाँ बनी रहती हैं तो कृषि पदार्थों के मूल्य में स्थिरता बनी रहती है, किन्तु यदि देश के किसी भाग में कृषि पदार्थ की उपलब्धता आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त मात्रा में नहीं हो पाती और परिवहन के साधनों द्वारा उस क्षेत्र में कृषि पदार्थ पहुँचाने में बाधा उपस्थित होती है तो कृषि पदार्थों के मूल्य बढ़ जाते हैं।

(7) नई फसल बाजार में आने का प्रभाव – जब देश में किसानों के पास नई फसल आने पर उसके भण्डारण की समुचित व्यवस्था नहीं होती तो समस्त प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद नई फसल बिक्री के लिए बाजार में त्वरित आ जाती है। परिणामस्वरूप बाजार में कृषि पदार्थ की पूर्ति में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है और मूल्य गिर जाते हैं। किन्तु जैसे ही कृषि पदार्थों का आना बाजार में कम होता जाता है, मूल्य पुनः बढ़ने लगते हैं।

(8) सरकारी खर्च – सरकार द्वारा किए जाने वाले विभिन्न व्यय भी कृषि पदार्थों के मूल्यों को प्रभावित करते हैं। यदि सरकार द्वारा किए जाने वाले व्यय बढ़ते हैं, तो उसका प्रभाव सामान्य मूल्य स्तर पर वृद्धि के रूप में पडत्रता है और जब सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि होने गलती है। जब स्थिति इसके विपरीत होती है तो मूल्यों में गिरावट की प्रवृत्ति देखी जाती है।

(9) व्यापारिक चक्र – व्यापारिक चक्र भी कृषि पदार्थों के मूल्यों को प्रभावित करते हैं।

3.5.9 कृषि मूल्यों के स्थायित्व की आवश्यकता अथवा कृषि मूल्यों में उच्चावचन के परिणाम

कृषि पदार्थों के मूल्यों में होने वाले निरन्तर उतार–चढ़ाव का प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर समान रूप से पड़ता है। अतः इन मूल्यों में स्थिरता बनाए रखने की अत्यधिक आवयश्यकता है। कृषि मूल्यों के बढ़ने का प्रभाव अग्रांकित रूप से पड़ता है –

(1) किसानों पर – कृषि पदार्थों के मूल्य बढ़ने का सर्वाधिक प्रभाव किसान पर पड़ता है जब किसी पदार्थ के मूल्य में वृद्धि होती है, यदि कृषक आगामी फसल में भी उसी पदार्थ की कृषि

को महत्व देता है तो उसका प्रभाव कृषक पर विपरीत रूप से पड़ता है, क्योंकि उस उत्पादन वर्ष में पदार्थ की पूर्ति बढ़ जाने के परिणामस्वरूप मूल्यों में गिरावट आ जाती है। एक अन्य परिस्थिति में कृषक उन वस्तुओं का उत्पादन नहीं करता जिनके मूल्यों में वह गिरावट की प्रवृत्ति देखता है, वरन् उन पदार्थों को पैदा करता है जिनका मूल्य उसे अधिक मिलना है, क्योंकि आगामी वर्ष उस पदार्थ की पूर्ति में कमी होने से उसके मूल्य बढ़ना स्वाभाविक है। इस प्रकार कृषक एक फुटबाल की भाँति उत्पादन के लिए लुढ़कता रहता है। कभी वह एक वस्तु का उत्पादन करता है तो कभी दूसरी वस्तु का उत्पादन करता है। इस प्रकार कृषक उत्पादन की दृष्टि से एक अनिश्चितता के वातावरण में बना रहता है।

(2) उपभोक्ता पर – कृषि पदार्थों के बढ़े मूल्य उपभोक्ता को भी अत्यधिक प्रभावित करती है। जब कृषि पदार्थों के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि होती जाती है तो उपभोक्ता सर्वाधिक कठिनाई अनुभव करते हैं। कृषि पदार्थों के मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप उपभोक्ता अपने उपभोग व्यय को सन्तुलित नहीं रख पाता है।

(3) औद्योगिक उत्पादन पर – देश के औद्योगिक उत्पादन को भी कृषि पदार्थों के मूल्यों में वृद्धि प्रभावित करती है। जब कृषि पदार्थों के मूल्य बढ़ते हैं तो उद्योगपतियों को अपने उत्पादनों के मूल्यों में भी वृद्धि करनी पड़ती है, परिणामस्वरूप इस मूल्य वृद्धि का प्रभाव औद्योगिक उत्पादन की माँग पर पड़ता है।

(4) उत्पादकों को हानि – कृषि पदार्थों के मूल्यों में परिवर्तन होने से कृषक व उद्योगपति दोनों को हानि उठानी पड़ती है।

(5) आयात–निर्यात नीति पर प्रभाव – कृषि पदार्थों के मूल्य में वृद्धि का प्रभाव देश की आयात–निर्यात व्यवस्था पर भी पड़ता है। जब कृषि पदार्थों के मूल्यों में अन्धाधुन्ध वृद्धि होने लगती है तो सरकार को मूल्यों पर नियन्त्रण लाने के लिए कृषि पदार्थ विदेशों से आयात करने पड़ते हैं। इसके विपरीत, जब उनके मूल्यों में गिरावट आ जाती है तो उनका निर्यात किया जाने लगता है। इस प्रकार कृषि पदार्थों के मूल्यों में होने वाले उतार–चढ़ाव का प्रभाव देश की आयात–निर्यात नीति पर भी पड़ता है।

कृषि मूल्य स्थिरीकरण का अर्थ–

कृषि उत्पादों के मूल्य स्थिरीकरण से अभिप्राय है इनके मुल्य में उतार–चढ़ाव की प्रवृत्ति को कम करना है तथा इन्हें उस स्तर पर बनाये रखना जिससे कृषि उत्पादों तथा अन्य वस्तुओं

के मूल्य के बीच असमानता कम–से–कम हो। अशोक मेहता के अनुसार, ''एक विकासशील अर्थव्यवस्था की कठिनाईयाँ विभिन्न प्रकार की मूल्य असमानताओं से प्रतिबिम्बित होती हैं। इन असमानताओं को एक सीमा के भीतर रखना ही स्थिरीकरण है।''

श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में नियुक्त 'खाद्यान्न जाँच समिति' ने मूल्य स्थायीकरण की परिभाषा इस प्रकार दी है – ''एक विकासशील अर्थव्यवस्था की कठिनाइयाँ विभिन्न प्रकार की मूल्य असमानताओं में प्रतिबिम्बित होती हैं। इन मूल्य असमानताओं को एक सीमा के भीतर रखना ही मूल्य स्थिरीकरण कहलाता है।'' दूसरे शब्दों में, मूल्यों में होने वाली कमी अथवा वृद्धि को एक सीमा के अन्दर रखने की क्रिया को 'मूल्य स्थिरीकरण' कहते हैं।

कृषि मूल्यों में स्थिरीकरण के उद्देश्य –

मूल्य स्थिरीकरण के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं –

1. कृषकों के हितों की रक्षा – कृषि मूल्यों के स्थिरीकरण का प्रमुख उद्देश्य कृषकों के हितों की रक्षा करना है। मूल्यों में परिवर्तन के कारण सर्वाधिक क्षति कृषकों को होती है। स्थिरीकरण से कृषक को उसकी पज का उचित मूल्य प्राप्त होता है तथा भविष्य के लिए कृषि उत्पादन की योजना बनाने में सुविधा मिलती है।

2. उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा – मूल्य परिवर्तन का प्रभाव कृषकों के बाद उपभोक्ताओं पर अधिक पड़ता है। मूल्स वृद्धि होने से उपभोक्ता के बजट असन्तुलित हो जाते हैं। अतः मूल्य स्थायीकरण से उपभोक्ताओं को सन्तुलित बजट बनाने में सहयोग प्राप्त होता है, साथ ही उन्हें उचित मूल्य पर खाद्यान्नों की उपलब्धि भी हो जाती है।

3. सरकार को लाभ – मूल्य स्थायीकरण द्वारा सरकार की अनेक समस्याओं का समाधान हो जाता है। मूल्यों म परिवर्तन के कारण सरकार को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जैसे–आयात–निर्यात, मूल्य नियन्त्रण, राशनिंग, औद्योगिक अशान्ति आदि। इन कठिनाइयों के हल के लिए सरकार को मूल्य स्थायीकरण से लाभ होता है।

4. औद्योगिक उत्पादन के मूल्यों में स्थिरता – कृषि मूल्यों के स्थायीकरण से औद्योगिक उत्पादन के मूल्यों में स्थिरता बनाए रखने में सहयोग मिलता है। इससे औद्योगिक शान्ति बनी रहती है एवं उत्पादन पूर्व योजना के अनुसार निरन्तर चलता रहता है।

कृषि मूल्यों में स्थिरीकरण का महत्व

भारत के लिए कृषि मूल्यों के स्थिरीकरण का अत्यधिक महत्व है। मूल्यों में अत्यधिक कमी एवं वृद्धि दोनों ही हानिकारक होती है। इससे कृषकों को अधिक हानि उठानी पड़ती है। मूल्य वृद्धि के कारण यद्यपि बड़े काश्तकारों को लाभ होता है किन्तु भारत में बड़े किसानों की संख्या बहुत कम है। कृषि उत्पादन की अनिश्चितता को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि मूल्य एक सीमा के अन्दर ही रहें जिससे की कृषक उत्पादन की अनुकूल नीति बनाकर उत्पादन में वृद्धि कर सके। साथ ही उपभोक्ता भी उचित मूल्य पर कृषि उपज प्राप्त कर सके। किसी वस्तु की कमी अथवा आधिक्य की स्थिति न रहे। इस हेतु मूल्य स्थिरीकरण अथवा स्थायीकरण आवश्यक है।

3.5.11.1 सरकार द्वारा कृषि मूल्य स्थायीकरण के लिए किए गए प्रयास

देश में कृषि मूल्यों के स्थिरीकरण के महत्व को स्वीकार करते हुए सरकार ने समय–समय पर इसके लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं, उनमें कुछ प्रमुख कदम निम्नांकित हैं –

(1) कृषि उत्पादन में वृद्धि – भारत सरकार ने कृषि मूल्यों में स्थिरता लाने के लिए कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए बहुत प्रयत्न किया है। पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भूमि सुधार कार्यक्रम को प्रभावशाली ढंग से लागू किया गया है, सरकारी फार्मों में आधुनिक बीजों का उत्पादन कर कृषकों को वैज्ञानिक तरीके से खेती करने के प्रोत्साहित किया गया है, सिंचाई सुविधाओं में पर्याप्त वृद्धि की गई है। इसी का परिणाम है कि स्वतन्त्रता के बाद खाद्यान्न उपादन की वृद्धि में सरकार को पर्याप्त सफलता मिली है।

(2) खाद्यान्नों का आयात – सरकार ने खाद्यान्नों की कमी को आयात करके पूरा किया है ताकि उसके मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि को रोका जा सके।

(3) सरकारी खरीद – मूल्यों को स्थिर रखने के उद्देष्य से सरकार ने खाद्यान्नों की सरकारी खरीद प्रारम्भ की है। इसके द्वारा देष में बफर स्टाक बनाया गया है एवं राशनिंग व्यवस्था के माध्यम से उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाता है।

(4) उचित मूल्य की दुकानें – शासन ने उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध कराने के उद्देश्य से बड़ी मात्रा में उचित मूल्य की दुकानों की व्यवस्था की है। देश में इन दुकानों की संख्या लगभग 3 लाख है जो 47 करोड़ जनसंख्या के क्षेत्र की पूर्ति करती है।

(5) भारतीय खाद्य निगम की स्थापना – केन्द्रीय सरकार ने जनवरी, 1965 में 'भारतीय खाद्य निगम' की स्थापना की है। यह निगम खाद्यान्नों की खरीद करके उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से खाद्यान्नों का वितरख्ण करता है, जिससे कि कृषि मूल्यों में स्थिरता बनी रहती है।

(6) कृषि मूल्य आयोग का गठन – सरकार को खाद्यान्नों की खरीद के लिए मूल्य निर्धारित करते एवं विक्रय मूल्य से सम्बन्धित परामर्श देने के लिए 1 जनवरी, 1965 को 'कृषि मूल्य आयोग' का गठन किया गया है। प्रतिवर्ष आयोग विभिन्न कृषि उपजों के न्यूनतम एवं अधिकतम मूल्यों के सम्बन्ध में सरकार को परामर्श देता है। जिसके आधार पर ही सरकार समर्थन मूल्यों की घोषणा करती है।

(7) न्यूनतम एवं अधिकतम मूल्यों की घोषणा – सरकार कृषि उपजों के मूल्यों में गिरावट को रोकने के उद्देश्य से प्रत्येक वर्ष न्यूनतम मूल्यों की घोषण करती है। इस समर्थन मूल्य से भी उपज का मूल्य नीचे गिरता है तो सरकार समर्थन मूल्य पर खरीद प्रारम्भ कर देती है जिससे कि कृषकों को हानि न उठाना पड़े। इसी प्रकार यदि उपज का मूल्य बाजार में अधिक बढ़ने लगता है तो सरकार उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने के उद्देश्य से अधिकतम मूल्य निर्धारित कर देती है। इस मूल्य से अधिक मूल्य कोई व्यापारी वसूल करता है तो उसके विरूद्ध वैधानिक कार्यवाही की जाती है।

(8) साख–नियन्त्रण – मूल्यों के उतार–चढ़ाव को रोकने के लिए सरकार ने साख का विस्तार एवं संकुचन करके मूल्य स्थायीकरण के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया है। रिजर्व बैंक मूल्य बढ़ने पर साख नियन्त्रण करती है एवं मूल्य गिरने पर साख का विस्तार करती है जिससे मूल्यों में स्थायित्व बना रहता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि कृषि मूल्यों में स्थायीकरण के लिए सरकार ने अनेक कदम उठाए हैं। इन्हीं के फलस्वरूप खाद्यान्नों के मूल्यों में सामान्य स्तर की तुलना में अधिक वृद्धि नहीं हो सकी है। अशोक मेहता की अध्यक्षता में गठित खाद्यान्न जाँच समिति के अनुसार, ''एक विकासशील अर्थव्यवस्था की कठिनाइयाँ विभिन्न प्रकार की मूल्य असमानताओं में प्रतिबिम्बित होती हैं। इन मूल्य असमानताओं को एक सीमा के भीतर रखना ही स्थिरीकरण कहलाता है।''

भारत में कृषि उत्पादों का मूल्य निर्धारण-

भारत में कृषि वस्तुओं के मूल्य निर्धारण के संबंध में दोहरे उद्देश्य हैं जिससे की किसानों को उनके उत्पादकों का उचित तथा उत्साहवर्धक मूल्य मिल सके और कृषि में निवेश तथा उत्पादन प्रोत्साहित हो सके दूसरी ओर भुगतान को उचित मूल्य पर कृषि उत्पादों की पूर्ति उपलब्ध हो सके कृषि वस्तुओं या उत्पादों का न्यूनतम अस्वस्थ मूल्य कृषि के लिए अनिश्चिता से भरी कृषि प्रक्रिया में उत्पादन करने के लिए प्रेरक तत्व सिद्ध होते हैं इसके लिए निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति सरकार द्वारा की जाती है।

पूर्व निर्धारित खरीद मूल्य एवं वसूली मूल्य, न्यूनतम समर्थित मूल्य पर जो किसानों को पर्याप्त लाभकारी मूल्य प्रदान करता है पर महत्वपूर्ण कृषि वस्तुओं को खरीदना तथा उन कृषि वस्तुओ के स्टाक को बनाये रखना तथा उचित मूल्य पर चुने गयी कृषि वस्तुओं की सार्वजनिक वितरण प्रणाली के द्वारा पूर्ति करना ।

खाद्यान्न, तेलों, चीनी, दाल, आदि वस्तुओ को खुले बाजार में उपलब्ध कराना जिससे खुले बाजार में इनका मूल्य एक निश्चित सीमा में बना रह सके।

कृषि उत्पादों का न्यूनतम मूल्य–

भारत में कृषि उत्पादों के न्यूनतम मूल्य निर्धारित करने के लिए वर्ष 1965 में मूल्य आयोग की स्थापना की गयी जिसका अध्यक्ष प्रोफेसर एम. दांतेवाला को बनाया गया जिन्होंने पहली बार न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा 1966–67 में गेहूं एवं धान की फसलों के लिए किया क्योंकि हरित क्रांति के कारण गेहूं के उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई जिससे गेहूँ के मूल्य में गिरावट के कारण किसानों को होने वाले घाटे से बचाना था वस्तुतः कृषि वस्तुओं का संबंधी मूल्य या न्यूनतम समर्थित मूल्य की घोषणा सरकार वर्ष में दो बार रवि और खरीफ के मौसम में करती है वर्ष 1985 में इसका नाम बदलकर कृषि लागत एवं मूल्य आयोग कर दिया गया।

कृषि लागत एवं मूल्य आयोग न्यूनतम समर्थन मूल्य को लागू करते समय विभिन्न कारकों का ध्यान रखता है जैसे उत्पादन लागत अवसर के मूल्य में परिवर्तन, बाजार मूल्य की प्रवृत्ति, मांग तथा पूर्ति की दशा, सामान मूल्य स्तर पर पड़ने वाला प्रभाव, जीवन निर्वाह लागत तथा प्रभाव आगतों के मूल्य के संबंध में कृषि लागत मूल्य आयोग आगत मूल्य निर्देशांक तैयार करता है जिसमें वह उर्वरक, विद्युत, कीटनाशक, ट्रैक्टर, डीजल आदि के मूल्यों को सम्मिलित करता है और सरकार द्वारा कृषि लागत मूल्य आयोग की संस्तुतियों को राज्य सरकार तथा संबंधित केंद्रीय मंत्रालय तथा विभागों के दृष्टिकोण के आधार पर विभिन्न उपज के संबंध में न्यूनतम

समर्थन मूल्य की घोषणा करता है वर्ष 2020—21 के अनुसार कृषि लागत एवं मूल्य आयोग 23 फसलों के मूल्य निर्धारित करता है जिसमें 7 आनाजो धान, गेहूं, जौ, ज्वार, बाजरा, मक्का और रागी 5 दालों चना, अरहर, मूंग, मसूर, उड़द, 8 तिलहन, मूंगफली, तिल, सूरजमुखी, सोयाबीन, सरसों, लाही, कुसुम का बीज, नारियल तथा अन्य कपास, जुट, आदि फसलो के लिए भी न्यूनतम मूल्य घोषित करता है गन्ना के लिए लाभकारी मूल्य की घोषणा की जाती है।

कृषि लागत एवं मूल्य आयोग द्वारा मुख्यतः गेहूं और धान के पक्ष में ही मूल्य के निर्धारण का ध्यान दिया जाता है वह भी कुछ ही राज्यों में एवं कुछ राज्यों में कपास, जूट, गन्ना और तंबाकू के लिए भी समर्थन मूल्य की सिफारिश करता है कृषि लागत एवं मूल्य आयोग गन्ने के संबंध में उचित तथा लाभकारी मूल्य की अनुशंसा करते हैं गेहूं और चावल के समर्थन मूल्य योजना खाद्य और सार्वजनिक वितरण विभाग द्वारा क्रियान्वित की जाती है मोटे अनाजों के लिए विकेंद्रीत वसूली की प्रणाली अपनायी जाती है एवं कपास की खरीद के लिए कपास खरीद निगम तथा नेफेड है वही जूट के लिए भारतीय जूट निगम कार्य करती है तथा इस प्रणाली में होने वाले प्रत्येक फसल के हानी की प्रतिपूर्ति केंद्र सरकार द्वारा की जाती है कृषि एवं सहकारिता विभाग तिलहनों और दालों की वसूली के लिए मूल्य समर्थन योजना क्रियान्वित कर रहा है वही मूल्य समर्थन योजना के अधीन शामिल ना की गई तथा सामान्य तथा जल्दी नष्ट होने वाली बागवानी फसलों और कृषि संबंधी वस्तुओं की अधिप्राप्ति के लिए बाजार में हस्तक्षेप योजना एम. आई.एस. कार्यान्वित कर रहा है इसका प्रमुख उद्देश्य ऐसी वस्तुओं के संबंध में किसानों को लाभकारी मूल्य सुनिश्चित करना है।

मूल्य समर्थन योजना–

मूल्य समर्थन योजना के लिए राज्य एजेंसी की नियुक्ति नेफेड करता है इनके द्वारा किसी भी प्रकार की हानि की पूर्ति केंद्र सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य के 15 प्रतिशत तक की जाती है इसके अतिरिक्त केंद्र सरकार इनके प्रचलन के लिए केंद्रीय एजेंसीयों को कार्यशील पूंजी उपलब्ध कराती है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य–

न्यूनतम समर्थन मूल्य की धारणा का प्रतिपादन सर्वप्रथम अमेरिकन कृषि वैज्ञानिक डॉक्टर फ्रैंक डब्लू पार्कर ने किया था जो 1959 में इस एजेंसी इंटरनेशनल डेवलपमेंट मिशन इंडिया के सदस्य थे उन्होंने यह अनुभव किया था कि भारतीय किसानों को अपने फसल प्राप्त हो जाने के

बाद उन्हें अपने उत्पादन का कम मूल्य प्राप्त होता है जिसके लिए तत्कालीन कृषि मंत्री अजीत प्रसाद जैन ने सभी फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारण करने की बात पर जोर दिया था।

न्यूनतम समर्थन मूल्य वह मूल्य है जिस पर सरकार द्वारा किसानों के उत्पादन की बेची जाने वाली मात्रा को सरकार द्वारा न्यूनतम कीमत पर क्रय करने की गारंटी प्रदान की जाती है यह अन्य कल्याणकारी योजनाओं की मासिक आवश्यकता है जो अप्रत्याशित रूप से फसल खराब हो जाने से उत्पन्न आपातकालीन स्थिति से निपटने के लिए सरकार द्वारा खाद्यान्नों के आपूर्ति संवर्धन तथा खाद्यान्नों की कीमतों के नियंत्रण के लिए सरकारी हस्तक्षेप के रूप में भी प्रयोग करती हैं क्योंकि जब बाजार में अनाजों का मूल्य गिर रहा हो तो ऐसी परिस्थिति में सरकार द्वारा किसानों से न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खाद्यान्नों की खरीद की जाती है जिससे कि किसानों होने वाले भारी नुकसान से बचाए जा सके एवं बाजार में व्याप्त खाद्यान्न के भंडारण एवं खाद्यान्नों की कालाबाजारी से किसानों को मुक्ति दिलाने के लिए अनिवार्य लेवी की स्थिति में सरकार किसानों को प्रोत्साहित करती है कि वह अपने उत्पादन को समर्थित मूल्य पर ही सरकार को बिक्री करे जिससे कि किसानों को अपनी फसल के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य प्राप्त हो सके अतः सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य फसल के बोने से पहले ही घोषणा कर दी जाती है जो किसानों को यह गारंटी देता है की फसल उत्पादन में वृद्धि या कमी होने पर उनको उनकी फसल की उचित कीमत प्राप्त होगी।

वसूली या अधिप्राप्ति मूल्य या क्रय मूल्य—

यह वह मूल्य है जिसकी घोषणा सरकार वर्ष में रवि और खरीफ फसल के समय करती है जिसे निर्धारित करते समय सरकार यह ध्यान देती है कि कृषक को अपने फसल को अगले वर्ष उत्पादन करने की भी प्रेरणा मिले साथ ही साथ भूमिहीन एवं कमजोर वर्ग को भी उचित मूल्य पर कृषि उत्पादन प्राप्त हो सके तथा वसूली या अधि प्राप्तिमूल्य या क्रय मूल्य सरकार द्वारा फसल बोने के बाद एवं कटाई के समय की जाती है जो की न्यूनतम समर्थन मूल्य के बराबर या उससे अधिक हो सकती है जबकि उससे कम नहीं होगी जैसे न्यूनतम समर्थन मूल्य के ऊपर सरकार द्वारा बोनस देकर क्रय करना जो की बाजार में मांग एवं पूर्ति द्वारा निर्धारित मूल्य से अधिकांशत अधिक होता है क्योंकि जब फसल उत्पादन अच्छी होती है तो बाजार मूल्य समर्थित मूल्य से भी नीचे हो जाता है।

दोहरी मूल्य निर्धारण पद्धति—

दोहरी मूल्य निर्धारण पद्धति को सरकार द्वारा वर्ष 2006 में भारतीय खाद्य निगम तथा राज्य एजेंसीयों द्वारा गेहूं की वसूली या क्रय करने में 38 प्रतिशत तक की कमी आ गयी थी क्योंकि निजी व्यापारियों ने किसानों को सरकारी कीमत से गेहूं की अधिक कीमत प्रदान की इसको देखते हुए सरकार ने कृषि वस्तुओं के संदर्भ में दोहरी मूल्य निर्धारण नीति अपनाई जिसके अंतर्गत सरकार कृषि लागत पर आधारित न्यूनतम समर्थन मूल्य के अलावा किसानों को परिवर्तनीय दर भी देगी जो खुले बाजार मूल्य के परिवर्तनों के साथ जुड़ा होगा इसके पीछे सरकार का तर्क यह था कि इसके अंतर्गत किसानों को जहां एक ओर न्यूनतम समर्थन मूल्य सुरक्षा के रूप में प्राप्त होगी वहीं दूसरी ओर यदि बाजार में कृषि उत्पादों का मूल्य बढ़ा तो बोनस के रूप में किसानों को अतिरिक्त मूल्य भी प्राप्त होगा जो स्थिर नहीं होगा बल्कि बाजार की दशाओं के अनुसार अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग होगा।

निकासी मूल्य–

वह मूल्य जिस पर सरकार केंद्रीय भंडारों से सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत उचित मूल्य की दुकानों को या तो आटा मिलो को अनाज निर्गमित करती है इस मूल्य के द्वारा भारतीय खाद्य निगम राज्यों या राज्य अधिकृत एजेंसियों को खाद्यान्न प्रदान करने के बदले प्राप्त करता है।

आर्थिक लागत–

भारतीय खाद्य निगम की आर्थिक लागत के तीन घटक होते हैं जिसमें किसानों को देय न्यूनतम समर्थन मूल्य तथा बोनस एवं खरीद संबंधी सहायक खर्चे तथा वितरण लागत आर्थिक लागत में प्रशासनिक व्यय को नहीं जोड़ा जाता है।

खाद्यान्नों के मूल्य निर्धारण के संबंध में कृषि लागत एवं मूल्य आयोग का दृष्टिकोण–

सरकार द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य को निर्धारित करते समय कृषि लागत एवं मूल्य आयोग लागत की C2 अवधारणा को स्वीकार करता है जिसमें खेती करने के सभी व्यय शामिल है अर्थात सभी व्ययों में कृषक द्वारा धारित आगतों का आरोपित मूल्य भी सम्मिलित है तथा लागत की C2 धारणा के अतिरिक्त तीन और धारणाएं प्रयुक्त होती हैं। ए2 जिसमें किसान द्वारा नगद तथा वस्तु के रूप में बीज, उर्वरक, कीटनाशक, सिंचाई तथा अन्य आगतों पर किए गए वास्तविक

मूल्य सम्मिलित हैं, ए2 एफ.एल. जिसमें ए2 के अलावा कृषक के परिवार द्वारा लगा परिश्रम जिसके लिए कोई भुगतान नहीं किया जाता है, का आरोपित मूल्य सम्मिलित है।

C2 – लागत में मालिक द्वारा उत्पादन प्रक्रिया में संपूर्ण नगद व्यय वस्तुरूप आरोपित मूल्य में किया गया व्यय. पट्टे पर ली गई भूमि पर दिया गया लगान. पारिवारिक श्रम का प्रत्यारोपित मूल्य. भूमि को छोड़कर पूंजी संपत्तियों के मूल्य पर ब्याज (प्रयोग में आयी अपनी धारित संपत्ति तथा ट्रैक्टर पर प्रत्यारोपित ब्याज). धारित भूमि का लगानी मूल्य शामिल होता है।

C3– लागत में C2 लागत. C2 लागत का 10 प्रतिशत जिसे कृषक का प्रबंधकीय पारिश्रमिक समझा जाता है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य किस संस्तुति के लिए अभिजीत सेन समिति ने कृषि लागत एवं मूल्य आयोग को किसानों को C 2 लागत के आधार पर समर्थित मूल्य निर्धारण करने की अनुशंसा की थी तथा स्वामीनाथन आयोग ने C2 लागत के अलावा 50 प्रतिशत लाभ जोड़कर न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारण करने की अनुशंसा की थी उनके अनुसार न्यूनतम समर्थन मूल्य उत्पादन के भारांकित औसत लागत से 50 प्रतिशत अधिक होना चाहिए।

कृषि उपज के न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारण से संबंधित विभिन्न मुद्दों की समीक्षा के लिए सरकार द्वारा प्रो.ए.के. अलघ की अध्यक्षता में अलघ समिति गठित की गयी।

स्वामीनाथन आयोग ने कृषि लागत एवं मूल्य आयोग को स्वायत्त शासन तथा वैधानिक संस्था का दर्जा प्रदान किए जाने की अनुशंसा की थी तथा न्यूनतम समर्थन मूल्य को भारंकित औसत लागत से कम से कम 50 प्रतिशत अधिक होना चाहिए जिससे यह स्पष्ट होता है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य न्यूनतम प्रतिफल मूल्य होगा जिसे वर्ष 2010 में हुड्डा समिति की रिपोर्ट ने भी स्वामीनाथन समिति की संस्तुति को स्वीकार किया था।

3.5.12 सारांश –

भारत में समय–समय पर कृषि उत्पादों की कीमतें निर्धारित होती रही हैं परन्तु 1960 में जब झा आयोग कमीशन की नियुक्ति की गई तबसे लेकर आज तक कृषि उत्पादों के मुख्य निर्धारण को बड़ी ईमानदारी से निर्धारित किया जाने लगा है। सर रोजर टामस के अनुसार, ''वर्षा के बाद मूल्य परिवर्तन ही कृषक के सबसे बड़े शत्रु हैं। कृषि मूल्य में बार–बार के परिवर्तन कृषक की आय को प्रभावित करके कृषि की सहज प्रगति में रोड़ा अटकाते हैं।''

कृषि मूल्यों में परिवर्तन अथवा उच्चावचन ही कीमतों के उतार चढ़ाव की लाते हैं। कृषि उत्पादों की मांग बेलोचदार होती हैं यदि किसी वर्ष प्रकृति देवी की कृपा से अधिक उत्पादन हो जाता है तो उसका मूल्य गिर जाता है क्योंकि पूर्ति मांग से अधिक हो जाती है। इसी प्रकार वर्षा की अनिश्चितता अथवा किसी अन्य दैवी प्रकोप के कारण जब कृषि का उत्पादन कम हो जाता है तो कृषि उत्पादों का मूल्य बढ़ जाता है। कृषि उत्पादों की कमी और वृद्धि को ही कीमतों में उतार–चढ़ाव कहा जाता है। कृषि उपजाकें के मूल्यों में उतार–चढ़ाव का सबसे बुरा प्रभाव कृषक वर्ग पर पडत्रता है। इसी कारण यह कहा गया है कि वर्षा के बाद किसान का सबसे प्रमुख शत्रु कीमत संबंधी परिवर्तन है।

3.5.15 बोध प्रश्न–

1–भारत में कृषि विनियोजकों की समस्याओं की समीक्षा कीजिए।

2–भारत में कृषि विनियोग में सुधार हेतु सरकारी प्रयासों का उल्लेख कीजिए।

3–भारत में कृषि मूल्यों में उच्चावचन के कारणों का उल्लेख कीजिए।

4–भारत में कृषि मूल्य की स्थायित्वों की आवश्यकता अथवा कृषि मूल्य में उच्चावचन के परिणामों की व्याख्या कीजिए।

5–भारत में कृषि मूल्य स्थरीकरण से आप क्या समझते हैं कृषि मूल्य स्थरीकरण के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।

6–भारत में कृषि उत्पादों के मूल्य निर्धारण से आप क्या समझते हैं?

7–कृषि उत्पादों की न्यूनतम समर्थन मूल्य क्या है?

8–वसूली या अधिप्राप्ति मूल्य या क्रय मूल या किसे कहते हैं?

3.5.16 कुछ उपयोगी पुस्तके–

1. रुद्र दत्त एवं सुंदरम भारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

2. ए.एन. अग्रवाल भारतीय कृषि की समस्याएं

3.जी.एस. भल्ला और डी.एस. त्यागी भारत में कृषि विभाग द्वारा एक जिले के अध्ययन स्तर का नमूना

4.पी.आर. ब्रह्मानंद और वी.आर. पंचमुखी भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास, हिमालय पब्लिशिंग हाउस मुंबई

5.भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद कृषि विकास के विकल्प, एलाइड पब्लिशर्स न्यू दिल्ली 1980

खण्ड–4, यूनिट–1

भारत में औद्योगिक विकास की प्रवृत्तियां

स्वतंत्रता से पहले अर्थव्यवस्था विकास के अत्यन्त निम्न स्तर पर टिकी हुई थी, उद्योगों में संवृद्धि की दर बहुत कम थी तथा औद्योगिक संरचना का ढांचा बहुत छोटा था। इन सब बातों को देखते हुए योजनाकाल में भारत की औद्योगिक प्रगति बहुत प्रभावशाली लगती है। जहाँ आजादी के समय औद्योगिक ढांचा कृषि पर आधारित था वहां अब यह अत्यनत विस्तृत और जटिल हो चुका है और भारत अब उच्च कोटि की उच्च तकनीक वाली औद्योगिक वस्तुएं बना सकने में सक्षम है, परन्तु अभी भी कुछ समस्याएं ऐसी हैं जिनका सामना औद्योगिक क्षेत्र को करना पड़ता है और जिन पर शीघ्र ध्यान देने की जरूरत है। ये समस्याएं निम्नलिखित हैं :

1. **लक्ष्यों और उपलब्धियों में भारी अन्तर (Large gaps between targets and achievements)**– पूरे योजनाकाल पर विचार करें तो केवल 1980 के दशक में ही औद्योगिक क्षेत्र में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सका है। जब .... कम रही है अनुमान लगाया गया है कि उदारीकरण से पूर्व की अवधि में, प्रत्येक योजना में उपलब्धि लक्ष्य की तुलना में, औसतन 20 प्रतिशत कम रही। इसमें राकेश मोहन ने तर्क दिया

है कि 35 से 40 वर्ष की अवधि में औसत वार्षिक औद्योगिक संवृद्धि दर लगभग 6.2 प्रतिशत रही जबकि लक्ष्य 8.5 था। यदि औद्योगिक विकास के प्राथमिक एवं तृतीयक सेक्टर पर प्रभाव को भी शामिल किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक संवृद्धि इस कम दर के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में संभावित से 1.2 से 1.4 प्रतिशत कम संवृद्धि हो पाई। यदि औद्योगिक संवृद्धि को प्राप्त कर लिया जाता तो 1991 में भारत की व्यक्ति आय जो लगभग 300 डालर थी, 500–550 डालर के बीच होती।

2. **क्षमता का अपूर्ण प्रयोग (Under-utilization of capacity)**– बहुत सारे उद्योग अपनी स्थापित क्षमता का बहुत कम प्रयोग कर पाने में हुए हैं। क्योंकि 'क्षमता' को परिभाषित करना आसान नहीं होता इसलिए क्षमता के अपूर्ण उपयोग के बारे में पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं है कि अनुमानों के अनुसार 20–30 प्रतिशत से लेकर 60–70 प्रतिशत तक की उत्पादन क्षमता का उपयोग नहीं हो पाया है। हम कह सकते हैं कि 50 से 60 प्रतिशत क्षमता तक का ही उपयोग हो पाया है। क्षमता के अपूर्ण उपयोग के बहुत से कारण हैं जैसे कच्चे माल की कमी, बिजली की सरकारी नीतियाँ, श्रम–असन्तोष, कम मागं इत्यादि।

3. **सार्वजनिक क्षेत्र का निष्पादन (Performance of public sector)–** हमने इस अध्याय में पहले इस बात की ओर इशारा किया है कि काल में सार्वजनिक क्षेत्र का तेज विस्तार हुआ है, परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के निष्पादन की कई अर्थशास्त्रियों ने आलोचना की है। इसमें नहीं है कि सार्वजनिक क्षेत्र के निष्पादन को आंकने के लिए केवल लाभ पर ध्यान देना उपयुक्त नहीं है। इन उद्योगों को कई सामाजिक–आर्थिक की पूर्ति करनी पड़ती है। फिर भी यदि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम लम्बे समय तक जानि उठाते रहें तो यह एक गम्भीर समस्या है और इस पर ध्यान देना जरूरी है। इन उद्यमों को कई सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करनी पड़ती है, इसलिए इनके कई उत्पादों की कीमत बहुत कम रखी जाती है परन्तु इस नीति से लाभ निजी क्षेत्र के उन उद्यमों को होता है जो उनके उत्पादन का प्रयोग आगत के रूप में करते हैं। इस प्रकार सार्वजनिक कीमत पर निजी लाभ बढ़ते हैं।

4. **आधारित ढांचे की कमियां (Infrastructural constraints)–** औद्योगिक विकास में एक बड़ी रुकावट आधारिक ढांचे की कमियां आधुनिक व प्रतिस्पर्धी ढांचा न होना तथा उच्च परिचालन लागतें खासतौर पर ऊर्जा तथा परिवहन के क्षेत्र में। जहाँ तक ऊर्जा का सम्बन्ध है, कुल उपभोग में कोयले

का हिस्सा 55 प्रतिशत और तेल का हिस्सा एक–तिहाई है। कोयले की आपूर्ति मांग की अपेक्षा कम है और इसका बिजली पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जहाँ तक परिवहन व्यवस्था का प्रश्न है, इसमें भी 'क्षमता' तथा 'गुणात्मकता' सम्बन्धी कई कमजोरियां हैं। वर्तमान में प्रमुख आर्थिक केन्द्रों को जोड़ने के लिए कोई अंतर्राज्यीय तेज पथ (inter-state expressways) नहीं हैं और केवल 3000 किलोमीटर चार–राजमार्ग (four-lane highways) हैं जबकि चीन ने पिछले दस वर्षों में 25,000 किलोमीटर के छः पथीय (six lane) राजमार्ग का निर्माण की सड़कों की स्थिति भी ठीक नहीं है तथा उन पर अत्यधिक वाहनों के चलन का भार है जिसकी वजह से ट्रकों व बसों की औसत गति 30–40 किमी0 प्रतिघंटा के आसपास है जो आवश्यक (या वांछनीय) औसत की तुलना में आधी है। भारत के रेल मार्गों पर भी अत्यधिक 'भार' है तथा क्षमता कमी है। इसके अलावा, रेल मार्गों के रख–रखाव में भी कई कमियां हैं। आधारिक ढांचे की इन सब कमियों से न केवल औद्योगिक उत्पादन की दर कम होती है बलिक इनसे भारतीय उद्योगों की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति (जो आज भूमंडलीकरण के वातावरण में नितांत आवश्यक) पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

5. **क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि (Growth of regional imbalances)–** भारत में औद्योगिक विकास कुछ विकसित राज्यों जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक तथा तमिलनाडु तक सीमित रहा है। उदाहरण के लिए 2013–14 में इन चार राज्यों में कुल फैक्ट्रियों का 45.2 प्रतिशत, निवेशित कुल 48.7 प्रतिशत तथा कुल उत्पादन का 52.1 प्रतिशत केन्द्रित था। क्योंकि आर्थिक विकास की प्रक्रिया औद्योगिक विकास के साथ जुड़ी होती है इसलिए यह कहना गलत न होगा कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया से कई गरीब राज्यों को विशेष लाभ नहीं हुआ है। यद्यपि पिछड़े हुए राज्यों–बिहार, एवं मध्य प्रदेश में सार्वजनिक क्षेत्र में भारी निवेश किए गए फिर भी इनका औद्योगिक विकास नहीं हो पाया और इनके कई हिस्से बिलकुल ..... हुए बने रहे। पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास के लिए जो योजनाएं बनाई गई वे भी सफल नहीं हो पाईं। पूंजी सहायता के माध्यम से, कर नीति में रियायतों के माध्यम से तथा अन्य किसी भी माध्यम से पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास के लिए जो प्रयास किए एग उनसे लाभ अधिकतर विकसित के पिछड़े हुए क्षेत्रों को ही हुआ और पिछड़े हुए राज्यों की मांग को अक्सर अनदेखा कर दिया गया।

6. **औद्योगिक अस्वस्थता (Industrial sickness)–** कई औद्योगिक इकाइयां रुग्णता से पीड़ित हैं जो कुछ स्थितियों में

अदक्ष प्रबन्धन का फल है। जैसाकि छठी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में कहा गया है ''औद्योगिक विकास का ढांचा लागत के मापदण्ड से निर्धारित नहीं किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा से संरक्षण के कारण उद्योगों की स्थापना के समय 'लागत' पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। तकनीक में सुधार और ..... की किस्म में सुधार की ओर भी उचित ध्यान नहीं दिया गया है। इन कारकों के परिणामस्वरूप कुद उद्योग अस्वस्थ हो गए (विशेष रूप से उन ....)

7. **भविष्य में संभावित चुनौतियां (Emerging challenges)–** विश्व व्यापार संगठन (WTO) के संस्थापक देशों में से एक होने के कारण भारत .... के तत्वावधान में किए गए वायदों के अनुसार आयातों पर सभी प्रकार के मात्रात्मक प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया है। इससे आगे वाले वर्षों में हमारे उद्योगों को विदेशी उद्योगों से बड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा और यह भी हो सकता है कि कई घरेलू औद्योगिक इकाइयां बन्द हो जाने का सबसे बड़ा खतरा लघु क्षेत्र की इकाइयों को है क्योंकि वे साधन सम्पन्न और प्रौद्योगिकी में बहुत उन्नत बहुराष्ट्रीय निगमों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। वस्तुतः हमारी बड़ी औद्योगिक इकाइयां भी बहुराष्ट्रीय निगमों की तुलना में बहुत छोटी हैं और उन्हें भी खतरा हो सकता है। जहां तक मूल तथा

..... वस्तु उद्योगों का सम्बन्ध है उनके विकास को झटका लग सकता है क्योंकि उनके उत्पादों का प्रयोग करने वाले अंतिम–उपयोग उद्योगों (end-use ......) जैसे उपभोक्ता वस्तु उद्योगों को अब विदेशों से सस्ते व बेहतर क्वालिटी के उत्पाद मिल सकेंगे। अंतिम–उपयोग उद्योगों के लिए भी रास्ता आसान नहीं होगा क्योंकि उन्हें कीमत और क्वालिटी के मामले में विदेशी उद्योगों से कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी।

सातवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज में भारतीय पूंजीगत वस्तु उद्योग का उदाहरण दिया गया है जिसके विकास पर, चीन के उद्योगों से प्रतिस्पर्धा .... बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। मशीन टूल्स उद्योग में दो–तिहाई से अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति चीन से आयातों द्वारा की जा रही है–........ दृष्टि के उद्योगों पर यह निर्भरता अभी और भी बढ़ती जा रही है। बिजली उत्पादन संयंत्रों की आयात कीमत बहुत कम होने के कारण, घरेलू उद्योग प्रतिस्पर्धा ... के रूप में असमर्थ है। चीन के उद्योगों की बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति के पीछे बहुत से कारण हैं, जैसे (1) चीन की मुद्रा का जानबूझ कर किया .... मूल्यह्रास (depreciation), (2) चीन की सरकार द्वारा निर्यातकों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता तथा उन्हें करों में रियायतें; .... अधिक कम ब्याज दरें; (3) आसान श्रम कानून; तथा (4) बेहतर आधारभूत ढांचा जिसमें बिजली की सस्ती कीमतों पर और लगातार उपलब्धि, व.....

परिवहन व संचार सुविधाएं, बिजली की कम उपलब्धि तथा विभिन्न कर (बिक्री कर, चुंगी, वैट, कई स्थानीय कर, सीमा शुल्क आदि)। .... के उद्योगों में एक प्रकार की 'गहराई' लाने में चीन की सरकार की औद्योगिक नीति (भारत की तुलना में) कहीं अधिक कारगर सिद्ध हुई है।

खण्ड–4, यूनिट–2

प्रमुख संगठित उद्योग : लोहा व इस्पात, सूती वस्त्र, चीनी आदि

वस्त्र उद्योग आधुनिक भारत का सबसे बड़ा उद्योग है। यह सकल घरेलू उत्पाद का 2.0 प्रतिशत तथा निर्माण उत्पादन का 10 प्रतिशत प्रदान करता है। यह लगभग 4.5 करोड़ लोगों को रोजगार देता है तथा निर्यात आय का लगभग 13.0 प्रतिशत हिस्सा प्रदान करता है। पहली सूती मिल कोलकाता में 1818 में स्थापित की गई थी। परन्तु वास्तविक शुरूआत 1854 में हुई जब एक मिल मुम्बई में स्थापित की गई। वस्तुतः इस उद्योग का केन्द्रीकरण मुम्बई और अहमदाबाद में हुआ जो इस बात से स्पष्ट है कि 1911 में मुम्बई में कुल मिलों में से 38 प्रतिशत मिलें थीं और इनमें इस उद्योग के 45 प्रतिशत कर्मचारी काम कर रहे थे। अहमदाबाद में 19 प्रतिशत मिलें थीं और इनमें 19 प्रतिशत कर्मचारी कार्यरत थे। मुम्बई शहर से बाहर कुछ मिलें, शोलापुर, बड़ौदा तथा मुम्बई राज्य के अन्य छोटे केन्द्रों में थीं। उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक 5 मिलें कानपुर में थीं। स्वतन्त्रता के बाद इस उद्योग के मुख्य केन्द्र मुम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर, कानपुर, कोलकाता, इन्दौर तथा कोयम्बटूर बन गए हैं। भारत का वस्त्र उद्योग मुख्यतया

कपास पर ही आधारित रहा है और कपड़े के लगभग 56 प्रतिशत उत्पादन में कपास का ही उपयोग होता है।

वस्त्र उद्योग का विकास
(Development of the Textile Industry)

वस्त्र उद्योग के दो हिस्से हैं : मिल क्षेत्र तथा विकेन्द्रीकृत क्षेत्र। विकेन्द्रीकृत क्षेत्र में बिजलीकरघा, हथकरघा और 'हौजरी क्षेत्र' (hosiery sector) को शामिल किया जाता है। सरकार ने समय के साथ विकेन्द्रीकृत क्षेत्र को कई रियायतें व छूटें दी हैं जिनके परिणामस्वरूप कुल उत्पादन में इस क्षेत्र का हिस्सा बढ़ा है तथा मिल क्षेत्र का हिस्सा कम हुआ है। उदाहरण के लिए जहाँ कुल कपड़ा उत्पादन में मिल क्षेत्र का हिस्सा 1950–51 में 80 प्रतिशत था वहां यह 1980–81 में 50 प्रतिशत तथा 2011–12 में मात्र 3.8 प्रतिशत रह गया। इस प्रकार विकेन्द्रीकृत क्षेत्र का हिस्सा जो 1950–51 में मात्र 20 प्रतिशत था, 2011–12 में बढ़कर 96.2 प्रतिशत हो गया।

जहाँ तक विकेन्द्रीकृत क्षेत्र का सम्बन्ध है, इसमें बिजलीकरघा का विकास अपेक्षाकृत अधिक तेजी से हुआ है। इसके परिणामस्वरूप, देश के कुल कपड़ा उत्पादन में बिजलीकरघा से उत्पादन का हिस्सा अब 62 प्रतिशत के लगभी हो गया है। बिजलीकरघा क्षेत्र के तेजी से विकास के कई कारण हैं : (i) संश्लिष्ट कपड़ा उद्योग (synthetic

fibre industry) के प्रति सरकारी नीतियों का झुकाव; (ii) बाजार सिथितियों के अनुरूप अपने उत्पाद–मिक्स (product mix) को बदलने की बिजलीकरघा क्षेत्र की क्षमता; (iii) श्रम के लोचशील प्रयोग द्वारा श्रम लागत को कम करने की बिजलीकरघा क्षेत्र की क्षमता (जिससे कुल उत्पादन लागत को कम किया जा सकता है तथा बाजार में अपनी सापेक्षिक स्थिति को मजबूत बनाया जा सकता है); तथा (iv) बिजलीकरघा क्षेत्र के बढ़ते हुए निर्यात। अब देश में 13 लाख .... मुख्य रूप से महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में है। केवल हाल के वर्षों में ही बिजलीकरघों की तमिलनाडु और कुछ अन्य राज्यों में तेजी से स्थापना हुई है।

वस्त्र उद्योग की समस्याएं
(Problems of the Textile Industry)

1. **कच्चे माल की उपलब्धि (Availability of raw materials)**– कपास का पर्याप्त उत्पादन व उपलब्धि भारत के वस्त्र उद्योग के लिए निर्यात आवश्यक है। जिन वर्षों में कपास का उत्पादन कम होता है उन वर्षों में सूती वस्त्र उद्योग को गंभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। तीसरी योजना में कपास उत्पादन का लक्ष्य 70 लाख गांठ रखा गया था जबकि उपलब्धि मात्र 49 लाख गांठ थी। कुछ अन्य योजनाओं में भी

इस प्रकार की स्थिति थी। इसका बुरा प्रभाव सूती वस्त्र उद्योग के विकास पर पड़ा। परन्तु अब स्थिति बदल चुकी है। कम उत्पादन व तंगी के वक्त खत्म हो चुके हैं तथा कपास का उत्पादन अब आत्म–निर्भरता के स्तर तक पहुंच चुका है। 2015–16 में में तो कपास का उत्पादन 325 लाख गांठ था। अब चिन्ता उत्पादन की 'मात्रा' को लेकर नहीं, उत्पादन की कीमतों में 'तेज उतार–चढ़ाव' को लेकर है। इस प्रकार के तेज उतार–चढ़ाव विकेन्द्रीकृत क्षेत्र के विकास पर बुरा प्रभाव डालते हैं– खासतौर पर हथकरघा क्षेत्र के बुनकरों की स्थिति पर।

2. **कपास की निकृष्ट किस्म तथा कम उत्पादकता (Poor quality and low productivity of cotton)**– भारत में कपास की उत्पादकता बहुत कम है। वस्तुतः विश्व औसत की तुलना में भारतीय कपास की उत्पादकता केवल आधी है (चीन के मुकाबले तो यह केवल एक–तिहाई है)। भारत में कपास की खेती छोटे किसानों द्वारा की जाती है। छोटे खेतों पर पुरानी तकनीकीों से उत्पादन करने के कारण भारतीय कपास की किस्म अच्छी नहीं होती रख–रखाव की भी पुरानी विधियां हैं। इन सब कारणों से भारतीय कपास को विश्व में सर्वाधिक दूषित (most

contaminated) माना जाता है। कपास की खराब किस्म से सूती वस्त्र उद्योग को कई कठिनाइयां उठनी पड़ती हैं।

3. **पुराने प्लांट व मशीनरी (Outdated plant and machinery)**– भारत का सूती वस्त्र उद्योग काफी पुराना है। इसलिए बहुत सारी मिलों में मशीनें तथा दूसरे उपकरण घिसे–पिटे हैं और उन्हें आधुनिक यन्त्रों से प्रतिस्थापित नहीं किया गया है। इस प्रकार की पुरानी व घिसी–पिटी मशीनरी से उत्पादन करने पर लागत जयादा आती है, कपड़े की क्वालिटी अच्छी नहीं होती और श्रमिकों को भी उत्पादन में काफी परेशानियां उठानी पड़ती हैं। लेकिन मशीनों के आधुनिकीकरण से श्रमिकों की छंटनी होगी। धीमी गति से विकसित होने वाली औद्योगिक अर्थव्यवस्था में इस तरह बेरोजगार होने वाले लोगों को नया रोजगार दे पाना आसान नहीं है।

4. **मिल क्षेत्र में बीमारी व मंदी (Sickness and recession in the mill sector)**– मुख्य रूप से ऊपर बताए गए दो कारणों (पुरानी मशीनरी ...... श्रमिकों की समस्या) की वजह से कई सूती वस्त्र मिलें बीमार पड़ गई हैं और कुछ को तो बन्द करना पड़ा है। लगातार पुरानी मशीनरी का प्रयोग करने से कुछ मिलों के

लाभों व लाभप्रदता पर बुरा असर पड़ा है और उन्हें अपना उत्पादन रोक देना पड़ा है।

5. **श्रमिकों की समस्या (Labour problems)**– सूती ववस्त्र उद्योग में काफी असंतोष व्याप्त है। हालांकि श्रमिकों की कुछ मांगें जायज हैं, परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सूती वस्त्र मिलें आपसी झगड़ों और राजनीतिक दावपेचों का अखाड़ा बन गई हैं।

6. **लागत का प्रश्न (The cost factor)**– भारत विश्व में सूती तागे (cotton yarn) का दूसरा तथा कपास का चौथा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। विश्व बाज़ार में सूती तागे की मांग लगातार बढ़ रही है (क्योंकि बहुत से देश अब अपना वस्त्र उद्योग विकसित करने में जुटे हुए हैं और इसलिए इन सूती तागे की बढ़ती हुई मात्रा आयात करनी पड़ रही है)। इस बाज़ार–संभावना को देखते हुए, भारत आगे आने वाले वर्षों में अपने सूती तागों के निर्यात बढ़ाने में काफी सफल हो सकता है। परन्तु इस दिशा में सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि भारत अन्य प्रतिस्पर्धी देशों जैसे चीन, पाकिस्तान, ताइवान, ब्राजील व अन्य सूती तागे का उत्पादन करने वाले देशों की तुलना में अपनी 'लागत' को किस प्रकार नियंत्रित कर पाता है। चीन ओर

पाकिस्तान की तुलना में भारत में मजदूरी व वेतन 30 से 60 प्रतिशत तक अधिक है इसलिए यदि भारत को इन देशों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी है तो उसे श्रमिक उत्पादकता को बढ़ाना होगा। यह भी अनुमान लगाया गया है कि भारतीय सूती वस्त्र उद्योग दूसरे प्रतिस्पर्धी देशों की तुलना में ऊर्जा पर 100 से 150 प्रतिशत अधिक खर्च करता है। इसके परिणामस्वरूप, भारत में कुल उत्पादन में ऊर्जा लागत का हिस्सा 12 प्रतिशत बैठता है जबकि प्रतिस्पर्धी देशों में यह हिस्सा मात्र 5 से 7 प्रतिशत के बीच है। कपास की लागत कुल उत्पादन लागत का लगभग 65 प्रतिशत है। इसलिए यह आवश्यक है कि मिली प्रतिस्पर्धात्मक कीमतों पर कपास खरीदें।

7. **राजकोषीय ढांचा आधुनिक, एकीकृत मिलों की स्थापना को हतोत्साहित करता है (Fiscal structure skewed against modern, integrated mills)**– भारत में राजकोषीय ढांचा आधुनिक, एकीकृत मिलों की स्थापना को हतोत्साहित करता है जिसके कारण संगठित मिलों में निवेश नहीं हो पाता है। छोटी–छोटी उत्पादन इकाइयों को संरक्षण प्रदान करने तथा प्रोत्साहन देने हेतु जो नीतियां अपनाई गई हैं उनसे संगठित क्षेत्र का विकास अवरूद्ध हो गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि

सिले–सिलाए कपड़ों में (जिनमें अंतर्राष्ट्रीय बाजार बहुत बड़ा है) भारत को प्रतिस्पर्धा करने में कठिनाई हो रही है।

बदला अंतर्राष्ट्रीय परिवेश : बहुफाइबर समझौते की समाप्ति (Changing International Scenario : Dismantling of MFA)

1 जनवरी, 1974 को बहुफाइबर समझौता (Multi-Fibre Arrangement) लागू किया गया जिसके तहत वस्त्र निर्यातक देशों के निर्यात कोटा (import quotas) को निश्चित कर दिया गया। बहुफाइबर समझौते के अधीन भारत ने कई देशों के साथ द्विपक्षीय समझौते किए जैसे अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, यूरोपीय संगठन के देश इत्यादि। भारत के वस्त्र निर्यातों का 70 प्रतिशत से भी अधिक अमेरिका तथा यूरोपीय संगठन के देशों को इन समझौते के अधीन किया जाता था। परन्तु 1 जनवरी, 2005 से 'टैक्सटाइल एंड क्लोदिंग' समझौते (Agreement on Textiles and Clothig), 1995 के अनुरूप (जो विश्व व्यापार संगठन अधीन किए गए समझौतों में से एक समझौता है) बहुफाइब्र समझौते को समाप्त कर दिया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि अब 30 वर्ष बाद वस्त्र व्यापार उद्योग के निर्यातों पर से सभी प्रकार के प्रतिबंध समाप्त कर दिए गए हैं। बहुत से अर्थशास्त्रियों का मानना है कि नए प्रतिस्पर्धी माहौल में सबसे अधिक

लाभ भारत और चीन को होगा। छोटे–छोटे देशों में कोटा का लाभ उठाने के लिए बनाई गई कपड़ा दुकानें शुरू हो जाएंगी तथा भारत और चीन अपने बड़े कपड़ा उद्योग के मज़बूत आधार से लाभ उठाते हुए पूरे विश्व के कपड़ा बाजार पर छा जाएंगे।

भारत बनाम चीन– इस संदर्भ में भारत और चीन की परस्पर–प्रतिस्पर्धा की भी बात की जा रही है। बहुत से अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि ..... समाप्ति से भारत की अपेक्षा चीन को ज्यादा लाभ होगा। इस पक्ष के समर्थन में निम्नलिखित तर्क दिए जा रहे हैं :

1. चीन के निर्यात भारत की तुलना में कई गुणा अधिक हैं। इसके अलावा, जाँ जीचन वस्त्र एवं कपड़ा उद्योग के आधुनिकीकरण तथा तकनीकी ...... के लिए बड़ी मात्रा में संसाधनों का निवेश कर रहा है तथा बड़ी तेज़ी से इस दिशा में आगे बढ़ रहा है वहाँ भारतीय उद्योग ने ढीलापन और ....हीनता का परिचय दिया है।

2. जहाँ चीन ने बहुत बड़ी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना पर जोर दिया है ताकि पैमाने की बचतों का पूरा–पूरा लाभ उठाया जा सके वहाँ भारत में असंख्य छोटी–छोटी तथा छितरी हुई उत्पादन इकाइयां हैं जो नद बदलते हुए विश्व व्यापार की चुनौतियों का सामना कर पाने में असमर्थ सिद्ध होंगी। इसके पहले कहा जा

चुका है, बिजलीकरघा और हथकरघा उद्योग का वस्त्र उद्योग उत्पादन में हिस्सा 99.2 प्रतिशत है जबकि संगठित मिल क्षेत्र का हिस्सा मात्र 0.8 प्रतिशत है। इतने छोटे मिल क्षेत्र से यह आशा कैसे की जा सकती है कि वह पूरे वस्त्र व कपड़ा उद्योग को विश्व बाजार में प्रतिस्पर्धा कर पाने में समर्थ बना सकेगा?

3. वस्तुतः बहुत से विशेषज्ञों का मानना है कि आपूर्ति संबंधी अवरोध बड़ी मात्रा में बाधा बनकर उभर सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि विश्व .... तो बढ़ेगी परन्तु भारत उससे ज्यादा लाभ नहीं उठा पाएगा। जब भारतीय कंपनियां मांग पूरा कर पाने में स्वयं को असमर्थ पाएंगी तो आर्डर चीन ही आद्योगिक इकाइयों के पास पहुँच जाएंगे जिन्होंने बढ़ी हुई मांग की भरपाई करने के लिए अपनी सामर्थ्य–शक्ति में पहले ही काफी वृद्धि कर ली है।

4. खुले उन्मुक्त व्यापार के परिप्रेक्ष्य में (अर्थात कोटा–प्रणाली के बाद की व्यवस्था में) दो कारण जो महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे वे हैं– (i) कीमत, तथा ..... आधारिक संरचना। ऐसी संभावना व्यक्त की जा रही है कि कोटा–प्रणाली के बाद की व्यवस्था में वस्त्रों व कपड़ों की कीमतों में गिरावट होगी। अगर .... हुआ तो भारतीय उत्पादकों व निर्यातकों के लिए कठिनाइयां और बढ़ जाएंगी क्योंकि चीनी उद्योग की उत्पादन लागतें काफी कम हैं।

आधारिक रचना पर विचार करें तो यहाँ भी चीन की स्थिति भारत की तुलना में कहीं बेहतर है।

लोहा तथा इस्पात उद्योग
(IRON AND STEEL INDUSTRY)

आधुनिक तरीकों से लोहा व इस्पात के उत्पादन का प्रथम प्रयास देश में बाराकर में 1875 में किया गया। इस कारखाने में कच्चे लोहे (pig iron) का उत्पादन शुरू हुआ। 1989 में इसे बंगाल आयरन कम्पनी ने अपने स्वामित्व में ले लिया। परन्तु बड़े पैमाने पर उत्पादन का प्रथम प्रयास तब हुआ जब 1907 में जमशेदपुर में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (TISCO) की स्थापना हुई। 1919 में बर्नपुर में इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (IISCO) की स्थापना की गई। सार्वजनिक क्षेत्र में पहली इकाई भद्रावती में 1923 में स्थापित की गई।

स्वतन्त्रता के बाद उद्योग का विकास
(Progress in Post-Independence Period)

स्वतन्त्रता के बाद लोहा व इस्पात उद्योग के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया। इसका कारण यह था कि लोहा व इस्पात उद्योग स्थापित होने पर विभिन्न कच्चे पदार्थों जैसे कोयला, कच्चा लोहा, मैंगनीज, चूना इत्यादि की मांग बढ़ जाती है। इसलिए इन उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। इसके अलावा इस्पात और लोहे की

उपलब्धि बढ़ने से मशीन टूल्स, भारी इंजीनियरिंग, परिवहन तथा प्रतिरक्षा उद्योगों के विकास के लिए रनास्ता खुल जाते हैं। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में उपर्युक्त प्रवृत्ति को पश्चगामी (backward) तथा अग्रगामी सम्बद्धता (forward linkage) कहते हैं। दूसरी योजना में लोहा व इस्पात उद्योग को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गई। यह इस बात से ही स्पष्ट है कि इस योजना में लोहा व इस्पात उद्योग के विकास पर निवेश प्रथम योजना में पूरे औद्योगिक क्षेत्र में किए गए निवेश का ढाई गुणा था। भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर में 10–10 लाख टन क्षमता वाले कारखानों को स्थापित करने का निर्णय लिया गया। इसके अलावा TISCO और IISCO की क्षमता क्रमशः 20 लाख टन तथा 10 लाख टन तक बढ़ाने के कार्यक्रम भी शुरू किए गए।

सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित तीन इस्पात कारखाने 1959 से 1962 बीच विभिन्न .... शुरू हुए .... इन कारखानों की क्षमता में वृद्धि और बोकारो में एक नए इस्पात कारखाने की स्थापना पर जोर दिया गया। चौथी पंचवर्षीय योजना में इस्पात उद्योग की क्षमता के अधिकतम इस्तेमाल तथा तीन नए इस्पात कारखानों की स्थापना की बात की गई (इन्हें तमिलनाडु में सालेम, कर्नाटक में विजय नगर तथा आंध्र प्रदेश में विशाखापट्टनम में स्थापित किया जाना था।) सोवियत संघ की सहायता से स्थापित बोकारो इस्पात कारखाने में फरवी 1978 में

उत्पादन शुरू हुआ सकरकार ने 1972 में IISCO (Indian Iron and Steel Company) का अपने हाथ में ले लिया और 1976 में उसका स्वामित्व भी ले लिया।

1973 से पहले, सार्वजनिक क्षेत्र के चार इस्पात कारखानों में भिलाई, राउरकेला तथा दुर्गापुर स्थित कारखानों का स्वामित्व व प्रबन्ध हिन्दुस्तान स्टील लिमिटेड (HSL) तथा बोकारो कारखानों का बोकारो स्टील लिमिटेड (BSL) के हाथ में था। 1973 में सरकार ने स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड (SAIL) की स्थापना की। अब सार्वजनिक क्षेत्र के सभी इस्पात कारखानों का स्वामित्व का प्रबन्ध SAIL के हाथ में है। राष्ट्रीय इस्पात निगम लिमिटेड का विशाखापट्‌टनम इस्पात कारखाना 1992 से उत्पाद में है। निजी क्षेत्र का सबसे पहला और एकीकृत इस्पात कारखाना जमशेदपुर स्थित टाटा आयरन एण्ड स्टील कंपनी (TISCO) है। निजी क्षेत्र में काम कर रहे कुछ अन्य महत्वपूर्ण इस्पात कारखाने एस्सार, मुकन्द, लायड्‌स, जिंदल, निप्पन डेनरी इस्पात लिमिटेड, मारडिया स्टील लिमिटेड इत्यादि हैं। 2015 में इस्पात के उत्पादन में भारत का विश्व में, चीन तथा जापान के बाद, तीसरा स्थान या इस उद्योग में लगभग 90,000

करोड़ रूपय का निवेश हो चुका है तथा यह पांच लाख लोगों को रोज़गार प्रदान करता है।

इस्पात नीति का उदारीकरण
(Liberalisation of Steel Policy)

1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव में यह कहा गया था कि लोहा व इस्पात उद्योग में सभी नए कारखाने सार्वजनिक क्षेत्र में लगाए जाएंगे। परन्तु 1970 और 1980 के दशकों में इस्पात की भयंकर कमी के कारण और इन्जीनियरिंग व अन्य उद्योगों की इस्पात के लिए बढ़ती हुई मांग के कारण सरकार ने इस्पात नीति का उदारीकरण किया। 1982 में आरंभ की गई उदारीकरण की नीति का लगातार विस्तार किया जाता रहा है। 1986 में छोटे इस्पात कारखानों को निजी क्षेत्र में इस्पात का उत्पादन करने की अनुमति दी गई। फरवरी 1988 में 2,50,000 टन की अधिकतम सीमा तक इस्पात इकाइयों को विस्तार करने की अनुमति दी गई। 6 जून, 1990 को सरकार ने नये दिशा–निर्देश जारी किए जिनका उद्देश्य इस्पात तथा इस्पात–आधरित वस्तुओं के उत्पादन को और उदार बनाना, अनावश्यक प्रतिबन्धों को समाप्त करना तथा न्यूनतम आर्थिक उत्पादन स्तरों तक इस्पात क्षमता को बढ़ाने की व्यवस्था थी। नई नीति के अधीन निजी क्षेत्र को दस लाख टन प्रतिवर्ष की क्षमता तक के इस्पात कारखाने स्थापित करने

की अनुमति दी गई। 1991 में बड़े पैमाने पर घोषित उदारीकरण नीति के परिणामस्वरूप सरकार ने लोहा व इस्पात उद्योग को सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की सूची में ही लिया है और इस उद्योग को अनिवार्य लाइसेंसिंग से मुक्त कर दिया है। 16 जनवरी, 1992 से सरकार ने एकीकृत इस्पात कारखानों द्वारा उत्पादित तो व इस्पात पर से कीमत व वितरण नियंत्रण हटा लिए हैं। अब लोहा व इस्पात उद्योग लगभग पूर्णतया स्वतन्त्र है तथा इस पर कोई लाईसेंसिंग, कीमत वितरण या आयात नियन्त्रण नहीं है। यदि इस बात का ध्यान रखा जाए कि कभी यह उद्योग पूर्णतया सार्वजनिक क्षेत्र के अधीन था, इसकी कीमत सरकार निर्धारित करती थी तथा इस पर कई प्रकार के आयात नियन्त्रण थे, तो स्थिति अब अवश्य ही बहुत बदल चुकी है।

इस्पात का उत्पादन व उपभोग
(Production and Consumption of Steel)

बिक्री के लिए तैयार इस्पात (मिश्र व अमिश्र) का कुल उत्पादन 2009—10 में 60.62 मिलियन टन था और यह 2015—16 में बढ़कर 98.7 मिलियन टन तक पहुँच गया। परन्तु यदि इस बात का ध्यान रखा जाए कि भारत में इस्पात उद्योग की स्थापित क्षमता 120 मिलियन टन है तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि भारत अपनी स्थापित क्षमता का केवल 82.0 प्रतिशत ही प्रयोग कर पा रहा है। दूसरे शब्दों में,

भारत इस्पात उद्योग की स्थापित क्षमता का लगभग पाँचवां–हिस्सा प्रयोग कर पाने में असमर्थ है। जहाँ तक तैयार इस्पात के उपभोग का प्रश्न है, यह 2009–10 में 59.3 मिलियन टन था जो 2014–15 में बढ़कर 77 मिलियन टन हो गया।

लोहा व इस्पात उद्योग की समस्याएं
(Problems of Iron and Steel Industry)

देश के औद्योगीकरण का विकास व विस्तार कार्यक्रम बहुत कुछ लोहा व इस्पात उद्योग के विकास व विस्तार पर निर्भर करता है। स्वतंत्रता के बाद इस उद्योग के विकास पर जो जोर दिया गया है उसी का आज यह परिणाम है कि भारत का औद्योगिक ढांचा अब काफी मजबूत हो चुका है तथा इंजीनियरिंग उद्योग, मशीन निर्माण उद्योग, मशीन टूल्स उद्योग और कई पूंजीगत, मध्यवर्ती व उपभोक्ता वस्तु उद्योगों की आवश्यकता को पूरा करने में सक्षम है। यही कारण है कि यदि लोहा व इस्पात उद्योग में किसी भी वजह से उत्पादन गिरता है तो यह एक अत्यन्त गंभीर विषय है क्योंकि इससे अन्य उद्योगों के विकास पर भी बुरा प्रभाव पड़ने की आशंका है। आइए अब इस उद्योग की प्रमुख समस्याओं पर विचार करें।

1. **पंजी की समस्या (Problem of capital)**– लोहा तथा इस्पात उद्योग बड़े आकार का पूंजी प्रधान उद्योग है। इसके एक

कारखाने की स्थापना के लिए हजारों करोड़ रूपए की लागत की मशीनों तथा अन्य उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। भारत जैसे अल्पविकसित देशों में जहाँ पूंजी निगम की दर बहुत नीची हैं, इतनी अधिक मात्रा में पूंजी का जुटा पाना कठिन कार्य है। यही कारण है कि भारत को लोहा तथा इस्पात उद्योग के विकास के लिए विकसित देशों से वित्तीय सहायता प्राप्त करनी पड़ी है।

2. **कोयला तथा बिजली की कमी (Shortage of coal and power)–** भारत में इस्पात तैयार करने के लिए उपयुक्त कोयला अत्यधिक सीमित मात्रा में उपलब्ध है। इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ कोकहारी कोयले (coking coal) का आयात भी किया गया है परन्तु कोयले की कमी बढ़ रही है जिससे इस्पात उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। बिजली की कमी के कारण भी इस्पात कारखानों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। उदाहरण के लिए, विभिन्न वर्षों में दामोदर घाटी निगम (Damodar Valley Corporation) से कम बिजली मिल पाने के कारण दुर्गापुर व बोकारो इस्पात कारखानों के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और उड़ीसा राज्य बिजली बोर्ड द्वारा

लगाए गए प्रतिबन्धों के कारण राउरकेला इस्पात कारखाने के उत्पादन पर बुरा असर पड़ा है।

3. **तकनीकी पिछड़ापन (Technological backwardness)–** कुछ इस्पात कारखानों को तकनीकी पिछड़ेपन की समस्या का सामना करना पड़ रहा है। वात्या भट्टी (blast furnace) उत्पादकता, कोक के उपभोग तथा अन्य तकनीकी आधार पर भारत के कारखाने अन्य देशों के कारखानों की तुलना में 50 प्रतिशत भी दक्ष नहीं हैं। इसके अलावा, जहां विकसित देशों तथा ब्राजील जैसे विकासशील देशों में भी अधिकतर प्लांटों में आक्सीजन परिवर्तकों (convertors) का इस्तेमाल किया जाने लगा है (जो कि अपरिष्कृत इस्पात उत्पादन की बेहतरीन तकनीक है) वहां भारत में आज भी पुरानी तकनीक का प्रयोग किया जा रहा है। पुरानी तकनीकों का प्रयोग करने के कारण ही आज भी भारत में ऊर्जा की खपत विश्व की उत्पादन–दक्ष इकाईयों की तुलना में 80 प्रतिशत अधिक है। इसके अतिरिक्त, मूल्य उत्पाउन (value productivity) भारत में, कई अन्य इस्पात उत्पादक देशों की तुलना में कहीं कम है। कोरिया तथा अन्य प्रमुख इस्पात उत्पादक देशों में श्रम–उत्पादकता 600–700

टन प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष की तुलना में भारत में श्रम उत्पादकता मात्र 90–100 टन प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष है।

4. **अकुशल प्रबन्ध व्यवस्था (Inefficient management)–** इस्पात कारखानों की प्रबन्ध व्यवस्था में कई कमजोरियां हैं। जैसाकि अध्याय 33 में कहा गया है, सार्वजनिक उद्यमों के प्रबन्धकों में अधिकतर गैर–तकनीकी लोग होते हैं जो सही समय पर निर्णय नहीं ले पाते, प्रबन्धक कई तरह की सीमाओं में बंधकर काम करते हैं, राजनैतिक हस्तक्षेप होता है, मजदूर आंदोलन व हड़तालें होती रहती हैं इत्यादि। इन सबसे इस्पात कारखानों के लाभप्रदता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

5. **स्टाक इकट्ठा होना (Piling up of inventories)–** पिछले कुछ वर्षों में इस्पात उ़द्योग को मांग में तेज कमी होने के कारण गंभीर कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। मांग में कमी के प्रमुख कारण थे : सरकारी योजना व्यय में कमी, गृह निर्माण तथा आधारिक संरचना के क्षेत्रों में निवेश में कमी, तथा अतिरिक्त क्षमता सृजन (उपभोग में उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी अनुमानित थी इसलिए 'अतिरिक्त क्षमता' की स्थिति पैदा हो गई)। इन सबके परिणामस्वरूप, उत्पादकों के पास स्टाक इकट्ठा हो गए जिससे कीमतों में गिरावट आई और इस्पात

उत्पादकों की लाभप्रदता (profibability) पर अत्यंत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

6. **सस्ते आयातों से खतरा (Dangers from cheap imports)**– घरेलू मांग न बढ़ पाने से त्रस्त इस्पात उद्योग को 1990 के दशक के उत्तर में गिरती हुई अंतर्राष्ट्रीय कीमतों के कारण और कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कुछ इस्पात उत्पादों की अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में तो 30 से 40 प्रतिशत गिरावट हुई। इससे सस्ते आयातों का खतरा पैदा हो गया। उदारीकरण की नीति के कारण सरकार ने आयात शुल्कों को बहुत कम कर दिया जिससे आयातों में वृद्धि हुई जो इस्पात उद्योग के लिए एक चिन्ता का कारण बन गया। इससे भी अधिक चिन्ता का विषय यह था कि विदेशी उत्पादकों का पुराना व घटिया श्रेणी का इस्पात देश के बाजारों में भेजा। यह इस्पात भारतीय उद्योग के उत्तम इस्पात की तुलना में बहुत घटिया था परन्तु इसने भारत के इस्पात उद्योग के विकास के लिए कठिनाइयाँ पैदा कर दीं।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में इस्पात उद्योग को पेश आ रही निम्न समस्याओं की चर्चा की गई है: लौह अयस्क (iron ore) के घटते स्रोत, को ... की अपर्याप्त उपलब्धता, अपर्याप्त

निसादीकरण तथा पिंडीकरण क्षमताएं (inadequate sintering and pelletization capacities) और कच्चे माल की ढुलाई के लिए यातायात का घटिया आधारभूत ढांचा। इस्पात उद्योग के लिए ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में 37,318 करोड़ रुपए का परिव्यय किया गया था। बारहवीं योजना में इसे बढ़ा कर 91,175 करोड़ रुपए कर दिया गया।

चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रयास (Facing the Challenges)

उपरलिखित चुनौतियों एवं समस्याओं का सामना करने के लिए भारतीय इस्पात उद्योग ने बहु–पक्षीय युक्ति अपनाई है जिसके मुख्य निम्नलिखित हैं :

1. **कच्चे माल पर नियंत्रण (Control over raw materials)**– कच्चे माल की बढ़ती कीमतों की समस्या के निदान के लिए भारतीय इस्पात कंपनियां कच्चे माल के स्त्रोतों पर 'नियंत्रण' का प्रयास कर रही हैं। इस उद्‌देश्य के लिए वे कच्चे लोहे की खाने (mines) खरीद रही हैं। उदाहरण के लिए जिन्दल साउथ वेस्ट (JSW) यह प्रयास कर रही है कि कच्चे लोहे की अपनी आवश्यकताओं का कम से कम 50 प्रतिशत कर्नाटक स्थित ..... खानों से प्राप्त करे। जहां तक को (coke) का सम्बन्ध है,

कम्पनियां अपनी कोक ओवन बैट्रियां (coke overn batteries) खुद स्थापित कर रही हैं तथा कच्चे कोयले से उसका उत्पादन स्वयं कर सकें।

2. **एकीकरण (Integration)**– एकीकरण (integration) कर रही अर्थात्, अंतिम इस्पात उत्पादन में प्रयोग किए जाने वाले अन्य उत्पादों का उत्पादन स्वयं करने लगी हैं। इस एकीकरण की एक महत्वपूर्ण कड़ी ऊजा (power) है। उदाहरण के लिए 2005–06 में जे0एस0 डब्ल्यु ने विजय नगर में 100 मिलियन वाट का ऊर्जा–प्लांट (power plant) अपने प्रयोग को स्थापित किया है जिससे ऊर्जा लागत में 25 प्रतिशत की कटौती हो सकी है।

3. **वित्त का नियोजन (Planning the finance)**– इस्पात उद्योग एक अत्यंत पूंजी प्रधान उद्योग है इसलिए बहुत–सी कंपनियों को बड़ी मात्रा दीर्घकालीन ऋण लेने पड़े हैं। इस्पात क्षेत्र में हाल की अवधि में बेहतर परिस्थितियों के कारण बहुत–सी कम्पनियां अपने दीर्घकालीन ऋणों की .... से पूर्व ही अदायगी कर पाने में सफल हो सकी हैं। इससे ब्याज–भुगतान के भार में भी कमी हुई है। इस प्रकार, ऋणों की पुनः संरचना से कम्पनियों की बचत बढ़ी है।

4. **प्रसार (Expansion)**– पिछले कुछ वर्षों में भारत में आधारिक संरचना के विकास पर बहुत अधिक राशि खर्च की गई है जिससे इस्पात ...... के लिए व्यापक अवसर पैदा हुए हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय राजमार्गों के विकास कार्यक्रम के प्रथम चरण में ही 10 मिलियन टन इस्पात की पैदा हुई है। इन अवसरों का लाभ उठाने के लिए कंपनियों ने अपनी स्थापित क्षमताओं के प्रसार कार्यक्रम बनाए हैं। उदाहरण के लिए, स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया ने 35,000 करोड़ रुपए का प्रसार कार्यक्रम अपनाया है। इसी प्रकार के प्रसार कार्यक्रम टाटा स्टील द्वारा (जिसने अभी हाल में ..... कंम्पनी कोरस का अधिग्रहण किया है), जे0एम0डब्ल्यु0 द्वारा, मुकुंद द्वारा, भूषण स्टील द्वारा भी आरम्भ किए गए हैं।

क्योंकि भारत के पास कच्चे लोहे तथा कोयले के व्यापक भंडार हैं इसलिए भारत वैश्विक (global) इस्पात कम्पनियों के लिए एक आकर्षक .... (जैसे पोस्को तथा मित्तल स्टील)। इसलिए ये कम्पनियां छोटी भारतीय इस्पात कम्पनियों को खरीदने का प्रयास कर सकती हैं। इस चुनौती का सामना करने के लिए हो सकता है कि निकट भविष्य में कुछ घरेलू कम्पनियां

आपसी गठजोड़ (consolidation) का प्रयास करें अर्थात मिल कर मजबूत कम्पनी बनायें।

जूट उद्योग
(JUTE INDUSTRY)

भारत में आधुनिक जूट उद्योग लगभग 160 वर्ष पुराना है। 1859 में सीरामपुर के निकट रिसरा नामक स्थान पर पहली मिल स्थापित हुई थी। ..... तक भारत में जूट की 16 मिलें हो गई थीं और ये भी स्थानीय मांग के लिए उत्पादन करती थीं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक जूट उद्योग के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया और यह स्थानीय मांग के लिए उत्पादन करने वाले उद्योग में बदल कर निर्यात पर आधारित हो गया।

जूट उद्योग के निर्यातक स्वरूप से इसके स्थानीकरण की प्रवृत्ति को समझने में सहायता मिलती है। बंगाल और प्रधानतः कलकत्ता के पास ...... तट पर जूट उद्योग के केन्द्रीकरण का प्रधान कारण यह है कि बंगाल, असम और बिहार द्वारा उत्पादित वस्तुओं के निर्यात के लिए केवल कलकत्ता बन्दरगाह का ही प्रयोग परिवहन लागत की दृष्टि से उपयुक्त है। कच्चा जूट बहुत कम परिवहन लागत पर कलकत्ता में एकत्रित हो जाता है। जूट की विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन कर उन्हें विदेशी बाजारों में सहज ही भेजा जा सकता है।

1947 में भारत के विभाजन के इस उद्योग को बहुत क्षति पहुंची। विभाजन के फलस्वरूप 75 प्रतिशत कच्चा जूट उत्पादित करने वाला क्षेत्र में चला गया। इसके अतिरिक्त भारत के पास जो क्षेत्र रह गया, उस पर अपेक्षाकृत नीची श्रेणी का ही जूट उत्पन्न होता था। इसलिए . ... फलस्वरूप उद्योग के समक्ष कच्चे माल की समस्या उत्पन्न हो गई। इस समस्या के निदान के लिए देश के भीतर ही जूट का उत्पादन बढ़ाने में विविध प्रयास किए गए और विशेष रूप से उत्तम श्रेणी के जूट के उत्पादन पर ध्यान दिया गया। इसी काल में मेस्टा का उत्पादन बढ़ाने पर ध्यान दिया गया। मेस्टा का रेशा जूट के रेशे में मिलाकर विविध प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। योजनावधि में जूट और मेस्टो के .... में वृद्धि होने से भारतीय जूट उद्योग की आयातित जूट पर निर्भरता कम हो गई। 2015–16 में जूट व मेस्टा के अधीन क्षेत्र 8 लाख हैक्टर था जिसका उत्पादन 114 लाख गांठ था। जूट वस्तुओं का कुल उत्पादन 2012–13 में 1.58 मिलियन टन था जो 2013–14 में गिर कर 1.52 मिलियन 2014–15 में केवल 1.26 मिलियन टन रह गया। पूरे विश्व में भारत जूट वस्तुओं का सबसे बड़ा उत्पादक तथा दूसरा सबसे बड़ा निर्यातक देश क्षेत्र में 40 लाख किसान परिवारों को रोजगार मिला हुआ है तथा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप

से जूट उद्योग में 4 लाख लोग कार्यरत हैं। देश में .... हैं जिनमें से 64 मिलें पश्चिमी बंगाल में हैं।

जूट उद्योग की समस्याएं
(Problems of Jute Industry)

इसमें सन्देह नहीं है कि जूट उद्योग भारत के विकसित उद्योगों में से है लेकिन इसके सामने निम्नलिखित समस्याएं हैं जिनका समाधान अतिआवश्यक है–

1. **प्रतिस्थापकों का उभरना (The emergence of substiturtes)**– जूट उद्योग के सामने सबसे कठिन समस्या संभवतः मांग में होनी है। इसका मुख्य कारण प्रतिस्थापकों को उभरना है जिन्होंने बहुत जल्दी–जल्दी जूट की जगह ले ली है। प्लास्टिक की व अन्य संश्लिष्ट बोरियों ने जूट की बोरियों की जगह ले ली है। घरेलू बाजारों में उर्वरक तथा सीमेंट भी अब इन्हीं बोरियों में भरा जाने लगा है। जूट की बोरियों में खाद्यान्नों की पैकिंग के लिए भी किया जाता है परन्तु कम वसूली के वर्षों में कम बोरियों की आवश्यकता होती है जिससे जूट की मांग की है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में परिवहन की नई तकीनीकों के विकास के कारण तथा संश्लिष्ट प्रतिस्थापकों की खोज के कारण, जूट वस्तुओं की हुई है। जहां एक ओर मांग बढ़ नहीं पा रही है वहीं

दूसरी ओर बांग्लादेश तथा चीन जैसे देशों से कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है।

2. **आधुनिकीकरण (s)–** .... भारतीय जूट उद्योग काफी पुराना होने के कारण इस उद्योग के अधिकांश .... या दूसरे उपकरण बहुत पुराने हो गए हैं जिससे कुशलता का स्तर नीचा और उत्पादन लागत अधिक है। इस स्थिति में सुधार अपेक्षित है जो आधुनिकीकरण के द्वारा सम्भव है। परन्तु जूट उद्योग में आधुनिकीकरण सहज नहीं है, क्योंकि जूट मिलों के निजी साधन इतने अधिक नहीं है कि बिना वित्तीय सहायता के इस कार्यक्रम को पूरा कर सकें। इसके अतिरिक्त आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक सभी यन्त्रों का देश में उत्पादन नहीं है कि उनका विदेशों से आयात करना होगा। भारत सरकार ने विदेशी विनिमय सम्बन्धी कठिनाइयों के होते हुए भी जूट उद्योग में आधुनिकीकरण करे और आवश्यक मशीनों के आयात के लिए लाइसेंस देने में काफी उदारता से कार्य किया है। अतः उद्योग के बुनाई विभाग में आधुनिकीकरण हुआ।

3. **अनिश्चित बिजली आपूर्ति (Irregular power supply)–** पश्चिमी बंगाल के कई वर्षों में बिजली का गंभीर संकट रहा है। इससे जूट उद्योग में समय–समय पर भारी बिजली कटौती का

सामना करना पड़ा है जिससे जूट वस्तुओं के उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

5. **पटसन की कीमतों में तेज वृद्धि (Surge in price of raw jute)–** 2015 में पटसन की कीमतों में तेज वृद्धि हुई और उसकीकीमत बढ़कर 80000 रूपये प्रति टन हो गई जबकि एक वर्ष पूर्व यह मात्र 26000 रूपए प्रति टन थी। इसका कारण उत्पादन में तेज कमी होने का अनुमान था। बिना अपने कई मिल मालिकों एवं व्यापारियों ने बड़े पैमाने पर जमाखोरी की। एक वर्ष के भीतर पटसन की कीमतों में होने वाली अप्रत्याशित वृद्धि के लगभग 14–15 जूट मिलें बन्द हो गईं।

सभी विशेषज्ञों का मत है कि यदि जूट उद्योग का विकास करना है तो यह आवश्यक है कि बड़े पैमाने पर आधुनिकीकरण किया जाए तथा नयी तकनीकी साधनों का प्रयोग बढ़े। तभी उत्पादन लागत को कम किया जा सकेगा तथा उत्पादन की किस्म में सुधार हो सकेगा। ऐसा होने में राष्ट्रीय बाजारों में बांग्लादेश तथा चीन से प्रतिस्पर्धा की जा सकेगी। एक उत्साहवर्धक घटना यह है कि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में जूट के तागों की मांग बढ़ रही है जिससे भारत का जूट तागों का निर्यात काफी बढ़ गया है। अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों के

कारण अब थाईलैंड इस उद्योग में दिलचस्पी नहीं ले रहा है। इस बात का भारतीय उद्योग ने लाभ उठाया है।

भारत सरकार ने पहली बार राष्ट्रीय जूट नीति 2005 (National Jute Policy 2005) की घोषणा की है जिसका उद्देश्य उत्पादन बढ़ाने में सुधार करना, कच्चे जूट के उत्पादन में लगे किसानों को बेहतर कीमतें प्रदान करना तथा प्रति हैक्टर उत्पादकता बढ़ाना है। 2 जून, 2006 को जूट टेक्नोलॉजी मिशन (Jute Technology Mission) के कार्यान्वयन का अनुमोदन किया जिसकी अनुमानित लागत 355.55 करोड़ रूपये है लघु–मिशन (mini-mission) हैं : (1) लघु–मिशन I – शोध व अनुसंधान को प्रोत्साहन, (2) लघु–मिशन II – प्रौद्योगिकी का अन्त, (3) लघु–मिशन III – बाजार आधार संरचना को मजबूत बनाना, तथा (4) लघु–मिशन IV – जूट सेक्टर में प्रयोग की जा रही प्रौद्योगिकी का आधुनिकीकरण जूट के विविधीकृत उत्पादों को प्रोत्साहन।

खण्ड–4, यूनिट–3
भारत में क्षेत्रीय विषमताएँ एवं संतुलित औद्योगिक विकास की नीतियाँ

औद्योगिक संवृद्धि के पहले चरण में पहली तीन योजनाओं का काल आता है। जैसाकि हम पहले कह चुके हैं, यह चरण अत्यन्त महत्वपूर्ण था क्योंकि इसमें भविष्य में औद्योगिक विकास के लिए मजबूत आधार तैयार किया गया। महलानोबिस मॉडल पर आधारित दूसरी योजना में पूँजीगत वस्तु उद्योगों तथा मूलभूत उद्योगों के विकास पर विशेष जोर दिया गया। यही कारण है कि लोहा व इस्पात, भारी इंजीनियरिंग तथा मशीन निर्माण उद्योगों में भारी निवेश किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना में भी निवेश का यही पैटर्न रखा गया। इसके परिणामस्वरूप, जैसाकि सारणी 25.1 से स्पष्ट है, पहली तीन योजनाओं में औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी हुई और यह दर पहली योजना में 5.7 प्रतिशत से बढ़कर दूसरी योजना में 7.2 प्रतिशत तथा तीसरी योजना में 9.0 प्रतिशत हो गई। दीर्घकालिक औद्योगिक विकास के दृष्टिकोण से जो बात महत्वपूर्ण है वह यह है कि पूँजीगत वस्तु उद्योगों की सवृद्धि दर जो पहली योजना में 9.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी, दूसरी योजना में 13.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष तथा तीसरी योजना में 19.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई। औद्योगिक विकास के

दृष्टिकोण से दूसरा महत्वपूर्ण उद्योग–वर्ग 'मूलभूत वस्तुओं' (basic goods) का है। इस वर्ग के उत्पादन में भी महत्वपूर्ण वृद्धि हुई। इस वर्ग की वार्षिक संवृद्धि दर जो पहली योजना में 4.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी, दूसरी योजना में बढ़कर 12.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष तथा तीसरी योजना में 10.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई। इससे यह सिद्ध होता है कि पहली तीन योजनाओं में औद्योगिक विकास का मजबूत आधार तैयार करने की दिशा में महत्वपूर्ण काम हुआ। इसका श्रेय निस्संदेह सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश के व्यापक विस्तार को जाता है।

औद्योगिक संवृद्धि : दूसरे चरण (1965–80) में मंदी व संरचनात्मक प्रतिगमन

(INDUSTRIAL GROWTH : DECELERATION AND STRUCTURAL RETROGRESSION IN PHASE-II, 1965-80)

जैसाकि सारणी 25.1 से स्पष्ट है, 1965 से 1976 के बीच औद्योगिक संवृद्धि में तेज गिरावट आई। औद्योगिक संवृद्धि की दर जो तीसरी योजना 9.0 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी, 1965 से 1976 की अवधि में गिरकर मात्र 4.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रह गई। वास्तव में यह कम संवृद्धि दर भी सही स्थिति नहीं दिखाती क्योंकि वर्ष 1976–77 में औद्योगिक उत्पादन में 10.6 प्रतिशत की तेज वृद्धि हुई थी। यदि इस वर्ष को

छोड़ दिया जाए तो 1965 से 1975 के बीच के दस वर्षों में औद्योगिक संवृद्धि की दर मात्र 3.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष रह जाती है। पांचवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन में संवृद्धि की दर 6.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही। इसका भी मुख्य कारण 1976–77 में होने वाली 10.6 प्रतिशत वृद्धि था। यदि इस वर्ष को छोड़ दिया जाए तो बाद के चार वर्षों में संवृद्धि दर काफी कम रह जाती है। यदि इसे शामिल कर भी लें तो भी 6.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष की संवृद्धि दर, दूसरी और तीसरी योजना की उपलब्धि के सामने बहुत कम दिखाई देती है। वस्तुतः यह दर तो पहली योजना में प्राप्त दर से भी जरा–सी ही ज्यादा है। जैसाकि सारणी 25.1 से स्पष्ट है, चरण II के अन्तिम वर्ष 1979–80 में औद्योगिक उत्पादन में संवृद्धि का ....। इस वर्ष औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक 1978–79 में 150.7 से गिरकर 148.2 रह गया (आधार 1970=100)।

औद्योगिक संवृद्धि में गतिहीनता के साथ–साथ सारणी 25.1 संरचनात्मक प्रतिगमन की प्रवृत्ति भी स्पष्ट रूप से दर्शाती है। दीघकालीन औद्योगिक विकास की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है पूँजीगत वस्तु उद्योगों का समूह। इस समूह (या वर्ग) की संवृद्धि दर जो पहली योजना में 9.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी, दूसरी योजना में 13.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष तथा तीसरी योजना में 19.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक पहुंच गई। निश्चय ही यह एक अत्यनत उत्साहवर्धक निष्पत्ति थी। परन्तु उससे

आगे के ग्यारह वर्षों (1965 से 1976) में पूँजीगत वस्तु उद्योगों के समूह की वार्षिक संवृद्धि दर मात्र 2.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी। यदि हम केवल पांचवीं योजना की अवधि पर विचार करें तो इस योजना में संवृद्धि 5.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष आती है परन्तु यह भी पहली तीन योजनाओं में प्राप्त संवृद्धि दरों की तुलना में बहुत कम है। मूल उद्योगों में भी यही स्थिति पाई जाती है। वास्तव में, जैसाकि एस0एल0 शेट्टी ने अपने लेख में सिद्ध किया है, कई अनय महत्वपूर्ण उद्योगों में 1965–66 से 1976–77 के बीच संवृद्धि की दर पिछले पांच वर्षों की तुलना में अत्यन्त असन्तोषजनक थी।

औद्योगिक वर्ग	**1951 से 1955 (4 वर्ष)**	**1955 से 1960**	**1960 से 1965**	**1965 से 1976**	**1974 से 1979 (पांचवी योजना की औसत)**	**1979–80**
1. मूल उद्योग	4.7	12.1	10.4	6.5	8.4	–0.5
2. पूंजीगत वस्तु उद्योग	9.8	13.1	19.6	2.6	5.7	–2.3
3. मध्वर्ती वस्तु उद्योग	7.8	6.3	6.9	3.0	4.3	1.9
4. उपभोक्ता–वस्तु उद्योग	4.8	4.4	4.9	3.4	5.5	–4.4
(i) उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं	–	–	–	6.2	6.8	5.6
(ii) उपभोक्ता गैर–टिकाऊ वस्तुएं	–	–	–	2.8	5.4	6.1
5. सामान्य सूचकांक	5.7	7.2	9.0	4.1	6.1	–1.6

स्रोत : S.L. Shetty, "Structural Retrogression in the Indian Economy since the Mid-Sixties", Eonomic and Political Weekly, Speech Supplement, 1978. Table 4, p. 9; and Government of India, Hand Book of Industrial Statistics, 1992, Table 50, p. 150 and Table 51, p. 155.

1965 से 1980 की अवधि में पूँजीगत वस्तु उद्योगों की संवृद्धि दरों में गिरावट इस बात का प्रमाण है कि इस अवधि में संरचनात्मक प्रतिगमन हुआ था। इसी संरचनात्मक प्रतिगमन के एक अन्य पहलू पर भी शेट्टी ने प्रकाश डाला है। उन्होंने यह तर्क दिया है कि जिन उद्योगों में संवृद्धि की दर हुई थी उनमें से अधिकतर उद्योग ऐसे थे जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तौर पर उच्च आय वर्गों के लिए विलासिता की उपभोग वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। उदाहरण के लिए बेहतर किस्म के कपड़ों, मदिरा, परफ्यूम व कास्टमेटिक्स, घरेलू प्रयोग व आफिस में प्रयाग के लिए बढ़िया किस्म के फर्नीचर व अन्य वस्तुओं तथा घड़ियों व इलेक्ट्रानिक वस्तुओं इत्यादि का तेजी से बढ़ता हुआ उत्पादन इस बात को सिद्ध करते हैं कि उत्पादन का ढांचा उच्च आय की उपभोक्ता वस्तुओं की मांग को पूरा करने में जुटा हुआ था।

मंदी व संरचनात्मक प्रतिगमन के कारण

(Casues of Deceleration and Structural Retrogression)

1965 से 1980 के बीच औद्योगिक क्षेत्र में जो मंदी व संरचनात्मक प्रतिगमन की स्थिति देखने में आई उसके लिए विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग–अलग कारकों को जिम्मेदार ठहराया है। सरकार ने इस स्थिति के लिए बाह्य कारकों–जैसे 1965 व 1971 के युद्ध; कुछेक वर्षों में सूखे की स्थिति आधारिक संरचना (विशेष तौर पर बिजली व परिवहन) का अल्पविकास तथा 1973 के तेल संकट को

जिम्मेवार ठहराया। के0एन0 राज ने तर्क दिया कि कृषि क्षेत्र का कम विकास औद्योगिक क्षेत्र की असन्तोषजनक प्रगति के लिए उत्तरदायी था। कृषि क्षेत्र में अपर्याप्त संवृद्धि होने के कारण जहाँ एक ओर कच्चे माल की आपूर्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है वहाँ दूसरी ओर औद्योगिक वस्तुओं के लिए मांग सीमित रहती है। टी0एन0 श्रीनिवासन एन0एस0एस0 नारायण के अनुसार दूसरों चरण में वास्तविक निवेश में (विशेष तौर पर सार्वजनिक क्षेत्र के वास्तविक निवेश में) शिथिलता आई और इस औद्योगिक क्षेत्र की संवृद्धि दर पर बुरा असर पड़ा। पी0 पटनायक और एस0के0 राव के अनुसार, दूसरे चरण में दो बातें साथ–साथ हुई–एक तो सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश कम हुआ और दूसरे निजी क्षेत्र में निवेश के लिए प्रोत्साहिन कम हुआ। इसे तक का मूलावार यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र में ..... कमी निजी क्षेत्र में निवेश पर भी बुरा प्रभाव डालती है। दीपक नैयर, के0एन0 राज, सी0 रंगराजन जैसे कुछ अर्थशास्त्रियों ने आय वितरण, मांग औद्योगिक संवृद्धि के बीच संबंध की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, आय की अत्यधिक असमनताओं के कारण में औद्योगिक वस्तुओं की मांग केवल सबसे धनी 10 प्रतिशत वर्ग तक ही सीमित है। एक बार जब इस वर्ग की मांग पूरी हो जाती है तो फिर भी और विस्तार की संभावना नहीं है। एक बार जब उपभोक्ता वस्तुओं

की मांग पूरी हो जाती है तो इनके भविश्य में और उत्पादन पर बुरा असर पड़ा है। इसके परिणामस्वरूप, उत्पादन के अगले चरणों में मशीनों और पूंजीगत वस्तुओं की मांग कम हो जाती है। कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे जगदीश ...... पदमा देसाई, टी0एन0 श्रीनिवासन तथा ईशर जज आहलूवालिया ने औद्योगिक मंदी के लिए गलत औद्योगिक नीतियों, लाइसेंसिंग की जटिल नौकरी व्यवस्था, तथा नियन्त्रणों व प्रतिबन्धों के अदक्ष और अविवेकपूर्ण ढाँचे को जिम्मेवार ठहराया है।

औद्योगिक संवृद्धि : तीसरे चरण (1980 के दशक) में औद्योगिक पुनरुत्थान

(INDUSTRIAL GROWTH : INDUSTRIAL RECOVERY IN PHASE-III, THE PERIOD OF 1890s)

1980 के दशक को मोटे रूप से औद्योगिक पुनरुत्थान का काल कहा जा सकता है। यह बात औद्योगिक उत्पादन के संशोधित सूचकांक (आधार वर्ष 1980–81 = 100 है), से पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। इस सूचकांक पर आधारित औद्योगिक संवृद्धि दरें सारणी 25. 2 में दी गई है।

सारणी 25.2 : 1980 के दशक में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर (आधार 1980–81 = 100)

(प्रतिशत प्रतिवर्ष)

	औद्योगिक समूह	1981–85	1985–90	1990–91
1.	मूल उद्योग	8.7	7.4	3.8
2.	पूंजीगत वस्तु उद्योग	6.2	14.8	17.4
3.	मध्वर्ती वस्तु उद्योग	6.0	6.4	6.1
4.	उपभोक्ता–वस्तु उद्योग	5.1	7.3	10.4
	(i) उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं	14.3	11.6	14.8
	(ii) उपभोक्ता गैर–टिकाऊ वस्तुएं	3.8	6.4	9.4
	सामान्य सूचकांक	6.4	8.5	8.3

स्रोत : Government of India, Hand Book of Industrial Statistics, 1992, Table 50, p. 150 and Table 54, p. 155.

जैसाकि इस सारण से स्पष्ट है, 1981–85 में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर 6.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी जो सातवीं योजना में बढ़कर 8.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष तथा 1990–91 में 8.3 प्रतिशत हो गई। विजय केलकर और राजीव कुमार के अनुसार, ''यह संवृद्धि दरें पिछली शताब्दी के सातवें दशक के उत्तरार्द्ध और आठवे दशक में प्राप्त 4 प्रतिशपत प्रतिवर्ष की संवृद्धि दरों की तुलना में कहीं ज्यादा हैं। वस्तुतः ये दरें पहली और दूसरी योजनाओं में प्राप्त दरों से भी अधिक हैं...''।

1980 के दशक के दशक में औद्योगिक पुनरुत्थान की इस प्रवृत्ति की ओर अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी ध्यान आकर्षित किया है। 1991 में प्रकाशित अपने एक अध्ययन में ईशर जज आहलूवालिया ने यह पाया कि 1980–81 से 1985–86 के बीच (अर्थात् 1980 के दशक के पूर्वार्द्ध में) ''विनिर्माण क्षेत्र और उस क्षेत्र के सभी उद्योग–वर्गों में, वर्धित मूल्य (value added) की संवृद्धि में काफी तेजी आई है।'' जहाँ 1966–67 से 1979–80 के बीच विनिर्माण क्षेत्र में वर्धित मूल्य में केवल 4.7 से 5.0 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई वहां 1990 के दशक के पूर्वार्द्ध में संवृद्धि की यह दर 7.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक पहुंच गई। आहलूवालिया के अनुसार 1980 के दशक में औद्योगिक पुनरुत्थान की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है उसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह बेहतर उत्पादकता का परिणाम थी। जहां 1966–67 से 1979–80 के बीच कुल साधन उत्पादकता (total factor productivity) में कोई वृद्धि नहीं हुई (वस्तुतः उसमें 0.2 से 0.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की गिरावट आई), वहां 1980 के दशक के पूर्वार्द्ध में उसमें 3.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई।

औद्योगिक पुनरुत्थान के कारण

(Casues of Industrial Recovery)

1. **नई औद्योगिक नीति और उदार राजकोषीय व्यवस्था (New industrial policy and liberal fiscal regime)**– 1980

के दशक के औद्योगिक पुनरुत्थान का एक प्रमुख कारण सरकार की औद्योगिक व व्यापार नीतियों में किए गए परिवर्तन थे। प्रमुख परिवर्तन थे–उद्योगों में प्रवेश पर प्रतिबन्धों में कमी, नई प्रौद्योगिकी, कच्चे माल व अन्य सामन के आर्यात की बेहतर व्यवसथा, तथा स्थापित क्षमता के उपयोग में लचीलेपन की अनुमति ने विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाकर एक ओर तो इस क्षमता का उचित उपयोग किया जा सके और दूसरी ओर उसकी मांग को पूरा किया जा सके। पूर्ति पक्ष से काम कर रहे इन सब कारकों को उदार राजकोषीय व्यवस्था से सहायता मिली। इस उदार राजकोषीय व्यवस्था के मुख्य्य तथ्व थे : (i) साल–दर–साल बजट में बड़े घाटे, (ii) ऊंची ब्याज दरों पर अत्यधिक ऋण लेना, तथा (iii) निर्बचत (dissaving) में वृद्धि। उदार राजकोषीय नीति के इनके पहलुओं से अर्थव्यवस्था में विनिर्मित वस्तुओं की मांग में वृद्धि हुई।

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि जहां एक ओर उदार राजकोषीय नीति से विनिर्मित वस्तुओं की समुचित मांग पैदा करने में सहायता की वहां उन औद्योगिक व व्यापार नीतियों मने इस मांग को पूरा करने के लिए वस्तुओं की पूर्ति को बढ़ाने में सहयोग दिया।

2. **कृषि क्षेत्र का योगदान (Contribution of the agriculture sector)–** कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार देश के कुछ क्षेत्रों में बड़े किसानों की आय में तेज वृद्धि हुई है। इससे विनिर्मित वस्तुओं की मांग बढ़ी है। आर0 थमाराजक्सी के अनुसार गैर–कृषि वस्तुओं के लिए ग्रामीण क्षेत्र की 1967–68 में 35 प्रतिशत सेबढ़कर 1983 में 47 प्रतिशत हो गई। इसके अलावा कृषि उत्पादन में अधिक औद्योगिक मशीनरी का प्रयोग होने लगा है।

3. **सेवा क्षेत्र पर बढ़ता व्यय (Growth of service sector)–** दिलीप स्वामी के अनुसार 1980 के दशक में सुरक्षा तथा सार्वजनिक प्रशासन सरकारी व्यय में काफी वृद्धि हुई। यह इस बात से स्पष्ट हो जाएगा कि इन सेवाओं में कार्यरत कर्मचारियों की वास्तविक आय जो 1975–80 के दौरान प्रतिवर्ष 500 करोड़ रूपये की गति से बढ़ रही थी, उसमें 1982–83 के दौरान, 1000 करोड़ रूपए की वृद्धि हुई। यह एक ऐसा उपभोक्ता वर्ग है जिसके मार्ग में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं का काफी महत्व होता है। दिलीप स्वामी के अनुसार इसी मांग के परिणामस्वरूप 1980 के दशक में औद्योगिक पुनरुत्थान में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

4. **आधारिक संरचना का योगदान (The infrastructure factor)–** 1980 के दशक में आधारिक संरचना में निवेश में काफी वृद्धि हुइ। 1992 से 1975–76 के बीच आधारिक संरचना में निवेश की वृद्धि मात्र 4.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी जो 1979–80 से 1984–85 के बीच बढ़कर 9.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई। 1985–86 में आधारिक संरचना में निवेश 16.0 प्रतिशत तथा 1986–87 में 18.3 प्रतिशत और बढ़ गया। आहलूवालिया के अनुसार, ... के दशक में आधारिक संरचना में निवेश में इस वृद्धि के साथ–साथ दक्षता (efficiency) में भी बहुत सुधार हुआ।

खण्ड–4, यूनिट–4

भारत का विदेशी व्यापार : आयात एवं निर्यात की प्रवृत्तियाँ तथा आयात एवं निर्यात नीति

अधिकतर अल्पविकसित देश काफी देर तक औपनिवेशिक शोषण का शिकार रहे हैं। यह शोषण इन पर शासन करने वाले विकसित औद्योगिक देशों ने किया। शोषण का एक मुख्य माध्यम विदेशी व्यापार था। यही कारण है कि विश्वयुद्ध के बाद जब बहुत से अल्पविकसित देश स्वतन्त्र हुए तो वे विदेशी व्यापार व विदेशी निवेश को सन्देह की नजरों में देखने लगे। इसलिए उन्होंने विदेशी व्यापार पर ज्यादा ध्यान न देकर, घरेलू बाजारों की ओर अधिक ध्यान दिया। उनमें से कई देशों ने तो औद्योगीकरण के व्यापक कार्यक्रम बनाए तथा विकसित देशों से विनिर्मित वस्तुएं मंगाने के स्थान पर, इन वस्तुओं को अपने देश में ही बड़े पैमाने पर बनाना शुरू किया। इस प्रकार इन देशों ने अन्तर्मुखी नीतियों (inward-oriented policies) को प्राथमिकता दी। इस प्रकार की नीतियों को 'आयात–प्रतिस्थापन नीति' (import substitution policy) की संज्ञा दी जा सकती है क्योंकि इनके तहत घरेलू उद्योगों को व्यापक संरक्षण दिया गया, आयातों व विदेशी निवेश पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण लगाए गए तथा विनिमय दरों को अवास्तविक स्तरों तक ऊंचा रखा गया (यह स्थिति (overvalued exchange

rate) की स्थिति कहलाती है)। जहां तक निर्यात क्षेत्र का सम्बन्ध है, उसमें निराशावादी दृष्टिकोण रहा। उदाहरण के लिए, स्वतन्त्रता के बाद काफी वर्षों तक भारत सरकार व कुछ अर्थशास्त्री यह तर्क देते रहे कि भारतीय निर्यातों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में गतिहीन व स्थिर मांग का सामना करना पड़ रहा है इसलिए निर्यात आय को बढ़ा पाना सम्भव नहीं है।

परन्तु अब परिस्थितियां बिल्कुल बदल चुकी हैं। 1960 के दशक में बहुत से विकासशील देशों ने आयात उदारीकरण (import liberalisation) की नीति को खुले रूप से अपनाया और काफी सफलता प्राप्त की। इनमें जापान, सिंगापुर, हांगकांग, दक्षिण कोरिया तथा ताइवान शामिल थे। इन देशों की सफलता से प्रेरित होकर बहुत से अर्थशास्त्रियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं (जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक प्रमुख हैं) ने आयात उदारीकरण व निर्यात प्रोत्साहन नीतियों का जोरदार समर्थन किया है और इन नीतियों को भारत जैसी अर्थव्यवस्थाओं की समस्याओं के निदान के लिए अत्यन्त आवश्यक बताया है। इन सुझावों पर काम करते हुए भारत सरकार ने पिछले कुछ वर्षों में व्यापार–उदारीकरण (trade liberalisation) की नीति को अपनाया है तथा आयात नियंत्रणों को काफी कम कर दिया है। 1991 में सरकार ने उदारीकरण की व्यापक नीति घोषित की तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को 'खोलने' के लिए 1991 व उसके बाद कई

कदम उठाए ताकि 1995 में स्थापित विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation) के तहत उभर रही नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था को 'जोड़ने' (integration) में कोई समस्या न आए। भारत सरकार ने व्यापार क्षेत्र में जो सुधार व परिवर्तन किए हैं उनकी चर्चा हम अध्याय 37 व 38 में करेंगे। इस अध्याय में हम केवल भारत के विदेश व्यापार की प्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे। यह अध्ययन निम्नलिखित भागों में विभाजित है :

- योजना काल में निर्यातों व आयातों का मूल्य
- विदेशी व्यापार की संरचना
- विदेशी व्यापार की दिशा
- 1991 के बाद भारत के विदेशी व्यापार की संवृद्धि एवं संरचना

योजना काल में निर्यातों व आयोतों का मूल्य

(VALUE OF EXPORTS AND IMPORTS IN THE PLANNING PERIOD)

सारणी 35.1 में योजना काल में भारत के विदेशी व्यापार संबंधी आंकड़े अमेरीकी मुद्रा डालर के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। जैसाकि इस सारणी से स्पष्ट है, योजनाओं के दौरान भारत के निर्यातों व

आयातों में काफी वृद्धि हुई है। 1950–51 में निर्यात 1,269 मिलियन डालर के बराबर थे जो 1980–81 में बढ़कर 8,486 मिलियन डालर तथा 2014–15 में 3,10,352 मिलियन डालर हो गए (2015–16 में निर्यात कम होकर 2,62,004 मिलियन डालर रह गए)। इसी अवधि में आयात 1,273 मिलियन डालर से बढ़कर 15,869 डालर तथा 4,48,033 मिलियन डालर हो गए (2015–16 में आयात कम होकर 3,80,356 मिलियन डालर रह गए)। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि देश को व्यापार शेष (balance of trade) में लगातार भारी घाटा उठाना पड़ा है। वस्तुतः यदि हम भारत के विदेशी व्यापार आंकड़ों का अध्ययन करें तो पाएंगे कि 1949–50 से 2015–16 की पूरी अवधि में केवल दो वर्ष ही ऐसे थे जब व्यापार शेष में अधिशेष था। यह दो वर्ष थे 1972–73 तथा 1976–77 जब भारत को क्रमशः 134 मिलियन डालर तथा 77 मिलियन डालर का अधिशेष हुआ। बाकी के सभी वर्षों में व्यापार शेष में घाटा हुआ। शोचनीय बात यह है कि व्यापार शेष में घाटा लगातार बढ़ता गया है। वस्तुतः छठी पंचवर्षीय योजना (1980–81 से 1984–85) में देश को औसतन 5985 मिलियन डालर वार्षिक घाटा हुआ। सातवीं योजना में यह घाटा औसतन 5669 मिलियन डालर बढ़कर 5932 मिलियन डालर हो गया। परन्तु सरकार ने 1991–92 में आयातों पर कड़े नियंत्रण लगाए जिससे डालर के रूप में आयातों के मूल्य में तेज गिरावट आई और व्यापार शेष में घाटा कम होकर 1546 मिलियन डालर रह गया। परन्तु आयातों में इस तेज गिरावट से औद्योगिक

गतिविधियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। औद्योगिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने 1992–93 में आयात उदारीकरण के व्यापक कदम उठाए जिससे आयात व्यय में तेज वृद्धि हुई और व्यापार शेष में घाटा बढ़कर 3345 मिलियन डालर हो गया। अगले तीन वर्षों (1993–94 से 1995–96) के दौरान निर्यात आयात में काफी वृद्धि हुई। यद्यपि आयातों में भी वृद्धि हुई तथापि कुल मिलाकर स्थिति में सुधार हुआ तथा आठवीं योजना में व्यापार शेष में औसत घाटा 3456 मिलियन डालर रह गया जो छठी और सातवीं दोनों योजनाओं की तुलना में कम था। परंतु नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002) में स्थिति बिगड़ी और व्यापार शेष में औसत घाटा बढ़कर 8412 मिलियन डालर हो गया। इसके अलावा, नौवीं योजना में व्यापार में कई उतार चढ़ाव आए। उदाहरण के लिए इस योजना के दो वर्षों 1998–99 तथा 2001–02 में निर्यात संवृद्धि दर ऋणात्मक थी जबकि दो अन्य वर्षों 1999–2000 तथा 2000–01 में निर्यात संवृद्धि दर काफी अधिक थी। 1999–2000 तथा 2000–01 में निर्यातों में होने वाली तेज वृद्धि का कारण एशिया संकट के बाद होने वाला पुनरूत्थान तथा सरकार द्वारा निर्यात प्रोत्साहन के लिए उठाए गए कदम थे। योजना का अंतिम वर्ष 2001–02 निर्यात के दृष्टिकोण से खराब था क्योंकि इस वर्ष इनमें 0.6 प्रतिशत की गिरावट आई। इसके प्रमुख कारण थे: विश्व मांग में कमी, निर्यात वस्तुओं का उत्पादन बढ़ा पाने की अक्षमता, रूपए के मूल्य में वृद्धि (appreciation) इत्यादि। नौवीं योजना के सभी वर्षों में (केवल

1999–2000 को छोड़कर जब आयातित तेल की कीमतों में तेज़ वृद्धि होने से आयातों में 17.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई) आयात अपेक्षाकृत कम रहे जिसका मुख्य कारण औद्योगिक क्षेत्र का कम विकास था।

परन्तु दसवीं पंचवर्षीय योजना में विदेशी व्यापार में काफी प्रसार हुआ। इस योजना में निर्यात वृद्धि की दर सतत् रूप से 20 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अधिक रहीऔर 2004–05 में तो यह दर 30.8 प्रतिशत तक पहुँच गई थी (जो 1975–76 के बाद सर्वाधिक वृद्धि दर थी)। 2006–07 में निर्यातों में 22.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस योजना में निर्यात दुगुने में भी अधिक हो गए (2002–03 में निर्यात आय 52719 मिलियन डालर थी जो दसवीं योजना के अंतिम वर्ष 2006–07 में 126414 मिलियन डालर तक पहुँच गई)। इस संतोषजनक उपलब्धि में बाह्य और आंतरिक दोनों कारकों का योगदान है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, अन्तर्राष्ट्रीय संवृद्धि तथा पुनरुत्थान के कारण विदेशी व्यापार में वृद्धि हुई जिसका भारत के विदेश व्यापार पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ा। जहां तक घरेलू कारकों का संबंध है, अर्थव्यवस्था को 'खोलने' का तथा निगम क्षेत्र में हो रहे पुनर्गठन का भारतीय उद्योग की प्रतिस्पर्धी क्षमता पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। घरेलू उत्पादक अपने निर्यातों पर अधिक ध्यान दे रहे हैं तथा आर्थिक सुधारों के नए वातावरण में निगम क्षेत्र नई विकास रणनीतियां अपना रहा है। आयातों में भी दसवीं योजना के दौरान काफी वृद्धि हुई। इसके मुख्य कारण थे : आयातित

तेल की कीमतों में वृद्धि, आयात–शुल्कों में कमी तथा प्रगामी (buoyant) घरेलू अर्थव्यवस्था (जिसके कारण पूंजीगत वस्तुओं, औद्योगिक कच्चे माल तथा मध्यवर्ती वस्तुओं के आयात में तेज़ वृद्धि हुई)। दसवीं योजना में आयातों में तीन गुना वृद्धि हुई (2002–03 में आयात व्यय 61412 मिलियन डालर था जो 2006–07 में बढ़कर 185747 मिलियन डालर तक पहुँच गया)। आयातों में तेज वृद्धि के परिणमास्वरूप, व्यापार शेष में घाटे में तेज़ वृद्धि हुई। 2006–07 में व्यापार शेष में घाटा 59.32 बिलियन डालर हो गया। ग्यारहवीं योजना के पहले वर्ष 2007–08 में 88.52 बिलियन डालर का भारी व्यापार घाटा हुआ। इसका इसका मुख्य कारण तेल के आयातों में 35 प्रतिशत की तेज़ वृद्धि थी (2006–07 में तेल के आयात पर व्यय 57.14 बिलियन डालर से बढ़कर 2007–08 में 79.64 बिलियन डालर हो गया)। वर्ष 2008–09 में विश्वव्यापी मंदी हुई। इसके बावजूद निर्यातों में 13.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। परन्तु 2008–09 में व्यापार शेष में 118. 4 बिलियन डालर का भारी घाटा हुआ। 2011–12 में व्यापार शेष में घाटा 183.36 बिलियन डालर तथा 2012–13 में 190.34 बिलियन डालर के रेकार्ड स्तर पर पहुँच गया। 2013–14 में स्थिति में सुधार हुआ और व्यापार शेष में घाटा कम होकर 135.8 बिलियन डालर रह गया। इसके मुख्य कारण थे निर्यातों में थोड़ी वृद्धि और आयातों में तेज गिरावट (खासतौर पर स्वर्ण के आयातों में)। 2014–15 में व्यापार शेष में घाटा थोड़ा बढ़कर 137.7 बिलियन डालर हो गया। व्यापार शेष

में घाटा कम रहने का मुख्य कारण आयातों में 16.0 प्रतिशत की गिरावट थी जो तेल की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों में 20.2 प्रतिशत की भारी गिरावट के परिणामस्वरूप हुई। जैसाकि सारणी 35.1 से स्पष्ट है, वर्ष 2015–16 में निर्यातों में 15.5 प्रतिशत क्या आयातों में 15.1 प्रतिशत की गिरावट हुई। जहाँ तक निर्यातों का संबंध है, तेल की कीमतों में गिरावट के कारण, शोधित पैट्रोलियम पदार्थों से निर्यात आय, पिछले वर्ष की तुलना में लगभग आधी रह गई। गैर–तेल निर्यातों (non-oil exports) में 8.5 प्रतिशत की गिरावट हुई–इंजीनियरिंग वस्तुओं, इलेक्ट्रानिक वस्तुओं तथा जवाहरात व गहनों, तथा चमड़ा के निर्यात में मात्रा अनुसार या मूल्य अनुसार (या दोनों अनुसार) संकुचन हुआ। आयातों में गिरावट का मुख्य कारण तेल आयातों पर खर्चे में भारी कटौती थी। 2015–16 में व्यापार शेष में घाटा 118.35 बिलियन डालर था–जो 2010–11 के बाद का निम्नतम स्तर था।

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	प्रतिशत वृद्धि दर	
				निर्यात	आयात
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1950-51	1269	1273	-4	24.9	-1.5
1960-61	1346	2353	-1007	0.2	16.7
1970-71	2031	2162	-131	8.8	3.5
1979-80	7947	11321	-3374	13.9	36.4

1980-81	8486	15869	-7383	6.8	40.2
1985-86	8904	16067	-7163	-9.9	11.5
1989-90	16612	21219	-4607	18.9	8.8
1990-91	18143	24075	-5932	9.2	13.5
1991-92	17865	19411	-1546	-1.5	-19.4
1992-93	18537	21882	-3345	3.8	12.7
1994-95	26330	28654	-2324	18.4	22.9
1995-96	31795	36675	-4880	20.8	28.0
2000-01	44076	49975	-5899	20.0	0.5
2004-05	83536	111517	-27981	30.8	42.7
2005-06	103091	149166	-46075	23.4	33.8
2006-07	126414	185735	-59321	22.6	24.5
2007-08	163132	251654	-88522	29.0	35.5
2008-09	185295	303696	-118401	13.7	20.8
2009-10	178751	288374	-109622	-3.5	-5.0
2010-11	251136	369769	-118633	40.5	28.2
2011-12	305964	489319	-183356	21.8	32.3
2012-13	300401	490737	-190336	-1.8	0.3
2013-14	314416	450214	-135798	4.7	-0.3
2014-15	310352	448033	-137681	-1.3	-0.5
2015-16	262004	380356	-118353	-15.6	-15.1
स्रोतः Government of India, Economic Survey 2015-16, (Delhi,					

2016), Volume II, Statistical Appendix, Table 7.1(B), pp. A100-A

विदेशी व्यापार की संरचना

(COMPOSITION OF FOREIGN TRADE)

विदेशी व्यापार की संरचना से तात्पर्य आयात और निर्यात के स्वरूप से होता है। प्रायः किसी भी देश के विदेशी व्यापार की संरचना पर गौर करने से हमें उस देश की विकास प्रक्रिया के साथ–साथ उसके आर्थिक विकास के स्तर के विषय में भी पता चलता है। उदाहरणार्थ, देश विदेश के विदेशी व्यापार की संरचना पर ध्यान देने से यदि स्पष्ट होता है कि वह खाद्यान्न और कच्चे पदार्थों का आयात निर्यात वस्तुओं, मशीनों तथा संयंत्रों का निर्यात करता है तो हम विश्वास के साथ इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह देश आर्थिक विकास का ऊंचा स्तर प्राप्त कर चुका है। इसके विपरीत यदि कोई देश चाय, काफी, जूट, चीनी आदि वस्तुओं का निर्यात करता है और बदले में पूँजीगत उपकरणों और विनिर्मित माल का आयात करता है तो निश्चित रूप से यह कह सकना सम्भव होगा कि वर्तमान में अल्पविकसित है और इसमें औद्योगिक विकास की प्रक्रिया चल रही है।

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के शुरू होने से पहले भारी मात्रा में विनिर्मित वस्तुओं का आयात होता था और निर्यातों में जूट, चाय, सूती वस्त्र, खालें, मैंगनीज, अभ्रक इत्यादि पदार्थ उल्लेखनीय थे। आयोजन

काल में आयात और निर्यात दोनों ही के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं जिन्हें समझने के लिए विभिन्न समय बिन्दुओं पर आयात और निर्यात की वस्तुओं पर गौर करना जरूरी होगा।

आयातों की संरचना

(Composition of Imports)

1947–48 में भारत के प्रमुख आयात (महत्त्व के अनुसार) निम्नलिखित थे : सभी प्रकार की मशीनरी, तेल (खाद्य, खनिज तथा पशु), अनाज, दालें व आटा, कपास, वाहन (रेल व इंजन के अलावा), कटलरी, लोहे का सामान, औजार व उपकरण, रसायन, दवाइयां व औषधियां, रंग व रंग–सामग्री, अन्य सूत (या धागा) तथा सूती कपड़ा, कागज, कागज़ के बोर्ड तथा लेखन–सामग्री तथा लोहा व इस्पात के अलवा अन्य धातुएं। कुल आयातों में इन सब आयातों का हिस्सा 70 प्रतिशत से अधिक था।

आर्थिक नियोजन प्रारम्भ होने के समय पूँजीगत वस्तुओं का आयात अधिक नहीं था। परन्तु महलानोबिस मॉडल (Mahalanobis Model) पर आधारित दूसरी योजना के अन्तर्गत आधारभूत उद्योगों की स्थापना को जब प्राथमिकता क्रम में ऊंचा स्थान दिया गया तो देश में बड़े पैमाने पर पूँजीगत उपकरणों का आयात शुरू हुआ। कुछ वर्षों बाद इन उपकरणों के रख–रखाव के लिए बड़े पैमाने पर कलपुर्जों तथा मशीनरी का आयात करना पड़ा। इस प्रकार अनुरक्षण आयातों

(maintenance imports) में काफी वृद्धि हुई। भारत में आयातों की संरचना के बारे में 1960–61 से बाद की जानकारी सारणी 35.2 में दी गई है।

सुविधा के लिए भारत के आयातों को चार वर्गों में बांट दिया गया है : (i) खाद्य–उपभोग पदार्थ (Food and live animals chiefly for food), (ii) कच्चे पदार्थ तथा मध्यवर्ती विनिर्मित वस्तुएं (Raw materials and intermediate manufactures), (iii) पूँजीगत वस्तुएं (Capital goods), तथा (iv) अन्य अथवा अवर्गीकृत वस्तुएं (Other goods)। सारणी 33.2 से स्पष्ट होता है कि 1960–61 में कुल आयात 2353 मिलियन डालर के थे जिसमें इन चार वर्गों का हिस्सा क्रमशः 19.1, 47.0, 31.7 तथा 2.2 प्रतिशत था। समय के साथ इन चार वर्गों के सापेक्षिक महत्व में काफी परिवर्तन हुआ है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि खाद्य–उपभोग वस्तुओं के आयात में तेज़ गिरावट आई है। इसका कारण अनाज और अनाज उत्पाद के आयात में होने वाली कमी है। उदाहरण के लिए, अनाज और अनाज उत्पाद का कुल आयात में हिस्सा 1960–61 में 16.1 प्रतिशत से कम होकर 2014–15 में लगभग शून्य हो गया। दूसरी ओर, कच्चे पदार्थों व मध्यवर्ती विनिर्मित वस्तुओं के हिस्से में तेज वृद्धि हुई। इसका कारण पैट्रोलियम व लुब्रिकेंट तथा रत्न, मोती व बहुमूल्य पत्थरों का बढ़ता

हुआ आयात है। 1960–61 में पूंजीगत वस्तुओं का आयात व्यय में हिस्सा 31.7 प्रतिशत और 2014–15 में 20.1 प्रतिशत था।

आयात संरचना के बारे में मुख्य तथ्य निम्नलिखित हैं :–

1. पैट्रोलियम तेल और लुब्रिकेंट पर आयात व्यय में तेज वृद्धि हुई है। 1960–61 में पैट्रोलियम तेल और लुब्रिकेंट का आयात व्यय में हिस्सा 6.1 प्रतिशत तथा 1970–71 में 8.3 प्रतिशत था। 1980–81 में यहबढ़कर 41.9 प्रतिशत हो गया। इस अभूतपूर्व वृद्धि का प्रमुख कारण तेल निर्यातक देशों के संगठन (Organisation of Petroleum Exporting Countries) द्वारा पहले 1973–74 में और फिर बाद में 1978–79 में तेल की कीमतों में तेज वृद्धि का किया जाना था। 1973–74 में तेल की कीमतों को 2.50 से 3.00 डालर प्रति बैरल से बढ़ाकर एकदम 11.65 डालर प्रति बैरल कर दिया गया था। 1978–79 में कीमत को 35.00 डालर प्रति बैरल तक बढ़ा दिया गया। 1980 के दशक में घरेलू तेल उत्पादन में काफी वृद्धि हुई तथा तेल की कीमतों में भी नरमी आई। इन प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप पेट्रोलियम तेल और लुब्रिकेंट का आयात व्यय में हिस्सा कम हो गया। 1990–91 में यह 25.0 प्रतिशत था। प्रतिशत के रूप में 1990 के दशक में पेट्रोलियम तेल और लुब्रिकेंट का हिस्सा 25.0 प्रतिशत से 30 प्रतिशत के बीच रहा है। 2014–15 में पेट्रोलियम

तेल और लुब्रिकेंट के आयात पर 1,38,326 डालर खर्च किए गए जो कुल आयात व्यय का 30.9 प्रतिशत था। परन्तु 2015–16 में अन्तर्राष्ट्रीय तेल कीमतों में गिरावट के कारण, इस वर्ष पेट्रोलियम तेल और लुब्रिकेंट के आयात कम होकर 82,880 मिलियन डालर रह गए जो कुल आयात व्यय का 21.8 प्रतिशत था।

2. 1999–2000 से स्वर्ण तथा चांदी के आयात–सम्बन्धी आंकड़े उपलब्ध हो गए हैं क्योंकि अब इनका आयात सरकारी माध्यमों से होता है। इसलिए सारणी 35.2 में 'अलौह धातुओं' के 2014–15 एवं 2015–16 के आयात आंकड़ों में स्वर्ण तथा चांदी के आयात भी शामिल हैं। 2015–16 में अलौह धातुओं के आयात पर व्यय 45,042 मिलियन डालर था जो कुल आयात व्यय का 11.8 प्रतिशत था।

3. हाल के वर्षों में इलेक्ट्रानिक वस्तुओं के आयातों में तेज़ वृद्धि हुई है। 2015–16 में इलेक्ट्रानिक वस्तुओं के आयात पर व्यय 40,012 मिलियन डालर था जो इस वर्ष के कुल आयात व्यय का 10.5 प्रतिशत था।

4. जवाहर और आभूषण उद्योग (जो अब एक प्रमुख निर्यातक उद्योग है) की बढ़ती हुई मांग को देखते हुए, मोती व बहुमूल्य रत्नों के आय में तेज वृद्धि हुई है। 1993–94 में मोती व बहुमूल्य रत्नों

का कुल आयात में हिस्सा 11.3 प्रतिशत था और इनका स्थान दूसरा था। 2015–16 में ये बहुमूल्य रत्नों पर आयात व्यय 20,072 मिलियन डालर था जो कुल आयात व्यय का 5.3 प्रतिशत था।

वस्तुएं		1960–61		1970–71		1980–81		1990–91		2014–15		2015–16	
		मिलियन डालर	कुल का प्रतिशत	मिलियन डालर	कुल का प्रतिशत	मिलियन डालर	कुल का प्रतिशत	मिलियन डालर	कुल का प्रतिशत	मिलियन डालर	कुल का प्रतिशत	मिलियन डालर	कुल का प्रतिशत
1.	**खाद्य उपभोग वस्तुएं**	**449**	**19.1**	**321**	**14.8**	**481**	**3.0**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**
	जिनमें अनाज और अनाज उत्पाद	380	16.1	282	13.0	127	0.8	102	0.4	117	0.0	उ0न0	उ0न0
2.	**कच्चे पदार्थ और मध्यवर्ती विनिर्मित वस्तुएं**	**1105**	**47.0**	**1176**	**54.4**	**12341**	**77.8**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**
(i)	खाद्य तेज	8	0.4	31	1.4	857	5.4	182	0.8	10621	2.4	10483	2.8
(ii)	पेट्रालियम तेल और लुब्रिकेंट	145	6.1	180	8.3	6656	41.9	6028	25.0	138326	30.9	82880	21.8
(iii)	उर्वरक और उर्वरक सामग्री	27	1.1	113	5.3	1034	6.5	984	4.1	7399	1.7	7995	2.1
(iv)	लोहा व इस्पात	258	11.0	194	9.0	1078	6.8	1178	4.9	16301	3.6	14961	3.9
(v)	रासायनिक तत्व और यौगिक	82	3.5	90	4.2	453	2.8	1276	5.3	23899	5.3	21678	5.3

(vi)	मोती और बहुमूल्य रत्न	2	0.1	33	1.5	527	3.3	2083	8.7	22598	5.0	20072	5.4
(vii)	अलौह धातुएं	99	4.2	158	7.3	604	3.8	614	2.5	49676	11.1	45042	11.1
3.	**पूंजीगत वस्तुएं**	**747**	**31.7**	**534**	**24.7**	**2416**	**15.2**	**6495**	**24.2**	**90170**	**20.1**	**उ0न0**	**उ0न0**
(i)	गैर–विद्युतीय तथा विद्युतीय मशीनरी	546	23.2	474	20.1	1705	10.8	3312	13.7	30436	6.7	29452	7.0
(ii)	इलेक्ट्रानिक वस्तुएँ	उ0न0	उ0न0	उ0न0	उ0न0	उ0न0	उ0न0	उ0न0	उ0न0	36872	8.2	40012	10.0
(iii)	परिवहन सम्बन्धी उपकरण	151	6.4	88	4.1	597	3.8	931	3.9	18345	4.1	17872	4.0
4.	**अन्य (अवर्गीकृत)**	**52**	**2.2**	**131**	**6.1**	**631**	**4.0**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**	**उ0न0**
कुल		**2253**	**100.0**	**2162**	**100.0**	**15869**	**100.0**	**24075**	**100.0**	**448033**	**100.0**	**380356**	**100.0**

टिप्पणी : उ0न0 का अर्थ है कि आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।

1999–2000 से स्वर्ण और चांदी के आयात संबंधी आंकड़े उपलब्ध हैं (क्योंकि अब इनका आयात सरकारी माध्यम से होता है)। इसलिए 2014–15 तथा 2015–16 के अलौह धातुओं के आयात में स्वर्ण एवं चांदी के आयात शामिल हैं।

स्रोत : Reserve Bank of India, Handbook of Statistics on Indian Economy 2015-16 (Mumbai, 2016), Table 130, p. 199; and Government of India, Economic Survey 2015-16 (Delhi, 2016), Volume II, Statistical Appendix, Table 7.2(A), pp.-A103-A 104.

5. गैर–विद्युतीय तथा विद्युतीय मशीनरी पर आयात–व्यय में तेज़ वृद्धि हुई है। इस मद पर खर्च 1970–71 में 434 मिलियन डालर था जो 2015–16 में बढ़कर 29,452 मिलियन डालर हो गया। प्रतिशत के रूप में, कुल आयात व्यय में इस मद का हिस्सा 1970–71 में 20.1 प्रतिशत तथा 2015–16 में 7.7 प्रतिशत था।

6. बढ़ती हुई घरेलू मार्ग के कारण, कुछ वर्षों में खाद्य तेलों का ....। उदाहरण के लिए, 1997–98 में 969 मिलियन डारल मूल्य के खाद्य तेल आयात किए गए जो कुल आयातों का 4.4 प्रतिशत था। 2015–16 में खाद्य तेलों का आयात 10,483 मिलियन डालर था जो कुल आयात व्यय का 2.8 प्रतिशत था।

7. लोहा और इस्पात के बढ़ते हुए घरेलू उत्पादन के बावजूद इनका काफी मात्रा में आयात करना पड़ता है क्योंकि मांग की तुलना में घरेलू उत्पादन कम है। कुल राशि के रूप में तो लोहा और इस्पात पर आयात व्यय 1970–71 में 194 मिलियन डालर से बढ़कर 2015–16 में 14,961 मिलियन डालर तक पहुंच चुका है परन्तु प्रतिशत के रूप में यह 1970–71 में 9 प्रतिशत से गिरकर 2015–16 में 3.9 प्रतिशत रह गया है।

8. उर्वरकों पर आयात व्यय में भी काफी वृद्धि हुई है। 1970–71 में यह 113 मिलियन व्यय डालर था जो बढ़ते–बढ़ते 1995–96 में

1,683 मिलियन डालर तक पहुंच गया। इस बढ़ते हुए आयात व्यय के दो मुख्य कारण निम्नलिखित हैं : (i) नई कृषि युक्ति को लागू करने के लिए उर्वरकों का बढ़ता हुआ प्रयोग तथा (ii) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में उर्वरकों की बढ़ती हुई कीमतें। उर्वरकों पर आयात व्यय 1970–71 से 1995–96 के दौरान कुल आयात व्यय के 3.5 प्रतिशत से 6 प्रतिशत के बची रहा है। परन्तु 2015–16 में उर्वरकों पर आयात व्यय 7,995 मिलियन डालर था जो आयात व्यय का 2.1 प्रतिशत था।

9. अर्थव्यवस्था की घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कई वर्षों तक खाद्यान्नों का काफी मात्रा में आयात करना पड़ा है। 1960–61 में तो कुल आयात व्यय में इनका हिस्सा 16 प्रतिशत था। हरित क्रान्ति के बावजूद और खाद्यान्नों के उत्पादन व उत्पादकता में वृद्धि के बावजूद, 1970–71 में कुल आयात में खाद्यान्न आयात का हिस्सा 13 प्रतिशत था जो 1975–76 में तो बढ़कर 25.5 प्रतिशत (अर्थात् एक–चौथाई) हो गया। परन्तु बाद के वर्षों में खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि होने से, आयातों में तेज कमी आई हालांकि कुछ वर्षों में खाद्यान्नों के भंडार में वृद्धि करने के लिए, उनका आयात किया गया। 2014–15 में कुल 117 मिलियन डालर मूल्य के अनाज और अनाज उत्पादों का आयात किया गया।

खण्ड–4, यूनिट–5

भारत का भुगतान संतुलन

इस अध्याय में हम निम्नलिखित विषयों का अध्ययन करेंगे :

- भुगतान–शेष का अर्थ
- 1991 से पूर्व की अवधि में भारत के भुगतान शेष की स्थिति
- 1991 के बाद भुगतान शेष की स्थिति
- भुगतान–शेष के प्रबन्धन से संबंधित मुद्दे
- चुनौतियां और दृष्टिकोण

भुगतान शेष का अर्थ
(MEANING OF BALANCE OF PAYMENTS)

भुगतान–शेष व्यापार–शेष की तुलना में अधिक व्यापक अर्थी शब्द है। **किसी भी देश का भुगतान–शेष एक निश्चित अवधि में उसके शेष विश्व के साथ मौद्रिक सौदों का लेखा होता है।** देश विशेष के भुगतान उसके आयात–निर्यात से ही सम्बन्धित नहीं होते। सेवाओं तथा अन्य प्रकार के अदृश्य व्यापार के लिए भी भुगतान किए जाते हैं। विदेशी बैंकों, जहाजी और बीमा कम्पनियों के भुगतान, विदेशी विशेषज्ञों

की सेवाओं के लिए प्रतिफल, विदेशी ऋणों पर ब्याज, उपहार इत्यादि अदृश्य व्यापार की श्रेणी में आते हैं।

भुगतान–शेष में व्यापार–शेष की भांति घाटा या अतिरेक नहीं होता। बही–खाते के सिद्धांतों के अनुसार चूँकि समस्त देन समस्त लेन के बराबर होने आवश्यक हैं, अतः भुगतान–शेष सदा समानता की स्थिति में होते हैं। परन्तु प्रत्येक देश को इस सम्बन्ध में सजग रहना चाहिए कि उसके भुगतान–शेष का साम्य किस प्रकार हुआ है। यदि भुगतान शेष में लेन और देन दोनों ही पक्षों में समानता सहज स्वाभाविक ढंग से प्राप्त हो तो देश के लिए चिन्ता का कोई कारण नहीं है। स्थिति उस समय असंतोषजनक होती है जब किसी देश के चालू भुगतान उसकी प्राप्तियों से अधिक होते हैं और यह देश विदेशी ऋण लेकर अथवा विदेशी विनिमय कोष से विदेशी मुद्राओं का खर्च करके अपने देन और लेन के बीच संतुलन स्थापित करता है। इस स्थिति को किसी भी देश के भुगतान लेखे पर गौर करने से आसानी से समझा जा सकता है। भुगतान–शेष लेखे दो भागों में तैयार किए जाते हैं। पहला भाग चालू खाता होता है जिसमें दृश्य (visible) और अदृश्य (invisible) आयात और निर्यात से सम्बन्धित भुगतान और प्राप्तियों का लेखा होता है। दूसरे भाग में पूँजीगत भुगतान और प्राप्तियों का लेखा होता है। जब भी चालू खाते से प्राप्तियाँ और भुगतान और पूँजी खाते में व्यावसायिक दृष्टि से होने वाली प्राप्तियाँ

और भुगतान मिलाकर बराबर नहीं होते तो असन्तुलन की स्थिति मानी जाती है, यद्यपि चालू खाते और पूँजी खाते को मिलाकर समस्त लेन की राशि समस्त देश की राशि के बराबर होती है। भुगतान–शेष लेखे के सम्बन्ध में एक अन्य बात जो समझ लेनी चाहिए, वह यह है कि जब भुगतान–शेष में घाटा होता है तो पूँजी खाते में उतनी ही राशि की समायोजन की दृष्टि से अतिरिक्त प्राप्तियाँ होती हैं। भुगतान–शेष में अतिरेक होने पर ठीक उसी राशि के समायोजन की दृष्टि से भुगतान होते हैं।

भारत का भुगतान–शेष : 1991 से पूर्व की अवधि
(INDIA'S BALANCE OF PAYMENTS : THE PRE-1991 PERIOD)

जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो उसके पास 1,733 करोड़ रुपए के पौंड पावने (Sterling Balances) थे। इसका कारण यह था कि दूसरे विश्व युद्ध में इंग्लैण्ड ने भारत से बड़ी मात्रा में, अपनी युद्ध की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, खरीददारी की। इस प्रकार आजादी के समय विदेशी विनिमय की स्थिति संतोषजनक थी। परन्तु आजादी मिलने के बाद जैसे ही युद्ध काल की रूकी हुई मांग को पूरा करने के लिए तथा खाद्यान्नों व कच्चे माल की की को पूरा करने के लिए आयातों में वृद्धि हो गई, व्यापार शेष प्रतिकूल हो गया। घाटे की पूर्ति पौंड पावने से करनी पड़ी।

पहली योजना में व्यापार शेष में कुल घाटा 541.9 करोड़ रुपये था। परन्तु अदृश्य मदों पर काफी अधिशेष होने के कारण, भुगतान–शेष की स्थिति संतोषजनक थी। वस्तुतः भुगतान–शेष के चालू खाते में घाटा केवल 42.3 करोड़ रुपए था।

1956–87 के बाद के काल को बिमल जालान ने तीन अवधियों में विभाजित किया है– 1956–87 से 1975–76 तक (अवधि I), 1976–77 से 1979–80 (अवधि II) तथा 1980–81 से लेकर 1992–93 तक (अवधि III)। यह वर्गीकरण भुगतान–शेष की समस्या के स्वरूप के आधार पर, कुल समष्टि वातावरण के आधार पर तथा विदेशी सहायता की उपलब्धि के आधार पर किया गया है। पहली व तीसरी अवधि में भुगतान–शेष की स्थिति बहुत गंभीर थी। इसके विपरीत, दूसरी अवधि में भुगतान–शेष की स्थिति अनुकूल थी तथा विदेशी विनिमय के काफी भण्डार थे। **किसी वर्ष में भुगतान–शेष की समस्या है अथवा नहीं, यह जानने के लिए बिमल जालान ने निम्न दो कसौटियों का प्रयाग किया है : (i) चालू खाते में घटा कितना हुआ तथा (ii) विदेशी मुद्रा के भंडार कितने हैं। यदि किसी वर्ष में चालू खाते में घाटा कुल घरेलू उत्पाद के 1 प्रतिशत से अधिक है तथा विदेशी मुद्रा के भण्डार तीन महीने के आयातों के लिए काफी नहीं हैं तो यह कहा जा सकता है कि उस वर्ष में भुगतान–शेष की समस्या है।** दूसरी अवधि में चालू खाते में घाटा, कुल घरेलू उत्पाद के 1

प्रतिशत से कम था और विदेशी मुद्रा के भंडार तीन महीने से अधिक के आयातों के लिए काफी थे। इसलिए इस अवधि में भुगतान–शेष की स्थिति संतोषजनक थी। पहली और तीसरी अवधियों में चालू खाते में घाटा, कुल घरेलू उत्पाद के 1 प्रतिशत से अधिक था। परन्तु इन अवधियों में कुछ वर्ष ऐसे अवश्य थे जब विदेशी मुद्रा के भण्डार तीन महीने की आयात आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काफी थी। फिर भी, कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि पहली व तीसरी अवधियों में भुगतान शेष की स्थिति काफी गंभीर बनी रही।

भुगतान–शेष के चालू खाते में घाटा

(Current Account Deficit in Balance of Payments)

अवधि I – 1956–57 से 1975–76 : इस अवधि में दूसरी, तीसरी व चौथी योजनाएं तथा पाँचवीं योजना के पहले दो वर्श शामिल हैं। इस पूरे काल में भुगतान–शेष में काफी घाटे हुए और देश की भुगतान स्थिति नाजुक रही। आइए अब इस अवधि में शामिल योजनाओं में भुगतान–शेष की स्थिति क्या थी इस पर विचार करें। दूसरी योजना में अपनाई गई विकास–युक्ति में आधारभूत व पूँजीगत वस्तु उद्योगों को मुख्य प्राथमिकता दी गई। इसके लिए बड़ी मात्रा में पूंजी उपकरणों, मशीनरी व तकनीकी ज्ञान का आयात किया गया। दूसरी योजना की पूरी अवधि में निर्यात आय स्थिर थी तथा आयातों का मूल्य निर्यातों के मूल्य की तुलना में दुगुना था। इसके

परिणामस्वरूप, व्यापार शेष में 2,261.3 करोड़ रुपए का घाटा हुआ। संतोष की बात केवल यह थी कि अदृश्य मदों पर प्राप्ति, व्यय से अधिक थी इसलिए चालू खाते में घाटा कम होकर 1,646 करोड़ रूपये रह गया। तीसरी योजना में भुगतान शेष में घाटा 1,972 करोड़ रुपए था जो चौथी योजना में बढ़कर 2,221 करोड़ रुपए हो गया।

तेल निर्यातक देशों के संगठन (OPEC) ने 1973 के मध्य में कच्चे तेल की कीमतों को 2.50 से 3.00 डालर प्रति बैरल से बढ़ाकर एकदम 1974 के आरम्भ में 11.65 डालर प्रति बैरल तक पहुंचा दिया – अर्थात् लगभग चार गुना कर दिया। स्वाभाविक है कि इसका तेल आयात करने वाले देशों पर बहुत बुरा असर पड़ा और उनके आयात व्यय में तेज वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए, भारत का आयात व्यय जो 1973–74 में (अर्थात् चौथी योजना के अन्तिम वर्ष में) 2,729.3 करोड़ रूपये था, 1974–75 में (अर्थात् पांचवी योजना के प्रथम वर्ष में) एकदम बढ़कर 4,156.9 करोड़ रूपये हो गया–अर्थात् एक वर्ष के भीतर इसमें 1,427.6 करोड़ रूपये की वृद्धि हुई। इस वृद्धि में से 596.6 करोड़ रूपये (अर्थात् 42.0 प्रतिशत) की वृद्धि पेट्रोलियम तेल और लुब्रिकेंट के कारण थी। तेल की कीमतों में अभूतपूर्व वृद्धि के कारण, 1974–75 में देश को व्यापार शेष में रिकार्ड 977.2 करोड़ रूपये का घाटा हुआ। अदृश्य मदों पर 216.6 करोड़ रूपये की शुद्ध आय होने के बावजूद, चालू खाते में इस वर्ष 760.6 करोड़ रूपये का घाटा हुआ।

अवधि II – 1976–77 से 1979–80 : 1991 से पूर्व की अवधि में केवल चार वर्ष (1976–77 से 1979–80 तक) ऐसे थे जब भुगतान–शेष की स्थिति अच्छी कही जा सकती है। इस अवधि में चालू खाते में घाटे के स्थान पर अधिशेष था और यह अधिशेष, कुल घरेलू उत्पाद का 0.6 प्रतिशत था। इसके अलावा, विदेशी मुद्रा के भण्डार इतने थे कि देश सात महीनों के आयातों का भुगतान कर सकता था। भुगतान–शेष की स्थिति संतोषजनक होने के कई कारण थे जैसाकि निम्न विवेचन से स्पवष्ट हो जाएगा : (1) पहली बात तो यह है कि तेल निर्यातक देशों में बड़े पैमाने पर भारतीय लोग जाकर काम करने लगे (कई कुशल श्रमिकों के रूप में तथा कई अकुशल श्रमिकों के रूप में)। ये लोग भारत में रहने वाले अपने परिवारजनों को अपनी आय का एक हिस्सा भेजते रहे। इस प्रकार, खाड़ी देशों से भारतीयों द्वारा निजी प्रेषणों (private remittances) में तेज वृद्धि हुई। पांचवीं योजना में भारत को निजी खातों पर हस्तांतरित आय (transfer payments to India on private account) 3,128.7 करोड़ रूपये प्राप्त हुई। (2) दूसरी महत्वपूर्ण बात यह हे कि 1975–76 में, 1974–75 की अपेक्षा, भारत की निर्यात आय में 31 प्रतिशत तथा 1976–77 में 1975–76 की अपेक्षा, 23 प्रतिशत की वृद्धि हुई (मूल्य को रूपये में व्यक्तकिया गया है)। इस अवधि में अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण व्यापार के अनुकूल था जिससे मूल्यानुसार (in value terms) व्यापार में 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि होती रही। (3) तेल संरक्षण (oil

conservation) के लिए उठाए गए कदमों के कारण तथा देश में ही तेल के उत्पादन में वृद्धि के कारण, तेल का आयात और बढ़ने से रोकने में देश को सफलता मिली। (4) मध्य पूर्व के तेल निर्यातक देशों में कई भारतीय कंपनियों को काम करने के काफी बड़े ठेके मिले। भारतीय कंपनियों ने इन देशों में सड़कें, हवाई अड्डे, गृह–निर्माण कार्यों, पावर स्टेशन, इस्पात मिलें इत्यादि बनाने के ठेके प्राप्त किए। इन निर्माण सेवाओं के निर्यात तथा इनमें प्रयोग होने वाली कुछ वस्तुओं के निर्यात से देश को काफी बड़ी मात्रा में विदेशी विनियम प्राप्त हुआ तथा (5) विदेशी सहायता प्राप्त होती रही और 1973–74 से 1975–76 के बीच अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से राशि निकलने की भारत को छूट मिलती रहीं।

अवधि III – 1980–81 से 1992–93 : इस अवधि में भुगतान शेष की समस्या काफी गंभीर रही। वस्तुतः छठी योजना के पहले चार वर्षों में (1980–81 से 1983–84 तक) व्यापार शेष में घाटा प्रतिवर्ष लगभग 6000 करोड़ रूपये या उससे अधिक था। योजना के अन्तिम वर्ष 1984–85 में तो यह घाटा बढ़कर 6,721 करोड़ रूपये हो गया। सातवीं योजना के प्रथम तीन वर्षों (1985–86 से 1987–88) में व्यापार शेष में घाटा प्रतिवर्ष 9,000 करोड़ रूपये से भी ज्यादा हो गया। चौथे और पांचवें वर्ष (1988–89 तथा 1989–90) में व्यापार शेष में घाटा 12,000 करोड़ रूपये प्रतिवर्ष को भी पार कर गया। इससे भुगतान शेष

की गंभीर स्थिति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। 1990–91 में तो व्यापार शेष में घाटा 16,934 करोड़ रूपए तक पहुंच गया। यह 1991–92 में कम होकर 6,495 करोड़ रूपए रह गया परन्तु 1992–93 में इसमें फिर वृद्धि हुई और यह 14,101 करोड़ रूपये हो गया।

पूरी छठी योजना में अदृश्य मदों से काफी आय हुई। 1980–81 में अदृश्य मदों से आय 4,311 करोड़ रूपये तक पहुंच गई। योजना के अन्य वर्षों में अदृश्य मदों से आय थोड़ा कम हुई परन्तु प्रत्येक वर्ष यह आय 3,500 करोड़ रूपये या उससे अधिक थी। परन्तु सातवीं योजना में मध्य पूर्व देशों से आने वाले निजी प्रेषणों में गिरावट आई जिसके परिणामस्वरूप अदृश्य मदों से आय कम होते–होते 1989–90 में 1,025 करोड़ रूपये रह गई। जहां छठी योजना में व्यापार घाटे के औसतन 60 प्रतिशत की भरपाई अदृश्य मदों द्वारा की जा सकी थी वहां सातवीं योजना में अदृश्य मदों से व्यापार घाटे के केवल 24 प्रतिशत की भरपाई की जा सकी। 1990–91 में खाड़ी युद्ध के कारण भुगतान शेष की समस्या और गंभीर हो गई। व्यापार शेष में 16,934 करोड़ रूपये के भारी घाटे के साथ, अदृश्य मदों से आय भी ऋणात्मक हो गई। इसका कारण निजी खातों में कम प्राप्तियां और ब्याज भुगतान का भारी बोझ था। **चालू खाते में घाटा बढ़कर 17,369 करोड़ रूपये तक पहुँच गया।**

पूंजी खाता : घाटे को पूरा करने के साधन

(Capital Account : Financing the Deficit)

भुगतान–शेष के पूंजी खाते के अध्ययन से यह पता लगता है कि चालू खाते को किस तरह पूरा किया गया। **अवधि–I तथा अवधि–II में लगभग सारा घाटा नियायती दरों पर प्राप्त सहायता से भरा गया था जिसके परिणामस्वरूप ऋण–सेवा प्रभार कम था। इसके विपरीत, अवधि–III में घाटे का काफी बड़ा अंश (वस्तुतः सम्पूर्ण अतिरिक्त घाटा) गैर–रियायती दरों (या बाजार दरों) पर प्राप्त ऋणों से पूरा करना पड़ा।** जैसाकि जालान ने कहा है, 1980 में विभिन्न संस्थाओं से प्राप्त सहायता का 89 प्रतिशत अंश रियायती दरों पर प्राप्त किया गया था। 1990 तक आते–आते यह अंश मात्र 35 प्रतिशत रह गया। सरकारी स्तर पर प्राप्त ऋणों की भुगतान–अवधि 1980 में 40.8 वर्ष थी जो 1990 तक कम होते–होते 29.1 वर्ष रह गई। इस प्रकार विदेशी सहायता या ऋणों के स्वरूप में भारी अंतर आ गया–ऋणों पर ब्याज की दर बढ़ गई और अदायगी की अवधि कम हो गई। इसके परिणामस्वरूप, कुल विदेशी ऋण में तेज़ बढ़ोतरी हुई। 1984–85 के बाद चालू खाते पर बढ़ते हुए घाटे को भरने के लिए वित्तीय साधन विदेशी वाणिज्यिक उधार (external commercial borrowings) तथा अनिवासी भारतीय जमाओं (non-resident deposits) से प्राप्त करने पड़े। उदाहरण के लिए, विदेशी सहायता में विदेशी वाणिज्यिक

उधार तथा अनिवासी भारतीय जमाओं का हिस्सा 1980 में 16.1 प्रतिशत था जो बढ़कर 1986 में 29.4 प्रतिशत तथा 1991 में 39.9 प्रतिशत हो गया। परन्तु 'उच्च लागत' वाली वित्तयन की इन दो विधियों के बावजूद, बढ़ते हुए चालू खाते के घाटे को पाटा नहीं जा सका और सरकार को अल्पकालीन ऋणों (short term debts) का सहारा लेना पड़ा जो अत्यधिक अनिश्चित, महंगे तथा सरकारी नीतियों के प्रति विदेशी ऋणदाताओं का प्रत्यारोपण .... । **भारत सरकार की वित्तयन के लिए इन तीन महंगे स्त्रोतों पर निर्भरता के परिणामस्वयप ऋण सेवा प्रभार में तेज़ वृद्धि हुई।** 1980 के दशक के पूर्वार्द्ध में वस्तुओं व सेवाओं के निर्यातों से विदेशी विनियम प्राप्तियों के प्रतिशत के रूप में व्यक्त ऋण सेवा प्रभार 13 प्रतिशत था जो 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में बढ़कर औसतन 27.6 प्रतिशत तथा 1990–91 में 31.6 प्रतिशत के उच्च स्तर तक पहुँच गया।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, अवधि I व अवधि III में मुख्य अन्तरन वित्तीयन के तरीके को लेकर है। जहां अवधि I में घाटे की पूर्ति नियायती दरों पर प्राप्त सहायता द्वारा हुई वहां अवधि III में घाटे के एक बड़े भाग की पूर्ति उच्च लागत पर प्राप्त किए गए ऋणों द्वारा हुई। जालान ने एक और अन्तर की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। उनके अनुसार, अवधि III में, अवधि अवधि I की अपेक्षा, व्यापक प्रसारात्मक नीतियां अपनाई गईं। इसके परिणामस्वरूप केन्द्र और राज्य

सरकारों का संयुक्त राजकोषीय घाटा जो अवधि I में कुल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत था, अवधि III में काफी बढ़ गया और 1990–91 में 12.1 प्रतिशत तक जा पहुंचा। अवधि III में सरकार ने आयात उदारीकरण तथा औद्योगिक उदारीकरण की नीति को व्यापक आधार पर लागू किया। वस्तुतः 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में (1985–86 से 1990–91 के बीच) आयात, रूपए के रूप में, 17 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़े आयातों में इस तेज वृद्धि को निर्यातों, अन्य प्राप्तियों तथा सामान्य विदेशी सहायता से पूरा नहीं किया जा सका। इसलिए घाटा पूरा करने के लिए विदेशी वाणिज्यिक उधार तथा अनिवासी भारतीय जमाओं जैसे उच्च लागत व कड़ी शर्तों वाले साधनों पर निर्भर होना पड़ा। परन्तु जैसाकि जालान का कहना है, यह भी तभी तक सम्भव था जब तक इस प्रकार के ऋण उपलब्ध थे। जैसे ही ये ऋण भी मिलने बन्द हो गए, भयंकर आर्िथक संकट पैदा हो गया। इसलिए, ''संकट की जड़ें आयात उदारीकरण में नहीं हैं अपितु कुल समष्टि नीतियों के ढांचे (जिसमें राजकोषीय नीति भी शामिल है) में जिनके परिणामस्वरूप घरेलू बाजार के लिए आन्तरिक मांग बढ़ाई जाती रही और उपयुक्त मात्रा में निर्यातों का सृजन नहीं किया जा सका, ऐसी अवधि में जबकि भारत के लिए सहायता प्राप्त करना मुश्किल हो रहा था (क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण अनुकूल नहीं था)। इस प्रकार, उदारीकरण की इस प्रक्रिया में घरेलू अर्थव्यवस्था की उच्च विकास दर प्राप्त करने के लिए कड़ी

शर्तों पर बाह्य ऋण प्राप्त किए गए। जैसा कि अब घटनाक्रम से स्पष्ट हो गया है, यह हमारी भूल थी।''

1991 के बाद भुगतान–शेष की स्थिति

(BALANCE OF PAYMENTS SITUATION SINCE 1991)

1991 के बाद के वर्षों में भुगतान–शेष की स्थिति 1991 से पूर्व की तुलना में काफी अलग रही है केवल 1991–92 तथा 1992–93 को छोड़कर 1991–92 का वर्ष एक असाधारण वर्ष था इसलिए आमतौर पर उसे विवेचन में शामिल नहीं किया जाता। इसलिए 1991 के बाद की अवधि भुगतान–शेष की स्थिति पर प्रस्तुत सारणी 36.1 में इस वर्ष को छोड़कर दिया गया है और यह सारणी 1992–93 से आरम्भ होती है।

सारणी 36.1 : 1991 के बाद भारत की भुगतान–शेष स्थिति : कुछ सूचक

सूचक										
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11

1992—93

खण्ड–4, यूनिट–6

भारत में विदेशी पूँजी एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ

सामान्यतया सभी अल्पविकसित देशों में आय का स्तर नीचा होने के कारण पूँजी का संचय भी कम है। परन्तु पूँजी की इस कमी के बावजूद इन देशों में औद्योगीकरण और आर्थिक विकास की गहरी इच्छा है। उदाहरण के लिए, भारत ने दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगीकरण का व्यापक कार्यक्रम अपनाया। क्योंकि इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए घरेलू साधनों की कमी थी इसलिए देश को विदेशी पूंजी का सहारा लेना पड़ा। इस अध्याय में हम निम्नलिखित विषयों पर विचार करेंगे :

- विदेशी पूंजी के रूप
- विदेशी पूंजी की आवश्यकता
- विदेशी पूंजी के प्रति भारत सरकार की नीति
- विदेशी निवेश अन्तर्प्रवाहों का आलोचनात्मक मूल्यांकन
- भारत को विदेशी सहायता
- विदेशी वाणिज्यिक उधार तथा अनिवासी जमाएं
- भारत का विदेशी ऋण

विदेशी पूँजी के रूप

(FORMS OF FOREIGN CAPITAL)

विदेशी पूंजी या तो रियायती सहायता (concessional assistance) के रूप में प्राप्त होती है या गैर–रियायती सहायता (non-concessional assistance) या विदेशी निवेश (foreign investment) के रूप में। रियायती सहायता में अनुदान और कम ब्याज दरों (व लम्बी भुगतान अवधि) वाले ऋण शामिल होते हैं। इस प्रकार की सहायता या तो द्विपक्षीय होती है (अर्थात् एक सरकार से दूसरी सरकार को) या बहुपक्षीय होती है (अर्थात् विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्था जैसे संगठनों से प्राप्त होती है)। ऋणों को अक्सर विदेशी मुद्रा के रूप में लौटाना होता है परन्तु कभी–कभी ऋणदाता ऋणी देश को यह अनुमति दे देता है कि वह अपनी ही मुद्रा में भुगतान कर दे। उदाहरण के लिए P.O. 480 के अधीन अमरीकी सरकार ने जो सहायता भारत को प्रदान की थी उसके बदले भारत को यह सुविधा दी गई थी कि वह रुपयों के रूप में भुगतान कर सकता है। अनुदानों का भुगतान नहीं करना होता है और अक्सर ये किसी अस्थायी संकट से निपटने के लिए प्रदान किए जाते हैं। **गैर–रियायती सहायता में मुख्यतया विदेशी वाणिज्यिक उधार, अन्य सरकारों व बहुपक्षीय एजेंसियों से बाजार दरों पर प्राप्त ऋण तथा अनिवासी नागरिकों (non-residents) से प्राप्त जमा राशियां शामिल होती हैं।**

विदेशी निवेश घरेलू अर्थव्यवस्था के विशिष्ट क्षेत्रों के लिए प्राप्त होता है। इस प्रकार की सहायता का मुख्य लाभ यह है कि विदेशी निवेशक पूँजी के साथ तकनीकी ज्ञान, मशीनें, पूँजीगत वस्तुएं इत्यादि भी लाता है (जिनकी अल्पविकसित देशों में काफी कमी होती है)। विदेशी निवेश से मुख्य हानि यह होती है कि लाभ का एक बड़ा अंश विदेशी निवेशक को देना पड़ता है (अर्थात् काफी विदेशी मुद्रा दूसरे देशों को चली जाती है)। इसके अलावा, विदेशों पर अत्यधिक निर्भरता से घरेलू अर्थव्यवस्था में अनचाहे विदेशी हस्तक्षेप का डर रहता है। यह देश के दीर्घकालीन हितों के अनुकूल नहीं है।

इस प्रकार की विदेशी पूंजी के अलावा, अल्पविकसित देश को कृषि वस्तुओं (खाद्यान्न इत्यादि) के रूप में तथा औद्योगिक कच्चे माल के रूप में भी विदेशी सहायता प्राप्त हो सकती है। तकनीकी सहायता के रूप में भी विदेशी सहायता मिल सकती है।

विदेशी पूँजी की आवश्यकता

(NEED FOR FOREIGN CAPITAL)

विदेशी पूँजी के पक्ष में प्रायः निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं :

1. **निवेश का ऊंचा स्तर** – क्योंकि अल्पविकसित देश थोड़े से समय में ही तेजी से औद्योगीकरण करना चाहते हैं इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि वे निवेश स्तर में तेजी से वृद्धि करें।

ऐसा करने के लिए ऊंची बचत दर का होना आवश्यक है। परन्तु व्यापक गरीबी के कारण इन देशों में बचत अक्सर बहुत कम हो पाती है। इसलिए निवेश की वांछित मात्रा और बचत की वास्तविक उपलब्धि के बीच अन्तर (gap) रह जाता है। इस अन्तर को पूरा करने के लिए विदेशी पूँजी आवश्यक है।

2. **आधुनिक तकनीक की उपलब्धि** – अल्पविकसित देशों में तकनीकी ज्ञान का स्तर भी नीचा है। अतः जब इन देशों को विदेशी पूँजी के साथ–साथ तकनीकी ज्ञान की भी प्राप्ति होती है तो औद्योगीकरण के लिए उपयुक्त परिस्थितियां बन जाती हैं। भारत में तकनीकी सहायता ने तीन प्रकार से मदद पहुंचाई है : (i) विदेशी विशेषज्ञों की सेवाओं द्वारा, (ii) भारतीय कर्मचारियों के प्रशिक्षण द्वारा तथा (iii) देश में शैक्षिक, अनुसन्धान व प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना।

3. **प्राकृतिक साधनों का विदोहन** – अपने अल्पविकसित देश प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से सम्पन्न होते हुए भी गरीब और पिछड़े हुए हैं। इन देशों के लिए अपनी निजी पूँजी द्वारा साधनों का दोहन सम्भव नहीं है। विदेशी पूँजी के पक्ष में कहा जाता है कि उसके प्राप्त हो जाने पर ये देश अपने उन साधनों का दोहन कर औद्योगिक विकास का ऊंचा स्तर प्राप्त करने में सफल होते हैं जिन्हें अन्यथा वे इस्तेमाल नहीं कर पाते।

4. **प्रारम्भिक जोखिक –** अल्पविकसित देशों में प्रायः उद्यमी वर्ग का अभाव होता है। अतः औद्योगीकरण में बाधा पड़ती है। विदेशी पूँजी के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि वह इन देशों में पहुंचकर प्रारम्भिक जोखिम को झेलती है। इस प्रकार जब एक बार औद्योगीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है तो देशी पूंजीपति भी उद्योगों की स्थापना में दिलचस्पी दिखाने लगते हैं। परन्तु तथ्यों से इस तर्क की पुष्टि नहीं होती। आज भी वे सभी देश औद्योगीकरण की दृष्टि से पिछड़े हैं जिनमें प्रारम्भिक औद्योगिक विकास विदेशी पूंजी के द्वारा हुआ था।

5. **आधारभूत आर्थिक ढांचे का विकास –** आधारभूत आर्थिक ढांचे के विकास के लिए प्रायः विदेशी पूंजी का अभाव रहता है, परन्तु ऋणों के रूप में विदेशी पूंजी उपलब्ध हो जाती है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं तथा विभिन्न देशों की सरकारों ने अल्पविकसित देशों को परिवहन के साधनों के निर्माण, बिजली विकास तथा सिंचाई के साधनों की व्यवस्था के लिए भारी मात्रा में ऋण दिए हैं।

6. **भुगतान शेष की स्थिति में सुधार –** विकासशील देशों को आर्थिक विकास के लिए भारी मात्रा में मशीनों, संयंत्रों, कच्चे पदार्थों आदि का आयात करना होता है। इससे भुगतान शेष प्रायः प्रतिकूल हो जाता है। यह स्थिति दीर्घकाल तक नहीं रह

सकती है। विदेशी पूंजी के मिलने पर इस समस्या का अल्पकालीन हल निकल आता है।

विदेशी पूंजी की उपलब्धि से आयातक देश में आर्थिक विकास की गति तेज होना स्वाभाविक है। इसलिए यदि विदेशी पूंजी बिना किसी प्रतिबंध के सरल शर्तों पर मिल सकती है तो उसका स्वागत किया जाना चाहिए। जॉन पी0 ल्युइस (John P. Lewis) के अनुसार ''इन्कार करने के बावजूद यह एक तथ्य है कि विदेशी सहायता के साथ प्रतिबन्ध होते हैं और प्रत्येक विदेशी सहायता से संबंधित शर्तों के बारे में सहायता लेने और देने वाले पक्षों के बीच सौदेबाजी होती ही है।'' विदेशी पूंजी के सम्बन्ध में ल्युइस का विचार सही है। इसलिए पूंजी को आमंत्रित करते समय बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए।

विदेशी पूँजी के प्रति भारत सरकार की नीति

(INDIAN GOVERNMENT'S POLICY TOWARDS FOREIGN CAPITAL)

भारत में औद्योगिक विकास के क्षेत्र में विदेशी पूँजी की भूमिका विशेष गौरवपूर्ण नहीं रही है। इस देश में पहले विदेशी पूंजी अंग्रेजी शासनकाल में आई थी, जिसका प्रधान उद्देश्य उपनिवेश का शोषण करना था। ब्रिटिश पूंजी का आधारभूत निर्माण उद्योगों के विकास में विशेष योगदान नहीं रहा है। वास्तव में विदेशी पूँजी ने अनेक क्षेत्रों में

भारतीय पूँजी के साथ अनुचित प्रतिस्पर्धा की। भारतीयों को न तो उद्योग सम्बन्धी तकनीकों में प्रशिक्षित किया गया और न ही उन्हें प्रबन्ध व्यवस्था में कोई ऊंचा पद दिया गया।

अप्रैल 1948 में भारत सरकार ने औद्योगिक नीति प्रस्ताव में औद्योगीकरण के लिए विदेशी पूँजी की उपयोगिता को स्वीकार किया। परन्तु साथ ही प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया कि जिन इकाइयों में विदेशी पूँजी के निवेश की अनुमति दी जाए उनके स्वामित्व और प्रबन्ध में विदेशी हितों की प्रधानता नहीं रहनी चाहिए। इसके अतिरिक्त जिन उद्योगों में विदेशी तकनीशियनों की सेवाएं प्राप्त की गई हों, उनमें भारतीयों को प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि बाद में भारतीय विशेषज्ञ विदेशी विशेषज्ञ का .... प्रस्ताव में विदेशी पूँजी पर प्रतिबन्धों के उल्लेख से विदेशी पूँजीपति असन्तुष्ट हो गए और इसके परिणामस्वरूप दूसरे देशों से पूँजी के आयात में गतिरोध उत्पन्न हो गया। अतः 6 अप्रैल, 1949 को भारत सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने संसद में भाषण करते हुए विदेशी पूँजी के सम्बन्ध में न केवल भारत सरकार की नीति को स्पष्ट किया बल्कि उन्होंने विदेशी पूँजीपतियों को निम्नलिखित आश्वासन भी दिए :

स्वदेशी और विदेशी पूँजी में भेदभाव न करना – भारत सरकार भारतीय और विदेशी पूँजी में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगी। तात्पर्य यह है कि विदेशी पूँजी पर कोई भी ऐसा प्रतिबन्ध नहीं लगाया

जाएगा जो स्वदेशी पूँजी पर न लगाया गया हो। परन्तु इस आश्वासन के बदले में प्रधानमंत्री ने आशा व्यक्त की कि विदेशी पूँजी का आचरण भी भारत सरकार की औद्योगिक नीति के अनुकूल होगा।

लाभ कमाने के पूरे अवसर देना – विदेशी हितों को लाभ कमाने के पूरे अवसर रिए जाएंगे और उन पर केवल वे ही प्रतिबन्ध लगाए जाएंगे जो भारतीय औद्योगिक हितों पर लगाए गए हैं। विदेशी निवेशकों को विदेशी विनिमय की स्थिति को ध्यान में रखते हुए लाभ और पूँजी वापस ले जाने की सुविधा प्रदान की जाएगी।

हर्जाने का आश्वासन – यदि भारत सरकार किसी ऐसे उद्योग का राष्ट्रीयकरण करती है जिसमें विदेशी पूँजी का निवेश होता है तो निवेशकों को उचित हर्जाना दिया जाएगा।

2 जून, 1950 को भारत सरकार ने एक नए घोषणापत्र द्वारा विदेशी निवेशकों को आश्वासन दिया कि 1 जनवरी, 1950 के बाद जो भी विदेशी पूँजी इस देश में लगाई गई है, उसे वापस ले जाया जा सकता है। इसके अलावा जो लाभ का पुनर्निवेश हुआ है उसे भी सरकार की अनुमति से वापस ले जाना सम्भव होगा।

उपरोक्त आश्वासन के बावजूद भी पहली योजनाकाल में समुचित मात्रा में विदेशी पूँजी प्राप्त नहीं हो सकी। सन्देह का वातावरण अभी बना हुआ था। फिर भी 1949 में दिए गए प्रधानमन्त्री के वक्तव्य से विदेशी सहयोग के नए द्वारा खुले। सरकारी नीति में धीरे–धीरे जो

उदारवादी दृष्टिकोण उभरा उससे विदेशी निवेश को और प्रोत्साहन मिला। सरकार ने विदेशी निवेशकर्ताओं को करों में कई रियायतें दी। सरकार द्वारा जुलाई 1991 में घोषित नई औद्योगिक नीति में विदेशी निवेश को कई तरह के प्रोत्साहन दिए गए। इस नीति से पूर्व, विदेशी निवेश की अनुमति आमतौर पर उन्हीं क्षेत्रों में दी जाती थी जिनमें घरेलू पूँजी की कमी होती थी। इसके अलावा, व्यापारिक क्षेत्रों, बागान, बैंकिंग तथा वित्तीय संस्थाओं में विदेशी निवेश की अनुमति नहीं दी जाती थी। विदेशी निवेश की अनुमति उन क्षेत्रों में भी नहीं दी जाती थी जिन्हें सरकारी संरक्षण प्राप्त था या जो देश के लिए मूलभूत या सामरिक महत्व के थे। सरकार की घोषित नीति 'अनावश्यक उपभोग वस्तुओं' के क्षेत्र में विदेशी निवेश को हतोत्साहित करने की थी। परन्तु इसके बावजूद बहुत–सी अनावश्यक उपभोग वस्तुओं जैसे प्रसाधन सामग्री, टूथपेस्ट, बिस्कुट इत्यादि में भी विदेशी सहयोग की अनुमति दी गई। यह भी कहा गया था कि विदेशी पूँजी की अनुमति केवल उन क्षेत्रों में होगी जिनसे या तो निर्यात संवर्द्धन हो सके या आयात प्रतिस्थापन। सरकार ने यह भी शर्त रखी थी कि जिन उद्योगों में विदेशी पूँजी निवेश की अनुमति दी जाएगी उनका स्वामित्व व प्रभावी नियन्त्रण हमेशा भारतीयों के हाथ में होगा (परन्तु इस शर्त में अक्सर ढील दी गई)। विदेशी पूँजी निवेश व तकनीकी सहयोग पर इस प्रकार के नियन्त्रण की व्यवस्था थी कि वे योजनाओं के ढांचे में ही रहें। जिन क्षेत्रों में कुशल व अनुभवी भारतीयों की कमी के कारण, विदेशी

विशेषज्ञों व प्रबन्धकों को काम करने की छूट थी, उनमें यह व्यवस्था थी कि भारतीयों को जल्द–से–जल्द प्रशिक्षण देकर रोजगार प्रदान किया जाए।

हाल के वर्षों में विदेशी पूँजी तथा अनिवासी भारतीयों के निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए, सरकार ने कई कर रियायतों, प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों में निम्न कर दरों, कुछ अवधि तक नई स्थापित औद्योगिक इकाइयों के लाभों पर कर छूटों जैसी सुविधाओं की घोषणा की है। भारत में निवेश कर रहे अनिवासी भारतीयों को कई और रियायतें प्रदान की गई हैं जैसे उच्च निवेश सीमाएं, कमी वाली मदों की आपूर्ति, भारतीय कम्पनियों के शेयर खरीदने की अनुमति इत्यादि। परन्तु सबसे क्रांतिकारी परिवर्तन तो जुलाई 1991 में घोषित नई औद्योगिक नीति से आया जिससे विदेशी निवेश के प्रति पूरा रवैया ही बदल गया। इस नीति में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए कई कदम उठाए गए। बाद की अवधि में इस दिशा में कुछ और रियायतों व छूटों की घोषणा की गई। अब निर्धारित सीमाओं के भीतर, लगभग सभी क्षेत्रों में (इसमें सेवा क्षेत्र भी शामिल हैं) विदेशी निवेश की पूरी छूट है। केवल कुछेक क्षेत्रों में ही विदेशी निवेश पर प्रतिबंध है। अधिकतर उद्योगों के लिए अब स्वतः अनुमोदन (automatic approval) की व्यवस्था है। स्वतः अनुमोदन का अर्थ यह है कि सरकार से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है – केवल सूचना देना

आवश्यक है (स्वतः अनुमोदन से सरकारी हस्तक्षेप की संभावना कम हो जाती है)। 1991 के बाद की अवधि में निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए जो कदम उठाए गए हैं उनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं :

1. 1991 में सरकार ने उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों (जिनमें बड़े निवेश और जटिल प्रौद्योगिकी की आवश्यकता पड़ती है) की एक सूची तैयार की जिनमें सीधे विदेशी निवेश के लिए 51 प्रतिशत विदेशी ईक्विटी (foreign equity) की अनुमति दी गई। इन उद्योगों को परिशिष्ट III में शाामिल किया गया। बाद में विदेशी निवेश की सीमा को 74 प्रतिशत तथा कई उद्योगों में 100 प्रतिशत कर दिया गया। इसके अलावा, समय के साथ बहुत से नए उद्योगों को सूची में शामिल किया गया।

2. 1991 से पूर्व सरकार ..... अलावा अन्य सेवा क्षेत्रों में विदेशी ईक्विटी को हतोत्साहित करती थी। 1991 की नीति में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक कंपनियों द्वारा 51 प्रतिशत तक विदेशी ईक्विटी को आमन्त्रित किया गया। होटलों के साथ–साथ अब अन्य पर्यटन संबंधित क्षेत्रों में भी 51 प्रतिशत विदेशी ईक्विटी को स्वीकार किया जाता है।

3. बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय फर्मों के साथ बातचीत करने के लिए एक विशेषाधिकार प्राप्त बोर्ड का गठन किया गया है जो चुने हुए क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का मूल्यांकन व अनुमोदन करेगा।

4. विदेशी तकनीकी विशेषज्ञों की सेवाएं प्राप्त करने के लिए तथा देश में विकसित प्रौद्योगिकी की विदेशों में जांच के लिए पहले यह व्यवस्था थी कि हर मामले में सरकार ने स्वीकृति लेनी होगी। इससे कार्यान्वयन में विलम्ब होता था। इसलिए अब सरकार से स्वीकृति लेने की शर्त को हटा दिया गया है।

5. विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए शत–प्रतिशत विदेशी ईक्विटी की अनुमति दी गई है। इसलिए लाभों का विदेशों को सीधा अन्तरण संभव होगा तथा विदेशी निवेशक, बिना किसी बाधा के, विद्युत संयंत्रों की जल्द स्थापना कर सकेंगे।

6. अनिवासी भारतीयों तथा उनके अधिपत्याधीन समुद्रपारीय निगमित निकायों (overseas corporate bodies) को यह छूट दी गई है कि वे उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में शत–प्रतिशत ईक्विटी तक निवेश कर सकते हैं। अनिवासी भारतीय निर्यात गृहों, व्यापार गृहों, स्टार व्यापार गृहों, अस्पतालों, निर्यात उन्मुख इकाईयों, अस्वस्थ औद्योगिक इकाइयों, होटलों इत्यादि में भी शत–प्रतिशत ईक्विटी तक निवेश कर सकते हैं। भारतीय मूल के विदेशी नागरिकों को अब रिजर्व बैंक से अनुमति लिए बना, भारत में घर बनाने या मकान खरीदने की भी छूट दी गई है।

7. भारत में अपनी बिक्री पर विदेशी कम्पनियों को 14 मई, 1992 से अपना ट्रेड मार्क (trade mark) इस्तेमाल करने की अनुमति दी गई है।

8. अब विदेशी निवेशकों के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वे ईक्विटी का अपनिवेश (disinvestment) रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित कीमतों पर ही करें। 15 सितम्बर, 1992 से उन्हें यह छूट दी गई है कि वे अपनिवेश स्टाक एक्सचेंजों पर बाजार दरों पर कर सकते हैं तथा इस अपनिवेश से प्राप्त राशि को विदेशों में भेज सकते हैं।

9. विदेशी संस्थात्मक निवेशकों तथा अनिवासी भारतीयों को यह छूट दी गई है कि वे स्टाक एक्सचेंजों की सूची में शामिल किसी भी भारतीय कम्पनी में निवेश कर सकते हैं परन्तु उनका निवेश कंम्पनी की 30 प्रतिशत ईक्विटी पूंजी से अधिक नहीं हो सकता। भारतीय कम्पनियों को और विदेशी निवेश उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से सरकार ने, 2000–01 के बजट में, इस सीमा को 30 प्रतिशत से बढ़ाकर 40 प्रतिशत कर दिया।

10. विदेशी निवेशक अब भारतीय कम्पनियों में सार्वभौम न्यासी रसीदों (Global Depository Receipts) के माध्यम से निवेश कर सकते हैं। उन पर यह पाबन्दी नहीं होगी कि कितने कम से कम समय के लिए निवेश करना आवश्यक है। इन रसीदों को किन्हीं

भी समुद्रपारीय स्टाक एक्सचेंजों पर लिस्ट किया जा सकता है तथा वह किसी भी परिवर्तनीय विदेशी मुद्रा में हो सकती हैं।

11. 1998–99 में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए कई उपायों की घोषणा की गई। मुख्य उपाय निम्नलिखित थे : (1) विद्युत उत्पादन, पारेषण (transmission) और वितरण एवं सड़क तथा राजमार्ग, पत्तन व बंदरगाह तथा वाहनों की सुरंगे व पुलों की परियोजनाओं को, स्वतः अनुमोदन नीति के अंतर्गत, 100 प्रतिशत इक्विटी भागीदारी की अनुमति दी गई बशर्ते विदेशी इक्विटी 1,500 करोड़ रूपए से अधिक न हो; (2) निजी क्षेत्र के बैंकों में इक्विटी प्रतिभागिता के सम्बन्ध में बहुपक्षीय वित्तीय संस्थानों को अनुमति दी गई कि वे 40 प्रतिशत की समग्र अनुमत सीमा (overall permissible limit) के भीतर अनिवासी भारतीयों की धारिताओं (holdings) में कमी तक इक्विटी अंशदान कर सकती हैं; (3) उपग्रह के माध्यम से सार्वभौम चल वैयक्तिक संचार सेवाएं (Global Mobile Personal Communication by Satellite Services) उपलब्ध कराने वाली कम्पनियों को, लाइसेंस की शर्त के साथ, कुल इक्विटी के 49 प्रतिशत तक के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गई; (4) अनिवासी भारतीयों/भारतीय मूल के व्यक्तियों/समुद्रपारीय निगति निकायों द्वारा निवेश सीमा चुकता पूंजी के 1 प्रतिशत से

बढ़ाकर 5 प्रतिशत कर दी गई। इसके अलावा अनिवासी भारतीयों/समुद्रपारीय मूल के व्यक्तियों/समुद्रपारीय निगमित निकायों के लिए सकल निवेश सीमा किसी कम्पनी की चुकता पूंजी के 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत कर दी गई; (5) अनिवासी भारतीय/भारतीय मूल के व्यक्तियों/समुद्रपारीय निगमित निकायों को असूचीबद्ध कम्पनियों (unlisted companies) में निवेश की छूट दी गई; (6) विदेशी संस्थागत निवेशकों को समग्र अनुमोदित ऋण सीमाओं के भीतर सरकारी प्रतिभूतियों और राजकोषीय हुंडियों का क्रय और विक्रय करने की अनुमति दी गई; तथा (7) 100 प्रतिशत विदेशी संस्थागत निवेशकों की ऋण निधियों को भारतीय कंपनियों की असूचीबद्ध ऋण प्रतिभूतियों में निवेश की अनुमति दी गई।

12. मार्च 1999 में जारी एक अधिसूचना के तहत रिजर्व बैंक ने म्युचल फंडों को इस बात की अनुमति दी कि वे (कुछ शर्तों के अधीन) अनिवासी भारतीयों, भारतीय मूल के लोगों तथा समुद्रपारीय निगमित निकायों को यूनिट जारी कर सकते हैं अर्थात् अब उन्हें रिजर्व बैंक से पूर्व–अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है। इसके अलावा बहुत से क्षेत्रों में अब अनिवासी भारतीयों, भारतीय मूल के लोगों तथा समुद्रपारीय निगमित निकायों को सामान्य अनुमति (general permission) दे दी गई है अर्थात्

एक–एक प्रस्ताव पर अब अलग–अलग अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। ये क्षेत्र हैं : भारतीय कंपनियों द्वारा जमाओं की स्वीकृति, एअर टैक्सी सेवाओं में निवेश, शेयर बाजारों में शेयरों की बिक्री, धर्मार्थ कार्यों में लगे संगठनों को उपहार शेयरों, बांडों, ऋणपत्रों तथा अचल सम्पत्ति का अंतरण (tran) .... भारतीयों को वाणिज्यिक पत्र जारी करना, इत्यादि।

13. विदेशी स्वामित्व वाली भारतीय धारक कम्पनियों (holding companies) को अनुप्रवाही निवेश (downstream investment) के लिए अभी तक विदेशी निवेश संवर्द्धन बोर्ड से अनुमति लेना अनिवार्य था। अब उन्हें स्वतः अनुमोदन माध्यम से स्वीकृत ईक्विटी सीमा के अंतर्गत निवेश करने की अनुमति दे दी गई है बशर्ते धारक कंपनियां विदेशों से स्वयं फंडों की व्यवस्था करें। इसके अतिरिक्त पहले से ही स्वीकृत सीमा के अंतर्गत विदेशी ईक्विटी में वृद्धि के लिए विदेश निवेश संवर्द्धन बोर्ड से पूर्व अनुमति लेने की आवश्यकता को उन सब मामलों में समाप्त कर दिया गया है जहां कि मूल परियोजना लागत 600 करोड़ रूपए तक है।

14. विदेशी संस्थागत निवेश श्रेणी का विस्तार करने के उद्देश्य से सरकार ने विदेशी कंपनियों तथा काफी धनी व्यक्तियों को SEBI

(Securities and Exchange Board of India) के साथ पंजीकृत विदेशी संस्थागत निवेशकों के माध्यम से निवेश करने की अनुमति प्रदान कर दी है। सरकार ने SEBI में पंजीकृत घरेलू प्रबंधकों (domestic fund managers) को पोर्टफोलियो निवेश मार्ग से भारतीय पूंजी बाजार में निवेश के लिए विदेशी निधियों का प्रबंध करने की भी अनुमति दे दी है बशर्ते कि निधियां अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त वित्तीय संस्थाओं से आएं।

15. अगस्त 1999 में उद्योग मंत्रालय के अधीन एक विदेशी निवेश कार्यान्वयन अथॉरिटी (foreign Investment Implementation Authority) की स्थापना की गई ताकि विदेशी निवेश संबंधित अनुमोदनों (approvals) को जल्द से जल्द वास्तविक निवेश प्रवाहों में परिणत किया जा सके।

16. दिसम्बर 1999 में जारी एक अधिसूचना के माध्यम से वित्त मंत्रालय ने उन भारतीय साफ्टवेयर कंपनियों को जो पहले से ही विदेशी स्टाक एक्सचेंजों पर सूचीबद्ध (listed) हैं तथा पहले ही American Depository Receipts/Global Depository Receipts जारी कर चुकी हैं, यह अनुमति दी कि वे भारत सरकार से अथवा रिजर्व बैंक से इजाजत लिए बिना ही विदेशी साफ्टवेयर कंपनियों का अधिग्रहण कर सकती हैं तथा ADR/GDR जारी कर सकती हैं बशर्ते कुल मूल्य 100 मिलियन

डालर से अधिक न हो। 100 मिलियन डालर से अधिक के अधिग्रहण के लिए प्रस्तावों की जांच रिजर्व बैंक की विशेष संयुक्त समिति करेगी।

17. दिसम्बर 1999 में बीमा नियामक एवं विकास अधिनियम (Insurance Regulatory and Development Act) संसद द्वारा पारित किया गया। यह अधिनियम बीमा क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए अपनाया गया है। इस अधिनियम में यह व्यवस्था है कि घरेलू निजी बीमा कंपनियां अपनी कुल चुकता पूंजी (paid-up capital) के 26 प्रतिशत तक विदेशी ईक्विटी भागीदारी कर सकती हैं।

18. फरवरी 2000 में सरकार ने एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया जिसके तहत एक छोटी सी नकारात्मक सूची (negative list) के अलावा अन्य सभी वस्तुओं के लिए स्वतः अनुमोदन का रास्ता खोल देने की व्यवस्था की गई। इस निर्णय को लागू करने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक ने 5 अप्रैल 2000 को अधिसूचना जारी की जिसमें कहा गया कि कुछ विशिष्ट सेक्टरों को छोड़कर सभी मदों को स्वतः अनुमोदन के अधीन विदेशी निवेश प्राप्त करने की छूट होगी।

19. विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए 2000–01 में कई निर्णय लिए गए जिनमें प्रमुख हैं : (i) बिजनेस से बिजनेस

ई–कामर्स के लिए 100 प्रतिशत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गई; (ii) विद्युत उत्पादन, पारेषण और वितरण में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर जो 1,500 करोड़ रूपये की अधिकतम सीमा निर्धारित की गई थी उसे समाप्त कर दिया गया; (iii) तेल–शोधन सेक्टर में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए इस सेक्टर में प्रत्यक्ष विदेश निवेश पर स्वतः अनुमोदन के अंतर्गत 49 प्रतिशत की जो अधिकतम सीमा लगाई गई थी उसे बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया, (iv) विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों में सभी विनिर्माण गतिविधियों में (कुछेक गतिविधियों को छोड़कर) स्वतः अनुमोदन के अंतर्गत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी गई; (v) दूरसंचार सेक्टर में, कुछ सीमाओं के अन्दर, 100 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की छूट दी गई; (vi) सूचना प्रौद्योगिकी खेत्र में भी स्वतः अनुमोदन का रास्ता खोल दिया गया (उस स्थिति में भी जबकि आवेदक कंपनी का उसी क्षेत्र में कोई संयुक्त उद्यम चल रहा हो या फिर प्रौद्योगिकी अंतरण समझौता किया गया हो); (vii) समुद्रपारीय उपक्रम पूंजी कंपनियों/निधियों (offshore Venture Capital Funds/ Companies) को, कुछ शर्तों के अधीन, देश की उपक्रम पूंजी कंपनियों व अन्य कंपनियों में स्वतः अनुमोदित मार्ग के जरिए निवेश करने की अनुमति दी गई।

20. 2001–02 तथा 2002–03 में सरकार ने विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को कई और रियायतें व छूटें दीं। इनमें से प्रमुख हैं : (i) स्वतः अनुमोदित मामध्य से दवाइयों के क्षेत्र में विदेशी निवेश की अधिकतम सीमा को 74 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया; (ii) एयरपोर्ट सेक्टर में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को 74 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया; (iii) होटल व पर्यटन क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को 51 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया; (iv) कोरियर (courier) सेवा में 100 प्रतिशत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गई (इससे पहले यह क्षेत्र विदेशी निवेश के लिए खुला नहीं था); (v) व्यापक रैपिड परिवहन प्रणाली (Mass Rapid Transport System) में 100 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी गई (इससे पहले यह सेक्टर विदेशी निवेश के लिए खुला नहीं था) ; (vi) नगर क्षेत्र (township) विकास में 100 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की छूट दी गई; (vii) इंटरनेट सेवा प्रदायकों (Internet Service Providers) के लिए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दिया गया; (viii) बैंकिंग सेक्टर में, रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित शर्तों के अधीन, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दिया गया; (ix) सुरक्षा सेक्टर (defence sector) में 26 प्रतिशत तक

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी गई; तथा (x) प्रिंट मीडिया (print media) में भारतीय उद्योगपति की 26 प्रतिशत चुकता पूंजी तक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गई।

21. 15 जनवरी .... पेट्रोलियम परिष्करण तथा वैज्ञानिक व तकनीकी पत्रिकाओं में विदेशी निवेश को महत्वपूर्ण नियायतों की घोषणा की। जहाँ तक निजी बैंकिंग का संबंध है इस क्षेत्र में यह छूट दी गई कि कोई भी विदेशी बैंक या उसके अधीन कार्यरत कोई वित्तीय नियन्त्रक (regulator) किसी भी निजी बैंक में 100 प्रतिशत तक निवेश कर सकता है। अन्य कोई विदेशी प्रत्यक्ष या पोर्टफोलियो निवेश द्वारा, निजी बेंक में 74 प्रतिशत तकनिवेश कर सकता है। बैंकिंग क्षेत्र में विदेशी निवेश को दी गई यह छूट विलयन तथा अधिग्रहण (mergers and acquisition) के कई द्वार खोल सकती है। सरकार ने पेट्रोलियम सेक्टर में भी विदेशी निवेश को कई रियायतें प्रदान की हैं जैसे पेट्रोलियम मार्केटिंग में विदेशी निवेश की सीमा को 74 प्रतिशत से 100 प्रतिशत करना, तेल व गैस के लिए पाइपलाइन में विदेशी निवेश की सीमा को 51 प्रतिशत से 100 प्रतिशत करना, तथा तेल अन्वेषण (oil-exploration) में 100 प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति देना। इसके अलावा,

वैज्ञानिक एवं तकनीकी पत्रिकाओं में 100 प्रतिशत तक विदेशी निवेश की छूट दी गई है।

22. जनवरी 2005 में प्रेस नोट 18 (Press Note 18) की समीखा की गई और नए दिशा–निर्देश जारी किए गए। इस नोट में यह प्रावधान था कि यदि किसी विदेशी निवेशक का भारत में किसी कंपनी के साथ संयुक्त उद्यम (joint venture) काम कर रहा है तो उस विदेशी निवेशक को भारत में उसी औद्योगिक कार्यक्षेत्र में कोई और संयुक्त उद्यम लगाने के लिए विदेशी निवेश संवर्द्धन बोर्ड (Foreign Investment Promotion Board) से अनुमति लेनी होगी और इसके लिए इस बोर्ड में आवेदन देना होगा। विदेशी निवेशकों के अनुसार इस प्रावधान से नए संयुक्त उद्यम स्थापित करने में देरी होती थी और कई बार बोर्ड अनुमति नहीं भी देता था। इसलिए विदेशी निवेशक प्रेस नोट 18 को एक अड़चन मानते थे। 12 जनवरी 2005 को जारी नए दिशा–निर्देशों के अनुसार अब विदेशी निवेश के नए प्रस्तावों के लिए स्वतः अनुमोदन का रास्ता खोल दिया गया है बशर्ते प्रस्तावित गतिविधि स्वतः अनुमोदन के लिए स्वीकृत हो और बशर्ते विदेशी निवेशक का उसी क्षेत्र में पहले से ही कोई संयुक्त उद्यम या सहयोग (collaboration) न हो।

23. निजी घरेलू एयरलाइंस में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की सीमा को बढ़ाकर 49 प्रतिशत कर दिया गया है।

24. 'एकल ब्रांड' (single brand) उत्पादों के खुदरा (या फुटकर व्यापार) में सरकारी अनुमोदन के तहत 51 प्रतिशत तक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की छूट दी गई है।

25. B2B-e Commerce में 26 प्रतिशत विदेशी इक्विटी की अपनिवेश अनिवार्यता (mandatory disinvestment) की शर्त को समाप्त कर दिया गया है।

26. 30 जनवरी, 2008 को सरकार ने 6 व्यवसायों में विदेशी स्वामित्व संबंधी रियायतों की घोषणा की। ये क्षेत्र हैं : (i) वायुयानचालन (aviation), (ii) खनन, (iii) तेल शोधन, (iv) वास्तविक भूसंपत्ति, (v) वस्तु एक्सचेंज (commodity exchange) तथा (vi) साख सूचना कंपनियां (credit information companies)। नागरिक वायुयानचालन क्षेत्र में यद्यपि अनुसूचित एयरलाइंस में पूर्ववत् विदेशी प्रत्यक्ष

खण्ड –5

इकाई –1

भारत में काले धन की समस्या एवं उसकी वृद्धि दर

इकाई की रूप रेखा–

5.1.0 उद्देश्य

5.1.1 प्रस्तावना

5.1.2 काले धन की परिभाषा

5.1.3 भारत में कालेधन के सृजन का स्रोत

5.1.4 काले धन के आकलन की विधियां

5.1.5 भारत में कालेधन का अनुमान

5.1.6 भारत में काले धन का दुष्परिणाम

5.1.7 भारत में काले धन के नियंत्रण के उपाय

5.1.8 सारांश

5.1.9 बोध प्रश्न

5.1.10 कुछ उपयोगी पुस्तके

1.0 उद्देश्य–

1–प्रस्तुत ईकाई में हम काले धन की परिभाषा की जानकारी प्राप्त करेंगे।

2–प्रस्तुत ईकाई में हम काले धन के सृजन के स्रोतों की जानकारी प्राप्त करेंगें।

3–प्रस्तुत ईकाई में हम काले धन के आकलन की विधियों के बारे में जानेगें।

4–प्रस्तुत ईकाई में हम भारत में काले धन के विभिन्न अनुमानों की जानकारी प्राप्त करेंगें।

5–प्रस्तुत ईकाई में हम भारत में काले धान के दुष्परिणामों की जानकारी प्राप्त करेंगें।

6–प्रस्तुत ईकाई में हम भारत में काले धन के नियंत्रण के प्रयासों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.1 प्रस्तावना –

भारत में काला धन कोई नया मुद्दा नहीं है वर्ष 1936 में अय्यर समिति ने देश में गैर ईमानदार करदाताओं के लिए कर प्रशासन में व्यापक परिवर्तन किए जाने की अनुशंसा की थी स्वतंत्रता पश्चात काले धन की उद्घोषणा के लिए वर्ष 1961 में (वी.डी.एस., वॉलंटरी डिस्क्लोजर स्कीम) स्वैच्छिक उद्घोषणा योजना घोषित की गई जिसमें किसी व्यक्ति या संस्था के पास यदि किसी भी प्रकार की कोई ऐसी संपत्ति या धन है जिसका विवरण भारत सरकार के पास नहीं है वह स्वेच्छा से इस संपत्ति यह धन की उद्घोषणा कर सकता है इस प्रकार की योजनाएं वर्ष 1965, वर्ष 1976, वर्ष 1985 तथा वर्ष 1997 में भी घोषित की गई थी वर्ष 1981 में विशेष धारक बॉन्ड योजना तथा वर्ष 1991 में गोल्ड बॉन्ड तथा इंडियन डेवलपमेंट बॉन्ड घोषित की गई थी पिछले 6 दशकों में भारत में काले धन की मात्रा में लगातार वृद्धि हुई है जिसके कारण भारत में आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण में वृद्धि हुई है तथा साधन संपन्न वह भ्रष्ट लोगों की अर्थव्यवस्था पर पकड़ मजबूत हुई है भारत में हाल के वर्षों में काले धन का मुद्दा चर्चा का विषय रहा देश में काले धन के अनुमान के लिए हाल ही में कुछ अध्ययन किए गए है।

1.2 काले धन की परिभाषा–

काले धन का अभिप्राय ऐसी धन, मुद्रा, परिसंपत्तियों या संसाधनों से है जिनके बारे में सरकार को किसी प्रकार की सूचना संसाधनों के एकत्रीकरण के समय और इन संसाधनों पर अधिकार के समय अवधि का सरकार के पास कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता है एवं इन परिसंपत्तियों के एकत्रीकरण एवं अधिकार से सरकार को किसी प्रकार का कोई कर राजस्व संबंधी लाभ प्राप्त नहीं होता है राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान के अनुसार "ऐसी समग्र आय जो कर योग्य तो है परंतु जिन पर किसी प्रकार का कोई कर नहीं दिया जाता है एवं जिसकी सूचना कर अधिकारियों को न दी गई हो एवं सरकार के पास जिस आय वा संपत्ति का कोई हिसाब उपलब्ध नहीं होता है" काले धन के स्रोत अवैधानिक क्रियाकलाप तथा वैधानिक क्रियाकलाप दोनों हो सकते हैं जिनका वैधानिक रूप में सरकार के पास कोई लेखा–जोखा नहीं होता है।

1.3 भारत में काले धन का सृजन के स्रोत–

भारत में काला धन वह मुद्रा, संपत्ति या संसाधन के रूप में किसी व्यक्ति या संस्था के पास उपलब्ध होता है जिसका सरकार के पास किसी प्रकार का कोई वैधानिक लेखा–जोखा नहीं होता है इस तरह के आय का सृजन वैध एवं अवैध तरीके से किया जाता है ।

अवैध रूप में काले धन का सृजन–

अवैध रूप में काले धन का सृजन व्यक्ति या संस्था द्वारा अपराधिक गतिविधियों के माध्यम से और भ्रष्टाचार द्वारा किया जाता है अपराधिक गतिविधियां विभिन्न प्रकार की हो सकती है जैसे की वस्तुओं या मानव की तस्करी, विधि निषिद्ध वस्तुओं का उत्पादन एवं व्यापार जालसाजी, अवैध खनन, अवैध रूप से जंगलों की कटाई एवं जंगली पशुओं का अवैध व्यापार से सृजित आय चोरी, अवैध शराब का व्यापार, अपहरण, मानव व्यापार, वित्तीय धोखाधड़ी, अवैध हथियारों का व्यापार इत्यादि प्रकार के कार्य अवैध रूप से काले धन के सृजन में सहायक है।

भ्रष्टाचार के अधीन धनराशि शामिल है जो सरकारी अधिकारियों एवं सरकारी तंत्र द्वारा की जाती हैं जैसे की रिश्वतखोरी, चोरी, सार्वजनिक राजस्व की चोरी, सामाजिक या कार्यक्रमों में चोरी, सार्वजनिक संपत्ति का वास्तविक कीमत से कम आकलन एवं कीमत निर्धारण सेवा में कालाबाजारी इत्यादि सारे अवैध कार्य काले धन सृजन के माध्यम है जो कि भारत में तीव्रता से फल फूल रहे हैं।

वैध रूप से काले धन का सृजन–

वैध रूप में भारत में काले धन का सृजन अक्सर सरकारी खजाने में जमा करने वाली वास्तविक धनराशि का भुगतान करने की बजाय कम धनराशि भुगतान की जाती है अर्थात कोई व्यक्ति या संस्था द्वारा अपनी संपूर्ण संपत्ति का सही विवरण देने की बजाय अपनी वास्तविक सम्पति से कम संपत्ति का विवरण सरकार को देता है एवं करो की चोरी करता है तो यह सभी कार्य भारत में काले धन सृजन का एक माध्यम है।

खातों के परिवर्तन से सृजित काला धन–

भारत में प्रत्येक करदाता द्वारा किसी भी प्रकार के आदान–प्रदान का विवरण खातों में शामिल करना आवश्यक होता है जिसे निश्चित वित्तीय वर्ष के अंत में करदाता द्वारा वित्तीय विवरण को प्रस्तुत करके सरकार को कर अदा किया जाता है लेकिन कर चोरी करने वाले व्यक्तियों द्वारा वित्तीय विवरण में कई प्रकार के परिवर्तन करके सरकार को गलत विवरण पेश करते हैं जिससे कि काले धन का सृजन होता है इसमें सर्वाधिक प्रचलित सरल तरीका जिसमें करदाता द्वारा वस्तुओ को आदान–प्रदान करने के बदले किसी प्रकार का कोई वित्तीय प्रपत्र अर्थात रसीद ग्राहक को नहीं दी जाती है एवं उससे प्राप्त धनराशि को नगद मुद्रा के रूप में लेता है एवं इसका कोई विवरण सरकार को नहीं दिया जाता है या तो करदाता द्वारा किसी प्रकार का कोई खाता ही नहीं रखा जाता है या तो फिर अलग–अलग खाते रखता है जिसमें

कुछ प्राप्तियों का ही रिकॉर्ड रखता है अर्थात वास्तविक प्राप्त आय की अपेक्षा कम धनराशि का विवरण प्रदर्शित करता है ।

कुछ उत्पादक कंपनियों द्वारा तो मुख्य कंपनी के साथ सहायक कंपनियों का भी गठन किया जाता हैं जिनकी आय एवं परिसंपत्ति का किसी प्रकार का कोई विवरण नहीं रखा जाता है एवं मुख्य कंपनी के उत्पादों की बिक्री कम कीमत पर इन सहायक कंपनियों को की जाती है जिससे कि लाभ की धनराशि में कमी होती है कभी–कभी तो उत्पादकों द्वारा कर देयता को कम करने के उद्देश्य से अपने वास्तविक उत्पादन मात्रा को कम दिखाया जाता है जिसका उद्देश्य बिक्री कर उत्पादन कर या फिर आय कर की चोरी करना होता है एवं अपने राजस्व व्यय को बढ़ा चढ़ा कर बताया जाता है जिससे की अपने लाभ से राजस्व व्यय को घटाकर आय में कमी अर्थात कम्पनी को घाटे में दिखा करके सरकार को कम आयकर अदा कर सके।

भारत में काले धन का सृजन अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में भी किया जाता है जिनमें से कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें काले धन की संभावना अधिक होती है इसमें सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र भूमि, संपत्ति, भवनो का क्रय–विक्रय क्षेत्र है इस क्षेत्र में लेन–देन पर स्टांप ड्यूटी तथा पूंजी लाभ कर से बचने के लिए अक्सर लेन–देन की अंकित कीमत धनराशि वास्तविक कीमत धनराशि से कम रखी जाती है जिससे काले धन का सृजन होता है स्वर्ण तथा आभूषण क्षेत्र एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रो में एक है जिसमें काले धन का निवेश अधिक होता हैं एवं व्यापारीयों द्वारा भी अपनी अघोषित आय को स्टॉक के रूप में रखी जाती है एवं वित्तीय बाजारों में भी क्रय–विक्रय करने वाले निवेशक वास्तविक मूल्य से कम मूल्य प्रदर्शित कर काले धन का सृजन करते हैं विभिन्न प्रकार के गैर सरकारी संगठनों के माध्यम भी परोपकार के क्षेत्र में काम कर रही इकाइयों से कर रियायत का लाभ उठाकर कर चोरी की जाती है।

भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्था में एक बहुत बड़ा संगठित औपचारिक एवं अनौपचारिक क्षेत्र हैं जिसमें नगदी रूप में किए गए बहुत से भुगतानों का कोई विवरण प्राप्त नहीं होता यह भुगतान काले धन के सृजन का मुख्य स्रोत है भारत सरकार द्वारा ने 2012 में जारी किए गए एक श्वेत पत्र में कहा की बहुराष्ट्रीय निगम कई देशों में कार्यरत रहते हुए अपने लाभ व आय का हस्तांतरण उन देशों या प्रदेशों में करते हैं जिनमें करो की दरे या तो कम होती हैं या जिनमें कर रियायत अधिक होती है ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि भारत से जो भी धन विदेशों को गैर कानूनी तरीके से भेजा जाता है उसका बड़ा हिस्सा भारत के उन मित्र देशों द्वारा भेजा जाता है जिनमें कर की दर कम है और उन गैरकानूनी धन भारत में फिर से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के रूप में निवेशित कर दिया जाता है।

सरकारी नियंत्रण व काला धन–

भारत में काले धन के सृजन के मुख्य स्रोतों में सरकारी तंत्र का नियंत्रण एवं इसकी व्यापकता है जगदीश भगवती व पदमा देसाई, श्रीनिवासन तथा ईशर जज आहुवालिया जैसे

अर्थशास्त्रियों ने अपने अध्ययन में पाया कि वर्ष 1991 की पूर्व समयावधि में व्यापक पैमाने पर औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति व औद्योगिक नियंत्रण नीति के परिणाम स्वरूप भ्रष्टाचार में बहुत वृद्धि हुई जिससे एक बड़े पैमाने पर काले धन का सृजन हुआ एवं भ्रष्टाचार के मुख्य कारणों में औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति को सरकारी अधिकारियों द्वारा मनमाने ढंग से लागू करना एवं अपने मनपसंद व्यक्तियों एवं संस्थाओं को मोटी रकम के बदले लाइसेंस का लाभ प्रदान करना था वर्ष 1967 में दत्त समिति की रिपोर्ट में यह कहा गया कि लाइसेंसिंग अधिकारी अपने अधिकारों का प्रयोग अक्सर बड़े औद्योगिक घरानों को लाभ पहुंचाने के लिए करते हैं जिनके बदले में उन्हें बड़ी धनराशि रिश्वत के रूप में प्राप्त होती है।

शहरी क्षेत्रो में भूमि व संपत्ति का क्रय विक्रय–

भारत में काले धन के सृजन में शहरी क्षेत्रो में भूमि व संपत्ति के क्रय–विक्रय की मुख्य भूमिका रही है जिसमें भूमि व संपत्ति का पंजीकृत मूल्य अधिकांशतः उसके वास्तविक मूल्य से कम आकलित किया जाता है जैसे कि भूमि व संपत्ति की घोषित कीमत 40 प्रतिशत ही रहती है जबकि 60 प्रतिशत तक कीमत काले धन के रूप में सुरक्षित होती है।

प्रशासनिक तंत्र की सहायता से काले धन का सृजन–

भारत में कर व्यवस्था के बहुत जटिल होने के कारण जिसमें कई प्रकार की अलग–अलग कर दरे हैं जिससे कि संबंधित प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा आर्थिक लाभ के बदले मनमाने तरीके से नियमों की व्याख्या कर अपने करीबियों, बड़े व्यवसायियों, राजनीतिज्ञों व धनी व्यक्तियों के बड़े पैमाने पर कर चोरी में सहयोग करते हैं एवं नये सार्वजनिक उद्योगों की स्थापना के लिए निकाली गई निविदाओं को बड़े ठेकेदारों राजनेताओं एवं औद्योगिक घरानों को नियमों के इतर जारी कर बड़ी मात्रा में पैसे की हेरा–फेरी की जाती है जिससे कि काले धन का सृजन होता है।

सार्वजनिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार एवं घोटाला से काले धन का सृजन–

भारत में अधिकांशत सार्वजनिक कार्यों के आवंटन में व्यापक पैमाने पर भ्रष्टाचार व्याप्त है जिसका सर्वाधिक ज्वलंत उदाहरण 2010 में दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय खेल है जिसमें सी. ए.जी. नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट में कहा गया कि इन खेलों के आयोजन में बड़े पैमाने पर सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम के नाम पर धनराशि में गड़बड़ी की गई है जिसमें लगभग 70000 करोड रुपए का घोटाला हुआ इसी प्रकार दो सबसे बड़े घोटाले टेलीकॉम तथा कोयला खनन क्षेत्र में हुए उदाहरण के लिए वर्ष 2007–8 में टेलीकॉम क्षेत्र में 2ळ स्पेक्ट्रम की नीलामी में बड़ा घोटाला हुआ जिसके कारण नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के अनुसार सरकार को 67364 रुपए करोड रुपए से 17645 करोड रुपए के बीच का घाटा हुआ अपने निरीक्षण में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक ने पाया कि दूर संचार विभाग द्वारा लाइसेंसों के आवंटन में अनियमितताएं की गई थी एवं लाइसेंसों के आवंटन में पारदर्शिता नहीं अपनाई गई थी।

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक ने दावा किया कि 122 नई टेलीकॉम लाइसेंसों में से 70 लाइसेंस उन कंपनियों को दिए गए जो मूलभूत शर्तों को भी पूरा नहीं करती थी तथा जिन्होंने लाइसेंस प्राप्त करने के लिए पर्याप्त व गलत जानकारी प्रस्तुत की जहां तक कोयला खनन आवंटन का मामला नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक ने पाया कि यह आवंटन नियमों को दरकिनार कर मनवाने तरीके से सरकार को 1.86 लाख करोड़ का घाटा हुआ जिसमें खुले नीलामी प्रक्रिया नहीं अपनाई गई एवं बड़े पैमाने पर घोटाले हुए जो काले धन के सृजन का बड़ा स्रोत है।

सरकारी तंत्र द्वारा घूसखोरी –

भारत में अधिकांशतया आम व्यक्तियों द्वारा यह अनुभव किया जाता है कि सरकारी काम कराने या सरकारी सेवा का लाभ प्राप्त करने के लिए सरकारी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को रिश्वत देना पड़ता है जिससे कि नियम विरुद्ध भी कार्य आसानी से करवाए जा सकते हैं जैसे की जमीन की नाप एवं रजिस्ट्री करवाने के लिए या तो बिजली कनेक्शन जल्दी करवाने के लिए आदि कार्यों को रिश्वत के माध्यम से आसानी से करवाया जाता है जबकि यह सारे कार्य कानूनी रूप से मान्य है एवं रिश्वत के माध्यम से पुलिस विभाग एवं न्याय विभाग में भी गैर कानूनी गतिविधियों जैसे चोरी, हत्या, डकैती, लूटपाट एवं अन्य अपराधिक कृत्यों में लिप्त अपराधीयों द्वारा रिश्वत के माध्यम से स्वयं को स्वतंत्र करा लेते और अपराधिक कृत्यों की सजा से बच जाते हैं।

राजनीतिक पार्टियों द्वारा डोनेशन प्राप्त करना–

राजनीतिक पार्टियों को अक्सर चुनाव लड़ने के लिए बड़े पैमाने पर धन की आवश्यकता होती है जिसका एक बड़ा हिस्सा बड़े व्यावसायिक घरानों एवं अपराधियों द्वारा चंदे के रूप में राजनीतिक पार्टियों को प्राप्त होता है जिसका किसी प्रकार का कोई लेखा–जोखा नहीं होता है एवं इस धनराशि के बदले राजनीतिक पार्टियों को चंदा देने वालों को अवैध तरीके से लाभ पहुंचाना होता है जोकि हाल के पिछले वर्षों से लेकर वर्तमान तक कई राज्यों में सरकारों का परिवर्तन विधायकों व सांसदों के समर्थन पाने के लिए बड़ी धनराशि का अवैध रूप से लेन–देन किया गया जो कि काले धन के सृजन का एक बड़ा स्रोत है।

अवैध रूप से प्राप्त आय का वैध रूप में परिवर्तन–

कई बार ऐसा होता है कि अपराधिक प्रकृति के व्यक्तियों द्वारा गैर कानूनी गतिविधियों जैसे की धोखाधड़ी, जालसाजी, तस्करी वर्जित व निषिद्ध वस्तुओं का व्यापार, नशीले पदार्थों का उत्पादन व व्यापार, अवैध खनन, वनों की अवैध कटाई, हथियारों का गैर कानूनी व्यापार, बैंकों की वित्तीय धोखाधड़ी, जंगली पशुओं का व्यापार, मानव व्यापार जैसे गैर कानूनी कार्यों से प्राप्त अवैध धन संचय को ऐसे वैध रूपों में परिवर्तन किया जाता है कि जिससे कि इस धन के स्वामी या एकत्रित करने वाले व्यक्तियों की पहचान ना की जा सके और इस धन को बड़ी चतुराई से विधिक प्रक्रियाओं का सहारा लेकर गैर सरकारी संगठन या कल्याणकारी संगठनों के माध्यम से इसे विधिक रूप प्रदान किया जाता है जो कि काले धन सृजन का मुख्य स्रोत है।

1.4 काले धन के आकलन की विधियां–

इनपुट आउटपुट विधि जिसमें इनपुट आउटपुट का अनुपात ज्ञात होता है वहां हम आउटपुट का अनुमान लगा सकते हैं इस तरीके में सही आउटपुट की गणना के लिए इनपुट के साथ इस अनुपात का प्रयोग किया जाता है इसका मिलान घोषित आउटपुट से करने पर वास्तविक आउटपुट का अन्तर प्रतिच्छाया अर्थव्यवस्था की घोषित आउटपुट को दर्शाता है आकलन का यह तरीका बहुत सरल प्रतीत होता है यद्यपि इस तरीके उद्योग क्षेत्र में अधिक उपयुक्तता के साथ लागू किया जा सकता है फिर भी यह तरीका तेजी से बदलते हुए तकनीकी परिवर्तन को इनपुट आउटपुट में भी परिवर्तन हो सकते हैं यह तरीका उन देशों के लिए भी समुचित नहीं जिनकी अर्थव्यवस्था का तृतीयक क्षेत्र प्राथमिक तथा गौण क्षेत्र से अधिक गति से प्रगति करता है।

अर्थशास्त्रियों द्वारा यह माना गया कि काले धन एवं सफेद धन दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में आय संचार के लिए धन की आवश्यकता होती है चुकिं आधिकारिक अर्थव्यवस्था ज्ञात है इसलिए इस अधिकारिक राशि तथा संचालित राशि के अंतर को संचालित कालाधन माना जायेगा अर्थात की 1 वर्ष में अर्थव्यवस्था में विद्यमान राशि कितनी बार संचालित हुई जिससे हमें वार्षिक संचालित आय का पता चलता है इस आय कि राष्ट्रीय लेखा प्रणाली में दर्ज आय से तुलना करने पर हमें इस प्रणाली में दर्ज न हुई आय का पता चलता है जो उत्पन्न काला धन है।

सर्वे प्रणाली जिसमें सैंपल सर्वे किसी प्रतिनिधि सैंपल की खपत संरचना पर किए जाते हैं जिसकी पूरे देश की कुल खपत से तुलना की जा सकती है कभी–कभी ऐसे सर्वे किसी सैंपल में प्रचलित गैर कानूनी प्रक्रियाओं की रोकथाम के लिए भी किए जाते हैं इस विधि की सीमाएं भी हैं वास्तविक रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले सैम्पल पूछे जाने वाले प्रश्नों का सुस्पष्ट होना सैंपल आकार में चुने गए व्यक्तियों द्वारा साक्षतकर्ताओ को सही तथ्य बताना क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी भी अजनबी व्यक्ति के सामने गैर कानूनी तथ्य स्वीकार नहीं करना चाहेगा।

वित्तीय उपागम विधि जिसका मूल सिद्धांत है कि कोई भी अर्थव्यवस्था विभिन्न क्षेत्रों से निर्मित होती है जहां प्रत्येक क्षेत्र की अपनी कार्य पद्धति एवं योगदान का अलग–अलग मूल्यांकन कर उनके कुल समेकित योगदान से काले धन की संपूर्ण व्यवस्था की मात्रा का पता चलता है परंतु इन क्षेत्रों में काले धन का पता लगाने की पद्धतियां तथा मान्यताएं शोधकर्ताओं की अंतर निहित आत्मपरकता से ग्रस्त है।

1.5 भारत में कालेधन का अनुमान–

भारत में काले धन के कुल आकार का अनुमान लगाना कठिन है इसका कारण यह है कि यह संपूर्ण अर्थव्यवस्था में अप्रत्यक्ष रूप से शामिल है जिसको किसी व्यक्ति या किसी संस्था

के आधार पर अनुमान लगाना मुश्किल है इन्हीं सब कारणों के चलते भारत में काले धन का पता लगाने के लिए किए गए प्रयास असफल रहे एवं उनसे अनुमानों एवं परिणाम में व्यापक अंतराल देखने को मिलता है।

निकोलस कॉल्डर के अनुसार भारत में काले धन का के कुल आकर का सर्वप्रथम अनुमान निकोलस कॉल्डर द्वारा वर्ष 1956 में प्रकाशित रिपोर्ट में किया गया था यह अनुमान वर्ष 1953–54 के लिए था उस समय भारत की राष्ट्रीय लोक लेखा प्रणाली में 13 सेक्टर थे कॉल्डर ने इनमें प्रत्येक क्षेत्र के लिए कालेधन का अनुमान लगाया एवं यह मान्यता ली की मजदूरी व वेतन के रूप में वितरित राशि में अवैध आय का कोई अंश नहीं है प्रत्येक सेक्टर में अवैध आय का अनुमान लगाने के लिए छुट की सीमा से ऊपर की अनुमानित गैर वेतन आय और वास्तविक गैर वेतन आय का अंतर लिया गया कॉल्डर के अनुसार वर्ष 1953–54 में भारत में काले धन का कुल आकार लगभग 600 करोड रुपए था जो की वर्ष 1953–54 की सकल राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत था।

वांचू समिति का अनुमान भारत में काले धन के अनुमान विधि का प्रयोग करते हुए वर्ष 1961–62 के लिए काले धन के कुल आकार का अनुमान प्रस्तुत किया उन्होंने बताया कि वर्ष 1961–62 में भारत में अनुमानित गैर वेतन आय 2686 करोड रुपए था जबकि वास्तविक गैर वेतन आय 1875 करोड रुपए था इस प्रकार 811 करोड रुपए की आय पर कर नहीं अदा किए गए थे तथा इस अनुमानित राशि में कुछ समायोजन करने के बाद वांचू समिति ने काले धन की मात्रा का अनुमान कम करके 700 करोड रुपए निश्चित किया जो वर्ष 1961–62 में चालू कीमतों पर सकल घरेलू उत्पादन का 4.4 प्रतिशत था वांचू समित ने इस वर्ष 1965–66 के लिए भी अनुमान प्रस्तुत किए थे जो की 1000 करोड रुपए थे एवं सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 4.2 प्रतिशत था।

एन. कालेदार ने अपनी रिपोर्ट में राष्ट्रीय आय को मजदूरी एवं वेतन, स्वरोजगार जनित आय और लाभ, ब्याज, किराया आदि वर्गीकरण के आधार पर बांटते हुए कुल अवैतनिक आय का अनुमान लगाया जिसमें यह बताया कि सकल घरेलू उत्पाद में से मजदूरी तथा वेतन से हुए अंशदान को घटाते हुए उन्होंने कुल वैतनिक आय की गणना की जिसमें अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए पूर्वानुमानित अनुपातों के आधार पर छूट की सीमा से अधिक अवैतनिक आय तथा वास्तविक कर निर्धारित हुई अवैतनिक आय के मध्य अन्तर काले धन की मात्रा को बताता है।

डॉक्टर डी.के. रंगनेकर जो की वांचू समिति के सदस्य थे एवं वांचू समिति के अनुमानों से असहमत होते हुए उन्होंने वर्ष 1961–62 में वांचू समिति द्वारा अनुमानित कर राशि को 811 करोड़ रुपए की बजाय लगभग 1150 रुपए करोड रुपए बताया जिसे वर्ष 1965–66 के लिए वांचू समिति ने अनुमानित 1000 करोड रुपए बताया था और इन्होंने 2350 करोड रुपए का

अनुमान लगाया था तथा वर्ष 1968–69 काले धन का अनुमान 2833 करोड़ रुपये तथा वर्ष 1969–70 के लिए काले धन का अनुमान 3080 करोड रुपए का लगाया था।

अर्थशास्त्री ओ.पी. चोपड़ा ने काले धन पर वर्ष 1960–61 से 1969–70 तक के वर्षों में अध्ययन कर काले धन से संबंधित विभिन्न आकलन प्रस्तुत किया जो की वांचू समिति की विधि से काफी अलग थी अतः इन्होंने वर्ष 1973 में उसके पश्चात जब छूट की सीमा से अधिक आय में बहुत वृद्धि हुई थी दोनों संख्याओं में बहुत बड़ा अंतर पाया एवं इनका मानना था केवल अवैतनिक आय ही छुपाई जाती है आयकर के अलावा अन्य भी कई प्रकार के करो की चोरी होती है किंतु अध्ययन केवल आय के उसी भाग तक सीमित है जिस पर आयकर लगा है अतः उत्पाद शुल्क का भुगतान न करने अथवा कम भुगतान करने, बिक्री कर, सीमा शुल्क, गैर कृषि आय को कृषि आय दर्शाने से होने वाले करवंचन को इसमें शामिल नहीं किया गया है छुट की सीमा से अधिक अवैतनिक आय तथा कुल वैतनिक आय का अनुपात एक समान रहता है।

वैतनिक आय तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से जनित कुल आय का अनुपात एक समान रहता है एवं निष्कर्ष में यह कहा कि वर्ष 1973–74 के बाद बेहिसाब आय तथा निर्धारण योग्य आय का एक अनुपात में वृद्धि जबकि वांचू समिति में इस अनुपात को परिवर्तित माना एवं इन्होंने यह स्पष्ट करते हुए कहा कि करो की दर अधिक होने से करवंचन के प्रयासों की संभावना अपेक्षाकृत अधिक होती है एवं काले धन को वैध आय में परिवर्तित करने के लिए गैर कर योग्य कृषि क्षेत्र में निवेशित कर दिया जाता है एवं इन्होंने वर्ष 1960–61 में 916 करोड रुपए काले धन का अनुमान लगाया जो की सकल घरेलू उत्पाद का 6.5 प्रतिशत था जो वर्ष 1976–77 में लगभग 8098 करोड रुपए सकल घरेलू उत्पाद का 11.4 प्रतिशत हो गया।

1.6 काले धन का दुष्परिणाम–

भारत में काले धन से सामाजिक आर्थिक व्यवस्था प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है राजस्व की हानि काले धन का सीधा प्रभाव सरकार को प्राप्त होने वाले राजस्व की हानि के रूप में होता है जो व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा कर चोरी कर चोरी करके करते हैं जिससे कि सरकारी राजस्व का सरकार को नुकसान होता है।

सरकारी नीतियों की असफलता–

भारत में काले धन का प्रभाव भारत की आर्थिक नीतियों पर सरकारी नियंत्रण के कमजोर हो जाने के कारण प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिसे अर्थशास्त्री अरुण कुमार ने नीति सफलता का नाम दिया और यह बताया कि नीति विकलता के दो पक्ष होते हैं अपर्याप्त आवंटन तथा प्रभावी खर्च इसमें अरुण कुमार विशेष रूप से सामाजिक आर्थिक संरचना की बात करते हैं जैसे की शिक्षा स्वास्थ्य पर जल स्वच्छता व सफाई एवं आवास निर्माण इत्यादि और यह बताते हैं कि धन काले धन के माध्यम से बड़े पैमाने पर जो व्यक्ति या संस्थाओं द्वारा चोरी की जाती है उसके कारण सामाजिक आर्थिक आधारिक संरचना पर किया जाने वाला खर्च आवश्यक खर्चे से बहुत ही काम होता है एवं सामाजिक आधारिक संरचना के विकास पर जो खर्च किया जाता है उसका

एक बहुत बड़ा हिस्सा ठेकेदारों सरकारी अधिकारियों व राजनेताओं के पास रिश्वत के रूप में जाता है जो सामाजिक आधारित संरचना तैयार होती है उसमें गुणवत्ता की कमी आती है।

अनउत्पादक निवेश–

काले धन से भारत में बहुत बड़ी मात्रा में सोना चांदी आभूषण हीरे जवाहरात आदि पर निवेश किया जाता है जिससे कि जो उत्पादक कार्यों में निवेश किया जा सकता था उसका निवेश अनुत्पादक धातुओं पर करके संसाधनों को स्थिर बनाया जाता है जिससे कि आर्थिक समृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

राजनैतिक भ्रष्टाचार में वृद्धि–

भारत में राजनैतिक पार्टियों द्वारा काले धन का प्रयोग सत्ता परिवर्तन एवं सत्ता प्राप्ति के लिए किया जाता रहा है जिससे की चुनावो में भ्रष्टाचार बढ़ा विधायक एवं सांसदों को पैसे के बल पर खरीदने एवं बेचने की प्रक्रिया में वृद्धि हुई एवं आम जनता का लोक कल्याण प्रभावित हुआ है।

शहरी एवं ग्रामीण भूमि की कीमतों में तीव्र वृद्धि–

भारत में काले धन का सर्वाधिक प्रयोग शहरी एवं ग्रामीण भूमि के क्रय विक्रय में किया जाता है इसे खासकर की बड़े शहरों में भूमि, मकान की कीमतों में अप्रत्याशित वृद्धि होती है यहां तक की निम्न आय वर्ग व मध्यम आय वर्ग के लिए शहरों में भूमि या मकान खरीदना असंभव होता जा रहा है।

अपराधिक गतिविधियों में वृद्धि–

भारत में काले धन की वजह से अपराधिक गतिविधियों में वृद्धि हुई जिसका कानून व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव बढ़ा है एवं जिसके चलते अपराधिक प्रवृति के व्यक्तियों द्वारा गरीब और असहाय के भूमि एवं भवन या सम्पति में कब्जा कर अपनी आर्थिक शक्तियां बढ़ा कर अनैतिक कार्यो में वृद्धि करते हैं और खुले तौर पर कानून का उल्लंघन करते हैं।

1.7 काले धन के नियंत्रण के उपाय–

आयकर अधिनियम 1961–

धारा 131 के अधीन प्रदत्त शक्तियों किसी बात पर विचार करने के लिए दीवानी अदालत अधिकारी है आदेश 12 के नियम 12, 14 व 15 के साथ पठित आपराधिक प्रक्रिया संहिता के धारा 30 के अनुसार दीवानी अदालत की शक्तियां खोजबीन तथा निरीक्षण, गवाह को तलब करना तथा हाजिर करवाना, किसी गवाह से पूछताछ करने के लिए प्राधिकृत करना।

धारा 132 केवल कमिश्नर स्तर अथवा उसे वरिष्ठ स्तर के अधिकारियों द्वारा ही तलाशी की जा सकती है तलाशी प्राधिकृत करने से पहले कुछ शर्तों को पूरा होना अनिवार्य है धारा

132 के अधीन शक्तियों में बही खाता दस्तावेज, रोकड, आभूषण तथा अन्य मूल्यवान वस्तुएं जब्त करने की शक्ति शामिल है तथा उक्त वस्तुओं को कुछ निर्धारित अवधि के लिए रोके भी रखा जा सकता है।

धारा 133 ए लेखा बहीयों की जांच स्टॉक मिलान तथा रोकड़ का सत्यापन आदि करने के लिए व्यावसायिक परिसरों का सर्वे करना।

धारा 133 बी करदाताओं से सूचना एकत्रित करना।

धारा 133 तीसरी पार्टियों से जानकारी प्राप्त करने की शक्ति ।

धारा 136 आयकर से संबंधित कार्यवाहियों को न्यायिक कार्यवाही घोषित करना भारतीय दंड संहिता की धारा 193 झूठा अथवा जाल साक्षी प्रस्तुत करना।

भारतीय दंड संहिता की धारा 196 झूठा साक्ष्य प्रयोग करना।

भारतीय दंड संहिता 228 न्यायिक कार्यवाही में लीन किसी सरकारी कर्मचारी का जानबूझकर अपमान करना उसके कामकाज में रुकावट उत्पन्न करना।

आपराधिक प्रक्रिया संहिता 195 झूठा साक्ष्य प्रस्तुत करने पर सबूतो के साथ छेड़छाड़ करने पर साक्ष्यो के साथ जालसाजी हेतु आपराधिक साजिश के लिए उकसाना आदि।

आयकर अधिनियम 1961 के अध्याय 21 में विभिन्न प्रकार के त्रुटियों जैसे आय छिपाना, विधिक नोटिसों का अनुपालन न करना, कर विवरण दाखिल न करना, कर विवरणियों पर हस्ताक्षर न करना, लेखा बही व दस्तावेज न रखने तथा उन्हें सम्भालकर ना रखना, आय स्रोत पर कर कटौती, संग्रहण ना करना आदि के लिए विभिन्न दरों पर वित्तीय दंड लगाने का प्रावधान है इसमें अपवंचित हुए कर की अधिकतम 300 प्रतिशत तक की राशि बतौर दंड निर्धारित है।

आयकर अधिनियम 1961 का अध्याय 22 इसमें विभिन्न अपराधों जैसे जानबूझकर कर की चोरी करने या आय कर प्रतिवेदन दाखिल न करना अथवा लेखा बही दस्तावेज प्रस्तुत न करना, खातों में जालसाजी करना, शपथ पत्र पर गलत बयान देना, कर कटौती न करना और कर्ज जमा ना करना आदि के लिए मुकदमा चलाए जाने का प्रावधान है जिसके लिए अधिकतम सजा जुर्माना सहित 7 साल का कठोर कारावास का प्रावधान है।

आयकर अधिनियम के क्रियान्वयन के फल स्वरुप यह पाया गया की बहुत से लोग वास्तविक लेन–देन से अपने आप को बचाए रखने के लिए बेनामी लेन–देन का प्रयोग करते हैं बेनामी खरीद किसी अन्य व्यक्ति के नाम खरीदी गई वस्तु है जिसे वह इसकी खरीद के लिए कोई प्रतिफल ना देकर केवल अपने नाम का प्रयोग होने देता है जबकि खरीदी गई वस्तु का वास्तविक स्वामी स्वयं खरीददार ही होता है जो इसका हितकारी स्वामी होता है।

बेनामी लेन–देन निरोधक अधिनियम(1988)–

विधि आयोग से बेनामी लेन–देन के मामले तथा तत्तसंबंधी परिणामों की जांच करने के लिए अनुरोध किया गया विधि आयोग की 57 वी रिपोर्ट के अनुशंसाओं को लागू करने के लिए संसद में बेनामी लेन–देन निरोध बिल प्रस्तुत किया गया जो 5 सितम्बर 1988 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त होने पर बेनामी लेनदेन निरोधक अधिनियम बना जिसमे निम्नलिखित प्रावधान किए गए।

केवल जीवनसाथी, भाई अथवा बहन अथवा अन्य पूर्वज या वंशज के मामलों में बेनामी लेंन–देंन को छोड़कर यह किसी भी व्यक्ति के बेनामी लेन–देन को प्रतिबंधित करता है।

इसमें प्रावधान है कि बेनामी लेन–देन बेनामी संपत्ति को केंद्र सरकार द्वारा जब्त किया जा सकता है और बिना कोई मुआवजा दिए इसी संपत्ति पूर्ण रूप से केंद्र सरकार के पास निहित होगी।

यह बेनामीदार को धारित बेनामी संपत्ति को फिर से प्राप्त करने के अधिकार से प्रतिबंधित रखेगा इसमें प्रिवेंशन ऑफ मनी लांड्रिंग एक्ट 2002 के अधीन नियुक्त निर्णायक अधिकारी तथा अपील न्यायाधिकरण इस बिल के लिए क्रमशः निर्णायक अधिकारी तथा आपीलीय न्याय अधिकारी होंगे ।

विदेशी मुद्रा विनिमय प्रबंधन अधिनियम 2002 (फेमा)–

प्रवर्तन निदेशालय भारत में सामान्य रूप से निवास करने वाले नागरिकों द्वारा मुद्रा विनिमय में लेन–देन से संबंधित गड़बड़ियों के विशिष्ट मामलों की फेमा के तहत जांच करता है भारत में रह रहे नागरिकों द्वारा विदेशों में अवैध रूप से धन रखना फेमा की धारा 4 का उलंघन है फेमा के तहत चलाए जा रहे हैं अभियोग में आरोप सिद्ध होने पर इस अधिनियम की 13(1) के तहत समुचित दंड दिया जा सकता है इसके अतिरिक्त दंडित किए जाने के साथ–साथ फेमा के धारा 13 (1) के तहत निर्णायक अधिकारी विदेशो में जमा धन जब्त करते हुए ऐसी बेनामी संपत्तियों को भारत वापस लाने का भी आदेश दे सकता है फेमा एक दीवानी कानून है इसके लिए कोई अपराधिक अभियोग नहीं चलाया जा सकता है।

वित्तीय आसूचक एकक नवंबर (2004)–

वित्तीय आसूचक एकक नवंबर 2004 में गठित यह एक राष्ट्रीय एजेंसी जिसका कार्य संदिग्ध वित्तीय लेन–देनों से संबंधित सूचनाओं प्राप्त करना प्रसंस्कृत करना विश्लेषित करना तथा उसे देश के प्रवर्तन एजेंसियों तथा विदेशों के वित्तीय आसूचक एकक तक पहुंचना है यह मनी लांड्रिंग संबंधी सभी क्रियाकलापों की निगरानी के साथ–साथ राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय आसूचक एजेंसियों जांच पड़ताल एजेंसियों तथा प्रवर्तन एजेंसियों के मध्य उचित तालमेल बनाए रखने तथा उनके प्रयासों को सशक्त बनाए रखने का कार्य करता है इसका मुख्य दायित्व नियामक जैसे आर.बी.आई. सेबी तथा आई.आर.डी.ए के साथ घनिष्ठ सहयोग के आधार पर सूचनाओं को

एकत्र व भागीदार करना है यह मनी लांड्रिंग तथा संबंधित अपराधों संबंधी वैश्विक प्रयासों में रोकथाम के प्रयासों में भूमिका निभाता है इसके एक प्रमुख निदेशक होते हैं जिसे वित्त मंत्री को जानकारियां प्रदान करते हैं।

बेनामी ट्रांजैक्शन प्रोटेक्शन एक्ट (2011)–

बेनामी ट्रांजैक्शन प्रोटेक्शन एक्ट 2011 के अंतर्गत सरकार द्वारा बेनामी संपत्ति को बिना किसी क्षतिपूर्ति के जप्त किए जाने के साथ–साथ संपत्ति के वर्तमान बाजार का कीमत तब 25 प्रतिशत जुर्माना लगाने तथा 6 माह से 24 माह तक का कारावास का प्रावधान किया गया जिसे प्रिवेंशन ऑफ मनी लांड्रिंग एक्ट 2000 तथा 2009 में किए गए संशोधनों द्वारा इसे और अधिक प्रभावशाली बनाया गया है वैधानिक तरीके से कमाई गई मुद्रा को श्वेत पत्र में बदलने की कोशिश को रोकने से संबंधित अधिनियम इस अधिनियम में भारत की दंड संहिता के अंतर्गत लिखित अवैधानिक क्रियाकलापों से अर्जित आय को सम्मिलित किया जाता है इसके अनुसार यदि कोई आय किसी अपराध द्वारा अर्जित की गई हो तो उसे इस अधिनियम के अंतर्गत शामिल किया जाता है इसके अंतर्गत कम से कम 3 वर्षों के सश्रम कारावास का प्रावधान है जिसे 7 वर्षों तक बढ़ाया जा सकता है ।

यदि अपराध, मादक पदार्थों से संबंधित हो तो कारावास की अवधि 10 वर्षों तक की हो सकती है इसके अंतर्गत सभी अपराध गैर जमानती हैं संपत्ति जप्त कर लिए जाने के साथ–साथ ₹5 लाख तक का जुर्माना भी लगाया जा सकता है वर्ष 2009 में किए गए संशोधनों द्वारा आतंकवादी क्रियाकलापों के लिए वितरण तथा सीमा पार आर्थिक अपराधों को भी इस अधिनियम के अंतर्गत लाया गया अब इस अधिनियम के अंतर्गत मुद्राओं के अदला–बदली तथा मुद्रा हस्तांतरण व संबंधित सेवाओं को प्रदान करने वाली कंपनियों को भी इसके अंतर्गत लाया गया है इस अधिनियम के अंतर्गत केंद्र सरकार भ्रष्टाचार विरूद्ध संयुक्त राष्ट्र प्रावधानों के अंतर्गत दोषी व्यक्तियों की अन्य देशों में संपत्तियों को भी अधिकृत कर सकते हैं।

फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स–

यह एक अंतरसरकारी निकाय है जिसका उत्तरदायित्व मनी लांड्रिंग विरोधी तथा वित्तीय आतंकवाद नियंत्रण संबंधी वैश्विक मानकों का निर्धारण करना है इसका मुख्यालय एम्सटर्डम नीदरलैंड में है भारत 25 जून 2010 को इसका सदस्य बना भारत के लिए इसकी सदस्यता बहुत महत्वपूर्ण है इससे भारत को मनी लॉन्ड्रिंग तथा वित्तीय आतंकवाद संबंधी अपराधों की जांच पड़ताल करने तथा उसे सिद्ध करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त होगी जिससे आतंकवाद आतंकवादी मौद्रिक स्रोतों पर अंकुश लगा सकने की क्षमता में वृद्धि होगी इससे भारत को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मनी लॉन्ड्रिंग तथा वित्तीय आतंकवाद के प्रयासों को सशक्त बनाने में सहायता मिलेगी।

भारत सरकार द्वारा वर्ष 2011 में सरकार ने देश में काले धन के लिए तीन महत्वपूर्ण संस्थाओं को गठित किया था जिसमें राष्ट्रीय लोक वित्त एवं नीति संस्थान, राष्ट्रीय वित्तीय प्रबंधन

संस्थान एवं राष्ट्रीय अनुपयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद शामिल थी इस समूह ने काले धन का अनुमानित आकार जी.डी.पी.सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 30 प्रतिशत के बराबर लगाया लगभग 25 लाख करोड रुपए से अधिक माना है।

केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड (2011)–

सरकार द्वारा केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अध्यक्ष के अधीन अधिकारियों की एक उच्च समिति में वर्ष 2011 में गठित की गई थी जिसने अगस्त 2012 में अपनी रिपोर्ट सौपी इस समिति ने अपनी रिपोर्ट मे सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी एवं सार्वजनिक संसाधनों को पर्याप्त सशक्त बनाने की अनुशंसा की थीं।

इस समिति ने भारत में काले धन का कोई अनुमान नहीं लगाया तथा इस संदर्भ में एक वक्तव्य दिया कि यह कहा जा सकता है कि हमारी अर्थव्यवस्था में काला धन बड़ी मात्रा में उपस्थित है किंतु इसकी मात्रा का सही निर्धारण नहीं किया जा सकता है इस मुद्दे पर क्या काले धन को राष्ट्रीय संपदा के रूप में घोषित कर दिया जाना चाहिए समिति का कहना था कि अनुचित प्रकार से उत्पन्न की गई संपदा या संपत्ति का राष्ट्रीय परिसंपत्ति के रूप में घोषित करने से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी समिति ने कर प्रशासन में एक व्यापक परिवर्तन करके उसे सशक्त बनाए जाने तथा कानूनी उपाय और प्रभावशील बनाए जाने पर विशेष बल देने की बात कही वित्त मंत्रालय द्वारा वर्ष 2012 में काले धन पर श्वेत पत्र जारी किया गया जिसमें देश में काले धन में उत्पन्न होने के अनेक स्रोतों का उल्लेख किया गया है।

इन अवैधानिक स्रोत तथा अवैधानिक क्रियाकलाप जैसे तस्करी, प्रतिबंधित पदार्थ का व्यापार, जाली करंसी, अवैध हथियारों का क्रय विक्रय, आतंकवाद तथा इस रिपोर्ट में काले धन की परिभाषा ऐसी परिस्थितियों एवं संसाधनों के रूप में की गई जिन्हें ना तो उनके उत्पन्न होने के समय लोक अधिकारियों को सूचित किया गया था ना ही उनके स्वामित्व के किसी भी समय बिंदु पर उनकी जानकारी दी गई थी हल के वर्षों में भारत में काले धन की समस्या पर अंकुश लगाने के लिए कई कदम उठाए गए इसमें 82 देश के साथ दोहरा कराधान बचाव अनुबन्ध सम्मिलित है।

धन शोधक निवारक अधिनियम(पी.एम्.एल.ए.) 2012–

यह एक अपराधिक कानून है जो 1 जुलाई 2005 से लागू हुआ इस अधिनियम के अनुसार ऐसे धन शोधन संबंधी कृत्य जो इस अधिनियम में सूचीबद्ध किया गया दण्डनीय है धन शोधक निवारक अधिनियम के 28 विभिन्न कानून में 156 प्रकार के कृत्यों को अधिसूचित अपराध अनुचित माना गया है इसकी धारा 3 में मनी लांड्रिंग के अपराध को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि एक बार स्थापित अधिसूचित अपराध से संबंधित मामला दर्ज होने पर विधि प्रवर्तन एजेंसी द्वारा दर्ज किए गए मामले में अपराध पूर्वक जनित राशि के परिणाम का आकलन करने के लिए प्रवर्तन निदेशालय के अधीन मामले की जांच प्रारंभ कर देता है।

यदि प्रथम दृष्टया अपराध पूर्वक धन अर्जन और मनी लॉन्ड्रिंग की पुष्टि होती तो पी.एम. एल.ए .में संपत्ति जब्त करना धारा 17 तथा कुर्क करना धारा 5 का भी प्रावधान है संपत्ति की जब्ती और कुर्की की कार्रवाई का निर्णय धन शोधक निवारक अधिनियम के अनुसार प्राधिकृत अधिकारी ही कर सकेगा धारा 8 में अधिसूचित अपराध से संबंधित मनी लॉन्ड्रिंग कृत्यों के अभियुक्तों के विरुद्ध धन शोधन निवारक अधिनियम की धारा 44 के अनुसार विशेष अदालत में मुकदमा चलाया जा सकता है व्यक्तियों को अदालत द्वारा मनी लॉन्ड्रिंग का दोषी करार दिए जाने पर धन शोधन निवारक अधिनियम की धारा में कम से कम 3 वर्ष के सश्रम कारावास जिसे 7 वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है तथा ₹5 लाख रुपये जुर्माने का प्रावधान है यदि कृत्य नशीले पदार्थों से संबंधित है तो 10 साल तक के लिए सजा बढ़ाई जा सकती है।

अपराध पूर्वक अर्जित संपत्ति यदि विदेश में जमा है तो विदेशी प्रशासन के साथ लेटर ऑफ रिक्वेस्ट प्रक्रिया के माध्यम से संबंधित प्रमाण जुटाते हुए पारस्परिक विधिक सहायता के माध्यम से ऐसी संपत्ति को भी पुनर्जित किया जा सकता है अध्याय 12 में विदेशो में जमा परिसंपत्तियों को कुर्क तथा जब्त करने के लिए करारकर्ता देशो के साथ पारस्परिक व्यवस्था की कार्यप्रणाली का उल्लेख है भारत द्वारा 26 देश के साथ म्युचुअल लीगल असेसमेंट ट्रीटी पर करार किया है तथा मनी लेंडिंग का दोष सिद्ध होने पर धन शोधन निवारक कानून के प्रावधानों के चलते भारत सरकार विदेशों में जमा अवैध संपत्ति को वापस लाने में कानूनी रूप से पूरी तरह सक्षम है साथ ही साथ दोष सिद्ध होने तक विदेशी प्राधिकारियों से आग्रह किया जा सकता है कि विदेश में पाई गई संपत्ति उनके द्वारा जब्त कर लिया जाए।

1.8 सारांश–

भारत विश्व में तेजी से उभरती हुयी अर्थव्यवस्था है। लेकिन भारत में कालाधन एक गंभीर समस्या है। वस्तुतः कालाधन अघोषित आय है जिस पर टैक्स की देनदारी बनती है लेकिन उसकी जानकारी इनकम टैक्स डिपार्टमेंट को नहीं दी जाती। काले धन के उत्पन्न होने के कई कारण हैं जैसे स्मगलिंग, पोचिंग ड्रग्स, घोटाले, जालसाजी, भ्रष्टाचार आदि से काला धन उत्पन्न होता है। काले धन के कारण भारत में समानांतर अर्थव्यवस्था खड़ी है, जो भारत के समावेशी विकास में बाधा है। काले धन के कारण ही इस उभरती हुई अर्थव्यस्था में भ्रष्टाचार एक गंभीर मुद्दा है। विश्व में ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के अनुसार 2015 में भारत की रैंकिंग 76 है। भारत के विकास में भ्रष्टाचार बहुत बड़ी बाधा है क्योंकि भ्रष्टाचार के कारण एक तो कुछ ही लोगों के पास धन एकत्रित होता है, साथ ही बाजार में कृत्रिम वृद्धि लाता है जिससे वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होती है और वस्तुएं गरीब व्यक्ति की पहुँच से बाहर हो जाती हैं तथा आम लोगों का विकास मुश्किल हो जाता है।

1.9 बोध प्रश्न–

1–काले धन से आप क्या समझते हैं?

2–भारत में काले धन के सृजन के स्रोतों की व्याख्या कीजिए ।

3–काले धन के आकलन की विधियो का उल्लेख कीजिए।

4–भारत में काले धन के अनुमानो की व्याख्या कीजिए।

5–भारत में काले धन के दुष्परिणामों से आप क्या समझते हैं।

6–भारत में काले धन के नियंत्रण के उपायों की व्याख्या कीजिए।

1.10 कुछ उपयोगी पुस्तके–

एस.के.मिश्र और वी.के. पूरी भारतीय अर्थव्यवस्था हिमालया पब्लिशिंग हॉउस मुंबई

रुद्र दत्त एवं सुंदरम रूभारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

भारतीय अर्थव्यवस्था, ए. एन. अग्रवाल

भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण नाथूराम

आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं भारत में आर्थिक नियोजन, प्रो.जी.एल.गुप्ता

भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉक्टर ममोरिया एवं जैन

भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.के. राय

भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास और योजनाओं की चुनौतियां, ए. एन. अग्रवाल

MAEC-103 खण्ड–05, इकाई–02

समानान्तर अर्थव्यवस्था एवं उसके आर्थिक एवं सामाजिक बिखराव का विश्लेषण

<u>इकाई की रूपरेखा</u>

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 समानान्तर अर्थव्यवस्था क्या है?

1.3 भारत में समानान्तर अर्थव्यवस्था का इतिहास

1.4 भारत में काले धन के बढ़ने के कारण आर्थिक सामाजिक विखराव

1.5 काला धन वापस लाने की रणनीति

1.6 भारत की आंतरिक सुरक्षा पर समानांतर अर्थव्यवस्था का प्रभाव

1.7 समानांतर अर्थव्यवस्था के खिलाफ सरकार के कदम

1.8 भारत में समानान्तर अर्थव्यवस्था के कारण

1.9 समानान्तर अर्थव्यवस्था के हानिकारक प्रभाव

1.10 निष्कर्ष

1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य (Objectives)

इस अध्ययन के बाद समझ सकेंगे कि –

- समानान्तर अर्थव्यवस्था का ज्ञान होगा।

- भारत में काले धन के बढ़ने के कारणों का ज्ञान होगा।
- भारत की सुरक्षा एवं अर्थव्यवस्था पर काले धन का प्रभाव।
- समानान्तर अर्थव्यवस्था के खिलाफ सरकार के कदम।
- समानान्तर अर्थव्यवस्था के हानिकारक प्रभावों की जानकारी होगी।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)-

किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में उस विशेष देश के अंदर वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन, व्यापार, वितरण व उपभोग में शामिल आर्थिक अभिकर्ताओं के साथ-साथ उसकी आर्थिक प्रणाली, श्रम, पूंजी और भूमि संसाधन शामिल होते हैं। विभिन्न व्यवसाय, नौकरियाँ, आर्थिक खिलाड़ी और आर्थिक कारक अर्थव्यवस्था के समग्र कामकाज एवं विकास में विशिष्ट योगदान देते हैं। अर्थव्यवस्था के तीन मूलभूत घटक उपभोग, बचत और निवेश हैं, जो बाजार संतुलन स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कराधान व सरकारी विनियमन की कमी के आधार पर अनौपचारिक आर्थिक गतिविधि को औपचारिक आर्थिक गतिविधि से अलग किया जा सकता है। नतीजतन, सरकार की सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीएनपी) की गणना में अनौपचारिक क्षेत्र को शामिल नहीं किया गया है। विचाराधीन घटना एक बहुआयामी और विकासशील तंत्र है जिसमें आर्थिक और सामाजिक सिद्धांत के कई

तत्व शामिल हैं। इन तत्वों में वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान के साथ-साथ नियामक उपायों और प्रवर्तन प्रोटोकॉल का कार्यान्वयन और निरीक्षण शामिल है। समानांतर अर्थव्यवस्था अघोषित वित्तीय संसाधनों के उपयोग पर आधारित है, जिसे कभी-कभी काला धन भी कहा जाता है। शब्द "काला धन" उन संपत्तियों या संसाधनों को संदर्भित करता है जिन्हें उनके उत्पादन के दौरान सार्वजनिक अधिकारियों को घोषित नहीं किया गया है या उनके स्वामित्व के दौरान किसी भी समय प्रकट नहीं किया गया है। समान्तर अर्थव्यवस्था, अर्थव्यवस्था के भीतर एक अनौपचारिक क्षेत्र के संचालन को संदर्भित करती है जो आधिकारिक, स्वीकृत या कानूनी क्षेत्र के उद्देश्यों के विरोध में काम करती है। समानांतर अर्थव्यवस्था में राजनीतिक, वाणिज्यिक, कानूनी, औद्योगिक, सामाजिक और नैतिक तत्वों सहित कई आयाम शामिल हैं। काले धन का अस्तित्व एक समानांतर अर्थव्यवस्था के उद्भव में योगदान देता है। समानांतर अर्थव्यवस्था वाक्यांश, जिसे कभी-कभी काली अर्थव्यवस्था, बेहिसाब अर्थव्यवस्था, अवैध अर्थव्यवस्था, भूमिगत अर्थव्यवस्था, या अस्वीकृत अर्थव्यवस्था के रूप में जाना जाता है, जिसमें अवैध आर्थिक गतिविधियों की एक श्रृंखला शामिल है। समानांतर अर्थव्यवस्था की एक उल्लेखनीय विशेषता इसकी आर्थिक गतिविधियों को सुविधाजनक बनाने की प्रवृत्ति है जिसमें असूचित

राजस्व को कर अधिकारियों से छुपाया जाता है। आमतौर पर, समानांतर अर्थव्यवस्था विशिष्ट उपभोक्तावाद, रियल एस्टेट निवेश, विदेशी संपत्ति निवेश, आपराधिक गतिविधियों में संलग्नता और भ्रष्टाचार जैसे व्यय प्रतिरुप प्रदर्शित करती है। लेन-देन का निष्पादन अपारदर्शी तरीके से होता है।

समानांतर अर्थव्यवस्था, जिसे अक्सर हमारी अर्थव्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण खतरा माना जाता है, हमारी आर्थिक संरचनाओं के अंदर समा गई है। कर अधिकारियों से जानबूझकर छिपाए गए अघोषित धन को अक्सर काला धन कहा जाता है। भारत में काली अर्थव्यवस्था इस हद तक गहरी जड़ें जमा चुकी है कि परिवर्तन लाने का प्रयास एक निरर्थक प्रयास के रूप में देखा जा सकता है। 2016 के विमुद्रीकरण और स्वैच्छिक प्रकटीकरण प्रणालियों के कार्यान्वयन जैसे पिछले प्रयासों के बावजूद, मौजूदा परिदृश्य को प्रभावी ढंग से खत्म करने के लिए अभी भी काफी दूरी तय करनी बाकी है। एक समानांतर अर्थव्यवस्था एक बेहिसाब या अस्वीकृत आर्थिक क्षेत्र के संचालन को संदर्भित करती है जो मुख्य रूप से उक्त क्षेत्र के वित्तपोषण की अंतर्निहित अवधारणा द्वारा वित्त पोषित होती है। यह घटना स्वीकृत, पंजीकृत या वैध क्षेत्र द्वारा स्थापित कानूनी लक्ष्यों का खंडन करती है। अधिक सुलभ भाषा में, समानांतर अर्थव्यवस्था में कई गतिविधियाँ शामिल होती हैं जो असूचित

धन पैदा करती हैं, जिसे कभी-कभी काली आय भी कहा जाता है। ये गतिविधियाँ आम तौर पर औपचारिक लेखांकन प्रथाओं से बचती हैं। आम बोलचाल की भाषा में इसे काला धन या काली अर्थव्यवस्था कहा जाता है, समानांतर अर्थव्यवस्था का किसी राष्ट्र के आर्थिक ढांचे पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। एक लोकतांत्रिक समाज के सदस्य के रूप में, औसत नागरिक यह आशा करता है कि राजनेता निष्पक्षता प्रदर्शित करेंगे। हालाँकि, एक अपंजीकृत अर्थव्यवस्था की उपस्थिति के कारण, सकल घरेलू उत्पाद के परिणाम में नीति निर्माताओं के लिए समावेशी नीतियां बनाने में उपयोगिता का अभाव है।

भारत में समानांतर अर्थव्यवस्था का इतिहास

भारत की आर्थिक व्यवस्था पर समानांतर अर्थव्यवस्था के हानिकारक प्रभाव के कारण इसे विकासशील देश के रूप में वर्गीकृत किया जाना जारी है। हालाँकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि काली अर्थव्यवस्था की उपस्थिति केवल अविकसित देशों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सबसे उन्नत देशों तक भी फैली हुई है। समानांतर अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति का पता द्वितीय विश्व युद्ध के दशक में लगाया जा सकता है, जिसके दौरान पश्चिमी क्षेत्रों से वस्तुओं की आपूर्ति बंद होने के कारण आवश्यक आपूर्ति की कमी पैदा हो गई थी। इस परिस्थिति ने आम व्यक्तियों को कमी का

फायदा उठाकर आय उत्पन्न करने के लिए मजबूर किया। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, नव सशक्त भारतीय राजनीतिक नेताओं ने एक मजबूत सरकारी ढांचा स्थापित करने की आकांक्षा की। हालाँकि, उनके सीमित अनुभव और संसाधन की कमी के परिणामस्वरूप अपेक्षाकृत कमजोर लोकतंत्र की स्थापना हुई। यह मुख्य रूप से गैर-जिम्मेदार नेताओं के हाथों में सत्ता की एकाग्रता के कारण था, जो समाज के भीतर विशेषाधिकार प्राप्त अभिजात वर्ग के प्रति आभारी थे। जैसे ही राजनीतिक नेताओं ने भ्रष्ट आचरण में संलग्न होना शुरू किया, इन नेताओं का एक उपसमूह उभरा, जिन्होंने आगे संसाधन विकास को सुविधाजनक बनाने के लिए अवैध अर्थव्यवस्था को विनियमित करने की मांग किया।

समय के साथ, व्यक्तियों ने व्यापार और आर्थिक नीतियों में हेरफेर के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लिया, जो देश की राजनीतिक संरचना के साथ जटिल रूप से जुड़ गया। कई क्षेत्रों में समानांतर अर्थव्यवस्था के प्रसार के साथ, व्यक्तियों ने राजनीतिक दलों को वित्तीय सहायता प्रदान करके राजनीतिक क्षेत्र पर प्रभाव डालना शुरू कर दिया, ताकि पूरी आर्थिक व्यवस्था पर अपना नियंत्रण मजबूत किया जा सके। नतीजतन,

इसने राजनीतिक साज़िश और हेरफेर की विशेषता वाले सत्ता संघर्ष की शुरुआत को चिह्नित किया, जिसमें अवैध धन अंतिम पुरस्कार के रूप में कार्य करता था। राजनेताओं और व्यवसायियों ने साझा उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए निकट सहयोग किया है, जिसके परिणामस्वरूप पूरे समय में भ्रष्ट आचरण का प्रसार हुआ है।

बोध प्रश्न-1: समानान्तर अर्थव्यवस्था का ऐतिहासिक विवेचना कीजिए।

....

भारत में काले धन के बढ़ने के कारण आर्थिक सामाजिक बिखराव

लाइसेंसिंग प्रणाली

लाइसेंसिंग प्रणाली का निर्माण भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले हुआ था। लाइसेंस प्रणाली द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामों और ब्रिटिश प्रणाली की त्वरित वापसी के परिणामस्वरूप स्थापित की गई थी। स्वतंत्रता के बाद के भारत के योजना आयोग ने निर्धारित किया कि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा भारत के संसाधनों की व्यापक कमी के कारण लाइसेंसिंग प्रणाली का कार्यान्वयन अनिवार्य था। मुक्त बाज़ार की अनुमति थी, लेकिन, निजी क्षेत्रों द्वारा वस्तुओं का उत्पादन सत्यापित लाइसेंस रखने वालों तक ही सीमित था। ख़त्म हुए संसाधनों को फिर से भरने के

लिए, भारत सरकार ने कई उपायों का इस्तेमाल किया जैसे आयात और निर्यात पर उच्च टैरिफ लगाना, देशी उत्पादों को सक्रिय रूप से बढ़ावा देना, कस्टम शुल्क बढ़ाना और विभिन्न वस्तुओं पर उत्पाद शुल्क लगाना।

करों की उच्च दरें

कर बढ़ाने का निर्णय बाहरी सहायता पर निर्भर हुए बिना, अपनी अर्थव्यवस्था को स्वायत्त रूप से बढ़ावा देने और विस्तारित करने के सरकार के उद्देश्य से प्रेरित था। उदाहरण के तौर पर, उच्च निर्यात और आयात शुल्क लगाने का उद्देश्य स्थानीय व्यापार को बढ़ावा देते हुए विदेशी वाणिज्य को प्रतिबंधित करना है। बढ़ती कर दरों के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में कर चोरी की व्यापकता में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गई है। कर चोरी कई प्रकार के कराधान में एक प्रचलित घटना है, जैसे बिक्री कर, निगम कर और आयकर, इत्यादि।

राजनीतिक दलों की फंडिंग

जब दोनों क्षेत्र एक विशिष्ट बिंदु पर एकत्रित होते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति अवैध गतिविधियों को सुविधाजनक बनाने, भुगतान के लिए कमियों का

फायदा उठाने या नीतियों को संशोधित करने के लिए सत्तारूढ़ दल को प्रभावित करने के लिए राजनीतिक दलों या शासी निकाय को वित्तीय रूप से समर्थन देने के इच्छुक हैं। उनकी प्राथमिकताएँ. यह भ्रष्टाचार के निरंतर अस्तित्व के कारण है, जो समानांतर अर्थव्यवस्था के पूर्ण उन्मूलन में बाधा डालता है।

कृषि अर्थव्यवस्था

कृषि अर्थव्यवस्था कृषि वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण और उपभोग से संबंधित आर्थिक गतिविधियों और प्रणालियों को संदर्भित करती है। भारत में कृषि क्षेत्र का महत्वपूर्ण आर्थिक महत्व है, जो व्यक्तियों को भूमि के बड़े पार्सल प्राप्त करके इस उद्योग में अवसर तलाशने के लिए प्रेरित करता है। सिल्हूट व्यक्तियों द्वारा अवैध धन प्राप्त करने के लिए उपयोग किए जाने वाले गुप्त चैनलों को संदर्भित करता है, इन निधियों को असूचित आय से वैध संपत्तियों में परिवर्तित करने के इरादे से, ताकि कृषि कर दायित्वों को दरकिनार किया जा सके।

निजीकरण

निजीकरण की अवधारणा सार्वजनिक संपत्तियों और सेवाओं के स्वामित्व और नियंत्रण के हस्तांतरण को संदर्भित करती है। इस क्रांति में प्रत्येक मुद्रा की दोहरी

प्रकृति दिखाई गई है, क्योंकि यह व्यक्तियों द्वारा अवैध धन उत्पन्न करने के लिए एक मंच के रूप में भी कार्य करती है। अधिक सुलभ शब्दों में कहें तो निजीकरण की आड़ में व्यक्ति अपने अनैतिक कार्यों को छुपाने में माहिर हो गए हैं। ऐसे और भी चर हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए।

अन्य कारक

प्राथमिक उत्प्रेरक जो समानांतर ब्रह्मांडों के अंदर अवैध धन के प्रसार को सुविधाजनक बनाते हैं, उनमें रिश्वतखोरी, प्रतिबंधित वस्तुओं की तस्करी, प्रतिबंधित वस्तुओं का अवैध व्यापार, अघोषित रियल एस्टेट लेनदेन और अघोषित वित्तीय प्रोत्साहन जैसी विभिन्न गतिविधियां शामिल हैं। भारत में सृजित अवैध धन की बड़ी मात्रा इस बात का प्रमाण है कि गुप्त आर्थिक गतिविधियाँ लंबे समय से जारी हैं।

बोध प्रश्न-2ः भारत में काला धन बढ़ने के प्रमुख कारण बताइये।

....

काला धन वापस लाने की रणनीति

सरकार ने समानांतर अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली को समझने के उद्देश्य से कई उपाय लागू किए हैं। इस समस्या को प्रभावी ढंग से संबोधित करने के लिए एक व्यापक रणनीति तैयार करने के उद्देश्य से, कई सरकारी संस्थाओं को अवैध धन,

जिसे अक्सर काला धन कहा जाता है। सरकार ने हमारी आर्थिक व्यवस्था की सुरक्षा के लिए समानांतर अर्थव्यवस्था की बढ़ती समस्या के समाधान के लिए विभिन्न उपाय लागू किए हैं या लागू करने चाहिए। समानांतर अर्थव्यवस्था किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। वर्तमान समस्या वैश्विक प्रकृति की है। गलत मूल्य स्थानान्तरण एक लगातार मुद्दा है क्योंकि कर की गलत कीमत में लगे व्यक्ति अपनी कमाई को कर क्षेत्राधिकारों में प्रसारित करना जारी रखते हैं, जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका और यूएई भी शामिल हैं, लेकिन यह इन्हीं तक सीमित नहीं है। समकालीन समय में, सहयोगात्मक प्रयासों को बढ़ावा देना आवश्यक है, जिससे राष्ट्र मौजूदा वैश्विक चुनौतियों का समाधान करने के लिए एकजुट हों। ऐसा करके, हम इन चिंताओं को प्रभावी ढंग से कम कर सकते हैं और अपनी आर्थिक प्रणाली के अंदर पारदर्शिता और स्पष्ट जिम्मेदारी की विशेषता वाली एक संरचना स्थापित कर सकते हैं।

वर्तमान आवश्यकता एक कठोर और उपयुक्त कानूनी ढांचा स्थापित करने की है। लंबे समय से हमारे देश के अंदर एकत्रित अवैध धन की पर्याप्त मात्रा को देखते हुए, सरकार के लिए मौजूदा कानूनी ढांचे में संशोधन करना, वैकल्पिक दृष्टिकोण अपनाने वाले अधिक कठोर और दंडात्मक कानून को लागू करना अनिवार्य है। अवैध

धन की उपस्थिति को समाप्त करने के लिए सरकार द्वारा नवीन संस्थानों की स्थापना की आवश्यकता है। जैसा कि पहले संकेत दिया गया है, कर विनिमय से संबंधित चर्चाएं की गई हैं, और प्रशासन आपराधिक अन्वेषण के लिए समर्पित एक इकाई, आयकर निदेशालय स्थापित करने के लिए भी आम सहमति पर पहुंच गया है। कई दो-आयकर इकाइयाँ पहले ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तैनात की जा चुकी हैं, भविष्य में अतिरिक्त आठ इकाइयाँ स्थापित की जाएंगी। तकनीकी प्रगति के अलावा, बढ़ी हुई प्रभावशीलता और उत्पादकता परिणाम प्राप्त करने के लिए कौशल प्रदान करने में सक्षम व्यक्तियों की भर्ती करके हमारे कार्यबल को बढ़ाना आवश्यक है।

भारत की आंतरिक सुरक्षा पर समानांतर अर्थव्यवस्था का प्रभाव

समानांतर अर्थव्यवस्था का अस्तित्व हमारे देश की आर्थिक स्थिरता और आंतरिक सुरक्षा दोनों के लिए महत्वपूर्ण जोखिम पैदा करता है। समानांतर अर्थव्यवस्था के अस्तित्व से उत्पन्न परिणामों ने हमारे देश के अंदर कई महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों को जन्म दिया है। किसी देश में संभावित वित्तीय संकट और उसके बाद मुद्रास्फीति के दबाव को केंद्र सरकार या भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रभावी ढंग से प्रबंधित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इसका देश की वित्तीय प्रणाली पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। आर्थिक चुनौतियों को दरकिनार करते हुए,

अवैध बाज़ार से प्राप्त धनराशि अक्सर मनी लॉन्ड्रिंग की प्रक्रिया से गुजरती है, जिसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा आतंकवाद, अवैध नशीली दवाओं के व्यापार, मानव तस्करी और निषिद्ध वस्तुओं या संपत्तियों की तस्करी जैसे गैरकानूनी प्रयासों के लिए आवंटित किया जाता है। ऐसा ही एक उदाहरण मेक्सिको में सक्रिय ड्रग कार्टेल है। मेक्सिको में समानांतर अर्थव्यवस्था की व्यापकता को नशीले पदार्थों के अवैध व्यापार के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

यह न केवल आतंकवादी गतिविधियों के वित्तपोषण की सुविधा प्रदान करता है, बल्कि हथियारों के अवैध व्यापार, मादक पदार्थों की तस्करी के वित्तपोषण और भ्रष्ट आचरण को कायम रखने में भी सक्षम बनाता है। इसी तरह, गैरकानूनी संसाधनों पर अवैध रूप से अर्जित धन, जिसे कभी-कभी काला धन भी कहा जाता है, ईमानदारी, परिश्रम और निष्पक्षता जैसी मूलभूत विशेषताओं को कमजोर करने का प्रतिकूल प्रभाव डालता है। यह न केवल कानूनी सिद्धांतों का उल्लंघन है, बल्कि समाज के अन्य सदस्यों के लिए एक नैतिक निवारक के रूप में भी कार्य करता है।

समानांतर अर्थव्यवस्था के खिलाफ सरकार के कदम

भारतीय अर्थव्यवस्था के संबंध में, भारत सरकार ने हमारे देश के अंदर समानांतर आर्थिक गतिविधियों के प्रसार को रोकने के उद्देश्य से कई कदम लागू किए हैं। आयकर विभाग द्वारा निगरानी बढ़ाने के अलावा, उपरोक्त समस्या के समाधान के उद्देश्य से 2004 के वित्त अधिनियम में महत्वपूर्ण संशोधन शामिल किए गए थे। सरकार ने समानांतर आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के उद्देश्य से रणनीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन की सुविधा के लिए सीमित संख्या में कदम उठाए हैं।

- विमुद्रीकरण
- आय योजनाओं का स्वैच्छिक प्रकटीकरण
- विशेष वाहक बांड योजना
- कर चोरी रोकने के उपाय
- अन्य उपाय

प्रश्न–3: समानान्तर अर्थव्यवस्था के खिलाफ सरकार ने क्या कदम उठाये हैं?

....

भारत में समानांतर अर्थव्यवस्था के कारण

काले धन को उत्पन्न करने का कोई एक तरीका नहीं है।

- नशीली दवाओं की तस्करी, हथियारों का व्यापार और अवैध अवैध साधनों का उपयोग नियोजित है। यह नकली या चोरी हुए माल की बिक्री से उत्पन्न होता है। इसका निर्माण नशीली दवाओं की तस्करी, हथियारों के व्यापार और अवैध धमकी जैसे गैरकानूनी तरीकों के कार्यान्वयन के माध्यम से किया जाता है। संक्षेप में, इसे कानूनी नियमों का पालन करते हुए तैयार किया जाता है। उदाहरण के लिए, व्यक्ति कानूनी तरीकों से अपनी आय छिपाने और जुर्माने से बचने के लिए जानबूझकर अधिकारियों को गलत जानकारी प्रदान करने की प्रथा में संलग्न हो सकते हैं।
- ऐसे लेन-देन में संलग्न होना जो ग़ैरकानूनी है या जिसमें आपराधिक कृत्यों के लिए धन का प्रावधान शामिल है, जैसे कि अवैध उत्पादों और सेवाओं की खरीद और बिक्री शामिल है।
- भ्रष्टाचार या सार्वजनिक व्यय का खुलासा करने के लिए पारदर्शी प्रणाली की कमी के कारण सरकार में जनता के विश्वास में कमी के परिणामस्वरूप कर

चोरी हो सकती है। इस व्यवहार को कई मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय कारकों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जिसमें लालच और फायदा उठाए जाने की धारणा शामिल है।

- आश्रितों की बड़ी संख्या के कारण, व्यक्तियों को अपनी रिपोर्ट की गई आय पर कर दायित्वों को पूरा करने के साथ-साथ अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करने में भी चुनौतियाँ आती हैं।
- टैक्स फाइलिंग और इससे जुड़ी जटिल प्रक्रियाएं उन लोगों के लिए चुनौतियां खड़ी कर सकती हैं जो अशिक्षित हैं या जिनके पास अपेक्षित विशेषज्ञता का अभाव है।
- उच्च कर दरें: एक प्रमुख कारक जो व्यक्तियों को कर भुगतान से बचने के लिए प्रेरित करता है, वह है उन पर उच्च कर दरें लगाना। काले धन की घटना व्यक्तियों द्वारा अपने कर दायित्वों को पूरा करने से बचने के प्रयासों के कारण हुई है। शासी निकाय द्वारा उच्च कर दरों को लागू करने के कारण, वार्षिक लागत, कॉर्पोरेट, निष्कर्षण जनादेश, लेनदेन और प्रशासनिक शुल्क जैसे कर दायित्वों को पूरा करते समय कर बचाव रणनीतियों में शामिल होना आवश्यक है।

- अवैध धन उत्पन्न करने के संदर्भ में, वित्तीय प्रबंधकों और धार्मिक नेताओं को वाणिज्यिक संचालन के निजीकरण के कारण नए अवसर प्राप्त हुए हैं। नतीजतन, अघोषित नकदी को अवैध रूप से आयात करने के उद्देश्य से कई रणनीतियों के रहस्योद्घाटन की आशा करना उचित है।
- योग्य व्यक्तियों, नागरिक निधियों, नागरिकों पर लगाए गए शुल्कों और संबंधित मामलों की निगरानी के उद्देश्य से भारत में पर्याप्त बुनियादी ढांचे की अनुपस्थिति कर मूल्यांकन नियमों को कुशलतापूर्वक लागू करने में चुनौतियां पैदा करती है। इस घटना के परिणामों में कर दायित्वों का अनुचित परिहार और धन का संचय शामिल है जिसका आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता है।

विमुद्रीकरण का समानांतर अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

विमुद्रीकरण का समानांतर अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव के अन्तर्गत 8 नवंबर 2016 को, सरकार ने अप्रत्याशित रूप से हमारे देश में विमुद्रीकरण की नीति लागू की, जिसके परिणामस्वरूप 1000 और 500 रुपये के मूल्यवर्ग को बंद कर दिया गया और 2000 और 500 रुपये के नए नोट पेश किए गए। 1978 के विमुद्रीकरण के

बाद विमुद्रीकरण को लागू करने का प्राथमिक उद्देश्य कर आधार को व्यापक बनाना, सभी रिकॉर्डों के अनिवार्य डिजिटलीकरण की सुविधा प्रदान करना और संपत्ति रिकॉर्ड, पैन आईडी और रडार नंबरों के बीच अनिवार्य लिंक स्थापित करना था। इसके अतिरिक्त, इस उपाय का उद्देश्य कर अनुपालन को बढ़ाना और मुख्य रूप से समानांतर अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पन्न चुनौतियों का समाधान करना है। सरकार द्वारा महत्वपूर्ण परिमाण की एक परियोजना शुरू करने के बाद कई चिंताओं का समाधान किया गया है। विमुद्रीकरण का कार्यान्वयन न केवल अनौपचारिक क्षेत्र को विनियमित करने के उद्देश्य से किया गया था, बल्कि आतंकवाद, अवैध हथियारों के व्यापार, नशीली दवाओं के वित्तपोषण, भ्रष्टाचार, डिजिटल लेनदेन को बढ़ावा देने और सरकारी राजस्व में वृद्धि सहित इसके संबंधित परिणामों को संबोधित करने के उद्देश्य से भी किया गया था। अन्य। भारत में आतंकवादी कृत्यों के लिए धन का प्राथमिक स्रोत पड़ोसी देशों से नकली नोटों की घुसपैठ है। वैश्विक स्तर पर दूसरी सबसे बड़ी आबादी वाले देश के रूप में, यह तर्क दिया जाता है कि भ्रष्टाचार से निपटने के लिए सरकारी उपायों को लागू करना केवल कर चोरी करने वाले व्यक्तियों पर ध्यान केंद्रित करने की तुलना में अधिक व्यवहार्य दृष्टिकोण हो सकता है। घनी आबादी वाले राष्ट्र में केवल सरकार द्वारा स्थापित संस्थानों के माध्यम से ऐसे

व्यक्तियों की पहचान करने और उन्हें खत्म करने का कार्य एक सतत और कठिन प्रयास है। नतीजतन, आतंकवाद के कृत्यों में शामिल विरोधियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले फंडिंग तंत्र को बाधित करने की सरकार की क्षमता को सुविधाजनक बनाने के लिए विमुद्रीकरण के कार्यान्वयन को एक संभावित समाधान के रूप में सुझाया गया था।

समानांतर अर्थव्यवस्था के हानिकारक प्रभाव:

अवैध धन, जिसे अधिकतर काला धन कहा जाता है, इसके प्रचलन से अर्थव्यवस्था पर कई तरह से नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। सबसे पहले, क्या मूल्यवान राष्ट्रीय संसाधनों का दुरुपयोग हो रहा है? अवैध धन का एक हिस्सा इस तरह से रखा जाता है जिससे आर्थिक प्रयासों में बहुत कम या कोई योगदान नहीं मिलता है। लगभग 50% से 66% संसाधन वस्तुओं और सेवाओं की अत्यधिक खपत पर बर्बाद कर दिए जाते हैं। इसके अलावा, इसने आय के वितरण को महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया है, जिससे समाज के भीतर सामाजिक एकजुटता कमजोर हो गई है। इसके अलावा, अर्थव्यवस्था के भीतर एक महत्वपूर्ण असूचित क्षेत्र की उपस्थिति सटीक विश्लेषण करने और प्रभावी नीति ढांचे को विकसित करने में एक महत्वपूर्ण बाधा

उत्पन्न करती है और अर्थव्यवस्था के रुझानों को सही प्रारुप में बिखराव करने में काफी हद तक प्रभावित करती है।

निष्कर्ष

समानांतर अर्थव्यवस्था के अस्तित्व ने हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और हमारे राष्ट्र की समग्र भलाई दोनों के लिए लगातार महत्वपूर्ण जोखिम पैदा किया है। उच्च कर दरें, मुद्रास्फीति, निजीकरण, लाइसेंसिंग प्रणाली और राजनीतिक प्रणालियों के वित्तपोषण जैसे विभिन्न कारणों को समानांतर अर्थव्यवस्था के उद्भव और विकास में महत्वपूर्ण योगदानकर्ताओं के रूप में पहचाना गया है। भारत में काले बाज़ार ने लगातार विस्तार दिखाया है, जिससे देश के आर्थिक विकास पर हानिकारक प्रभाव पड़ रहा है। भारत में समानांतर अर्थव्यवस्था की मौजूदगी का देश की जीडीपी पर हानिकारक प्रभाव पड़ा है, जिससे अवैध गतिविधियों में वृद्धि हुई है और दैनिक आधार पर आबादी के विभिन्न वर्गों के बीच सामाजिक-आर्थिक असमानताएं बढ़ रही हैं। उपरोक्त मुद्दे को कुछ हद तक कम करने के उद्देश्य से, विभिन्न योजनाओं और प्रस्तावों की शुरूआत के साथ, विमुद्रीकरण के तीन उदाहरण अतीत में लागू किए गए हैं। हालाँकि, वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए, एक सामान्य व्यक्ति के लिए यह

स्पष्ट है कि ये योजनाएँ और विमुद्रीकरण के उपाय अत्यधिक प्रभावी साबित नहीं हुए हैं। फिलहाल, एक समानांतर अर्थव्यवस्था के उद्भव को हमारे देश के अंदर एक महत्वपूर्ण चिंता के रूप में देखा जा रहा है। यह वांछनीय है कि सरकार हमारी आर्थिक गिरावट और हमारे राष्ट्र की सुरक्षा चिंताओं से संबंधित दोनों चुनौतियों का तुरंत समाधान करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- इंडिया टुडे (2005, 19 दिसंबर)। कवर स्टोरी: काला धन। http://www.india- today.com/itoday/20051219/cover2.html से लिया गया
- लैंबर्ट, एल. (1996). भूमिगत बैंकिंग और राष्ट्रीय सुरक्षा। http://www से लिया गया. उपमहाद्वीप.com/sapra/bulletin/96feb-mar/ si960308.html लेखी, आर. (2003)। विकास और योजना का अर्थशास्त्र (8वां संस्करण)। लुधिना: कल्याणी प्रकाशन।

➢ काले धन को वैध बनाना। (2010, 30 नवंबर)। http://en.wikipedia.org/ wiki/Money_ लॉन्ड्रिंग से लिया गया

➢ राजाराम, के. (2006). भारतीय अर्थशास्त्र (छठा संस्करण)। नई दिल्ली: स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा. लिमिटेड

➢ ब्लैक इकोनॉमिक एम्पावरमेंट (2010, 12 नवंबर)। http://en.wikipedia.org/wiki/ Black_Economic_Empowerment से लिया गया काला धन हमारे देश के लिए अभिशाप है (2010)। हमारे राष्ट्र के लिए

➢ चार्ली, एस. (2010)। कर चोरी जुर्माना. http://www.buzzle.com/articles/tax- evasion-penalties.html से लिया गया चोपड़ा, ए. (2010)। भारत का निशाना है काला धन. http://www.thenational.ae/business/economy/india-लक्ष्य-काला-धन से लिया गया

- काबरा. के.एन., (1982), "भारत की काली अर्थव्यवस्था - समस्याएं और राजनीति",
- कलडोर एन., (1956) "इंडियन टैक्स रिफॉर्म", आर्थिक मामलों का विभाग, वित्त मंत्रालय: भारत सरकार।
- मेह्रा, अजय, (2004), "करप्शन एंड डेवलपमेंट इन इंडिया", यंग इंडिया।
- मेह्ता, वी.एल., बेरोजगारी, असमानता, समानांतर अर्थव्यवस्था - एक समाधान (1982)
- पूनम गुप्ता और संजीव गुप्ता, (1982), "एस्टीमेट ऑफ द अनरिपोर्टेड इकोनॉमी इन इंडिया", इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली। वॉल्यूम. XVII, नंबर 3, पीपी।
- प्रेम शंकर झा, (23 नवंबर, 7 दिसंबर और 16 दिसंबर, 1981) "चार आवश्यक सुधार - समानांतर अर्थव्यवस्था पर अंकुश", टाइम्स ऑफ इंडिया
- रुद्दार दत्त, (1982), "द पैरेलल इकोनॉमी इन इंडिया", इंडियन इकोनॉमिक एसोसिएशन, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एंड पॉलिसी के 65वें

वार्षिक सम्मेलन में प्रस्तुत मुख्य भाषण, भारत में काली अर्थव्यवस्था के पहलू"

- फारूक अहमद शेख, वीएन हुद्दार, भारत की समानांतर अर्थव्यवस्था पर एक अध्ययन - कारण और विस्तार, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेंट, आईटी और इंजीनियरिंग वॉल्यूम। 8 अंक 10, अक्टूबर 2018,

- http://docsdrive.com/pdfs/medwelljournals/ibm/2016/4855-4860.pdf
- https://www.nepjol.info/index.php/EJDI/article/view/6111/5017
- https://blog.ipleaders.in/impact-of-black-money-on-indian-economy/

उत्तर बोध प्रश्न-1

1. समानान्तर अर्थव्यवस्था अधोषित वित्तीय संसाधनों के उपयोग पर आधारित है जिसे कभी-कभी काला धन भी कहा जाता है।

2. समानान्तर अर्थव्यवस्था में अवैध आर्थिक गतिविधियों की एक श्रृंखला शामिल है।

3. समानान्तर अर्थव्यवसथा में आर्थिक गतिविधियों को सुविधाजनक बनाने की प्रवृत्ति होती है जिसमें असूचित राजस्व को कर अधिकारियों से छुपाया जाता है।

4. समानान्तर अर्थव्यवस्था का पता द्वितीय विश्व युद्ध के दशक में लगाया जा सकता है जिसके दौरान पश्चिमी क्षेत्रों से वस्तुओं की आपूर्ति बंद होने के कारण आवश्यक आपूर्ति की कमी पैदा हो गयी थी।

उत्तर बोध प्रश्न–2

1. नशीली दवाओं की उत्पत्ति, हथियारों का व्यापार और अवैध साधनों का उपयोग नियोजित है।

2. अवैध उत्पादों और सेवाओं की खरीद और विक्री शामिल है।

3. आश्रितों की बड़ी संख्या।

4. उच्च कर दर।

5. अवैध धन उत्पन्न करने की लालसा।

उत्तर बोध प्रश्न-3

1. 2004 के वित्त अधिनियम में महत्वपूर्ण संशोधन शामिल किये गये थे।
2. विमुद्रीकरण
3. आय योजनाओं का स्वैच्छिक प्रकटीकरण
4. विशेष वाहक बांड योजना
5. कर चोरी रोकने के उपाय

1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न (Unit-end Questions)

1. समानान्तर अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं?
2. भारत में समानान्तर अर्थव्यवस्था पर प्रकाश डालिए।
3. भारत में काले धन के बढ़ने का सामाजिक व आर्थिक स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों पर प्रकाश डालिये।
4. लाइसेंसिंग प्रणाली क्या है?
5. काला धन का कृषि पर प्रभाव।
6. निजीकरण व काले धन में संबंध बताइये।
7. काला धन वापस लाने के उपाय बताइये।
8. भारत की सुरक्षा पर काले धन के प्रभाव का अध्ययन कीजिए।
9. काले धन के नियंत्रण के उपाय बताइये।
10. समानान्तर अर्थव्यवस्था के बढ़ने का कारण बताइये।

खण्ड –5

इकाई–3

भारत में भ्रष्टाचार एवं आर्थिक विकास

इकाई की रूप रेखा

5.3.0 उद्देश्य

5.3.1 प्रस्तावना

5.3.2 भ्रष्टाचार की परिभाषा

5.3.3 भारत में भ्रष्टाचार के कारण

5.3.4 भ्रष्टाचार के अन्य कारण

5.3.5 भारत में भ्रष्टाचार का प्रभाव

5.3.6 भारत में भ्रष्टाचार नियंत्रण के प्रयास

5.3.7 भ्रष्टाचार में कमी से सम्बन्धित समितियां

5.3.8 भारत में भ्रष्टाचार को रोकने में नैतिकता का महत्व

5.3.9 भ्रष्टाचार का आर्थिक विकास पर प्रभाव

5.3.10 भ्रष्टाचार नियंत्रण के सुझाव

5.3.11 सारांश

5.3.12 बोध प्रश्न

5.3.13 कुछ उपयोगी पुस्तके

3.0 उद्देश्य –

1–प्रस्तुत ईकाई में हम भ्रष्टाचार की परिभाषा के बारे में जानेंगे।

2–प्रस्तुत इकाई में हम भारत में भ्रष्टाचार के मुख्य कारणों के बारे में जानेंगे।

3–प्रस्तुत ईकाई में हम भ्रष्टाचार के अन्य कारणों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4–प्रस्तुत इकाई में हम भारत में भ्रष्टाचार के प्रभाव की जानकारी प्राप्त करेंगे।

5–प्रस्तुत ईकाई में भारत में भ्रष्टाचार नियंत्रण के उपाय की जानकारी प्राप्त करेंगे।

6–प्रस्तुत इकाई में भ्रष्टाचार में कमी से संबंधित समितियां की जानकारी प्राप्त करेंगे।

8–प्रस्तुत ईकाई में भारत में भ्रष्टाचार रोकने में नैतिकता का महत्व की जानकारी प्राप्त करेंगे।

9–प्रस्तुत इकाई में भ्रष्टाचार का आर्थिक विकास पर प्रभाव की जानकारी प्राप्त करेंगे।

10–प्रस्तुत इकाई में भ्रष्टाचार नियंत्रण के सुझाव के बारे में जानेंगे।

3.1 प्रस्तावना–

भारत विश्व में तेजी से उभरती हुयी अर्थव्यवस्था है। लेकिन भारत में काला धन और भ्रष्टाचार एक गंभीर समस्या है। वस्तुतः कालाधन अघोषित आय है जिस पर टैक्स की देनदारी बनती है लेकिन उसकी जानकारी इनकम टैक्स डिपार्टमेंट को नहीं दी जाती। काले धन के उत्पन्न होने के कई कारण हैं जैसे स्मगलिंग, पोचिंग ड्रग्स, घोटाले, जालसाजी, भ्रष्टाचार आदि से काला धन उत्पन्न होता है। काले धन के कारण भारत में समानांतर अर्थव्यवस्था खड़ी है, जो भारत के समावेशी विकास में बाधा है। काले धन के कारण ही इस उभरती हुई अर्थव्यस्था में भ्रष्टाचार एक गंभीर मुद्दा है। विश्व में ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के अनुसार 2015 में भारत की रैंकिंग 76 है। भारत के विकास में भ्रष्टाचार बहुत बड़ी बाधा है क्योंकि भ्रष्टाचार के कारण एक तो कुछ ही लोगों के पास धन एकत्रित होता है, साथ ही बाजार में कृत्रिम वृद्धि लाता है जिससे वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि होती है और वस्तुएं गरीब व्यक्ति की पहुँच से बाहर हो जाती हैं तथा आम लोगों का विकास मुश्किल हो जाता है।

3.2 भ्रष्टाचार की परिभाषा–

भ्रष्टाचार की उत्पति दो शब्दो के योग भ्रष्ट़ आचरण से मिलकर हुई है जिसमें भ्रष्ट शब्द का अर्थ बुराई से है और आचरण शब्द का अर्थ मनुष्य द्वारा किए गए दिन–प्रतिदिन किए गए क्रियाकलापों और व्यवहारों को दर्शाता है अर्थात उसके आचरण को दर्शाता है अतः जीवन में बुरे आचरणों को अपनाना ही भ्रष्टाचार है भ्रष्टाचार किसी भी रूप में किया जा सकता है जैसे अनैतिक रूप में कमाया हुआ धन, अनैतिक रूप से किया हुआ शारीरिक, मानसिक और सामाजिक शोषण यह सभी भ्रष्टाचार को प्रदर्शित करते हैं एक बुरे आचरण से भ्रष्टाचार की शुरुआत होती है जो कि व्यक्ति को निरंतर और बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है।

भ्रष्टाचार में मुख्य घूस यानी रिश्वत, चुनाव में धांधली, ब्लैकमेल करना, टैक्स चोरी, झूठी गवाही, झूठा मुकदमा, परीक्षा में नकल, परीक्षार्थी का गलत मूल्यांकन, हफ्ता वसूली, जबरन चंदा लेना, न्यायाधीशों द्वारा पक्षपातपूर्ण निर्णय, पैसे लेकर वोट देना, वोट के लिए पैसा और शराब आदि बांटना, पैसे लेकर रिपोर्ट छापना, अपने कार्यों को करवाने के लिए नकद राशि देना यह सब भ्रष्टाचार ही है।

3.3 भारत में भ्रष्टाचार के कारण–

पारदर्शिता की कमी–

भारत में सार्वजनिक संस्थाओं एवं सरकारी प्रक्रियाओं में निर्णय लेने और सरकारी प्रशासनिक कार्यों में पारदर्शिता की कमी आदि के कारण भ्रष्टाचार को अधिक अवसर प्रदान करते हैं जब सरकारी कार्यों तथा निर्णयों को सार्वजनिक जांच से बचाया जाता है तो अधिकारी एवं कर्मचारी कम जोखिम के डर के साथ भ्रष्ट गतिविधियों में संलिप्त होते हैं ।

कमजोर प्रशासन और अप्रभावी कानून–

भारत में भ्रष्टाचार से संबंधित विधि नियमों एवं कानून की लागू करने के लिए जिम्मेदार भारत की सरकारी संस्थाएं नियमों की जटिलता के कारण या तो कमजोर है या तो इनमें समझौतावादी प्रकृति विद्यमान हो गयी है जिसमें कानून प्रबंधन एजेंसियां, न्यायपालिका और सार्वजनिक निरीक्षण निकाय शामिल है अतः कमजोर संस्थाएं भ्रष्ट व्यक्तियों की जवाब देही तय करने में हमेशा असफल रहती हैं जिससे कि भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है तथा भ्रष्ट व्यक्तियों को दंड से मुक्ति की धारणा भ्रष्टाचार को और अधिक बढ़ावा दे सकती है भ्रष्टाचार करने वाले व्यक्तियों को जब यह विश्वास हो जाता है कि वह भ्रष्टाचार के दंड से बच सकते हैं तो इसमें शामिल होने की उनकी संभावना अधिक होती जाती है ।

कम वेतन और प्रोत्साहन की कमी–

भारत में बढ़ते भ्रष्टाचार के पीछे सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकारियों एवं कर्मचारियों, विशेष कर आम जनता से रूबरू होने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों का कम वेतन उन्हें रिश्वतखोरी और भ्रष्ट आचरण के प्रति अधिक संवेदनशील बना देता है क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र में भ्रष्टाचार का मुख्य कारण सार्वजनिक संस्थाओं के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की निजी क्षेत्र की तुलना में वेतन एवं अन्य सुविधाओं की कमी होती है जिसके अंतर को पूरा करने के लिए सार्वजनिक संस्थाओं के अधिकारियों द्वारा भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी का सहारा लिया जाता है क्योंकि भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्तियों का एकमात्र उद्देश्य अधिक से अधिक धन कमाना जिसे वह पूरक आय के साधन के रूप में देखते हैं

नौकरशाही एवं लालफीतासाही–

भारत में दीर्घकालिक और जटिल नौकरशाही प्रक्रिया का अत्यधिक नियमन व्यक्तियों एवं व्यवसायिक प्रक्रिया में तेजी लाने या बाधाओ को दूर करने के लिए भ्रष्ट आचरण में शामिल होने हेतु प्रेरित करती है जिसके लिए व्यक्तियों द्वारा प्रक्रिया में बाधाओं को दूर करने के लिए गलत तरीके अपनाए जाते हैं अर्थात रिश्वत या घूसखोरी के माध्यम से प्रक्रिया में तेजी लाकर बाधाओं को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

आर्थिक वातावरण में कमी–

भारत का जटिल आर्थिक वातावरण जिसमें विभिन्न लाइसेंस एवं परमिटो का अनुमोदन शामिल हैं इन सारी प्रक्रियाओं में अधिकांशत अपनी बाधाओं को दूर करने के लिए व्यक्तियों द्वारा रिश्वतखोरी का सहारा लेकर भ्रष्टाचार के अवसर उत्पन्न किए जाते हैं।

राजनैतिक हस्तक्षेप–

भारत में प्रशासनिक मामलों में अधिकांश राजनैतिक हस्तक्षेप के चलते सरकारी संस्थाओं को अपनी स्वायत्तता के साथ समझौता करने के लिए मजबूर होना पड़ता है जिससे कि राजनेताओं द्वारा व्यक्तिगत लाभ या अपनी पार्टी या संस्थाओं के लाभ के लिए विभिन्न सार्वजानिक संस्थाओं के पदों पर आसीन अधिकारी एवं कर्मचारियों पर भ्रष्ट गतिविधियों में शामिल होने के लिए दबाव डाला जाता है।

सांस्कृतिक कारण–

भारत में विभिन्न संदर्भों में भ्रष्टाचार सांस्कृतिक कारण भी होता है जो की भ्रष्टाचार को समाप्त नहीं होने देता है जैसे कि यह आम जनता के बीच यह धारणा विकसित होती है की "कौन ईमानदार है? या जिसको मौका नहीं मिलता है वही ईमानदार हैद्य या हर कोई ऐसा ही करता है" इन जैसी धारणाओं से व्यक्तियों में नैतिकता का पतन होता है और भ्रष्टाचार में शामिल होने के लिए प्रेरित करता है।

सामाजिक एवं आर्थिक असमानता–

भारत में बढ़ती हुई सामाजिक एवं आर्थिक असमानताएं व्यक्तियों में भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने के मुख्य कारणों में से एक है क्योंकि धन और शक्ति संपन्न व्यक्तियों द्वारा अपने प्रभाव का उपयोग करके अपनी इच्छा अनुसार नियम एवं कानून को रिश्वत या शक्ति जैसे भ्रष्ट आचरण के द्वारा प्रभावित करके अपने कार्यों को सिद्ध करने के लिए आम जनता के कल्याण सम्बन्धी अधिकारों को भी प्रभावित करते है।

प्रशासनिक कार्यों में देरी–

भारत में किसी भी कार्य की समयाअवधि निश्चित ना होने के कारण अधिकांशत किसी कार्य को करवाने के लिए आम व्यक्तियों द्वारा सालों–साल सार्वजनिक कार्यालय के चक्कर काटने को मजबूर होते हैं जिसके लिए वह सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारियों को ना चाहते हुए

भी रिश्वत देने को मजबूर होते है एवं प्रसासनिक अधिकारी एवं कर्मचारी द्वारा ऐसी कार्यप्रणाली प्रचलन में आ जाती है एवं भ्रष्टाचार का कारण बनती है।

कानून का कमजोर प्रवर्तन–

भारत में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए विभिन्न प्रकार के कानून बनाए गए हैं लेकिन इन कानून में लचीलापन अधिक होने के कारण एवं सरकारी इच्छा शक्ति में कमी होने के कारण भ्रष्टाचार में संलिप्त व्यक्तियों को निश्चित समय अवधि में दंडित नहीं किया जाता जिससे उन्हें किसी प्रकार का कानून से डर नहीं होता है और वह कानूनी प्रक्रियाओं को राजनीतिक समर्थन के माध्यम से प्रभावित करते हैं।

3.4 भ्रष्टाचार के अन्य कारण–

1. भ्रष्ट राजनीति के कारण हमारे देश में हर दूसरा राजनेता भ्रष्ट है, उनकी छवि कलंकित है फिर भी वे राजनेता बने हुए हैं और सरकार चला रहे है।

2. भाई भतीजा वाद के कारण बड़े अफसर अपने पदों का दुरुपयोग करके अपने रिश्तेदारों को नौकरी दिलवा देते हैं, चाहे वह व्यक्ति उस नौकरी के नाकाबिल ही क्यों न हो, जिससे देश में बेरोजगारी तो फैलती ही है।

3. झूठे दिखावे व प्रदर्शन के लिए।

4. झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा पाने के लिए।

5. देश के बड़े उद्योगपति अपना कर बचाने के लिए बड़े अफसरों को रिश्वत देते हैं, ताकि उनको कर नहीं देना पड़े जिससे हमारे देश के विकास के लिए पैसों की कमी हो जाती है। इसके कारण हमारे देश के उद्योगपति और बड़े अफसर दोनों भ्रष्टाचारी हो जाते है।

6. अधर्म तथा पाप से बिना डरे बेशर्म चरित्र के साथ जीने की मानसिकता का होना।

7. अधिक परिश्रम किये बिना धनार्जन की चाहत।

8. राष्ट्रभक्ति का अभाव।

9. मानवीय संवेदनाओं की कमी।

10. गरीबी, भूखमरी तथा बढ़ती महंगाई, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि तथा व्यक्तिगत स्वार्थ की वजह से।

11. लचीली कानून व्यवस्था।

12. नैतिक मूल्यों में आयी भारी गिरावट के कारण।

13. भौतिक विलासिता में जीने तथा ऐशो–आराम की आदत के कारण।

14. धन को ही सर्वस्व समझने के कारण।

15. शिक्षा का अभाव होने के कारण गरीब लोग सरकारी योजनाओं का फायदा नहीं उठा पाते हैं क्योंकि वहां के जनप्रतिनिधि उन योजनाओं के बारे में उनको अवगत नहीं कराते है और पूरा पैसा स्वंय हजम कर जाते है।

16. सोशल मीडिया के माध्यम से भ्रष्ट राजनीतिक पार्टियाँ अपना गलत प्रचार करती है और जो काम नहीं भी हुआ होता है उसका भी प्रचार कर देते है।

17. देश के कुछ भ्रष्ट नेता हमारे देश के लोगों को भाषा के नाम पर भी राजनीति करते हैं। लोग अपनी भाषा के विवाद के चलते एक दूसरे से लड़ते रहते हैं और इसी का फायदा उठाकर भ्रष्ट नेता नए घोटालों को अंजाम दे देते है।

18. जब किसी को अभाव के कारण कष्ट होता है तो वह भ्रष्ट आचरण करने के लिए विवश हो जाता है।

3.5 भारत में भ्रष्टाचार का प्रभाव –

भारत में भ्रष्टाचार के कारण सार्वजनिक एवं निजी सेवाओं में गुणवत्ता की कमी आती है किसी भी व्यक्ति द्वारा गुणवत्ता की मांग करने हेतु उससे इसके लिए अलग से भुगतान करना पड़ सकता है जैसे इसे नगर पालिका, बिजली, राहत कोष वितरण आदि क्षेत्रों में प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है

समय पर न्याय का अभाव–

भारत में अधिकांशत भ्रष्टाचार में शामिल व्यक्तियों को किए गए भ्रष्टाचार के लिए न्याय प्रणाली द्वारा सबूतो की कमी, यहां तक की मिटाए गए सबूत के कारण, किसी अपराध में संदेह का लाभ उठाया जाता है जिसे समय पर दंड न दिए जाने के कारण पीड़ित व्यक्ति को समय पर न्याय नहीं मिल पाता है एवं उसे कोर्ट कचहरी के चक्कर काटने पड़ते हैं और भ्रष्टाचार में लिप्त व्यक्ति द्वारा शिकायत करने के लिए पीड़ित को कभी–कभी प्रताड़ित भी किया जाता है।

स्वास्थ्य और स्वच्छता की कमी–

अधिकांशत यह देखा जाता है कि भ्रष्टाचार वाले देशों में आम व्यक्तियों के लिए स्वास्थ्य समस्याएं हमेशा बनी रहती हैं जैसा कि भारत में भी देखा जा सकता है कि भ्रष्टाचार के कारण स्वच्छ पेयजल, गुणवत्तापूर्ण खाद्यान्न आपूर्ति, दूध एवं अन्य पोषक वस्तुओं में मिलावट तथा सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र के अस्पतालों में समय पर दवाओं एवं चिकित्सकों की अनुपलब्धता एवं स्वच्छता अभाव जैसी स्थितियां पाई जाती हैं जो की आम नागरिकों के जीवन स्तर को प्रभावित करती है इसके लिए अधिकारी एवं कर्मचारी या किसी अन्य व्यक्ति की जवाबदेही तय

ना होने के कारण इन सेवा प्रदाताओं में शामिल ठेकेदारों और अधिकारियों द्वारा अनुचित तरीके से धनार्जन किया जाता है।

वास्तविक अनुसंधान की असफलता–

भारत में विभिन्न प्रकार की परियोजनाओं में अनुसंधान हेतु धन की आवश्यकता होती है जिसके लिए कुछ संस्थाओं के अधिकारियों को परियोजना लागत की धनराशि स्वीकृत करने के बदले उन्हें रिश्वत देना होता है जिससे कि अनुसंधान में परियोजना लागत के धन में कमी के कारण वास्तविक अनुसंधान प्रभावित होता है जो की अनुसन्धान असफलता का कारण बनता है।

सार्वजनिक संस्थाओं के प्रति अविश्वास–

अधिकांश आम जनता द्वारा भी अपने सही एवं गलत कार्यों को शीघ्र अति शीघ्र संपन्न कराने के लिए संबंधित अधिकारियों को रिश्वत दिया जाता है जिससे कि अधिकारियों के प्रति आम नागरिकों में नकारात्मक धारणा विकसित होती है जिससे वह इन अधिकारियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अनादर करते हैं और इन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते है जिससे उनके आदेशों का पालन नहीं करते हैं।

सरकारों के प्रति अविश्वास–

भारत में आम नागरिक द्वारा राजनेताओं को मतदान के समय सम्मान की दृष्टि से अपने सामाजिक एवं आर्थिक जीवन स्तर में सुधार के लिए चुना जाता है जबकि वह सत्ता में आने के बाद, सत्ता में बने रहने के लिए आम जनता के पैसे का प्रयोग स्वयं के सुख सुविधाओं एवं इच्छाओं को पूरा करने और अपने करीबियों को लाभ प्रदान करने के लिए करते हैं जिससे सरकारों के प्रति भी जनता के विश्वास में कमी आती है।

विदेशी निवेश में कमी–

भारत में विदेशी निवेशकों को अपने उत्पादक इकाइयों को स्थापित करने के लिए भूमि एवं अन्य संसाधनों की अनुमति के बदले उन्हें सत्ता में शामिल राजनेताओं, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को बड़ी मात्रा में रिश्वत देनी पड़ती है जिससे कि उनका निवेश प्रभावित होता है जिससे की सरकारी निकायों में बढ़ते भ्रष्टाचार के कारण निवेश में कमी आती है अतः विदेशी निवेशक निवेश करने से कतराते हैं।

विकास का अभाव एवं विकास में देरी–

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आज भी अवसंरचनात्मक सुविधाओं का अभाव जैसे सड़क, पानी और बिजली की व्यवस्था ना हो पाने के कारण इन क्षेत्रों में किसी निवेशक द्वारा नए उद्योगों को स्थापित करने की इच्छा भी होती है क्षेत्र के अनुप्रयुक्त होने के कारण अपने उद्योगों को किसी अन्य स्थान पर स्थापित करता है जिससे कि उसे क्षेत्र का विकास नहीं हो पाता है और सरकारी निकायों से नए परियोजना उद्योगों के स्थापना अनुमति के लिए सरकारी निकायों

में शामिल राजनेताओं एवं अधिकारियों द्वारा कई बार उद्योग के निवेशक से रिश्वत की मांग की जाती है और इसके लिए अनुमति देने की प्रक्रिया में देरी की जाती है ।

3.6 भारत में भ्रष्टाचार नियंत्रण के प्रयास –

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (1988)–

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम में लोक सेवकों द्वारा यदि किसी प्रकार का भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने या भ्रष्टाचार किए जाने की स्थिति में दंड का प्रावधान है जिसे वर्ष 2018 में संशोधित कर रिश्वत लेने और रिश्वत देने को भी अपराध की श्रेणी में रखा गया है।

धन शोधन निवारण अधिनियम (2002)–

धन शोधन निवारण अधिनियम का उद्देश्य भारत में धन शोधन के मामले को रोकना और आपराधिक आय के उपयोग पर प्रतिबंध लगाना है।

कंपनी अधिनियम (2013)–

कॉर्पोरेट क्षेत्र को समान नियमन का अवसर देकर इस क्षेत्र में भ्रष्टाचार और धोखाधड़ी की रोकथाम करता है धोखाधड़ी शब्द की व्यापक परिभाषा बताई गई है इसे कंपनी अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराध माना गया है।

भारतीय दंड संहिता (1860)–

भारतीय दंड संहिता (1860) के अंतर्गत रिश्वतखोरी, धोखाधड़ी, विश्वासघात जैसे अपराध से संबंधित मामलों को शामिल किया गया है

बेनामी लेनदेन निषेध अधिनियम(1988)–

यह अधिनियम उसे व्यक्ति के दावे प्रतिबंधित करता है जिसने किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर संपत्ति अर्जित की है।

लोकपाल लोकायुक्त अधिनियम (2013)–

लोकपाल लोकायुक्त अधिनियम 2013 ने केंद्र के लिए लोकपाल और राज्यों के लिए लोकायुक्त नियुक्त करने एवं लोकायुक्त संस्था की व्यवस्था करने के लिए कहा गया है यह लोकपाल तथा लोकायुक्त कुछ निश्चित श्रेणी के सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध लगे आरोपी की जांच करते हैं।

केंद्रीय सतर्कता आयोग–

इसका कार्य प्रशासन की निगरानी करना और भ्रष्टाचार से संबंधित मामलों में कार्यपालिका को सलाह देना और मार्गदर्शन करना है।

अपराधिक कानून संशोधन अधिनियम (1952)–

भारतीय दंड संहिता की धारा 165 के तहत निर्दिष्ट सजा को 2 वर्ष से बढ़ाकर 3 वर्ष कर दिया गया है और वर्ष 1964 में संशोधन कर भारतीय दंड संहिता के तहत लोक सेवक तथा अपराधिक कदाचार की परिभाषा का विस्तार करते हुए लोक सेवक के लिए आय के ज्ञात स्रोतों से अधिक संपत्ति रखने को अपराध की श्रेणी में रखा गया है।

3.7 भ्रष्टाचार में कमी से सम्बन्धित समितियां–

सार्वजनिक जीवन के मानक और भ्रष्टाचार की रोकथाम पर नोलन समिति की सिफारिश से (1995)–

यूनाइटेड किंगडम में नोलन समिति ने भ्रष्टाचार को खत्म करने के लिए सार्वजनिक पदाधिकारीयों, अधिकारियों, सिविल सेवकों, नौकरशाहों, नागरिक समाज और नागरिकों द्वारा शामिल किए जाने वाले सात नैतिक मूल्यों की रूपरेखा तैयार की थी।

निस्वार्थता– सार्वजनिक अधिकारियों नौकरशाहों को लोकहित के संदर्भ में निर्णय लेना चाहिए।

सत्यनिष्ठता– नौकरशाहों को ऐसे किसी वित्तीय या अन्य दायित्वों के अधीन बाहरी व्यक्तियों या संगठनों के तहत नहीं होना चाहिए जिससे कि उनके आधिकारिक कर्तव्य प्रभावित हो।

वस्तुनिष्ठता– सार्वजनिक कामकाज नियुक्त करने अनुबंध या पुरस्कार और लाभ के लिए लोगों की सिफारिश करने में नौकरशाहों को योग्यता को आधार बनाना चाहिए।

जवाबदेहिता– नौकरशाह अपने निर्णय और कार्यों के लिए जनता के प्रति जवाब देंह होते हैं तथा उन्हें अपने पद को भी जांच समीक्षा के अधीन रखना चाहिए ।

खुलापन – नौकरशाहों के सभी निर्णय और कार्यों में खुलापन होना चाहिए अर्थात पारदर्शी होने चाहिए उन्हें अपने निर्णयों का स्पष्ट कारण देना चाहिए तथा सूचना तभी प्रतिबंधित करनी चाहिए जब व्यापक जनहित के लिए आवश्यक हो ।

ईमानदारी– नौकरशाह का यह दायित्व है कि वह सार्वजनिक कर्तव्य से संबंधित अपने निजी हितों की घोषणा करें और ऐसे किसी विरोध के समाधान के लिए आवश्यक कदम उठाए जो सार्वजनिक हितों की रक्षा करने में बाधक हो।

नेतृत्व– नौकरशाहों को अपने नेतृत्व द्वारा उदाहरण पेश करते हुए इन सिद्धांतों को विकसित करने के साथ इनका समर्थन करना चाहिए।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग–

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग द्वितीय (ए.आर.सी.) ने भ्रष्टाचार के मुद्दे को संबोधित करने और सार्वजनिक प्रशासन की अखंडता तथा दक्षता में सुधार के लिए कई व्यापक सिफारिश की इन सिफारिशो का उद्देश्य भ्रष्टाचार को नियंत्रित एवं सरकारी कार्यों में पारदर्शीता व जवाब देही तय करना है।

भ्रष्टाचार विरोधी उपायों को मजबूत बनाना जिसमें व्हीसलब्लोअर संरक्षण अधिनियम 2014 जो द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने व्हीसलब्लोअर के लिए सुरक्षा और प्रोत्साहन बढ़ाने हेतु व्हीसलब्लोअर संरक्षण अधिनियम में संशोधन की सिफारिश की इसमें उन्हें उत्पीड़न से बचाना तथा वित्तीय प्रोत्साहन प्रदान करना शामिल है।

केंद्रीय सतर्कता आयोग –

केंद्रीय सतर्कता आयोग को अधिक स्वतंत्रता संसाधन और अधिकार देकर भ्रष्टाचार नियंत्रित करने तथा मुकाबला करने की भूमिका को मजबूत करने की सिफारिश की तथा आयोग ने भ्रष्टाचार के मामलों से निपटने के लिए केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की स्वायत्तता और प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए उपाय सुझाए।

मानक संचालन प्रक्रियाएं–

द्वितीय ए.आर.सी. ने अधिकारियों के विवेकाअधिकार शक्तियों को कम करने के लिए, सरकारी प्रक्रियाओं और सेवाओं हेतु स्पष्ट मानक संचालन प्रक्रिया विकास की सिफारिश की इससे भ्रष्टाचार एवं मनमाने निर्णय लेने की सम्भावना में कमी आती है।

प्रौद्योगिकी का उपयोग–

प्रौद्योगिकी और ई गवर्नेंस का लाभ उठाकर सरकारी लेन–देन में मानवीय हस्तक्षेप और विवेकाधिकार को कम किया जा सकता है आयोग ने भ्रष्टाचार के अवसरों को कम करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक तरीकों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया।

पुलिस सुधार–

पुलिस प्रसाशन की जवाब देही के लिए आयोग ने कानून प्रवर्तन एजेंसियों की अखंडता और प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए व्यापक पुलिस सुधारो की आवश्यकता पर प्रकाश डाला और जिसमें पुलिस बल में पारदर्शिता जवाबदेही तथा व्यवसायिकता बढ़ाने के उपाय शामिल है।

सामुदायिक पुलिसिंग को बढ़ावा दिए जाने से पुलिस और जनता के बीच विश्वास पैदा हो सकता है जिससे भ्रष्टाचार तथा सत्ता के दुरुपयोग के मामलों में कमी आएगी।

आचार संहिता आयोग ने नैतिक व्यवहार को बढ़ावा देने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकारियों और कर्मचारियों के लिए एक आचार संहिता के विकास की सिफारिश की थी।

सिटिजन चार्टर सरकारी विभागों को सिटीजन चार्टर अपनाने के लिए प्रोत्साहित करने से जवाब देही बढ़ सकती है और सार्वजनिक सेवा वितरण में सुधार हो सकता है।

जन जागरूकता अभियान– मीडिया और शिक्षा आयोग ने भ्रष्टाचार के हानिकारक प्रभाव तथा नैतिक आचरण के महत्व के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए मीडिया और शैक्षणिक संस्थाओं का उपयोग करने का सुझाव दिया ।

संसदीय समितियों को सुदृढ़ बनाना –जिससे सरकारी संचालन और व्यय की जांच में संसदीय समितियां की भूमिका को मजबूत करने से भ्रष्टाचार का पता लगाने तथा उसे रोकने में मदद मिल सकती है।

ई गवर्नेंस और डिजिटलीकरण परिवर्तन से प्रशासन में मानवीय हस्तक्षेप और भ्रष्टाचार के अवसर को कम करने के लिए सरकारी प्रक्रियाओं को सरल एवं व्यापक बनाने की सिफारिश की गयी।

3.8 भारत में भ्रष्टाचार को रोकने में नैतिकता का महत्व–

भारत में भ्रष्टाचार नियंत्रण के लिए आम व्यक्तियों में नैतिक सिद्धांत को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए क्योंकि नैतिक सिद्धांत सही और गलत को परिभाषित करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करते हैं भ्रष्टाचार के संदर्भ में नैतिकता स्पष्ट सीमाएं निर्धारित करती है जो स्वीकार व्यवहार को अनैतिक या भ्रष्ट आचरण से अलग करती हैं ।

जवाबदेही को बढ़ाना या तय करना– नैतिकता की मांग है कि व्यक्ति अपने कार्यों और निर्णय की जिम्मेदारी के लिए जब लोगों को नैतिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित किया जाता है तो उनके कार्यों के पारदर्शी और जवाब देही होने के अधिक संभावना होती है जिससे भ्रष्टाचार जो कि दूसरों को नुकसान पहुंचा सकता है की संभावनाएं कम हो जाती हैं।

पारदर्शिता को प्रोत्साहन– पारदर्शिता एक प्रमुख नैतिक सिद्धांत है नैतिक संगठनों और व्यक्तियों के पारदर्शी होने पर और ईमानदारी से काम करने पर अधिक संभावना होती है कि ऐसे माहौल में भ्रष्टाचार का विकास नहीं होता जहां कार्य और निर्णय जांच के अधीन होते हैं।

विश्वास कायम करना– विश्वास नैतिक व्यवहार की आधारशिला है जब व्यक्तियों और संस्थाओं को भरोसेमंद माना जाता है तो उनके भ्रष्टाचार में शामिल होने या उसे बर्दाश्त करने की संभावना कम होती है।

समाज में उच्च स्तर का विश्वास– समाज में उच्च स्तर का विश्वास भ्रष्टाचार के प्रति प्रलोभन को कम करता है नागरिकों के सद्‌गुणों को प्रोत्साहित करता है और नागरिकों के सद्‌गुणों को बढ़ावा देता हैं जो की व्यक्तियों को दूसरों की कीमत पर व्यक्तिगत लाभ हासिल करने की बजाय समाज के सर्वोत्तम हित में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं नागरिक सद्‌गुण भ्रष्टाचार का एक प्रभावशाली निवारक है।

विधि के शासन का समर्थन– नैतिक व्यवहार कानून के शासन और कानूनी नियामक ढांचे के प्रति सम्मान को कायम रखता है तथा भ्रष्ट आचरण में अक्सर कानून को दरकिनार करना या उसका उल्लंघन करना शामिल होता है एवं नैतिकता का पालन कानूनी मानदडों के प्रति सम्मान को मजबूत करता है।

व्हीसलब्लोवर संरक्षण– नैतिक संगठन और सरकारी भ्रष्टाचार की रिपोर्ट करने वाले व्हीसलब्लोवर की सुरक्षा को प्राथमिकता देती हैं नैतिक मूल्य अनैतिक व्यवहार की रिपोर्टिंग के लिए प्रोत्साहित करते हैं जो भ्रष्टाचार को उजागर करने एवं संबोधित करने के लिए महत्वपूर्ण है ।

वैश्विक प्रतिष्ठा– अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किसी राष्ट्र की प्रतिष्ठा के लिए नैतिक व्यवहार आवश्यक है नैतिक शासन और निम्न भ्रष्टाचार स्तर वाले देश में विदेशी निवेश और सहयोग की संभावना अधिक होती है।

दीर्घकालिक स्थिरता– भ्रष्ट्र आचरण अक्सर अल्पकालिक लाभ प्रदान करता है लेकिन दीर्घकाल में नुकसान पहुंचता है समाज के सतत विकास और समृद्धि के लिए नैतिक व्यवहार आवश्यक है।

3.9 भ्रष्टाचार का आर्थिक विकास पर प्रभाव–

(1) भ्रष्टाचार के कारण हमारे देश का आर्थिक विकास रुक सा गया है।

(2) भ्रष्टाचार के कारण हमारा देश हर प्रकार के क्षेत्र में दूसरे देशों की तुलना में पिछड़ता जा रहा है।

(3) भ्रष्टाचार के कारण ही आज भी हमारे गांव तक बिजली, पानी और सड़क जैसी मूलभूत सुविधाएँ नहीं पहुँच पाई है।

(4) अधिकांश धन कुछ लोगों के पास होने पर गरीब–अमीर की खाई दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है ।

(5) सरकार द्वारा बनाई गई योजनाओं का लाभ भ्रष्टाचार के कारण गरीबों तक पहुँच ही नहीं पाता है।

(6) भ्रष्टाचार के कारण भाई भतीजा वाद को बढ़ावा मिलता है, जिसके कारण अयोग्य लोग भी ऐसे पदों पर विद्यमान रहते है।

(7) इसके कारण किसानों को उनकी फसल का सही मूल्य नहीं मिल पाता है और वे कर्ज के कारण आत्महत्या करने को मजबूर हो जाते हैं।

(8) भ्रष्टाचार का रोग सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं में इस तरह से फैल गया है कि आम आदमी को अपना कार्य करवाने के लिए बड़े अफसर नेताओं को घूस देनी ही पड़ती है।

(9) भ्रष्टाचार के कारण कालाबाजारी को बढ़ावा मिलता है। कम कीमत के सामान को ऊँची कीमत में बेचा जाता है।

(10) माफिया लोगों की पहुँच बड़े नेताओं तक होने के कारण वे अवैध धंधे करते हैं, जिसके कारण जन और धन दोनों की बर्बादी होती है।

(11) समाज के विकास के लिए जिम्मेदार व्यक्ति ही भ्रष्टाचार में लिप्त होने लग जाता है।

(12) बड़े अधिकारी अपने पद का दुरुपयोग करते हुए अपने रिश्तेदारों और दोस्तों को लाभ पहुंचाते है।ऐसे अधिकारी भ्रष्ट लोगों से मिलकर बड़े–बड़े घोटाले करते है जिसके कारण पूरा सरकारी तंत्र भ्रष्ट हो जाता है।

(13) भ्रष्टाचार के कारण अनेक परियोजनाएँ तो अधूरी रह जाती हैं और सरकारी खजाने का करोड़ों रुपया व्यर्थ चला जाता है।

(14) भ्रष्टाचार के कारण विश्व में हमारे देश की छवि बहुत ही खराब हो चुकी है। इसके कारण कई विदेशी देश हमारे देश के साथ व्यापार नहीं करना चाहते है।

(15) भ्रष्टाचार के कारण ही हमारे देश में विदेशी लोग आने से घबराते है। आए दिन कोई न कोई घोटाला होता रहता है जिसके कारण हमारे राष्ट्र की छवि पूरी तरह से खराब हो रही है।

(16) सरकार द्वारा भ्रष्टाचार को रोकने के लिए कोई सख्त नियम नहीं बनाए जाने के कारण भ्रष्ट लोगों के हौसले दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं जिसके कारण पुरानी वर्षो की अपेक्षा वर्तमान में घोटालों की संख्या बढ़ गई है।

3.10 भ्रष्टाचार नियंत्रण के सुझाव –

(1) लोकपाल कानून को प्रत्येक राज्य, केन्द्रशासित प्रदेश तथा केन्द्र में अविलम्ब नियुक्त किया जाए जो सीधे राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी हों। उसके कार्य–क्षेत्र में प्रधानमंत्री तक को शामिल किया जाए।

(2) हर क्षेत्र में कार्य से पहले व्यक्ति को शपथ दिलाई जाए ताकि वह इस शपथ को हमेशा याद रखें।

(3) निर्वाचन व्यवस्था को और भी आसान तथा कम खर्चीला बनाया जाए ताकि समाज–सेवा तथा लोककल्याण से जुड़े लोग भी चुनावों में भाग ले सकें।

(4) प्रशासनिक मामलों में जनता को भी शामिल किया जाए।

(5) प्रशासनिक कार्य के लिए लोकपाल स्वतंत्र रूप से कार्य करें।

(6) कानून और सरकार से लोगों की मानसिकता बदलना जरूरी है।

(7) सही समय पर सही वेतन बढ़ाया जाए।

(8) सरकारी कार्यालय में जरूरत के हिसाब से कर्मचारी हो कम ना हो।

(9) भ्रष्टाचार का विरोध भी इसे रोकने में काफी कारगर सिद्ध होगा है।

(10) भ्रष्टाचार का अपराधी चाहे कोई भी व्यक्ति हो, उसे कठोर से कठोर दण्ड दिया जाए। कानून संक्षिप्त और कारगर हो, लचीला न हो कर कठोर हो।

(11) अगर हमें भ्रष्टाचार से मुक्त देश चाहिए तो हमें लोगों को भ्रष्टाचार के प्रति जागरूक करना होगा ग्रामीण इलाकों को लोगों को तो पता ही नहीं चलता कि उनके साथ कब कोई बेईमानी कर गया इसलिए हमें गांव–गांव जाकर लोगों को भ्रष्टाचार के बढ़ते हुए जाल के बारे में बताना होगा।

(12) जब भी कोई सरकारी टेंडर या सरकारी भर्तियां निकलती है तो बड़े नेता और अक्सर लोग अपने रिश्तेदारों को बिना किसी क्वालिफिकेशन के वह नौकरी या टेंडर दे देते हैं जिसके कारण हमारे देश की अर्थव्यवस्था ऐसे लोगों के हाथ में चली जाती है जिनको उसके बारे में कुछ पता ही नहीं होता है। सरकार को इसके ऊपर नियम लाकर कड़े कानून बनाने चाहिए और भाई भतीजावाद पर रोक लगानी चाहिए।

(13) शिक्षा के अभाव के कारण ही लोग अच्छा जनप्रतिनिधि नहीं चुन पाते हैं, जिसके कारण उन्हें रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार जैसी बीमारियों से जूझना पड़ता है।

(14) हमारे इलेक्शन कमिशन को भ्रष्टाचारी नेताओं को चुनाव नहीं लड़ने देना चाहिए। लेकिन नियमों की ढील के कारण भ्रष्टाचारी नेता भी चुनाव लड़ते है।

(15) हमें किसी भी गलत चीज के प्रति विरोध करने की आदत डालनी होगी। जब तक हम विरोध नहीं करेंगे, तब तक भ्रष्टाचार ऐसे ही फैलता रहेगा।

(16) हमें हर एक धोखाधड़ी की सूचना भ्रष्टाचार निरोधक विभाग को देनी होगी क्योंकि पहले व्यक्ति छोटी रिश्वतखोरी करता है और फिर उसका लालच बढ़ता जाता है और वह बड़े–बड़े घोटालों को अंजाम देने लग जाता है।

(17) हमें अपने अधिकारों के प्रति सजग रहना होगा क्योंकि आधे से ज्यादा भ्रष्टाचार तो हमें हमारे अधिकार नहीं पता होने के कारण ही हो जाते है।

3.11 सारांश–

आज भ्रष्टाचार हमारे देश भारत में पूरी तरह से फैल चूका है। भारत में आज लगभग सभी प्रकार के आईटी कंपनियाँ, बड़े कार्यालय, अच्छी अर्थव्यवस्था होने के बावजूद भी, भारत पूरी तरीके से विकसित होने की दौड़ में बहुत पीछे है। इसका सबसे बड़ा कारण भ्रष्टाचार ही तो है। चाहे वह समाज का कोई भी व्यक्ति क्यों न हो, सरकारी कर्मचारी हो या कोई राजनीतिक नेता, शिक्षा का कार्य क्षेत्र हो दृ हर जगह भ्रष्टाचार ने अपना घर बना लिया है। आज भ्रष्टाचार कुछ इस प्रकार से भारत में बढ़ चुका है कि कहीं–कहीं तो भ्रष्टाचार के बिना काम ही नहीं होता है। भारत जैसे विकासशील और लोकतांत्रिक देश में भ्रष्टाचार का होना एक बहुत ही बड़ी विडंबना है। हमारा राष्ट्रीय चरित्र धूमिल होता नजर आ रहा है, जो कि हमारे देश पर कीचड़ उछालने से कम नहीं है। हमारा नैतिक स्तर इतना गिर गया है कि हम अन्य लोगों के बारे में जरा भी नहीं सोचते है।

हमारा देश सत्य, अहिंसा, कर्मठ, शीलता, और सांस्कृतिक मूल्यों के लिए जाना जाता था, लेकिन आज 21वीं सदी के भारत में यह सब चीजें देखने को नहीं मिलती है। जिसके कारण हमारा देश कहीं ना कहीं अपनी मूल छवि को खोता जा रहा है। भ्रष्टाचार का कैंसर हमारे देश के स्वास्थ्य को नष्ट कर रहा है। यह आतंकवाद से भी बड़ा खतरा बना हुआ है। अगर हमें भ्रष्टाचार को जड़ से समाप्त करना है तो राजनेताओ, सरकारी तंत्र और जनता को साथ मिलकर इसके खिलाफ लड़ना होगा तभी इस भ्रष्टाचार रूपी दानव से हम अपने को बचा पायेगे।

3.12 बोध प्रश्न–

1–भ्रष्टाचार से आप क्या समझते हैं

2–भारत में भ्रष्टाचार के कारणों का उल्लेख कीजिए

3–भारत में भ्रष्टाचार के प्रभाव की व्याख्या कीजिए

4–भारत में भ्रष्टाचार नियंत्रण के प्रयासों की समीक्षा कीजिए

5–भारत में भ्रष्टाचार में कमी संबंधित समितियों की समीक्षा कीजिए

6–भारत में भ्रष्टाचार रोकने में नैतिकता के महत्व को समझाइए

7–भ्रष्टाचार का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव है

8–भारत में भ्रष्टाचार नियंत्रण के सुझाव दीजिए

3.13 कुछ उपयोगी पुस्तके–

एस.के.मिश्र और वी.के. पूरी भारतीय अर्थव्यवस्था हिमालया पब्लिशिंग हॉउस मुंबई

रुद्र दत्त एवं सुंदरम रूभारतीय अर्थव्यवस्था ,एस. चन्द एंड कम्पनी नई दिल्ली

भारतीय अर्थव्यवस्था, ए. एन. अग्रवाल

भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मी नारायण नाथूराम

आर्थिक विकास के सिद्धांत एवं भारत में आर्थिक नियोजन, प्रो.जी.एल.गुप्ता

भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉक्टर ममोरिया एवं जैन

भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.के. राय

भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास और योजनाओं की चुनौतियां, ए. एन. अग्रवाल

आर्थिक विषमताएँ एवं उसके सामाजिक दुष्प्रभाव

समाजिक गतिविधियों और उनके कार्यशैली में हो रहे परिवर्तन का मुख्य कारण आर्थिक विषमताएं है। जिसका दुष्प्रभाव कहीं न कही सामाजिक स्तर पर देखा जा सकता है। कुछ हद तक, विषमताओं के उत्पन्न होने की वजह बढ़ते अपराध, हिंसा, वेश्यावृत्ति, मानसिक स्वास्थ्य मुद्दे, और सामाजिक असीमिताओं की पूर्ति जैसे कई सामाजिक समस्याओं में समायोजन इस प्रकार की व्यवस्था को जन्म देती है। इसके अतिरिक्त, यह उच्च व निम्न वर्ग के भीतर सामाजिक घर्षण और असंतोष को बढ़ावा देता है।

आर्थिक विषमता

समाज में बढ़ती असमानता सरकारी और सामाजिक नीतियों को आकार देने में समृद्ध अभिजात वर्ग के वर्चस्व को मजबूत करती है। यह स्थिति कई प्रतिकूल प्रवृत्तियों को जन्म देती है। कुछ हद तक, असमानता का बढ़ना हिंसा, वेश्यावृत्ति, मानसिक स्वास्थ्य मुद्दे, अपराध और मोटापा सहित कई सामाजिक समस्याओं में योगदान देता है। इसके अतिरिक्त, यह समुदाय के भीतर सामाजिक घर्षण और असंतोष को बढ़ावा देता है। यह सामाजिक और आर्थिक असमानता तकनीकी विकास, वैश्वीकरण और आंतरिक सरकारी नीतियों जैसे

राजकोषीय नीतियों या श्रम नियमों जैसे कई कारणों से उत्पन्न हो सकती है। इस महत्वपूर्ण धारणा के बावजूद कि आर्थिक स्थिति में यह अंतर अर्थव्यवस्था के लिए हानिकारक है, यह व्यक्तिगत कार्य, क्षमता और उपलब्धियों के लिए प्रोत्साहन भी देता है।

बढ़ती आर्थिक विषमता सामाजिक विखंडन को बढ़ाती है। एक ऐसे समाज में वंचित घर में जन्म लेना जो अधिक असमानतापूर्ण होता जा रहा है, इस बात को प्रभावी बनाता है कि आप उस परिस्थिति से उबरने में असमर्थ होंगे। शिक्षा व स्वास्थ्य देखभाल में वित्त पोषण में कमी, जो सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सामाजिक सेवाएं हैं, वंचित परिवारों में पैदा हुए लोगों हेतु उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार के अवसरों को सीमित करके गरीबी के श्रृंखला को प्रभावी ढंग से बनाए रखती है। यह तथ्य हमारी मुक्ति के बाद हमारे अपने अनुभव से प्रमाणित है। सार्वजनिक रूप से वित्त पोषित शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और अन्य सुविधाओं के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। सम्पूर्ण समाज में असमानता में वृद्धि सरकार और उसकी सामाजिक नीतियों दोनों को आकार देने में समृद्ध अभिजात वर्ग के वर्चस्व को मजबूत करती है। यह स्थिति कई प्रतिकूल प्रवृत्तियों को जन्म देती है। कुछ हद तक, असमानता का बढ़ना हिंसा, वेश्यावृत्ति, मानसिक स्वास्थ्य मुद्दे, अपराध और मोटापा सहित कई सामाजिक समस्याओं में योगदान देता है। इसके अतिरिक्त, यह समुदाय के भीतर सामाजिक विषमता और असंतोष को बढ़ावा देता है।

- आर्थिक विषमता विभिन्न समुदायों या राष्ट्रों के भीतर व्यक्तियों या समूहों के मध्य आय एवं अवसर के असमान वितरण को संदर्भित करती है। विकासशील प्रवृत्ति समाज के सबसे समृद्ध और सबसे गरीब हिस्सों के बीच संपत्ति या आय में असमानताओं को उजागर करती है।
- आर्थिक असमानता की श्रेणियाँ जिनमें आय असमानता, धन असमानता और वेतन असमानता शामिल हैं।
- पाल्मा अनुपात और गिनी गुणांक का उपयोग करके आर्थिक असमानता की मात्रा निर्धारित की जा सकती है।
- अधिकतर, बढ़ती असमानता वित्तीय दायित्व की ओर ले जाती है। अधिक आर्थिक विषमता वाले देशों ने सामाजिक कठिनाइयों एवं स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों को बढ़ा दिया है।

आर्थिक असमानता के परिणाम

“आर्थिक असमानता अक्सर विभिन्न समूहों या एक समुदाय के बीच धन या आय में अंतर को दर्शाती है। अभिव्यक्ति "अमीर और अधिक अमीर हो जाते हैं जबकि गरीब और अधिक गरीब हो जाते हैं" किसी देश के सबसे निचले और सबसे उच्च स्तर के मध्य बढ़ती आय या संपत्ति की असमानता का वर्णन करने के लिए किया जाता है। जबकि मूल विचार सर्वविदित हो गया है, अत्यधिक धन संकेंद्रण के प्रभावों पर जोरदार चर्चा की जाती है और दर्शकों द्वारा

अपर्याप्त रूप से समझा जाता है। वैश्विक प्रवृत्तियों के प्रसार के परिणामस्वरूप व्यक्तियों के उत्तरोत्तर कम होते समूह के बीच धन का अन्तर बढ़ रहा है। जबकि वैश्विक आर्थिक असमानता को मापने के कुछ दृष्टिकोण धन के वितरण में छोटे बदलावों का संकेत देते हैं, आय या धन का आकलन करने के लिए अन्य तरीके अलग-अलग परिणाम प्रदान कर सकते हैं। धन असमानता के कथित प्रभाव काफी विविध हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि असमानता का आर्थिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, समाज में जीवन के सामान्य मानक को बढ़ाता है, या सामाजिक उन्नति का एक अनिवार्य घटक है। कुछ अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि धन के संकेंद्रण के परिणामस्वरूप निरंतर उत्पीड़ित अल्पसंख्यकों का निर्माण, वंचित समूहों का शोषण, आर्थिक प्रगति में बाधा और अन्य सामाजिक मुद्दों का उदय होता है।

आर्थिक विषमता के दुष्प्रभाव

आर्थिक असमानता का तात्पर्य धन और आय के वितरण में असमानता से है। यह दस्तावेज़ मुख्य रूप से राजस्व के विषय पर केंद्रित है। अधिकांश विकसित देशों में बाजार आय में ज्यादातर मजदूरी, वेतन और पूंजी पर रिटर्न, जैसे शेयरों से लाभांश और किराये की आय शामिल होती है। व्यक्तियों की बाज़ार आय तब करों से कम हो जाती है और पेंशन व बाल लाभ जैसे सरकारी हस्तांतरण के माध्यम से बढ़ जाती है। असमानता का विश्लेषण अक्सर समतुल्य घरेलू आय का उपयोग करके किया जाता है, जो कि कितने व्यक्तियों की आय को

बनाए रखना चाहिए, साथ ही परिवार किराए का भुगतान करता है या नहीं, इस पर निर्भर करता है। सामाजिक असमानता का आकलन अक्सर उच्च आय और कम आय के अनुपात की गणना करके किया जाता है। असमानता और धन और गरीबी की अवधारणाओं के बीच अंतर करना महत्वपूर्ण है। उच्च स्तर की संपत्ति वाला देश फिर भी आय असमानता के महत्वपूर्ण स्तर प्रदर्शित कर सकता है, जबकि निम्न स्तर की संपत्ति वाला देश अभी भी आय का बहुत ही न्यायसंगत वितरण प्राप्त कर सकता है।

गरीबी के अनेक परिणाम सर्वविदित हैं। उदाहरण के लिए, आर्थिक रूप से वंचित घरों के बच्चों का शैक्षणिक प्रदर्शन धनी परिवारों के बच्चों की तुलना में कमतर होता है। निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले व्यक्तियों का स्वास्थ्य परिणाम उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले लोगों की तुलना में खराब होता है। ये परिणाम, जिन्हें संकेतक के रूप में देखा जा सकता है, गरीबी से जुड़े और अधिकांश सभ्यताओं में दर्ज किए गए हैं। लिंकेज को अक्सर दो चर के सहसंबंध द्वारा आसानी से दिखाया जा सकता है, जैसे कि प्रतिभागियों की एक महत्वपूर्ण संख्या की पारिवारिक आय को उनके परीक्षण परिणामों या स्वास्थ्य स्थिति के साथ जोड़ना है। असमानता और अन्य सामाजिक परिणामों के बीच कारणात्मक संबंध स्थापित करना इस तथ्य के कारण अधिक चुनौतीपूर्ण है कि असमानता किसी व्यक्ति का अंतर्निहित गुण नहीं है। इसके अलावा, प्रेरक रास्ते कम स्पष्ट हो सकते हैं।

चित्र.1 आर्थिक विषमता के कारक

आर्थिक विषमता विकास में बाँधा

विषमता का एक निश्चित स्तर अल्पकालिक आर्थिक विकास के लिए लाभकारी उत्प्रेरक के रूप में काम कर सकता है। विषमता आर्थिक प्रगति में कैसे बाधा डाल सकती है। अधिक आर्थिक विषमता गरीबी दर में वृद्धि से संबंधित है। गरीबी बढ़ती आपराधिक गतिविधियों और लचर सार्वजनिक स्वास्थ्य से संबंधित है, जिससे अर्थव्यवस्था पर दबाव पड़ता है। जैसे-जैसे भोजन की लागत बढ़ती है और कमाई घटती है, आर्थिक विकास को बढ़ावा देने वाले

सरकारी कार्यक्रमों का समर्थन कम हो जाता है। उच्च स्तर और निम्न स्तर के लोगों के बीच संरचनात्मक विषमता की वजह से आय असमानता राजनीतिक अस्थिरता को बढ़ाती है, संपत्ति के अधिकारों के लिए खतरा पैदा करती है, अनुबंधों की आधिकारिक अस्वीकृति की संभावना बढ़ जाती है, और पूंजी संचय में कमी आती है। एक तर्क से पता चलता है कि आर्थिक रूप से विभिन्न देशों में, मानव पूंजी के लिए निवेश की कम उपलब्धता के कारण प्रारंभिक विस्तार की अवधि के बाद विकास बाधित होता है। जब कम संख्या में व्यक्तियों के पास प्रशिक्षण और शिक्षा के लिए आवंटित करने के लिए वित्तीय संसाधन होते हैं तो भौतिक पूंजी की उपलब्धता कम हो जाती है। परिणामस्वरूप, मानव पूंजी की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थता आर्थिक प्रगति में बाधा डालती है, जिससे स्थिरता आती है।

आर्थिक विषमता से अपराध गतिविधियों को बढ़ावा

आर्थिक विषमता से समाजिक स्तर पर अपराधिक गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है। सामाजिक विषमताएँ समाज के विपरित दुष्प्रचार में प्रभावी हो जाती है। ज्यादातर देखा गया है कि प्रारंभ में, जो लोग समाज में आर्थिक रूप से वंचित हैं, उनमें अपनी वित्तीय परिस्थितियों या सीमित रोजगार के अवसरों या संसाधनों के लिए प्रतिद्वंद्विता के कारण क्रोध और शत्रुता की भावनाएं बढ़ सकती हैं। परिणामस्वरूप, वे आपराधिक गतिविधियों में शामिल होने के प्रति अधिक झुकाव प्रदर्शित कर सकते हैं। इसके अलावा, असमानता

आपराधिक गतिविधियों में शामिल होने के लिए अधिक प्रेरणा को बढ़ावा देती है। एक असमान समाज में गरीब व्यक्तियों की बढ़ती आबादी के पास संसाधन प्राप्त करने के लिए कानूनी रूप से स्वीकृत साधनों की घटती संख्या तक पहुंच सीमित है। उच्च वर्ग के प्रभावी लोगों व निम्न वर्ग के गरीब लोगों के माध्य व्यापक अंतर कम आय वाले क्षेत्रों में कानून प्रवर्तन खर्च को कम करके अपराध को बढ़ाता है। किसी समुदाय के संपन्न व्यक्तियों में अलग-थलग इलाकों में जमा होने की प्रवृत्ति होती है, खासकर जब अमीर और गरीब के बीच की खाई बढ़ती है। शीर्ष समुदायों या राष्ट्रों के पास अपने कम संपन्न समकक्षों की तुलना में कानून प्रवर्तन के लिए आवंटित अधिक वित्तीय संसाधन हैं, जिसके कारण गरीब क्षेत्रों की बढ़ती श्रृंखला में कम कुशल पुलिस बल या बड़ी संख्या में अधिकारी भ्रष्टाचार के प्रति संवेदनशील हैं। धन संकेंद्रण में वृद्धि के परिणामस्वरूप गरीब क्षेत्रों में अपराध दर में वृद्धि हुई है जो आर्थिक रूप से असंतुलित देशों में व्यापक है। महत्वपूर्ण आर्थिक असमानता की विशेषता वाली संस्कृतियों में, आर्थिक असमानता को कम करने के लिए सरकारी संसाधनों का आवंटन कानून प्रवर्तन पर व्यय बढ़ाने की तुलना में अपराध को रोकने में अधिक प्रभावी साबित होता है।

आर्थिक विषमता से स्वास्थ्य व्यवस्था में कमी

गरीबी में रहने वाले व्यक्तियों में कुछ प्रकार की बीमारियों का प्रसार अधिक होता है। गरीब लोगों के पास कभी-कभी उच्च गुणवत्ता वाली स्वास्थ्य देखभाल और पौष्टिक भोजन तक

सीमित या न के बराबर पहुंच होती है। आर्थिक विषमता, जो एक महत्वपूर्ण गरीब आबादी की विशेषता है, कई नकारात्मक परिणामों को जन्म देती है, जिसमें कम आय वाले व्यक्तियों के बीच कम उत्पादक कार्यबल, बीमारी और मृत्यु की बढ़ी हुई दर, अधिक स्वास्थ्य देखभाल खर्च और प्रभावित आबादी के लिए गरीबी की बिगड़ती श्रृंखला समावेशित है। वैश्विक स्तर पर हमारे देश की गिरती स्वास्थ्य व्यवस्था की गुणवत्ता काफी प्रभावित करती है। जिसकी वजह से स्वास्थ्य के प्रति उच्च व निम्न स्तर के बीच काफी भेदभाव भी किया जाता है जिसकी वजह से आर्थिक विषमता के बीच इनके स्वास्थ्य व्यवस्था में कमी आती है।

आर्थिक विषमता से राजनीतिक असमानता

आर्थिक विषमताओं के अन्तर्गत राजनीतिक असमानता के अनुरुप कुछ व्यक्तियों में धन का संकेंद्रण इस समृद्ध अल्पसंख्यक के पक्ष में राजनीतिक शक्ति के अनुपातहीन आवंटन की ओर ले जाता है। उच्च आय वाले समूह कानूनी प्रक्रियाओं और भ्रष्ट आचरण दोनों के माध्यम से सरकार को अपने पक्ष में करने में सक्षम व प्रोत्साहित हैं। आर्थिक संसाधनों की बढ़ती कमी के कारण गरीब या श्रमिक वर्ग के व्यक्तियों को शिक्षा तक पहुँचने और राजनीतिक गतिविधियों में शामिल होने में महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ता है। संपन्न गुटों को कई माध्यमों से राजनीतिक लाभ मिलता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह, चुनावों के राज्य प्रायोजन के बिना लोकतांत्रिक संस्कृतियों में, राजनीतिक व्यक्तित्व सफल अभियान चलाने के लिए निजी वित्तीय सहायता पर भरोसा करते हैं। राजनीतिक अधिकारियों को अपने

अभियानों को प्रभावी ढंग से वित्तपोषित करने के लिए सक्रिय रूप से समृद्ध दानदाताओं का समर्थन लेना चाहिए। एक सामान्य कांग्रेसी के समय का, यदि बहुमत नहीं, तो एक महत्वपूर्ण हिस्सा संभावित योगदानकर्ताओं के साथ बातचीत में शामिल होने और धन की याचना करने के लिए समर्पित है। कम आय वर्ग के व्यक्तियों में निर्वाचित प्रतिनिधियों पर प्रभाव डालने की क्षमता बहुत कम होती है। उच्च आर्थिक असमानता वाली संस्कृतियों में राजनीतिक जुड़ाव काफी कम हो जाता है। एक सर्वेक्षण के आधार पर, उच्चतम स्तर की आर्थिक समानता वाले देशों में रहने वाले लोग राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए चार गुना अधिक इच्छुक हैं और उच्चतम स्तर की आर्थिक असमानता वाले समाजों में रहने वाले व्यक्तियों की तुलना में मतदान में शामिल होने की संभावना 2.7 गुना अधिक है। निम्न सामाजिक-आर्थिक समूहों को राजनीतिक सहभागिता के लिए समय आवंटित करने की सीमित क्षमता के कारण राजनीतिक नुकसान होता है। निम्न सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि के व्यक्ति अक्सर रोजगार या आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिक समय आवंटित करते हैं। परिणामस्वरूप, व्यक्तियों के पास राजनीतिक जानकारी प्राप्त करने या राजनीतिक गतिविधियों में शामिल होने के लिए समय या वित्तीय संसाधन आवंटित करने की सीमित क्षमता होती है। इसके अलावा, आर्थिक असमानता गरीबों की भागीदारी को कम कर देती है क्योंकि उनमें परिणामों पर प्रभाव डालने की क्षमता कम होती है। निम्न-आय समूहों द्वारा नीति को प्रभावित करने के लिए किए गए प्रयासों की कथित अप्रभावीता उन्हें

नीतियों को प्रभावित करने के लिए और प्रयास करने से रोकती है। आर्थिक रूप से असमान समाजों में सरकारी अधिकारी बढ़े हुए आर्थिक दबावों के कारण रिश्वतखोरी के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हो सकते हैं। इसके अलावा, समाज के समृद्ध व्यक्तियों के पास आर्थिक असमानता के संदर्भ में आसानी से रिश्वत प्रदान करने के लिए अधिक वित्तीय संसाधन होते हैं।

आर्थिक विषमता से शिक्षा में कमी

आर्थिक विषमता की उपस्थिति व्यक्तियों को अलग करने और विभाजित करने की प्रवृत्ति के कारण प्रदर्शन में बाधा डालती है। ज्यादातर देखा गया है कि बच्चों की शैक्षणिक उपलब्धि कुछ हद तक उनके सहपाठियों की रुचियों और महत्वाकांक्षाओं से प्रभावित होती है। शिक्षकों की गुणवत्ता सहित, स्कूल-संबंधी किसी भी कारक की तुलना में सहकर्मी अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। स्कूल अलगाव की स्थिति में, सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित घरों के बच्चे अन्य वंचित बच्चों के साथ बातचीत करेंगे, जिनमें खराब शैक्षणिक प्रदर्शन वाले बच्चे भी शामिल हैं। असमानता वाले समाज में अलगाव की संभावना अधिक होती है। वंचित बच्चों के शैक्षणिक रूप से कम प्रतिभाशाली साथियों के साथ आपसी मेलजोल बढ़ाने के हानिकारक परिणाम, शैक्षणिक रूप से अधिक सक्षम साथियों के साथ विशेषाधिकार प्राप्त बच्चों के आपसी मेलजोल के किसी भी लाभकारी लाभ से कहीं अधिक हैं। असमानता के कारण समग्र शैक्षिक उपलब्धि में कमी आ सकती है।

आर्थिक विषमता की विशेषता वाले देशों में, सार्वजनिक शिक्षा कार्यक्रमों के प्रति सरकारी सहायता कम होने की प्रवृत्ति है। जैसे-जैसे संपन्न व्यक्ति अधिक धन जमा करते हैं, सरकारी नीतियां उत्तरोत्तर आर्थिक अभिजात वर्ग के नीतिगत उद्देश्यों के साथ संरेखित होती जाती हैं। उच्च वर्ग में आम तौर पर सार्वजनिक शिक्षा कार्यक्रमों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण होता है क्योंकि इन पहलों में सार्वजनिक धन का उपयोग शामिल होता है, जो ज्यादातर समृद्ध लोगों पर लगाए गए करों से प्राप्त होता है, और कम विशेषाधिकार प्राप्त लोगों को लाभ पहुंचाने के लिए इन संसाधनों को पुनः आवंटित किया जाता है। आर्थिक विषमता के हानिकारक प्रभाव कई हैं और संभवतः लाभ से अधिक महत्वपूर्ण हैं। महत्वपूर्ण आर्थिक असमानता वाले समाजों में दीर्घकालिक सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर कम हो गई है, अपराध दर में वृद्धि, सार्वजनिक स्वास्थ्य के बदतर परिणाम, राजनीतिक असमानता में वृद्धि और औसत शिक्षा का स्तर कम हो गया है।

असमानता को दूर करने की नीति

असमानता को दूर करने के लिए वर्तमान दृष्टिकोण पर पुनर्विचार और पुनर्मूल्यांकन करना आवश्यक है। सबसे पहले, आइए राजकोषीय नीति और प्रगतिशील करों पर चर्चा करें। प्रगतिशील कराधान कुशल राजकोषीय नीति का एक अनिवार्य तत्व है। हमारा विश्लेषण बताता है कि आर्थिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव डाले बिना आय वितरण के उच्च स्तर

पर सीमांत कर दरों को बढ़ाना संभव है। कर संग्रहण विधियों में वैश्वीकृत प्रौद्योगिकियों को एकीकृत करना घरेलू आय बढ़ाने के लिए एक व्यापक योजना के एक घटक के रूप में काम कर सकता है। भ्रष्टाचार को कम करने से राजस्व संग्रह बढ़ाने और प्रशासन में विश्वास पैदा करने की क्षमता है। महत्वपूर्ण रूप से, ये उपाय वंचित क्षेत्रों और लोगों के लिए संभावनाओं के विस्तार में संलग्न होने के लिए आवश्यक संसाधनों का अधिग्रहण सुनिश्चित कर सकते हैं। असमानता के खिलाफ लड़ाई में जेंडर बजटिंग एक प्रभावी वित्तीय साधन है। हालाँकि कई राष्ट्र लैंगिक समानता और महिलाओं के सशक्तिकरण के महत्व को स्वीकार करते हैं, वर्तमान परिवेश में महिलाओं की भागीदारी को निश्चित करते हुए समानता के अधिकारों को बढ़ाया ज सकता है जोकि परिणामस्वरूप विकास और स्थिरता को बढ़ावा दे सकता है। इसके अलावा, असमानता को दूर करने में सामाजिक व्यय कार्यक्रम और भी महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। यदि सही नीति से लागू किया जाए, तो सामाजिक एकजुटता पर उनके हानिकारक परिणामों के साथ-साथ आर्थिक असमानता और अवसर की असमानता को कम करने में उनका महत्वपूर्ण प्रभाव हो सकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत आर्थिक विषमता के कारणों में उत्पादन के प्रत्येक स्रोत की सीमांत उत्पादकता में भिन्नता, कर प्रणालियों में असमानताएं, मानव पूंजी और सामाजिक

पूंजी में असमानताएं, विरासत, भेदभाव, वित्तीय बाजारों तक पहुंच और आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं के भीतर सौदेबाजी की शक्ति में असमानताएं शामिल हैं। वर्तमान में, आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए सबसे प्रभावी दृष्टिकोण में हाशिए पर मौजूद आबादी के लिए उत्कृष्ट शिक्षा और नौकरी के अवसरों के प्रावधान के माध्यम से पृथक समुदायों को प्रगति के व्यापक संरचना में एकीकृत करना शामिल होगा। ऐसा करने के लिए, सरकार को अपने सामाजिक कार्यक्रमों के लिए अधिक धन आवंटित करने की आवश्यकता होगी। स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्रों के लिए अतिरिक्त धनराशि समर्पित करने की आवश्यकता होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Eduardo Porter, *Why Voters Aren't Angrier About Economic Inequality*, The New York Times, July 24, 2014, http://www.nytimes.com/2014/07/25/upshot/why-voters-arent-angrier-about-economic-inequality.html.

2. Christoph Lakner & Branko Milanovic, *Global Income Distribution*, The World Bank, Dec. 2013, http://www-wds.worldbank.org/external/default/WDSContentServer/IW3P/IB/2013/12/11/000158349_20131211100152/Rendered/PDF/WPS6719.pdf; *Income Inequality Is Not Rising Globally. It's Falling*, The New York Times, July 19, 2014, http://www.nytimes.com/2014/07/20/upshot/income-inequality-is-not-rising-globally-its-falling-.html.

3. https://www.aph.gov.au/About_Parliament/Parliamentary_Departments/Parliamentary_Library/pubs/BriefingBook44p/EconEffects

4. John Weeks, *Hobbes, Nobel Prize Winners and Inequality*, The Huffington Post, July 30, 2014, http://www.huffingtonpost.com/johnweeks/hobbes-not-the-stuffed-ti_b_5634519.html.

5. *Income Inequality and the Great Recession*, U.S. Congress Joint Economic Committee, 2 (Sept.

2010), http://www.jec.senate.gov/public/?a=Files.Serve&File_id=91975589-257c-403b-8093-8f3b584a088c.

6. Erik Thorbecke & Chutatong Charumilind, *Economic Inequality and Its Socioeconomic Impact*, 30 World Development 1477, 1482 (April 22, 2002).

7. Erik Thorbecke & Chutatong Charumilind, *Economic Inequality and Its Socioeconomic Impact*, 30 World Development 1477, 1484 (April 22, 2002).

8. *Income Inequalities in the Age of Financial Globalization*, Int'l Inst. For Labour Studies, p. 11 (2008), http://www.ilo.org/wcmsp5/groups/public/—dgreports/—dcomm/—publ/documents/publication/wcms_100354.pdf.

9. Frederick Solt, *Economic inequality and democratic political engagement*, 52 American Journal of Political Science, 48 (2008).

10. Erik Thorbecke & Chutatong Charumilind, *Economic Inequality and Its Socioeconomic Impact*, 30 World Development 1477, 1488 (April 22, 2002).

एम०ए०ई०सी०–103

खण्ड–05 इकाई–05

समाजिक न्याय की अवधारणा : अमर्त्य सेन के विचार

5 : 0 उद्देश्य

5 : 1 प्रस्तावना

5 : 2 उपयोगितावाद

5 : 2 : 1 बेंथम का उपयोगितावाद सिद्धांत (सामान्य अवधारणा)

5 : 2 : 2 आर्थिक आय के विषमता के मापन के संदर्भ में उपयोगितावाद

5 : 3 जॉन राल्स द्वारा प्रतिपादित न्याय का सिद्धांत

5 : 4 सामाजिक न्याय का विचार–प्रो० अमर्त्य सेन

5 : 4 : 1 न्याय के दायरे का विस्तार

5 : 4 : 2 क्षमताओं का दृष्टिकोण

5 : 4 : 3 पारंपरिक सिद्धांतों की आलोचना

5 : 5 सारांश

5 : 6 बोध प्रश्न

5 : 7 शब्दावली

5 : 8 उपयोगी पुस्तकें

5 : 0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद शिक्षार्थी–

1. सामाजिक न्याय की समान्य अवधारण़ा को समझ सकेगें।
2. उपयोगितावाद को विश्लेषित कर सकते है।
3. राल्सियन सिद्धांत सामाजिक न्याय की अवधारणा के विषय में जान सकेगें।
4. प्रो० अमर्त्य सेन का सामाजिक न्याय सिद्धांत दृष्टिकोण का अध्ययन कर सकेगें।
5. सामाजिक न्याय के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सेन के तर्क को समझ सकेगें।

5 : 1 प्रस्तावना

सामाजिक न्याय क्या है इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है। यह प्रश्न ऐसा है जो प्राचीन समय से लेकर आजतक जटिल ही बना हुआ है। इस प्रश्नों के कारण राजनीतिक एवं दर्शनशास्त्र में कई, सिद्धांत सामने आये जैसे जेरेमी बेंथम, मिल, रूसो, जानलॉक जॉन राल्स आदि। बेंथम का उपयोगितावाद, मिल का उसमें सुधार, राल्स का न्याय का सिद्धांत।

जॉन राल्स का सिद्धांत उस समय आया था जब न्याय ऐसा विषय था जिसके बारे में ज्यादा चर्चा नहीं होती थी अधिकतर दर्शनशास्त्र के विचारक ही आये जो कल्याणकारी समाज और अधिकतम लोगों के सुख के बारे में विचार रखे न्याय का सिद्धांत उपयोगतावादी अवधारणा का एक विकल्प था जो प्रचलन में थी। उनका मूल सिद्धांत समाज के लोगों के बीच आपसी सहयोग है। द आइडिया ऑफ जस्टिस अमर्त्य सेन द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक है। जिसमें उन्होंने सामाजिक न्याय के महत्वपूर्ण विषय पर अपने विचारों को उद्घृत किया। अमर्त्य सेन का न्याय का विचार की अवधारणा उपयोगितावाद और राल्सियन सिद्धांत के आलोचनाओं के आधार पर ही लिखा गया है। न्याय प्राप्त करने में संस्थानों की भूमिका और उनकी उचित कार्यप्रणाली व्यक्तियों की क्षमताओं और स्वतंत्रता को कैसे प्रभावित करती है, इस पर चिंतन करना।

5 : 2 उपयोगितावाद

उपयोगितावाद (Utilitasianism) एक नैतिक सिद्धांत है जिसकी एकांतिक मान्यता है कि आचरण (action) एकमात्र तभी नैतिक है जब वह अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख की वृद्धि करता है। राजनीतिक तथा अन्य क्षेत्रों में इसका संबंध मुख्यतः बेंथम (1748–1832) तथा जान–स्टुअर्टमिक (1806–73) से रहा है। परंतु इसका उपयोगितावाद का इतिहास और अधिक प्रचीन है।

उपयोगितावाद अनेक सापेक्ष विचारो को महत्व देता है। जैसे आनन्द ही सबसे बांछनीय वस्तु है और यह जितना ही अधिक हो उतना ही अच्छा है। इसका एक भ्रामक निस्कर्ष यह है कि दुःख ही सबसे अवांछनीय वस्तु है। और यह जितना कम भोगना पड़े उतना ही अच्छा माना जाता है। इससे यह प्रदर्शित है कि नैतिक अभिकर्ता का किसी भी परिस्थिति में ऐसा ही आचरण सदाचार माना जायेगा। जो स्वेच्छा से किया गया हो, सबन्धित लोगों के लिये अधिकतम सुख का सृजन करता हो या कर सकने की संभावना रखता हो। और जहाँ दुःख अवश्यंभावी है। वहाँ उसे कम से कम करने का प्रत्यत्न करता हो।

उपयोगिता के आर्थिक उद्देश्यों का निरूपण, जो मुख्यतः निर्बन्ध व्यापार पर वैधानिक नियंत्रणो की समाप्ति से संबधित है। रिकार्डो के साहित्य में अत्यन्त सुंदर ढंग से वर्णित हुआ है।

5 : 2 : 1 बेंथम का उपयोगिवाद का सिद्धांत

बेंथम का पूरा नाम जेरेमी बेंथम था। बेंथम का जन्म लंदन में 1748 में हुआ था। बेंथम के चिंतन तथा विचारधारा के अनुसार उपयोगितावाद एक आधारशिला मानी जाती है, बेंथम ने तत्कालीन समय में प्रचलित नैतिकता की धाराओं का आलोचना किया। और उपयोगितावाद को नैतिकता तथा मानवीय जीवन का आधार बताया है। लेकिन बेंथम ने ईश्वर की इच्छा, प्राकृतिक नियम और अंतःकरण इन सब को व्यक्तिगत या आत्मकथा कल्पनायें माना और यह कहा कि "मनुष्य को जो कुछ भी अच्छा लगता है; उसी को ईश्वरीय इच्छा, प्रकृति का नियम, और अंतरात्मा के अनुकुल कह देता है। ईश्वर इच्छा, प्राकृतिक नियम और अंतरात्मा के संबध में प्रमाणिक रूप से हमारे द्वारा कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसलिये यह सभी विचार निरर्थक है।"

बेंथम सुखवाद में विश्वास करता है। उसके उपयोगितावाद की धारणा सुख–दुख की मात्रा पर आधारित हैं। जिस कार्य से मानव सुख में वृद्धि होती है। वह उपयोगी और उचित होता है। और जिस कार्य से मानव को दुख होता है, वह अनुपयोग और अनुचित है। मनुष्य के सभी कार्यो की कसौटी उपयोगिता ही है।

उपयोगितावादी सिद्धांत से आशय उस सिद्धांत से है, जिससे व्यक्ति की सुखानुभूति बढ़ती या घटती है। और जिसके आधार पर वह प्रत्येक कार्य को उचित या अनुचित कहते हैं। इस आधार पर बेंथम का मानना है कि सदा दुख या सुख और पीड़ा मनुष्य के दो सार्वभौमिक शासक है बेंथम के अनुसार "प्रकृति ने मानव को सुख व दुख नामक दो शक्ति सम्पन्न स्वामियों के शासन में रखा है। हमें क्या करना चाहिये या हम क्या करे, यह केवल वहीं निश्चित कर सकता है। एक मनुष्य अपने कौशल द्वारा उसके शासन से बचने का दिखाया भले ही करे, किंतु वास्तव में वह सदैव उसके अधीन ही रहता है।"

बेंथम के अनुसार किसी वस्तु की उपयोगिता का एक मात्र मापदंड यह है कि वह कहाँ तक सुख में वृद्धि करती है। और दुःखो को कम करती है। बेंथम ने और उसके अनुयायियों ने उपयोगितावाद के सुखवादी की व्याख्या की है।

बेंथम कार्यो के उद्देश्य की अपेक्षा परिणाम को महत्वपूर्ण मानते है। कोई काम किस उद्देश्य से किया जाता है। इसका कोई महत्व नहीं है। महत्व की चीज तो उसका परिणाम है

और वह यही मानते हैं। कि "जो वस्तु हमें सुख की अनुभूति देती है, वह अच्छी है, उपयोगी है और जिस वस्तु से हमें दुःख की अनुभूति होती है, वह बुरी व अनुपयोगी है।"

5 : 2 : 2 आर्थिक आय के विषमता के मापन के संदर्भ में उपयोगितावाद

वैयक्तिक वरीयता संरचना के सूचना आधार का विस्तार कर उसमें वैयक्तिक रूप से तुलनीय गणनावाची कल्याणफलनों को समाहित कर लेने से सामाजिक विवेचन की अनेक नयी विधियाँ सुलभ हो जाती हैं। सबसे अधिक प्रचलित विधि तो उपयोगितावाद ही है—यहाँ व्यक्तियों की उपयोगिताओं के योग को सामाजिक कल्याण का माप माना जाता है। फिर वैकल्पिक सामाजिक अवस्थाओं को वैयक्तिक उपयोगिताओं के योगफल के अनुसार क्रमबद्ध किया जाता है। बैन्थम (Bantham) द्वारा प्रवर्तित इस विधि का मार्शल (Marshall), पीगू (Pegou) एवं रॉबर्टसन (Robertson) आदि अर्थशास्त्रियों ने सामाजिक विवेचन में बहुत खुलकर प्रयोग किया है। अनेक अन्य अर्थशास्त्रियों ने आय के वैकल्पिक आबंटनों के विवेचन एवं आय के वितरण की विषमताओं के मापन के सन्दर्भ में भी उपयोगितावाद का ही सहारा लिया है।

इस विधि को सबसे बड़ी समस्या यही है कि इसमें समग्र अथवा सभी व्यक्तियों की उपयोगिता के योगफल को अधिकतम करना ही एकमात्र ध्येय बन गया है—इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि वह अधिकतम स्तर समाज के सदस्यों के बीच किस प्रकार विभाजित हो रहा है। इसी कारण यह विधि भी विषमताओं के मापन विवेचन के लिए पूर्णतः अनुपयोगी हो जाती है। फिर भी वितरण सम्बन्धी विवेचन में उपयोगितावाद का बहुत खुलकर प्रयोग होता रहा है। यही नहीं, इसे तो समतावादी मानदण्ड होने का सम्मान भी दिया जाता है। यह एक विचित्र—सी खण्डन प्रक्रिया का परिणाम रहा है जिसमें उपयोगिता के पक्षधर मार्शल एवं पीगू पर रॉबिन्स आदि ने उपयोगितावादी विचार तन्त्र को समतावादी स्वरूप में ढालने के प्रयास को लेकर तीखे प्रहार किए थे। इन्हीं प्रहारों के कारण उपयोगितावाद को समता के प्रति संवेदनशील होने का प्रतिष्ठा लाभ सहज ही प्राप्त हो गया।

इस सारे प्रकरण का स्त्रोत अति साधारण मान्यताओं के अन्तर्गत हुए एक संयोग को ही माना जा सकता है। उपयोगिता के स्तर को अधिकतम करने के लिए हमें विभिन्न व्यक्तियों को उनकी आयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिताओं को समान करना होगा। यदि हम यह मान्यता भी साथ में जोड़ दें कि सभी व्यक्तियों के उपयोगिता फलन एक जैसे हैं, तो फिर सीमान्त उपयोगिताओं की समानता अर्थ उनकी (व्यक्तिगत) कुल उपयोगिताओं की समानता बन जाता है। मार्शल एवं अन्य विद्वानों ने उपयोगितावादी विश्लेषण विधि की इस विलक्षणता को देख तो लिया था पर उन्होंने इसके आधार पर किसी क्रान्तिकारी वितरण नीति की रचना करने की

जल्दबाज़ी नहीं दिखाई। किन्तु जब उपयोगितावाद पर आक्रमण प्रारम्भ हुए तो इसी एक आयाम को पकड़ कर आलोचक धुआँधार प्रहार करते रहे।

यद्यपि इस प्रकार की खण्डन–मण्डन प्रक्रिया ने उपयोगितावाद को अनावश्यक रूप से समतावादी होने का उपालम्भ दे डाला है, फिर भी इस विधि (उपयोगितावादी) के सही चरित्र को एक साधारण से उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लो कि व्यक्ति B किसी प्रकार की अपंगता से ग्रस्त है। अतः सामान्य व्यक्ति A की भाँति वह अपनी आय का आनन्द नहीं भोग पाता। यह भी मान लेते हैं कि A आय के उतने ही स्तर से B से दुगुनी उपयोगिता पा लेता है। अतः उपयोगितावादी विश्लेषण पद्धति में तो आय के किसी भी स्तर के लिए A की अवस्थ B से दोगुनी बेहतर मानी जाएगी। अब तो हमारा सामाजिक उपयोगिता को अधिकतम करने का गणित हमें यही सुझाएगा कि A को B की अपेक्षा अधिक आय का उपभोग करने दिया जाना चाहिए। यही नहीं, अगर आय का समान बँटवारा हो तो भी A को प्राप्त कुल उपयोगिता को मिली उपयोगिता से बहुत अधिक रहती। हमारे उपयोगितावादी सूत्र तो उलटा यह सुझाव दे रहा है कि A को उपेक्षाकृत अधिक आय पर अधिकार देना समाज के हित में होगा, यह तो समाज में उपयोगिता उपभोग के स्तर में पहले से विद्यमान भारी विषमता को और अधिक गहरी बना देगा। पहले से ही सम्पन्न A को और अधिक आय प्राप्त होगी तो स्वाभाविक है कि अपंगता के कारण अभावग्रस्त B की दुर्दशा और गहन हो जाएगी। एक तो वह आय से पूरा लाभ नहीं उठा पाता, दूसरे आय को ही इस सिद्धान्त के अनुसार कम करने की भी सिफारिश हो रही है।

इस समस्या को हम चित्र 1.1 द्वारा और स्पष्ट कर रहे हैं। दोनों व्यक्तियों के बीच बाँटने योग्य आय का परिणाम AB है। A का अंश A से B की ओर तथा B का अंश B से A की ओर मापा जा रहा है। C तथा D बिन्दु कुल आय के विशेष बंटवारों को दिखा रहे हैं। अर्थात् C बिन्दु पर AC मात्रा A को तथा BC मात्रा B को प्राप्त होती है, इसी प्रकार D बिन्दु दिखाता है कि A को AD तथा B को BD परिमाण में आय प्राप्त होगी। व्यक्ति A की आय से सीमान्त उपयोगिता का मापन aa’ द्वारा होता है। इसी प्रकार bb’ द्वारा हम B की समान्त उपयोगिता

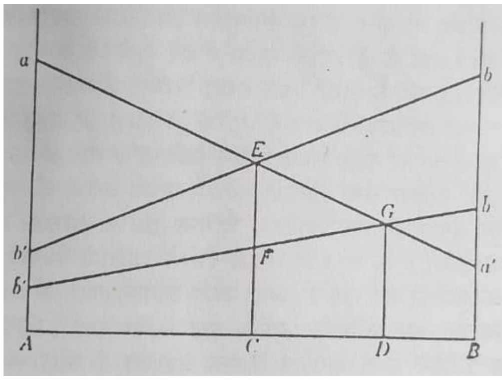

चित्र–1 कल्याण अर्थशास्त्र एवं उपयोगितावाद

दिखा रहे हैं। अतः सामूहिक उपयोगिता का अधिकतम स्तर बिन्दु E द्वारा इंगित बँटवारे C पर ही होगा। यहाँ AC=BC तथा A की सीमान्त उपयोगिता (CE) भी B की सीमान्त उपयोगिता (CE) के समान रहती है। जब तक B का सीमान्त उपयोगिता फलन bb'A के फलन aa' जैसा ही था, कोई समस्या नहीं थी। आइए, अब हमारे पूर्वउद्धत्त उदाहरण की दशा पर गौर करें। B का सीमान्त उपयोगिता फलन तो उसकी अपंगता के कारण A से आधे स्तर पर ही रह जाता है। अब तो उसकी सीमान्त उपयोगिता bb' नहीं bb' द्वारा दिखाई जाएगी। यदि आय का बँटवारा AC=BC ही रहने दिया जाए तो A की कुल उपयोगिता AaEC होगी तथा B की उपयोगिता का स्तर BbFC होगा। B की अवस्था (A की तुलना में) बहुत बुरी होगी। यहाँ समतावाद का आग्रह होगा कि A की आय का कुछ हिस्सा B को हस्तान्तरित किया जाए। पर क्या उपयोगितावाद इसकी इज़ाजत देगा? उपयोगितावाद की सलाह तो एकदम उलटी ही होगी। उसका विचार होगा कि गरीब B से कुछ आय छीन कर संपन्न A को देने से ही समाज की समग्र उपयोगिता में वृद्धि सम्भव हो पाएगी, अतः वितरण बिन्दु C से चलकर D पर पहुँचना समाज के बृहतर हित में होगा। इस बिन्दु D पर को AaGD तथा B को BbGD द्वारा निर्दिष्ट उपयोगिताएँ सुलभ हो पाएँगी।

अब यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जानी चाहिए कि उपयोगितावाद का समतावाद से दूर–दूर तक कोई नाता नहीं है। इसीलिए यह बात बहुत विकृति–सी लगती है कि जब भी विषमता के कल्याण की दृष्टि से मापन की बात उठती है, या आय के आबंटन के अभीष्ट अथवा कुशलतम स्तर के निर्धारण के नियमों की रचना का प्रसंग आता है। प्रायः सभी विशेषज्ञ उपयोगिता विधि की ओर ही उन्मुख हो जाते हैं।

एक बार ऐसा लगता भी है कि यदि सभी व्यक्तियों के उपयोगिता फलन एक समान मान लिये जाएं तो सम्भवतः इस समस्या का हल निकल आएगा किन्तु यह भी नहीं हो पाता। आय के बँटवारे के सन्दर्भ में हम व्यक्तियों के बीच क्षेम के आबंटन की अनेदेखी नहीं कर सकते। यहाँ हमारा विषमता आकलन इस बात पर निर्भन होगा कि क्या हम केवल वितरण की त्रुटियों के कारण हुए समग्र क्षेम ह्रास का मूल्यांकन कर सन्तुष्ट हो जाएंगे अथवा विभिन्न व्यक्तियों के बीच क्षेम के आबंटन से भी हमारा कुछ सरोकार रहेगा। वस्तुतः जब हम प्रत्येक व्यक्ति की उपयोगिता फलन का स्वरूप समान मान कर विषमता के विभिन्न स्तरों का आकलन या मापन करने का प्रयास करते हैं तो बहुत ही अनगढ़ ढंग से व्यक्तियों के बीच क्षेम के आबंटन की अनदेखी ही कर जाते हैं। अतः यद्यपि उपयोगितावाद ने आदर्शमूलक अर्थशास्त्रीय चिन्तन धारा को अपने सम्मोहन पाश में बाँध रखा है फिर भी यह विधि विषमता के विवेचन के लिए तो नितान्त अपर्याप्त ही सिद्ध नहीं पूर्णतः अव्यावहारिक एवं अनुपयोगी ही सिद्ध होती है।

5 : 3 रॉल द्वारा प्रतिपादित न्याय का सिद्धांत

रॉल (Rawl) ने अपनी पुस्तक 'न्याय का सिद्धान्त' (A Theory of Justice) में न्याय की निम्नलिखित सामान्य धारणा प्रतिपादित की है :

"ऐसी स्थिति को छोड़कर जब वस्तुओं के असमान वितरण से न्यूनतम सुविधा प्राप्त लोगों को लाभ होता हो, स्वतंत्रता और अवसर, आय तथा धन तथा स्वाभिमान के आधार आदि सभी प्राथमिक सामाजिक वस्तुओं का समान वितरण होना चाहिए।"

रॉल अपनी चर्चा में निम्नलिखित दो सिद्धांतों के आधार पर न्याय की अधिक सुस्पष्ट धारणा का निरूपण करते है :

1. प्रत्येक व्यक्ति को सर्वाधिक बुनियादी स्वतंत्रता का समान अधिकार होना चाहिए और यही अधिकार अन्य व्यक्तियों को भी प्राप्त होना चाहिए।
2. सामाजिक तथा आर्थिक असमानताओं को इस प्रकार कमबद्ध किया जाना चाहिए कि उन दोनों से :

(क) न्यूनतम सुविधा प्राप्त लोगों को सर्वाधिक लाभ मिले, और.

(ख) अवसर की निष्पक्ष समानता के आधार पर सभी को प्राप्त पद और दर्जे प्रभावित हों।

इन सिद्धांतों को निम्नलिखित कोशीय कम में लागू किया जाना चाहिए। सिद्धांत (1) को सिद्धांत (2) के लागू होने से पहले पूर्णतः संतुष्ट हो जाना चाहिए : और इसी प्रकार सिद्धांत 2 (ख) को सिद्धांत 2 (क) के मुकाबले प्राथमिकता दी जानी चाहिए। मैं सिद्धांत (1) को स्वतंत्रता की समानता का सिद्धांत (Principle of Equal Liberty), सिद्धांत 2 (ख) को असमानता का सिद्धांत (Difference Prinicple), तथा सिद्धांत 2 (ख) को अवसर की निष्पक्ष समानता का सिद्धांत (Air Equality of Opportunity), कहूंगा। कोशीय कम का उद्देश्य रॉल क`मत के अनुसार न्याय की विभिन्न माँगों की सही प्राथमिकताएँ निश्चित करना है। समान स्वतंत्रता की प्राथमिकता पहली है, उसके बाद अवसर की निष्पक्ष समानता आती है। इन दोनों की पूर्ण संतुष्टि के बाद ही हम सामाजिक तथा आर्थिक असमानताओं का कम इस प्रकार निर्धारित कर सकते हैं कि उनसे समाज के अपेक्षाकृत कम सुविधा प्राप्त वर्ग को अधिकतम लाभ मिले।

रॉल उपर्युक्त मत का औचित्य दो परस्पर विरोधी तरीकों से सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। पहला, जैसा कि हमने पहले कहा है, उनका विश्वास है कि कोई मान्य नैतिक सिद्धांत ऐसा होना चाहिए जो हमारे सहज निर्णय के अनुरूप हो अथवा कम–से–कम उन सहज निर्णयों के अनुरूप हो जिन्हें हम प्रस्तुत किए जा रहे नए सिद्धांत के पक्ष में त्यागने

को तैयार न हों। अतः वह यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि न्याय के सिद्धांत में सहज बुद्धि का सिद्धांत निहित है। उनका विश्वास है कि न्याय के दोनों सिद्धांत हमारे उन सहज विश्वासों के इतने विरूद्ध नहीं जाएंगे कि जिनसे ऐसे विषयों से संबंधित सिद्धांत ठोस रूप ले लें जो बुद्धि के परे हैं तथा जो सहज बुद्धि से अनिर्णीत होगें जो ऐसी परिस्थिति में जिनमें वे अपने व्यक्तिगत गुणों तथा समाज में अपने स्थान से अनभिज्ञ थे, रॉल इन सिद्धांतों का स्वतंत्र औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। हम यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार उपयोगितावादी प्रायः उसयोगिता के सिद्धांत को निगमनात्क प्रमाण द्वारा सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं उसी प्रकार रॉल भी वह सिद्ध करके कि कल्पित न्याय की विशिष्ट परिस्थिति में' भी लोगों की यही पसंद होगी, अपने मत को निगमनात्मक आधार करने का प्रयत्न करते हैं।

रॉल तीन प्रकार के न्याय में भेद करते हैं,.... जिनके नाम हैं– पूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय (Perfect Procedural Justice), अपूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय (Imperfect Procedural Justice) और शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय (Pure Procedural Justice)। पूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय ऐसी परिस्थितियों में होता है वहाँ वस्तुओं के निष्पक्ष वितरण का स्वतंत्र आधार तथा ऐसी प्रक्रिया होती है जिससे इस संबंध में निष्पक्षता सुनिश्चित की जा सके। इसका उदाहरण कुछ व्यक्तियों के बीच एक केक के वितरण से दिया गया है। यदि यह मान लिया जाए कि निष्पक्ष वितरण समान वितरण होगा, हमारे पास ऐसी विधि है (केक काटने वाले व्यक्तियों को केक का अंतिम टुकड़ा मिले) जिससे अपेक्षित कल की प्राप्ति सुनिश्चित है। अपूर्ण प्रक्रियात्मक न्याय ऐसी स्थिति में होता है जहाँ, यद्यपि निष्पक्ष नतीजे का स्वतंत्र आधार तो होता है, किंतु ऐसी विधि उपलब्ध नहीं होती जिससे यह नतीजा निकलना सुनिश्चित हो; ऐसी स्थिति में अधिक–से अधिक यही कहा जा सकता है कि किसी विधि–विशेष से अपेक्षित नतीजा निकलने की संभावना मात्र है। रॉल एक दांडिक मुकद्दमे के चलाए जाने का उदाहरण देते हैं जिसमें अपनाई गई विधियों का उद्देश्य निष्पक्ष नतीजा प्राप्त करना होता है (कि केवल उन्हीं का दोष सिद्ध किया जाए जिन्होंने अभियोग किया है) किंतु वे विधियाँ सदैव ही अपने उद्देश्य में सफल नहीं होतीं। अंततः जहाँ तक शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय का संबंध है, इसमें निष्पक्ष नतीजे का कोई स्वतंत्र आधार नहीं होता, किंतु केवल निष्पक्ष विधियों तथा प्रक्रियाओं का ही आधार होता है। उदाहरणार्थ रूलेट (Roulette) के खेल में दॉव लगाने की प्रक्रिया निष्पक्ष होती है वशर्ते कि रूलेट का चक्का एक ओर झुका हुआ न हो अथवा ऐसी ही कोई बात न हो, और ऐसी स्थिति में, रॉल के अनुसार, दाँव पर लगाए गए धन का वितरण, जैसा भी हो, निष्पक्ष होगा क्योंकि वितरण की प्रक्रिया निष्पक्ष है। इन दोनों भिन्न उदाहरणों के द्वारा रॉल यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि सामाजिक न्याय का स्वरूप विशुद्धतः प्रक्रियात्मक होता हैं। न्याय करने का कोई स्वतंत्र आधार नहीं है जैसे कि यह निश्चित करना संभव नहीं है कि व्यक्तियों को

किया गया धन–संपदा का आवंटन न्यायपूर्ण है अथवा नहीं। हाँ, यदि यह आवंटन निष्पक्ष प्रक्रिया के आधार पर किया गया है तो वह अवश्यन्यायपूर्ण है, अन्यथा अन्यायपूर्ण है। रॉल ने एक ऐसे संस्थात्मक ढांचे का रेखाचित्र तैयार किया है जिससे, उन्हें आशा है, 'पृष्ठभूमि न्याय' (background justice) मिल सकेगा। इसमें स्पर्धात्मक बाजारी अर्थव्यवस्था होनी चाहिए, सरकार की एक 'हस्तांतरण शास्त्र' (Transfer Branch) होनी चाहिए जो न्यूनतम सामाजिक आवश्यकताओं की गारंटी दे, एक अन्य शाखा एकाधिकार के निर्माण को रोकने के लिए होनी चाहिए तथा ऐसी अन्य व्यवस्थाएँ होनी चाहिए। रॉल का दावा है कि इस प्रकार की संस्थाओं के द्वारा एक बार काम शुरू होने के बाद यह जाँच करने की आवश्यकता नहीं रहेगी कि किसको वस्तुतः क्या और कितना कुछ मिला है, क्योंकि इस आवंटन की गारंटी उन्हीं प्रक्रियाओं में निहित होगी जिनसे वे नतीजे निकालेंगे।

रॉल के शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय से संबंधित विचार क बाद हम यह विचार करेंगे कि न्याय के उपर्युक्त दोनों सिद्धांतों तथा सहज बुद्धि पर आधारित न्याय के मूल सिद्धांतों–अधिकार, पुरस्कार और जरूरत–के बीच क्या अंतर है? इन दोनों सिद्धांतों में न्याय के सामान्य आधार का कहाँ तक समावेश होता है? रॉल का दावा है कि उनके सिद्धांत में व्यक्तिगत अधिकारों को स्थान है। जब एक बार निष्पक्ष संस्थाओं की स्थापना हो जाएगी तो उन संस्थाओं में भाग लेने वाले व्यक्ति इस संबंध में अपनी अपेक्षाएँ निश्चित करेंगे कि उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए, तथा इन्हीं से स्वत्व निर्मित होंगे। किंतु यह बात अधिकारों के साधारण सिद्धांतों के अनुरूप कहाँ कहा बैठती है? रॉल उन अधिकारों को महत्व नहीं देते जो निष्पक्ष समाजों में निर्मित होते है अर्थात् ऐसे समाजों में निर्मित होते हैं जो उपर्युक्त दोनों सिद्धांतों के अनुरूप नहीं होते। तथापि यह सामान्य सिद्धांत की बात है कि सभी अधिकार किसी हद तक मान्यता के अधिकारी होते हैं जब तक कि अधिक न्यायिक महत्व की कोई बात आड़े न आती हो। साथ ही इसका भी कोई कारण समझ में नहीं आता कि रॉल के निष्पक्ष समाज में अधिकार विशेषरूप से स्थिर क्यों रहें। उदाहरण के लिए, ऐसा हो सकता है कि बदलती हुई आर्थिक परिस्थिति में धनी भूस्वामियों को मुआवजा दिए बिना उनसे जमीन छीन लेने से सबसे गरीब लोगों की हालत में भी सुधार किया जा सके। लगता है कि रॉल को भी इस नीति का समर्थन करना होगा क्योंकि उनके दोनों सिद्धांतों में भी ऐसा कोई तत्व नहीं है जिसके अनुसार उन्हें ऐसे भूस्वामियों की ओर ध्यान देना आवश्यक हो जिनकी सुविधापूर्ण स्थिति के कारण गरीबों की स्थिति नहीं सुधरती। वस्तुतः उपयोगितावाद की तुलना में रॉल अधिकारों का उतना समावेश नहीं कर पाते हैं जितना उपयोगितावादी कर पाते हैं क्योंकि जहाँ उपयोगितावादी भूस्वामियों की निराशाओं को महत्व दे सकते हैं वहाँ रॉल ऐसा नहीं कर सकते जब तक कि यह न माना जाए कि ज़मीन छीनने से भूस्वामियों की हालत इतनी खराब हो जाएगी ि कवे स्वयं गरीबी की निम्नतम स्थिति में पहुँच जाएँगे।

अब हम प्रतिकार अथवा पुरस्कार की धारणा पर आते हैं। यहाँ रॉल 'न्याय की सामान्य धारणा', जैसे कि 'अपने प्रयत्न के अनुसार शिक्षा देना,' और नैतिक प्रतिकार अथवा पुरस्कार अर्थात् सद्गुण को पुरस्कृत करने की धारणा के बीच विभेद करते हैं।

रॉल के 'अवसर की समानता' के सिद्धांत के बारे में भी कुछ कहना आवश्यक है। अवसर की समानता की दक्षता का सिद्धांत भी माना जा सकता है क्योंकि हम यह मानेंगे कि योग्यता और दक्षता के आधार पर पदों पर नियुक्तियाँ करने के फल–स्वरूप उन पदों से संलग्न कार्यों का अधिक दक्षता से निष्पादन होगा। किंतु वे इस दृष्टि से पुरस्कार के सिद्धांत पर विचार नहीं करते। उनके कोशीय क्रम को एक बार उलटकर देखें तो हम यह पूछ सकते हैं कि असमानता के सिद्धांत पर आधारित समाज में इस बात से क्या अंतर पड़ता है कि लाभप्रद पद समान अवसर के आधार पर प्राप्त होते हैं अथवा नहीं। रॉल कहते हैं :

".....यदि कुछ पदों को निष्पक्ष आधार पर सभी के लिए खुला न रखा जाए तो जो लोग उन पदों से वंचित किए जाएँगे उनका यह सोचना ठीक होगा कि उनके साथ पक्षपात किया गया है भेले ही उन्हें उन्हीं लोगों के अधिक प्रयत्नों से लाभ हुआ हो जिन्हें उन पदों को प्राप्त करने दिया गया था। उनकी शिकायत केवल इसीलिए उचित नहीं होगी कि उन्हें धन और विशेषाधिकारों से, जो किसी पद क द्वारा पुरस्कार होते हैं, वंचित रखा गया वरन् इसलिए भी न्यायोचित होगी कि उन्हें ऐसी पूर्णता प्राप्त करने की अनुभूति से वंचित रखा गया जो उन्हें सामाजिक कर्त्तव्यों के दक्ष एवं निष्ठापूर्ण निर्वहन से प्राप्त होती......"

अब जब कि यह सत्य है कि वांछित पद केवल सीमित संख्या में ही उपलब्ध होंगे, जिससे उत्तरदायित्वपूर्ण पद का पुरस्कार सभी को नहीं मिल सकेगा, तो जो लोग वंचित रह गए हैं उनकी शिकायत का क्या अर्थ है? निश्चय ही, यह तो सत्य है कि यह जरूरी नहीं कि वे सब लोग जिन्हें, आज उच्च्य पुरस्कार मिल रहे है; उन पुरस्कारों के पात्र हैं, क्योंकि उनमें से कुछ तो पात्रता में उनसे कम होंगे जिन्हें वंचित रखा गया है। पुरस्कार के सिद्धांत को अमान्य करके भी रॉल अपने सिद्धांत 2 (ख) को स्थापित करना चाहते हैं। यद्यपि अवसर की समानता के सिद्धांत से पुरस्कार का सिद्धांत पूरी तरह प्राप्त नहीं होता तथापि अवसर की समानता को न्याय के सिद्धांत के रूप में स्थापित करने के लिए पुरस्कार का विचार आवश्यक है।

अंत में, हमें जरूरत की धारणा के बारे में भी रॉल के दोनों सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में विचार करना चाहिए। असमानता का सिद्धांत, जिसकी आवश्यकता यह है कि असमानताओं को इस प्रकार व्यवस्थित करना चाहिए जिससे सबसे म्नि स्थिति के लोगों को अधिकतम लाभ मिल सके, सामान्यतः यह भी सुनिश्चित करेगा कि सभी बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी

की जाएँगी, अथवा इसी को विपरीत दृष्टि से देखें तो, निम्नतम स्तर के लोगों को किसी भी वस्तु से वंचित करके असमानता के सिद्धांत से किसी प्रकार से हटना इस बात का खतरा पैदा करता है कि जरूरतों की पूर्ति उतनी दक्षता से नहीं होगी जिसकी कल्पना रॉल की व्यवस्था में है।

यह मानना होगा कि रॉल के सिद्धांत में जरूरत पर आधारित वितरण का सिद्धांत शामिल नहीं है जो कि न्याय की सामान्य धारणा का अंग है। असमानता के सिद्धांत जरूरत के मुताविक संसाधनों के वितरण की व्यवस्था नहीं हैं। उसके स्थान पर यह आवश्यक समझा गया है कि संसाधनों का जैसा भी वितरण हो, उससे निम्नतम स्तर के लोगों की जरूरतों की सर्वाधिक पूर्ति की जानी चाहिए। वस्तुतः रॉल का समग्र तर्क इस मान्यता पर आधारित है कि यदि वस्तुओं का जरूरत के मुताबिक वितरण करने के बजाय आर्थिक असमानताओं को विकसित होने दिया जाए, ताकि वे प्रेरणात्मक रूप ले लें, तो उत्पादन इस हद तक बढ़ जाएगा कि हर एक की जरूरतें अधिक अच्छी तरह पूरी की जा सकेगी। किंतु यद्यपि मानवीयता के आधार पर यह नतीजा उचित हो सकता है, उसे ऐसी स्थिति से कम न्यायपूर्ण माना जाएगा जिसमें संसाधनों का आवंटन शुद्धतः जरूरत के आधार पर होता है। ऐसी स्थिति में कम जरूरतें ही पूरी होंगी किंतु अधिक निष्पक्षता से पूरी होंगी।

5 : 4 सामाजिक न्याय का विचार

"एक न्यायपूर्ण समाज बनाने का एकमात्र तरीका इसे प्राप्त करने के लिए लगातार काम करना है।"

अमर्त्य सेन

न्याय की अवधारणा लंबे समय से दार्शनिक जांच का विषय रही है, विद्वानों और विचारकों ने समाज में इसकी प्रकृति और अनुप्रयोग को समझाने के लिए विभिन्न सिद्धांतों की पेशकश की है। ऐसी ही एक प्रभावशाली शख्सियत हैं प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और दार्शनिक अमर्त्य सेन, जिनकी पुस्तक, "द आइडिया ऑफ जस्टिस", न्याय की पारंपरिक धारणाओं को चुनौती देती है और एक आकर्षक वैकल्पिक ढांचा पेश करती है। 2009 में प्रकाशित, इस अभूतपूर्व कार्य ने गहन बहस छेड़ दी है और एक न्यायसंगत और न्यायसंगत दुनिया बनाने पर नए दृष्टिकोण को प्रेरित किया है।

अमर्त्य सेन का तर्क है कि न्याय केवल वितरण और निष्पक्षता तक सीमित नहीं होना चाहिए, जैसा कि कई पारंपरिक सिद्धांत सुझाते हैं। इसके बजाय, वह न्याय की अधिक विस्तृत समझ का प्रस्ताव करता है जिसमें क्षमताओं, स्वतंत्रता और संस्थानों की

कार्यप्रणाली सहित कई आयाम शामिल हैं। दाये को व्यापक बनाकर, सेन का लक्ष्य मानव जीवन की जटिल वास्तविकताओं को पकड़ना और व्यक्तियों के अवसरों और कल्याण में महत्वपूर्ण विविधताओं को संबोधित करना है।

सेन के दृष्टिकोण केंद्र में क्षमता दृष्टिकोण की अवधारणा है, जो व्यक्तियों की जीवन जीने की क्षमताओं और स्वतंत्रता का मुल्यांकन करने पर जोर देती है। केवल आय या संसाधन वितरण पर ध्यान केंद्रित करने के अलावा, इस दृष्टिकोण में शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, राजनीतिक भागीदारी और सामाजिक कल्याण जैसे कारक शामिल हैं। लोगों की क्षमताओं को बढ़ाने और उनके अवसरों का विस्तार करते हैं जो भौतिक कल्याण से परे हो और इसके बजाय व्यक्तियों के समग्र विकास का पोषण करता हो।

"न्याय का विचार" उपयोगितावाद और जॉन रॉल्स के न्याय सिद्धांत सहित पारंपरिक सिद्धांतों की भी आलोचना करता है। सेन का तर्क है कि ये सिद्धांत मानव जीवन की जटिलताओं और समाजों के कामकाज को पर्याप्त रूप से संबोधित करने में विफल हैं। समग्र खुशी पर उपयोगितावाद का विशेष ध्यान व्यक्तियों के अधिकारों के संभावित उल्लंघन को नजरअंदाज करता है, जबकि रॉल्स का सिद्धांत मुख्य रूप से व्यक्तियों की क्षमताओं और स्वतंत्रता पर विचार किए बिना उचित वितरण पर ध्यान केंद्रित करता है। सेन की आलोचना न्याय की अधिक व्यापक समझ की आवश्यकता पर प्रकाश डालती है जिसमें भौतिक और गैर–भौतिक दोनों पहलू शामिल हों।

इसके अलावा, सेन न्याय प्राप्त करने में संस्थानों की महत्वपूर्ण भूमिका पर जोर देते हैं। केवल अमूर्त सिद्धांतों पर भरोसा करना अपर्याप्त है; व्यवहार में संस्थाएँ कैसे संचालित होती हैं, इसका गंभीरतापूर्वक मुल्यांकन करना आवश्यक है। शिक्षा की गुणवत्ता, स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली, शासन और न्याय तक पहुंच सीधे व्यक्तियों की क्षमताओं और स्वतंत्रता को प्रभावित करती है। इन संस्थानों की कार्यप्रणाली की जांच और सुधार करके, समाज सभी के लिए न्याय प्राप्त करने के करीब पहुंच सकता है।

यह अध्याय अमर्त्य सेन द्वारा "द आइडिया ऑफ जस्टिस" में प्रस्तुत किए गए प्रमुख विचारों पर प्रकाश डालता है और एक न्यायपूर्ण समाज की नींव की पुनर्कल्पना के लिए उनके निहितार्थों की पड़ताल करता है। न्याय की व्यापक समझ, क्षमताओं के दृष्टिकोण और संस्थानों की भूमिका के लिए सेन के तर्कों की जांच करके, हमारा उद्देश्य न्याय पर चल रहे प्रवचन में योगदान देना है और पाठकों को न्याय की अपनी अवधारणाओं और दुनिया में इसके व्यावहारिक अनुप्रयोग पर गंभीर रूप से प्रतिबिंबित करने के लिए प्रेरित करना है।

5 : 4 : 1 न्याय के दायरे का विस्तार

सेन के मुख्य तर्कों में से एक यह है कि न्याय केवल आर्थिक या भौतिक वितरण तक सीमित नहीं होना चाहिए। पारंरिक सिद्धांत अक्सर संसाधनों के उचित आवंटन को प्राथमिकता देते हैं या व्यक्तियों के ठोस अनुभवों और क्षमताओं की उपेक्षा करते हुए अमूर्त सिद्धांतों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। सेन इस संकीर्ण परिप्रेक्ष्य को चुनौती देते हैं और "बोध–केंद्रित तुलना" की अवधारणा पेश करते हैं। यह दृष्टिकोण शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, राजनीतिक स्वतंत्रता और सामाजिक कल्याण जैसे कारकों को ध्यान में रखते हुए समाज के भीतर लोगों की वास्तविक उपलब्धियों और क्षमताओं पर विचार करता है। न्याय के बारे में हमारी समझ को व्यापक बनाकर, सेन हमें उन बहुमुखी पहलुओं पर विचार करने के लिए आमंत्रित करते हैं जो व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित करते हैं।

5 : 4 : 2 क्षमताओं का दृष्टिकोण

क्षमता दृष्टिकोण अर्थशास्त्री और दार्शनिक अमर्त्य सेन द्वारा विकसित एक रूपरेखा है और इसे मार्था नुसबौम द्वारा आगे विस्तृत किया गया है। यह मानव कल्याण की व्यापक समझ प्रदान करता है और लोगों की जीवन जीने की क्षमताओं को बढ़ाने पर केंद्रित है, जिसे वे महत्व देते हैं।

इसके मूल में, क्षमता दृष्टिकोण लोगों की संसाधनों और वस्तुओं तक पहुंच को मापने से ध्यान हटाकरयह जांचने पर केंद्रित करता है कि व्यक्ति वास्तव में क्या करने और बनने में सक्षम हैं। यह उन कारकों की एक विस्तुत श्रृंखला पर विचार करने के महत्व पर जोर देता है जो मानव उत्कर्ष में योगदान करते हैं और व्यक्तियों को समाज के सक्रिय सदस्यों के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाते हैं।

क्षमताओं के दृष्टिकोण के अनुसार, व्यक्तियों के पास मौलिक क्षमताओं या कामकाज का एक सेट होता है, जो विभिन्न मूल्यवान गतिविधयों और स्थितियों का प्रतिनिधित्व करता है जिन्हें वे हासिल कर सकते हैं। इन क्षमताओं में बुनियादी कार्य शामिल हो सकते हैं जैसे पर्याप्त रूप से पोषित होना, स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच होना, शिक्षित होना, राजनीतिक प्रक्रियाओं में भाग लेने में सक्षम होना, स्वयं को व्यक्त करने की स्वतंत्रता होना और सामाजिक रिश्तों का आनंद लेना। क्षमताओं का विशिष्ट समूह संस्कृतियों, समाजों और व्यक्तियों में भिन्न–भिन्न हो सकता है, क्योंकि लोगों के पास मूल्यवान जीवन के बारे में विविध अवधारणाएँ होती हैं।

क्षमताओं का दृष्टिकोण व्यक्त्यिों को उनकी क्षमताओं को प्राप्त करने में सक्षम बनाने में व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों कारकों की भूमिका पर प्रकाश डालता है। व्यक्तिगत कारकों में किसी व्यक्ति का स्वास्थ्य, शिक्षा, कौशल और एजेंसी शामिल हो सकती है, जबकि सामाजिक कारकों में व्यापक सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाएं, संस्थान और नीतियां शामिल होती हैं जो लोगों के अवसरों को आकार देती हैं। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति की शिक्षा तक पहुँचने की क्षमता लिंग मानदंडों, गरीबी या भेदभावपूर्ण प्रथाओं जैसे कारकों से प्रभावित हो सकती है।

नीति निर्धारण के लिए क्षमताओं के दृष्टिकोण के कई निहितार्थ हैं। यह लोगों को उनकी क्षमताओं को प्राप्त करने से रोकने वाली बाधाओं को दूर करके उनके अवसरों और स्वतंत्रता के विस्तार के महत्व पर जोर देता है। नीतियों को शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, सामाजिक सुरक्षा, लैंगिक समानता और व्यक्तियों की भलाई में योगदान देने वाले अन्य कारकों को बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। यह एक सहभागी और समावेशी दृष्टिकोण का भी आहव्वान करता है, जहां व्यक्ति और समुदाय अपनी क्षमताओं को परिभाषित करने और उनके जीवन को प्रभावित करने वाली नीतियों को आकार देने में सक्रिय रूप से शामिल होते हैं।

क्षमता दृष्टिकोण विकास अर्थशास्त्र, मानव विकास और सामाजिक नीति के क्षेत्र में प्रभावशाली रहा है। यह विशुद्ध रूप से आर्थिक या भौतिकवादी समझ से आगे बढ़कर कल्याण और न्याय न्याय पर एक व्यापक परिपेक्ष्य प्रदान करता है। क्षमताओं और कामकाज के महत्व पर जोर देकर, यह दृष्टिकोण मानव स्वतंत्रता, एजेंसी और गरिमा को बढ़ावा देना चाहता है, जिससे व्यक्तियों को ऐसा जीवन जीने में सक्षम बनाया जा सके जिसे वे महत्व देते हैं। सेन के काम की आधारशिला, क्षमता दृष्टिकोण, व्यक्तियों के जीवन जीने के अवसरों और स्वतंत्रता के मुल्यांकन के महत्व पर जोर देती है। यह केवल आय या संसाधन वितरण को मापने से ध्यान हटाकर लोगों की वास्तविक स्वतंत्रता और क्षमताओं को समझने पर केंद्रित करता है। किसी व्यक्ति की शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल तक पहुँचने, निर्णय लेने में भाग लेने और विभिन्न स्वतंत्रताओं का आनंद लेने की क्षमता का आकलन करके, क्षमता दृष्टिकोण न्याय के लिए अधिक व्यापक रूपरेखा प्रदान करता है। सेन का तर्क है कि लोगों की क्षमताओं को बढ़ाना और उनके अवसरों का विस्तार करना एक न्यायपूर्ण समाज के लिए केंद्रित लक्ष्य होना चाहिए।

5 : 4 : 3 पारंपरिक सिद्धांतों की आलोचना

"न्याय का विचार" उपयोगितावाद और जॉन रॉल्स के न्याय के सिद्धांत जैसे पारंपरिक सिद्धांतों की आलोचना के रूप में भी कार्य करता है। उनके योगदान को स्वीकार करते हुए, सेन का तर्क है कि ये दृष्टिकोण मानव जीवन की जटिल वास्तविकताओं और समाजों के कामकाज को पकड़ने में विफल हैं। समग्र सुख पर उपयोगितावाद का एकमात्र ध्यान व्यापक भलाई के लिए व्यक्त्यिों के अधिकारों, के बलिदान की संभावना को नजरअंदाज करता है। दूसरी ओर, रॉल्स का सिद्धांत मुख्य रूप से व्यक्तियों की क्षमताओं और स्वतंत्रता में महत्वपूर्ण भिन्नताओं को पर्याप्त रूप से संबोधित किए बिना उचित वितरण से संबंधित है। सेन की आलोचना इन सिद्धांतों से आगे बढ़ने और न्याय की अधिक व्यापक समझ को अपनाने की आवश्यकता पर प्रकाश डालती है।

परंपरिक सिद्धांतों, विशेष रूप से अर्थशास्त्र और सामाजिक विज्ञान में, को पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न आलोचनाओं का सामना करना पड़ा है। पारंपरिक सिद्धांतों पर लक्षित कुछ सामान्य आलोचनाएँ यहां दी गई हैं:

आर्थिक संकेतकों पर संकीर्ण फोकसः पारंपरिक सिद्धांत अक्सर मानव कल्याण के अन्य आयामों की उपेक्षा करते हुए जीडीपी वृद्धि या आय वितरण जैसे आर्थिक संकेतकों को प्राथमिकता देते हैं। आलोचकों का तर्क है कि यह संकीर्ण फोकस मानव जीवन की जटिलता को पकड़ने में विफल रहता है और स्वास्थ्य, शिक्षा, सामाजिक संबंधों और पर्यावरणीय स्थिरता जैसे महत्वपूर्ण कारकों को नजरअंदाज कर देता है। तर्कसंगतता और स्व–हित पर अत्यधिक जोरः कई पारंपरिक सिद्धांत मानते हैं कि व्यक्ति हमेशा तर्कसंगत होते हैं और केवल स्व–हित से प्रेरित होते हैं। यह अतिसरलीकरण निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में भावनाओं, सामाजिक प्रभावों और परोपकारिता की भूमिका की उपेक्षा करता है। आलोचकों का तर्क है कि व्यक्तियों की प्रेरणाओं और विकल्पों को सटीक रूप से पकड़ने के लिए मानव व्यवहार की अधिक सूक्ष्म समझ आवश्यक है। सामाजिक और संस्थागत कारकों को ध्यान में रखने में विफलताः पारंपरिक सिद्धांत अक्सर व्यक्तिगत व्यवहार और सामाजिक परिणामों पर सामाजिक संरचनाओं, संस्थानों और शक्ति गतिशीलता के प्रभाव की उपेक्षा करते हैं। आलोचकों का तर्क है कि पूरी तरह से व्यक्तिगत विकल्पों पर केंद्रित विश्लेषण उन व्यापक प्रणालीगत कारकों को नजरअंदाज कर देता है जो उन विकल्पों को आकार देते हैं और बाधित करते हैं। असमानता और न्याय का अपर्याप्त उपचारः पारंपरिक सिद्धांत कभी–कभी असमानता और सामाजिक न्याय के मुद्दों पर सीमित ध्यान देते हैं। आलोचकों का तर्क है कि आर्थिक और सामाजिक प्रणालियों की अधिक व्यापक समझ को शक्ति, धन और अवसरों में असमानताओं को संबोधित करना चाहिए और न्यायसंगत परिणामों को बढ़ावा देना चाहिए।

अतः विषय दृष्टिकोण का अभावः पारंपरिक सिद्धांत अत्यधिक अनुशासनात्मक हो सकते हैं, जिसमें अन्य क्षेत्रों से अंतर्दृष्टि का सीमित समावेश होता है। आलोचकों का सुझाव है कि एक बहुविषयक दृष्टिकोण, विभन्न विषयों की अंतर्दृष्टि पर आधारित, जटिल सामाजिक घटनाओं की अधिक व्यापक समझ प्रदान कर सकता है।

संतुलन और स्थिरता की धारणाएँः कुछ पारंपरिक सिद्धांत मानते हैं कि अर्थव्यवस्थाएँ या सामाजिक प्रणालियाँ निरंतर परिवर्तन, अनिश्चिता और गैर–रेखीय गतिशीलता की वास्तविकता को नज़रअंदाज़ करते हुए संतुलन और स्थिरता की ओर बढ़ती हैं। आलोचकों का तर्क है कि ऐसी धारणाओं से त्रृटिपूर्ण भविष्यवाणियाँ और नीति अनुशंसाएँ हो सकती हैं। व्यक्तिपरक अनुभवों और सांस्कृतिक विविधता की उपेक्षाः पारंपरिक सिद्धांत अक्सर मानव कल्याण को आकार देने में व्यक्तिपरक अनुभवों और सांस्कृतिक विविधता के महत्व को नजरअंदाज करते हैं। आलोचना अधिक समावेशी और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील दृष्टिकोण की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हैं जो विभिन्न समाजों और व्यक्तियों में मुल्यों, विश्वासों और आकांक्षाओं की विविधता को स्वीकार करता है।

5 : 5 सारांश

"द आइडिया ऑफ जस्टिस", न्याय की पारंपरिक को चुनौती देती है और एक न्याय पर आधारित समस्त के निर्माण पर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। न्याय को समझने और उसको बढ़ाने के लिये सेन ने उपयोगितावाद और राल्सियन सिद्धांत की आलोचनाओं पर आधारित एक अवधारणा प्रस्तुत किया जो वितरण की असमानता और निष्पक्षता से परे हैं। जो क्षमताओं स्वतंत्रता, और संस्थानों की कार्यप्रणाली के महत्व पर जोर देती है। क्षमता दृष्टिकोण सेन के सिद्धांत में एक केन्द्रीय अवधारणा है। जो व्यक्तियों के जीवन जीने के अवसरों और स्वतंत्रता का मूल्यांकन करने के महत्व पर प्रकाश डालती है न्याय के पारंपरिक सिद्धांतों की आलोचना और संस्थानों की भूमिका पर जोर देकर, सेन सामाजिक न्याय के लिये एक व्यापक दृष्टिकोण का आहवाहन करते हैं जो मानव कल्याण के लिये बहुमुखी क्षेत्रों पर चिंतन करता है।

मानवीय समताओं के विकास के समय, सेन ने मानव विकस एवं मानव अधिकारों को प्रमुखता देते हुये उनका कहना है कि 'मानव अधिकारों की अवधारणा हमारी साझा मानवता से बनती है। सेन का दृष्टिकोण शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल, राजनीतिक स्वतंत्रता और सामाजिक कल्याण जैसे कारको का ध्यान में रखते हुए समाज के भीतर लोगों की

वास्तविक उपलब्धियों और समताओं पर विचार करता है। न्याय के बारे में हमारी समझ को व्यापक बनाकर सेन हमें उन बहुमुखी पहलुओं पर विचार करने के लिए आहवान करते हैं। जो व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित करते है।

5 : 6 बोध प्रश्न

1. उपयोगितावाद से आप क्या समझते हैं।
2. बेंथम के उपयोगितावाद को अपने शब्दों में विवेचित कीजिये।
3. राल्सियन सिद्धांत की सामान्य अवधारणा को समझाइये।
4. न्याय की अवधारणा पर प्रो० अमर्त्य सेन के विचारों पर प्रकाश डालिये।
5. अमर्त्य सेन का समता दृष्टिकोण क्या है?

5 : 7 शब्दावली–

उत्पादिता– कोई व्यक्ति सामाजिक उत्पादन में कितनी कुशलता से हाथ बटाँता है।

उपयोगिता–उपयोगिता को ही हर प्रकार के निर्णय की कसौटी बनाने का सामाजिक, दर्शन–यहाँ सामाजिक कल्याण को भी सामाजिक उपयोगिता– अर्थात समाज के सदस्यों की मिली उपयोगिता के योग द्वारा ही जाना पहचाना जाता है।

पात्रता– व्यक्ति की सामाजिक उत्पादन में से अंश–प्रति की पात्रता।

विषमता– आय, संपपि, उपयोग स्तर था सामाजिक कल्याण में भारी अन्तर।

संपूर्णता– सभी संभव विकल्पों के बीच संबध स्थापित कर पाने की क्षमता।

समतावाद– सभी की आय समान हो यह आग्रह करने वाला विचार।

5 : 8 उपयोगी पुस्तकें–

अमर्त्य सेन–आर्थिक विषमता, राजपाल एण्ड सन्स, New Delhi.

अमर्त्यसेन–भारत विकास की दिशायें–राजपाल एण्ड सन्स, New Delhi.

अमर्त्यसेन–आर्थिक विकास और स्वतंत्रा– 1, डेनेइलिय सेवरीन, भैत्रीयी, मानव विकास और क्षमता ऐसोसियेशन का ई–वुलेरिन 12,2008

ड्रेज जीन और अमर्त्य सेन, भारत आर्थिक विकास और सामाजिक अवसर, दिल्ली आक्सफोर्ड 1995

राल्स जॉन, ए थ्योरी ऑफ जस्टिस, कैम्ब्रिजमास, हार्वर. 1971

सैटा मडोका, ″अमर्त्य सेन की शिक्षा के लिये क्षमता–दृष्टिकोण, एक महत्वपूर्ण अन्वेषण जनक ऑफ जिला सभी ऑफ ऐड्वेशन01,2003 V.37

सेन अमर्त्य, कमोडेशि एण्ड कैयेविकिटिज New Delhi 1999

विकास के रूप में स्वतंत्रता नई दिल्ली आवास पृ०10पेज

Sen, Amartya, The Lder I Justice, Londan Persoin, 2010 (2005)